Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अंक-5
जुलाई-दिसंबर, 2022
समकालीन कविता विशेषांक

विश्वरंग संवाद

अंतर्राष्ट्रीय विश्व रंग परिवार की त्रैमासिक पत्रिका

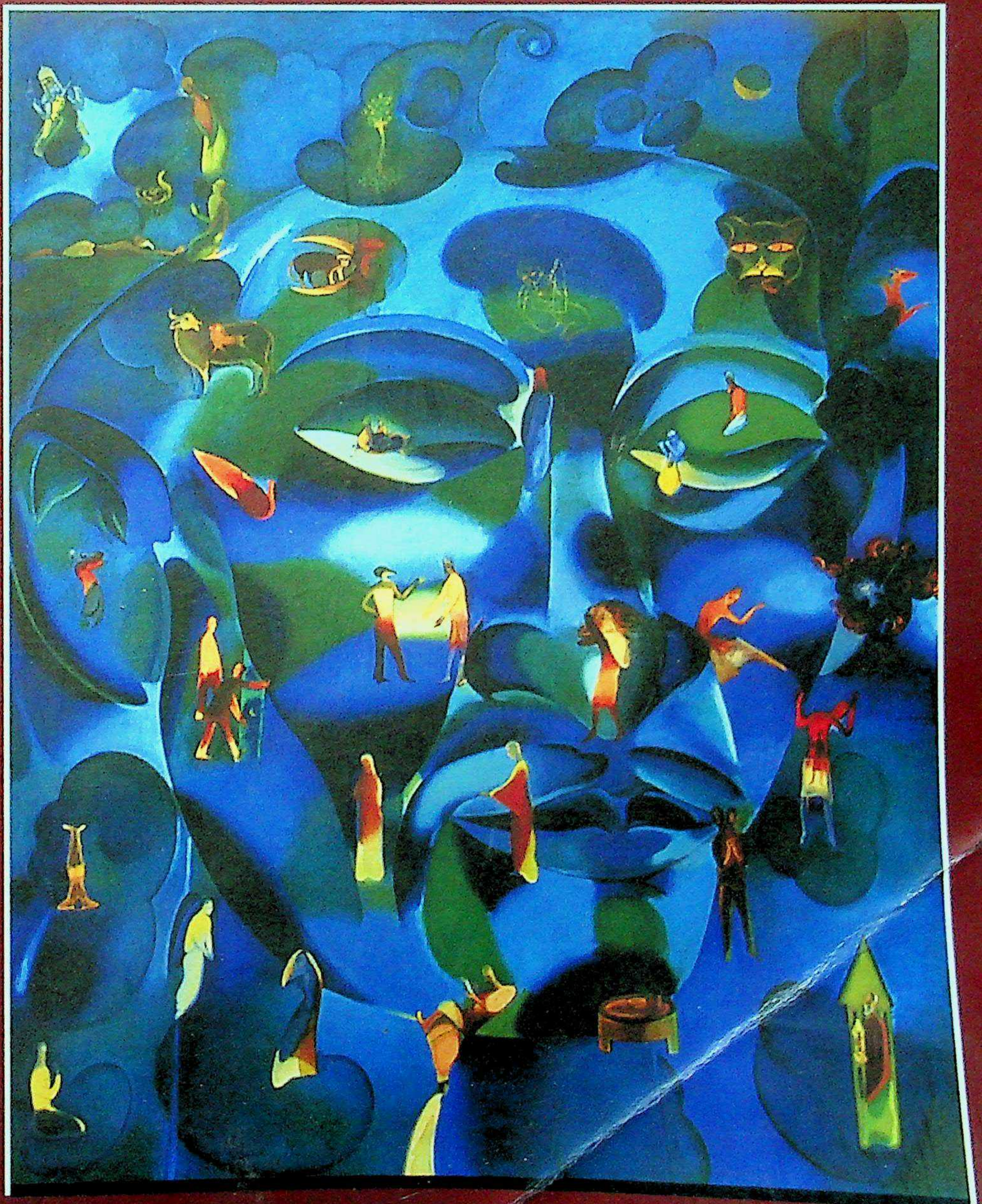

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सबसे ख़ूबसूरत

सबसे ख़ूबसूरत महासागर वह है
जिसे हम अब तक देख पाए नहीं
सबसे ख़ूबसूरत बच्चा वह है
जो अब तक बड़ा हुआ नहीं
सबसे ख़ूबसूरत दिन हमारे वो हैं
जो अब तक मयस्सर हमें हुए नहीं
और जो सबसे ख़ूबसूरत बातें मुझे तुमसे करनी है
अब तक मेरे होंठों पर
आ पायीं नहीं !

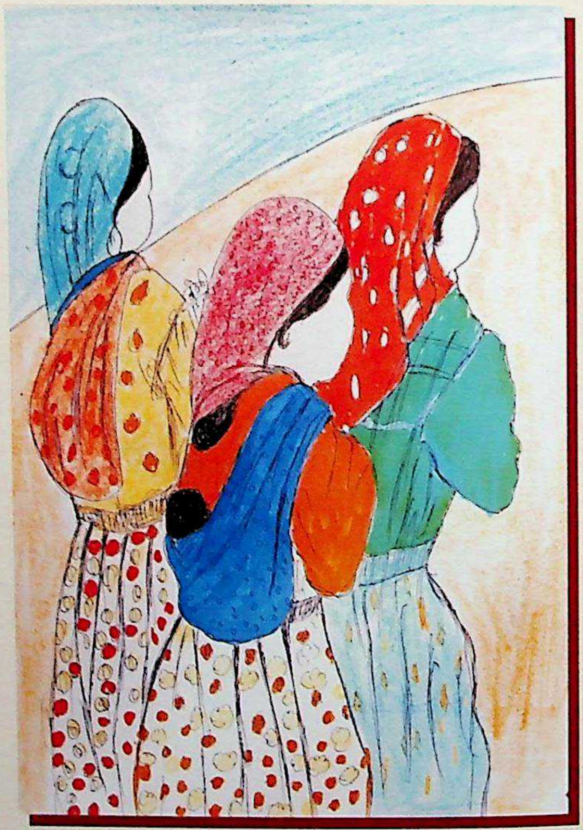

शशिभूषण बडोनी

कवि - महमूद दरवेश
अनुवाद - सुरेश सलिल

शशिभूषण बडोनी
कवि संवेदना के चित्रकार हैं। इस अंक में उनके रेखांकन इस अर्थ में ग़ौरतलब हैं कि इनमें पर्वतीय जीवन की छवियों का सूक्ष्म इंदराज है। जनसामान्य के लोकेल और रहवासियों का रेखाओं में एक सजीव भाव आख्यान यहाँ बरामद हुआ है। ये रेखांकन पहाड़ के खुरदुरे यथार्थ के हमक़रीब हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विश्वरंग संवाद

प्रधान संपादक
संतोष चौबे

संपादक
लीलाधर मंडलोई

सहायक संपादक
राकी गर्ग

प्रबंधक
अरविन्द चतुर्वेदी
महीप निगम

अग्निशेखर और क्षमा कौल
द्वारा यह
पुस्तक सप्रेम भेंट

G.M. College of Education
Raipur, Bantalab
Jammu
Acc No. 4671
Dated 20.12.2023

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विश्वरंग संवाद

जुलाई-दिसंबर, 2022

प्रकाशक-मुद्रक
सिद्धार्थ चतुर्वेदी

सम्पादकीय सम्पर्क
विश्वरंग संवाद
आईसेक्ट पब्लिकेशन्स
ई-7/22, एसबीआई अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462016 (म.प्र.)
फोन : 91755-4551056 मो. : 9818291188
ईमेल : vishwarangpatra@gmail.com

सहयोग राशि : 200 रुपये
वार्षिक : 750 रुपये

Online transaction -
State Bank of India, Mahavir Nagar Branch, Bhopal
Bank A/c 40865384472, IFSC Code SBIN 0003867

सारे भुगतान मनीऑर्डर/चेक/बैंक ड्राफ्ट द्वारा आईसेक्ट पब्लिकेशन्स, भोपाल (AISECT Publications, Bhopal) के नाम से किये जाएँ। शुल्क जमा करने के बाद इन मोबाइल नम्बर पर +91 88188 83165, +91 85869 43564 जरूर व्हाट्सऐप करें।

सर्वाधिकार सुरक्षित - प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक एवं प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। प्रकाशित सामग्री के विचार से प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं। समस्त विवाद भोपाल न्यायालय के अंतर्गत विचारणीय।

मुद्रक तथा प्रकाशक : आईसेक्ट पब्लिकेशन्स, ई-7/22, एसबीआई अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462016 के लिए प्रकाशित तथा मुद्रित।
सम्पादक : लीलाधर मंडलोई।

परामर्श मंडल
धनंजय वर्मा
ममता कालिया
चित्रा मुद्गल
नंदकिशोर आचार्य
अशोक भौमिक
जितेन्द्र श्रीवास्तव
बलराम गुमास्ता

आवरण चित्र : गुलाममोहम्मद शेख़ रेखांकन - शशि भूषण बडोनी साज सज्जा : ऊषा कश्यप

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनुक्रम

इधर से देखो 5

जोग लिखी 15

प्रारम्भ

कविता आत्म और लोकसंवाद है - मराठी के प्रख्यात कवि नारायण सुर्वे से हरि मृदुल की बातचीत 18

भारतीय भाषा कविता समय

मराठी कविता - अनुवाद : प्रफुल्ल शिलेदार 25

समकालीन मलयालम कविता की युक्तियाँ - अनुवाद : ए. अरविंदाक्षन 28

पूर्वोत्तर कविता - अनुवाद : दिनकर कुमार 38

ओडिया कविता - अनुवाद : प्रवासिनी महाकुड 43

गुजराती युवा कविता - अनुवाद : मालिनी गौतम 45

बांग्ला कविता - अनुवाद : लिपिका शाह 49

संवाद

वर्षास्नात अपराह्न में सीताकांत महापात्र से प्रवासिनी महाकुड की एक आत्मिक बातचीत 52

कवि सितांशु यशश्चन्द्र से पीयूष ठक्कर और वसंत जोषी की बातचीत 55

कवि अशोक वाजपेयी से लीलाधर मंडलोई की बातचीत 64

हिन्दी कविता समय - 1

ऋतुराज 71

गोविंद माथुर 74

अरुण कमल 76

विष्णु नागर 78

हरीश चन्द्र पाण्डे 79

संवाद

वरिष्ठ कवि ऋतुराज से प्रेमचंद गांधी की बातचीत 80

हिन्दी कविता समय - 2

उपेन्द्र कुमार 86

सुधीर सक्सेना 88

अनामिका 91

बद्रीनारायण 93

लाल्टू 95

बलराम गुमास्ता 96

अनिल गंगल 101

स्वप्निल श्रीवास्तव 103

जितेन्द्र श्रीवास्तव 105

अनीता वर्मा 108

श्रीप्रकाश शुक्ल 110

ब्रजरतन जोशी 112

ब्रज श्रीवास्तव 114

सुभाष राय 117

त्रिलोक महावर 120

मनोहर बाथम 122

आलेख

हाशिये पर खड़ी कविता का सच -विजय कुमार 123

हिन्दी कविता का उत्तर-(आधुनिक) काल - राजाराम भादू 127

इस सदी में कविता का एजेण्डा -मदन कश्यप 133

हिन्दी कविता समय - 3

कुमार मुकुल 135

हरिओम राजोरिया 137

हरि मृदुल 139

संजय कुंदन 142

प्रतापराव कदम 143

शिरीष कुमार मौर्य 144

प्रेमचंद गांधी 147

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रेम रंजन अनिमेष 148
राम कुमार तिवारी 151
अरुण देव 153
अजेय 155
राहुल राजेश 156
गणेश गनी 160

आलेख

कविता की समकालीनता पर एक बहस - अच्युतानंद मिश्र 162

इस शोर में भी शब्द कर रहे हैं अपना काम - प्रियदर्शन 168

हिन्दी कविता समय - 4

नरेंद्र नागदेव 174
शंकरानंद 177
बाबुषा कोहली 178
प्रांजल धर 181
अनामिका अनु 183

आलेख

पर्यावरण के प्रश्न और समय की कविता - नरेश चंद्रकर 184

आलोचना-समीक्षा के बीच कविता - निशांत 195

परिचर्चा

इस सदी में कविता -प्रस्तुति : कुमार मुकुल 200

हिन्दी कविता समय - 5

कुंदन सिद्धार्थ 210
प्रदीप सैनी 212
देवेश पथ सारिया 214
स्मिता सिन्हा 217
गोलेन्द्र पटेल 219
शेर सिंह मेरूपा 220

विश्व कविता समय

संवाद

पोलिश कवि एडम ज़गायेवस्की के साथ अर्लिन्डो की बातचीत - अनुवाद : आशुतोष दुबे 221

निकानोरपार्रा से पैट्रिसिओलेर्जुंडी की बातचीत - अनुवाद : अशोक कुमार 224

कविताएँ

फ़ारसी कविता - अनुवाद : नासिरा शर्मा 229

युद्ध के विरुद्ध कविताएँ -अनुवाद : कुमार अनुपम 237

तुर्की कविता - अनुवाद : मणि मोहन 244

बर्मी कविता - अनुवाद : राजेंद्र चन्द्रकान्त राय 248

विस्लावा शिम्बोर्स्का -अनुवाद : आशुतोष दुबे 250

ल्योनीद गुबानोव - मूल रूसी से अनुवाद : वरयाम सिंह 253

आलेख

आज के नेपाली युवा कवि -डा. शोभा यल्मो लिम्बु 256

विशेष आलेख

समकालीन उर्दू शाइरी : बदलता मंज़रनामा - जानकीप्रसाद शर्मा 259

ग़ज़ल/नज़्म

राजेश रेड्डी 266
बृजेश अंबर 268
डॉ. अरविन्द कुमार 270

फिल्म

अब्बास कैरोस्तमी, यिल्माज़ गुने } अनुवाद : यादवेंद्र पाण्डेय 271

फ़िल्म और कविता - कुछ नोट्स - अचिंत 274

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इधर से देखो

'विश्वरंग' का यह अंक कविता पर केंद्रित है।

इस संदर्भ में पहला सवाल तो यही उठता है कि क्या इक्कीसवीं सदी कविता की सदी होगी? वैश्विक स्तर पर देखें तो बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में उपन्यास साहित्य की केन्द्रीय विधा रही और उत्तरार्द्ध में विमर्श का बोलबाला रहा। हिन्दी में भले ही कविता केन्द्रीय विधा बनी रही लेकिन, दुनिया की ही नहीं, भारत की अन्य प्रमुख भाषाओं में भी, कविता कुछ पीछे हो चुकी थी। ऐसे में, क्या नयी सदी में कविता की वापसी होगी या हो रही है?

अगर गंभीरता से विचार करें तो दो चीजें कविता के पक्ष में होती दिखाई देती हैं। एक तो दुनिया के समक्ष उपस्थित गहरा सांस्कृतिक संकट और चुनौतियाँ और दूसरी, वैश्विक महामारी के बाद पैदा हुई, मनुष्य और प्रकृति के रिश्तों को पुन: परिभाषित करने की जरूरत। कविता के सामने पिछली सदी की ढलान एवं नयी सदी के उभार के बीच पहले ही कुछ चुनौतियाँ उपस्थित हो चुकी थीं। जैसे दृश्य से पूरी तरह घिर जाने का संकट जिसने कविता के पुराने उपकरणों को एक हद तक भोथरा बनाया, बढ़ते बाजारीकरण का प्रभाव जिसने हर वस्तु, जिसमें मनुष्य और मानवीय अनुभूतियाँ भी शामिल हैं, को उत्पाद के रूप में देखना शुरू किया और भाषा की चुनौती जिसने टेक्नोलॉजी के युग में विकृति के अनेक प्रहार झेले। वैश्विक महामारी और उसके पीछे छिपी दृष्टि ने इस संकट को बढ़ाया ही है। बायोटेक्नोलॉजी एवं बायो इन्फर्मेटिक्स के कन्वर्जेंस से जिन नये प्रयोगों की शुरुआत हुई है उनमें बायोलॉजिकल बिल्डिंग ब्लॉक्स के साथ छेड़छाड़ से लेकर क्लोनिंग और नये मनुष्य के निर्माण की बातें तक शामिल हैं। मनुष्य के द्वारा अर्जित ज्ञान, विचारधाराओं द्वारा प्रस्तुत समाज का भाष्य और भाषा का प्रसंग साथ छूटते से नजर आते हैं। ऐसे में हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के कवि, विश्व भाषाओं के कवि, किस तरह कविता में रास्ता बना रहे हैं, यह देखना दिलचस्प है। कविता में विचारधारा और स्वायत्तता के सवाल, पर्यावरणीय संकट के प्रश्न और भाषा की चुनौती से 'विश्वरंग' का यह अंक मुठभेड़ करता है। शायद आगे का रास्ता यहीं से निकलेगा। आइये, इस अंक में प्रस्तुत प्रमुख कवियों के संदर्भ लेते हुए अपनी बात आगे बढ़ाते हैं।

*

हिंदी के शीर्ष कवि अशोक वाजपेयी, जिनका साक्षात्कार इस अंक में प्रकाशित है, की कविता-आलोचना का केंद्रीय शब्द है 'स्वायत्तता'। वे कविता को एक 'स्वायत्त' कर्म मानते हैं, उसकी 'स्वायत्तता' के लिये संघर्ष करते नजर आते हैं और अपने आलोच्य कवियों में भी 'स्वायत्तता' को एक मूल्य की तरह खोजते हैं, स्थापित करते हैं। स्वायत्तता पर उनका जोर इतना अधिक है कि वह लगभग उनकी जीवन दृष्टि की तरह उनके कवि कर्म में उभरती है। देखा जाना चाहिये कि उनके यहाँ 'स्वायत्तता' के अर्थ क्या हैं और क्या उस तरह की 'स्वायत्तता' संभव है, हो सकती है? जीवन को देखने की उनकी दृष्टि क्या है और उसमें जीवन के विभिन्न स्तरों का समावेश किस तरह होता है? क्या 'स्वायत्तता' का आग्रह उन्हें अन्य कवियों और अन्य रंगों तथा रंगतों की कविताओं का सम्मान करने से रोकता है या उनके कविता विश्व को बहुल, बहुवचनीय और भरा-पूरा बनाता है?

अपनी आलोचना पुस्तक 'कवि कह गया है' की भूमिका में वे कहते हैं:

'कविता संसार के होने का उत्सव मनाती है। कई बार तो यह तक लग सकता है कि वह अपनी उत्सव धर्मिता से ही संसार को स्वायत्त करती है। इस धारणा में इधर बड़ा परिवर्तन यह आया कि यह माना जाने लगा कि कविता संसार को बदलती है या कम से कम उसे संसार को बदलने की कोशिश या संघर्ष करना चाहिये।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यों तो इन दिनों यह सब जानते हैं कि संसार जिन महाशक्तियों से बदला जाता है उनमें साहित्य या कविता शामिल नहीं हैं। कविता का सौभाग्य है कि वह महाशक्ति नहीं है। वह शक्ति है जो कुछ लोगों के संस्कार और संवेदना को, समझ और सहानुभूति को किसी हद तक बदल सकती है। वह भाषा को उन इलाकों में ले जाती है जहाँ वह पहले न गई हो। जाहिर है जो ऐसा करेगी या ऐसा करने की चेष्टा करेगी उसे जवाबदेह होना पड़ेगा और सजग भी। बहुत सारी कविता ने शायद इसी जवाबदेही के एहसास के चलते एक तरह की प्रश्नवाचकता को अपना मूलाधार बनाया है, यह प्रश्नवाचकता कभी कविता को निर्दय आत्मान्वेषण की ओर ले गई है तो कभी अनर्जित नैतिक दंभ की ओर। कुल मिलाकर कविता की स्थिति हमारे समय में यह है कि हालाँकि संसार में परिवर्तन उसके बस का नहीं, वह इस तरह से व्यवहार करती है मानो कि उसके बदले संसार सचमुच थोड़ा बहुत सही, कोनों अंतरों में सही, परिधि पर सही, बदल सकता है। हमारे समय में बहुत सारी सच्ची और खरी कविता शायद इसी ट्रैजिक बोध से उभरी है।'

स्पष्ट ही, अशोक वाजपेयी कविता या साहित्य की शक्ति और सीमाओं से भलीभाँति परिचित हैं और इन्हीं के बीच 'स्वायत्त' रहना चाहते हैं। आइये देखें कि आज के समय में वैचारिक, दार्शनिक और व्यावहारिक धरातल पर यह 'स्वायत्तता' कहाँ तक संभव है।

*

कविता और साहित्य की स्वायत्तता के संदर्भ में सबसे बड़ी बाधा 'विचारधारा' को माना जाता रहा है। उसमें भी सबसे बड़ा अवरोध 'मार्क्सवादी विचारधारा' प्रस्तुत करती है। पर क्या साहित्य में प्रचलित विचारधाराओं में 'मार्क्सवाद' ही एकमात्र विचारधारा है? क्या 'मार्क्सवादी' होने या न होने से ही कोई व्यक्ति या रचना, विचारधारा से प्रभावित या उससे मुक्त माने जा सकते हैं? और अंततः विचारधारा किस तरह से रचना में प्रवेश करती है, उसमें विन्यस्त होती है, या प्रतिबिंबित होती है?

बड़े आश्चर्य की बात है कि पूरी बीसवीं शताब्दी, मूलतः उन्नीसवीं शताब्दी के 'विचारों' या 'विचारधाराओं' से संचालित होती रही है और खुद उसने, किसी नयी जीवन दृष्टि को जन्म नहीं दिया। पहले देखें कि उन्नीसवीं शताब्दी की ये विचारधाराएँ क्या थीं?

1. डार्विन का विकासवाद का सिद्धांत, जो मनुष्य के साथ प्रत्येक विचार या वस्तु को भी धीरे-धीरे विकसित होते हुए देखता है और जीवन के साथ-साथ सामाजिक संगठनों, राजनीति तथा साहित्य और कला को भी उसके विकासमान स्वरूप में प्रस्तुत करता है।
2. प्रतिस्पर्धा का सिद्धांत, जो मानता है कि सभी जीवों, प्रजातियों और विचारों में स्वाभाविक प्रतिस्पर्धा है और उनमें से वही बचेंगे जो सबसे ज्यादा शक्तिशाली होंगे।
3. मार्क्सवादी विचार, जिसका मानना है कि जीवन के सभी उच्चतर रूप यानी धर्म, दर्शन, कला, साहित्य आदि- मनुष्य के भौतिक जीवन का ही प्रतिबिंबन हैं और आर्थिक संबंधों से निर्धारित होते हैं। विश्व का पूरा इतिहास वर्ग संघर्षों का इतिहास रहा है।
4. फ्रायड का सिद्धांत, जो कहता है कि मनुष्य के सभी उच्चतर विचार या भावनाएँ उसके अवचेतन में घट रही घटनाओं से संचालित होते हैं, जो स्वयं बचपन की अधूरी इच्छाओं और वासनाओं का ही प्रतिफलन हैं।
5. सापेक्षता का सिद्धांत, कि कुछ भी पूरी तरह सत्य नहीं है, सब कुछ सापेक्ष है और इसीलिये किसी भी सिद्धांत या व्यावहारिकता का कोई चिरंतन मूल्य नहीं है। यहाँ तक कि गणित का भी, 'जहाँ हमें कभी समझ में नहीं आता कि जो हम कह रहे हैं, वह सत्य है या नहीं,' जैसा कि रसेल ने कहा था।
6. धनात्मकता का सिद्धांत, कि वही सच है जिसे करके देखा जा सके, कि कोई भी 'ज्ञान' वास्तविक 'ज्ञान' की श्रेणी में तब तक नहीं आता जब तक उसे जाँचा परखा न जा सके या व्यावहारिक रूप से करके न देखा जा सके।

ये सारे विचार बड़े विचार थे जिन्होंने लोगों के दिमागों पर कब्जा किया। वे इस कदर लोगों के मस्तिष्क पर छा नहीं सकते थे अगर उनमें कुछ सत्य नहीं होता। लेकिन कठिनाई तब पैदा होती है जब ये सभी सिद्धांत यूनिवर्सल होने का दावा करने लगते हैं, तथ्यों के एक छोटे से समूह के आकलन के आधार पर स्वयंसिद्ध होने का और वैश्विकता का दावा करने लगते हैं और मानते हैं कि उन्हीं के आलोक में दुनिया को देखा जाये। विकासवाद मनुष्य के साथ-साथ धर्म और भाषा को भी अपने दायरे में समेट लेता है। प्रतिस्पर्धा को सिर्फ एक तत्त्व नहीं माना जाता, उसे स्वयंसिद्ध नियम की तरह प्रस्तुत किया जाता है जो पूरी दुनिया को संचालित कर रहा है। मार्क्स ये नहीं कहते कि इतिहास का कुछ हिस्सा वर्ग संघर्ष से परिचालित होता रहा है,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वह तो अब तक के सभी समाजों में वर्ग संघर्ष को इतिहास की परिचालक शक्ति मानते हैं। फ्रायड कुछ मनोरोगों का विश्लेषण करके संतुष्ट नहीं होते, वे तो पूरे मानवीय कार्य व्यवहार को अपने 'मनोविज्ञान' से संचालित करना चाहते हैं और धर्म को एक तरह का न्यूरोसिस मानते हैं। सापेक्षता एवं धनात्मकता के सिद्धांत वैसे तो खुद ही मेटाफिजिकल सिद्धांत हैं पर मजे की बात ये है कि वे स्वयं मेटाफिजिक्स को ही नकारते हैं।

इन सभी सिद्धांतों में एक चीज कॉमन है। वे सभी ये मानते हैं कि अब तक जो भी 'उच्चतर' था वह किसी 'निम्नतर' का ही प्रतिफलन है हालाँकि इसे ठीक-ठीक परिभाषित नहीं किया जा सकता कि क्या 'उच्च' है और क्या 'निम्न' और क्यों? अपने अँधेरे समय में, जब हम भाषा सीख रहे होते हैं, इनमें से कोई विचार (या इनसे मिलता जुलता, आधा अधूरा कोई विचार) हमारे दिमाग पर कब्जा जमाता है और हम उसके आलोक में दुनिया को देखने, अपने कार्य व्यवहार को संचालित करने का प्रयास करने लगते हैं। मेरे विचार में स्वाधीनता का अर्थ ऐसे किसी विचार (या विचारधारा) से मुक्ति पाना है और अपने केंद्रीय संवेदन तंत्र को इस तरह संवेदनशील बनाना है कि उसमें अन्य विचारों और दृष्टियों की आवाजाही हो सके और चयन का अधिकार मनुष्य के पास सुरक्षित रहे। 'स्वायत्त' होने का अर्थ वैचारिकता से मुक्ति नहीं बल्कि वैचारिकता की हद का इतना विस्तार करना है कि वह बहुलता का सम्मान कर सके और स्वयं की वैचारिक गरिमा का भी।

उपरोक्त छः विचारधाराएँ विज्ञान या वैज्ञानिक दृष्टिकोण की तरह हमारे सामने प्रस्तुत की जाती रही हैं पर एक समय तक आते-आते हमारा दिल, जो दिमाग से ज्यादा शक्तिशाली है, उन्हें उनकी संपूर्णता में मानने से इनकार कर देता है, हमें आधा अधूरापन महसूस होता है और हम मानविकी की तरह मुड़ते हैं, पर वहाँ भी आपको पूरी-पूरी सैद्धांतिकी मिल सकती है। आप एक संगीतकार से बात करें, वह ध्वनि और नाद के संदर्भ में पूरे विश्व का संयोजन प्रस्तुत कर देगा। आप एक नाटककार से चर्चा करें तो बहुत संभव है कि वह जीवन की विवेचना पूरे नाटकीय संदर्भों में कर दे। आप एक कवि से बात करें अगर वह विचारधारा से संपृक्त हुआ तो कविता के माध्यम से दुनिया बदलने की बात कर सकता है, अगर विचारशील हुआ तो कविता की 'स्वायत्तता' की बात करेगा, जहाँ से वह जीवन में, एक उच्चतर स्थान से हस्तक्षेप करने का काम कर सकती है।

*

बीसवीं शताब्दी में अगर किसी ने नया विचार पैदा किया तो वे गांधी थे। उन्होंने समग्र मनुष्य की बात की, मनुष्य केंद्रित विकास की बात की और भारतीय परंपरा में जाकर प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन तथा अविचारित औद्योगिकीकरण का विरोध किया। प्रकृति के साथ सामंजस्य ग्राम स्वराज्य की अवधारणा तथा अहिंसक प्रतिरोध जैसे कई विचार 'गांधीवाद' के प्रमुख स्तंभों में गिने जाते हैं। गांधीवाद ने कई देशों के स्वतंत्रता आंदोलनों तथा उनके विचारकों को प्रभावित किया। लौट-लौट कर गांधी के विचार आज भी बहस के केंद्र में आ जाते हैं। बीसवीं सदी में मनुष्य की 'स्वायत्तता' के सबसे बड़े हिमायती गांधी थे।

गांधी हमारी वैचारिक स्वतंत्रता के सवाल को सीधे-सीधे भाषाई स्वतंत्रता के सवाल से जोड़कर देखते थे। सन् 1921 में उन्होंने कहा,

'राममोहन रॉय और बड़े परिवर्तनकारी होते, लोकमान्य तिलक और बड़े विद्वान होते, अगर उन्हें अंग्रेजी में सोचना, समझना और अपने विचारों का प्रसार न करना पड़ता। इसमें कोई शक नहीं कि उन्हें अंग्रेजी साहित्य के ज्ञान से लाभ मिला लेकिन ये बातें वे अपनी भाषा में भी समझ सकते थे। मैं ऐसा नहीं मानता कि अगर राममोहन रॉय या तिलक को अंग्रेजी नहीं आती तो वे उन विचारों को नहीं सोच पाते जो उन्होंने सोचे। भारत में जितने तरह के अंधविश्वास हैं, उनमें इस बात से बड़ा अंधविश्वास कोई नहीं है कि बगैर अंग्रेजी जाने स्वतंत्रता को समझना संभव नहीं है और उससे जुड़े विचारों में खरापन नहीं आ सकता है।'

कोई आश्चर्य नहीं कि भारतीय भाषाओं के प्रतिनिधि कवि जब कविता और कवि कर्म की बात करते हैं तो 'स्वायत्तता' उनकी मूल चिंताओं में से एक होती है। अपनी भाषाई चेतना और देशज परंपरा के प्रति उनमें अभिमान की भावना है और उनकी आलोचना में सजग, सचेत, चौकन्ना, परख, पड़ताल, पहचान, सरोकार जैसे शब्द बार-बार आते हैं।

मलयालम के प्रख्यात कवि गोपीकृष्णन की कविता में देखिए:

इस हफ्ते मैं पढ़ रहा हूँ फ्रेंच उपन्यास।
देखी मैंने एक इतालवी फिल्म।
संदेह हुआ संस्कृत व्याकरण को लेकर।
जख्म भरे गए अंग्रेजी दवाओं के लेपन से
मेरा आनंद हिंदुस्तानी संगीत में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जरूरत है आंध्र के चावल की
लेकिन भरी दुपहरी में
मैं
खर्राटे मारता हूँ
मात्र मलयालम में।

*

ऊपर हमने वैचारिक आधारों के संदर्भ में स्वायत्तता की बात की है जो न सिर्फ संभव है बल्कि वांछनीय भी है। आइये अब देखते हैं कि दार्शनिक आधार पर मनुष्य कहाँ तक स्वाधीन हो सकता है। सबसे पहले तो ये समझ लें कि ऊपर हमने जिन छ: प्रमुख विचारधाराओं का जिक्र किया है उन्होंने अपनी तीसरी चौथी पीढ़ी तक आते आते ऐसे क्रूर, कठोर और निर्दयी समाज को जन्म दिया है जिसकी रुग्णता हम सबके सामने है। तमाम तरह के उच्चतर अनुशासनों, यानी इतिहास, दर्शन, कला, उपन्यास, कविता के अंत की घोषणा की जा रही है और हमारे दिमागी नक्शे से उन सभी को-ऑर्डिनेट्स को गायब करने की कोशिश है जिनके माध्यम से हम अपने समय और समाज को पहचान सकते थे।

प्रख्यात दार्शनिक और अर्थशास्त्री शूमाकर, जो स्वयं महात्मा गांधी तथा बुद्ध से गहरे तक प्रभावित थे, बताते हैं कि हमें उन्नीसवीं शताब्दी की विचारधाराओं द्वारा पैदा किये गये भ्रम तथा गड़बड़ियों को दूर करना होगा तभी हम साफ-साफ सोच सकने वाला मानस बना पायेंगे। इनमें सबसे पहली गड़बड़ी है जीवन के विभिन्न स्तरों की पहचान का विलुप्त हो जाना। हमें सैद्धांतिकी से बाहर निकल कर, सिर्फ आँख खोलकर देखने की जरूरत है। तब हम पायेंगे कि जीवन साफ-साफ चार स्तरों पर विभाजित है। सबसे नीचे के स्तर पर है जड़ पदार्थ- उससे ऊपर है प्रकृति-पेड़-पौधे, जिनमें जड़ पदार्थ से कुछ ज्यादा होता है, वे साँस लेते हैं और उनमें जीवन तत्व होता है, वे सिर्फ पदार्थ नहीं होते, कट जाने के बाद उनकी मृत्यु होती है और वे पदार्थ बन जाते हैं- तीसरे स्तर पर होते हैं पशु-पक्षी जो पेड़ पौधों से कुछ ऊपर होते हैं, वे चल फिर सकते हैं, खतरों को भाँप लेते हैं, अपने बचाव का प्रयास कर पाते हैं और चौथे स्तर पर है मनुष्य, जिसमें अपने से नीचे के तीन स्तरों के अलावा एक और चीज होती है और वह है आत्मबोध। वह खुद से बाहर निकलकर स्वयं को देख लेता है, अपने आसपास को समझने और बदलने की क्षमता रखता है और न सिर्फ ये, बल्कि अपनी पूरी संभावनाओं को पहचानने के बाद, उनसे भी ऊपर उठने की क्षमता रखता है।

जीवन के ये चार स्तर नीचे से ऊपर की ओर विस्तार पाते हैं। इनमें से प्रत्येक की पहचान की जा सकती है अगर आपके पास उचित उपकरण हों। फिजिकल साइंसेस के द्वारा सबसे नीचे के स्तर, यानी जड़ पदार्थ के बारे में सब कुछ जाना जा सकता है। हिग्स बोसॉन तक तो हम पहुँच ही गये हैं जिसे 'गॉड पार्टिकल' भी कहा जा रहा है। लेकिन जैसे जैसे हम जीवन के उच्चतर स्तरों पर पहुँचते हैं, फिजिकल साइंसेस उनकी पूर्ण पहचान के लिये नाकाफी होते जाते हैं। मनुष्य के अंतर्मन को जानने के लिये जिस विज्ञान (मनोविज्ञान) का उद्भव हुआ है वह एक सीमा से आगे नहीं जा पाता और फिजिकल साइंसेस द्वारा मनुष्य को पूरी तरह नहीं समझा जा सका है। मनुष्य पदार्थ नहीं है, वह मरने के बाद पदार्थ बनता है। हर मनुष्य अपने आप में 'स्वायत्त' है और फिजिकल साइंस द्वारा उसकी पहचान नहीं की जा सकती। उसकी इस 'स्वायत्तता' में ही उसकी अनंत संभावनाएँ छुपी हुई हैं। जब अशोक वाजपेयी 'आश्चर्य की तरह खुला है संसार' की अवधारणा रखते हैं तो मनुष्य की उन्हीं अनंत संभावनाओं की याद आती है जो उसकी 'स्वायत्तता' में छुपी हुई हैं और दार्शनिक आधार पर पूरी तरह संभव हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी की विचारधाराओं ने जो दूसरी गड़बड़ी पैदा की है वह यह कि हमने भुला दिया कि मनुष्य जीवन भर दो परस्पर विरोधी संयुक्तों को साधने में ही लगा देता है। हमारी स्वाभाविक प्रवृत्ति एकध्रुवीय न होकर द्विध्रुवीय है और हम जीवन भर प्रेम-घृणा, लोभ-त्याग, स्वार्थ-परमार्थ जैसे परस्पर विरोधी शब्द युग्मों से जूझते रहते हैं। टु बी ऑर नॉट टु बी, दैट इज द क्वश्चन, जैसा कि शेक्सपियर ने कहा था। हम ये समझ ही नहीं पाते कि हमें अपने जीवन में क्रियाशील संयुक्तों को समझना पड़ेगा और उनमें एक उच्चतर स्थान से हस्तक्षेप करने की क्षमता पैदा करनी होगी।

उपरोक्त विचारधाराओं ने जो तीसरी कठिनाई पैदा की है वह यह कि उसने इस 'उच्चतर' स्थान की संभावनाओं को ही निरस्त कर दिया है। नैतिकता का कोई मूल्य नहीं, वह फालतू की चीज है- प्यार अब कौन करता है- संतुलन और टॉलरेंस कमजोर व्यक्तियों का काम है, शक्तिशाली व्यक्ति को हिंसक और आक्रामक होना चाहिये - इतिहास और परंपरा का तो पहले ही अंत हो चुका था, अब कलाओं के भी अंत की घोषणा की जा रही है। इस तरह एक नैतिक शून्य हमारे मन में घर कर गया है जहाँ से रास्ता नहीं सूझता, कोऑर्डिनेट्स नहीं समझ आते, विश्व हमारे लिये अबूझ पहेली बन जाता है और हम कुहासे आदि की बात करने लगते हैं। पर एक सरल सा उदाहरण हमारे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रास्ते को प्रकाशित कर देगा। प्रत्येक माँ यह चाहती है कि बच्चा स्वतंत्र भी रहे कि वह दुनिया को देख समझ सके और अनुशासित भी कि जीवन व्यवस्थित रूप से चला सके। स्वतंत्रता और अनुशासन इस तरह परस्पर विरोधी शब्द युग्म हुए। माँ इनके परस्पर विरोध को 'प्रेम' नामक उच्चतर शक्ति से सुलझाती है और यह काम वह जीवन भर करती है। शायद इसीलिये माँ पर इतनी और इतनी सुंदर कविताएँ लिखी गई हैं। वे असल में प्रेम कविताएँ हैं।

फिजिकल साइंसेस की पद्धति से हम जड़ पदार्थों के बारे में अंतिम सत्य तक पहुँच सकते हैं पर उन्हीं पद्धतियों से हम मनुष्य के बारे में अंतिम सत्य तक नहीं पहुँच सकते, और 'विचारधाराएँ' जब 'वैज्ञानिक' होने का अभिनय करती हैं या 'वैज्ञानिक' पद्धतियों को जब समाज या मनुष्य पर जस का तस लागू किया जाता है तो क्या हो सकता है, इसका मार्मिक विवरण स्वयं विकासवाद के जनक डार्विन की आत्मकथा से मिलता है। उन्होंने लिखा-

'तीस वर्ष की आयु या उसके कुछ बाद तक, कविता मुझे गहरे आनंद से भर देती थी। एक स्कूली छात्र के रूप में शेक्सपियर, विशेषकर उनके ऐतिहासिक नाटक, मुझे उत्तेजक और आनंददायक लगते थे। पेंटिंग एवं संगीत मुझे प्रसन्नता से भर देते थे। पर अब कई वर्षों से मुझसे कविता की एक पंक्ति नहीं पढ़ी जाती। मैंने दुबारा शेक्सपियर को पढ़ने की कोशिश की पर उसने मुझे भारी बोरियत से भर दिया। चित्रों और संगीत के प्रति भी मेरा रुझान खत्म सा है। मेरा दिमाग एक ऐसी मशीन बन गया है जो लगातार तथ्यों और आँकड़ों के बीच से कुछ सामान्यीकृत सिद्धांत निकालती रहती है। ऐसा करते समय मेरे दिमाग के उस हिस्से का क्षरण क्यों होना चाहिये था, जिससे उच्चतर आनंद की प्राप्ति होती थी, मैं समझ नहीं पाता। लेकिन ये तय है कि मेरी उन अभिरुचियों के गुम जाने से मेरे जीवन से खुशी समाप्त हो गई है और शायद मेरी बुद्धि को भी नुकसान पहुँच रहा है। यह मेरे नैतिक एवं भावनात्मक चरित्र को भी कमजोर बना रहा है।'

उपरोक्त से स्पष्ट है कि धरती पर जीवन गड्ड-मड्ड नहीं बल्कि निश्चित और पहचाने जा सकने वाले स्तरों पर उपस्थित है, कि उसे पहचानने के लिये उचित उपकरणों की आवश्यकता है, कि फिजिकल साइंसेस के माध्यम से जड़ पदार्थों का तो पूर्ण विश्लेषण किया जा सकता है पर मनुष्य के बारे में अंतिम सत्य तक नहीं पहुँचा जा सकता, प्रत्येक मनुष्य यूनिक है एवं अनंत संभावनाओं से भरा हुआ है और समग्रता में देखा जाये तो 'संसार आश्चर्य की तरह खुला हुआ है' जिसके साथ जिज्ञासा, विस्मय और आश्चर्यपूर्ण साक्षात्कार के माध्यम से कविता संभव की जा सकती है। यह कविता जीवन के परस्पर विरोधी संयुक्तों में उच्चतर स्थान, यानी प्रेम, करुणा, आनंद, वात्सल्य, जिज्ञासा जैसे भावों से हस्तक्षेप करती है और 'स्वायत्त' रहते हुए मनुष्यता को बचाने का काम करती है।

युवा कवि स्वप्निल श्रीवास्तव की इस अंक में प्रकाशित कविता 'तितलियाँ' ऐसी ही एक कविता है:

तितलियों के बारे में मैं बहुत कुछ नहीं जानता
बस इतना जानता हूँ कि वे इसलिए
उड़ती हैं ताकि हम उन्हें पकड़
न पाएँ
पकड़ में आ गईं तो वे तितलियाँ कहाँ?
वे हर मौसम में दिखाई देती हैं
वसंत के दिनों में शोख और चंचल
हो जाती हैं
वे फूलों के होंठों को चूमकर लहूलुहान
कर देती हैं इसके बावजूद फूल
मुस्कराते हैं
कुछ तितलियाँ मेरी डायरी में
छोड़ गई हैं पंख
जब उन्हें छूता हूँ, वे तरंगित होने
लगती हैं
मैं उन पंखों के साथ उड़ने
लगता हूँ
मैं उन सारी तितलियों को धन्यवाद
देखा चाहता हूँ जो मेरी ज़िंदगी की
उड़ान में शामिल हैं।

*

आइये अब कविता के बारे में अशोक वाजपेयी के कुछ और विचार देखें,

'कविता एक निपट मानवीय घटना है। वह भाषा में मानवीय उपस्थिति है।'

'बिना जीवन के कविता संभव नहीं, पर कविता का अपना भी जीवन है, वह अनुकरण नहीं, भाषा का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वाधीन कर्म है।'

'हर कवि, अगर हर सच्ची कविता नहीं, अपना एक संसार बनाता है। कविता में बसे हर संसार का, उसकी सारी ध्वनियों-अंतर्ध्वनियों, रंगतों और छायाओं, मुखरता और मौन में अधिग्रहण, आलोचना का बुनियादी धर्म है। जाहिर है कि यह संसार हमारे काम का तभी होगा जब वह स्वायत्त और स्वाधीन होगा।'

अशोक कहीं भी ये दावा नहीं करते कि कविता जीवन से या विचार से 'स्वायत्त' है। वे मानते हैं कि 'कविता संसार के होने का उत्सव मनाती है', 'बिना जीवन के कविता संभव नहीं पर कविता का अपना भी जीवन है', और 'उसकी सारी ध्वनियों-अंतर्ध्वनियों, रंगतों और छायाओं, मुखरता और मौन में अधिग्रहण, आलोचना का बुनियादी धर्म है।'

इसीलिये एक ओर तो वे जयशंकर प्रसाद में भारतीय मनीषा का पुनराविष्कार, संस्कृति के बुनियादी द्वंद्व और चुनौतियाँ और उनके माध्यम से स्वायत्तता के लिये प्रतिरोध देख पाते हैं तथा दूसरी ओर अज्ञेय में अकेलेपन का वैभव, एकांतिकता, गरिमा और छांदिकता, अनुभव की सघनता और चित्रात्मकता का भी उत्सव मनाते हैं। शमशेर संसार को अर्थपूर्ण विस्तार देते हैं। उनके यहाँ लोग ही नहीं अन्य वस्तुएँ और चीजें भी हैं जो अनुभव को समग्र बनाती हैं। वे शब्दों के बीच की नीरवता के कवि हैं। अशोक को दो वामपंथी समाजवादी कवि मुक्तिबोध एवं रघुवीर सहाय बेहद प्रिय हैं। उनमें से पहले में वे सार्वजनिक दुनिया और राजनैतिक विचारों का पुनर्वास पाते हैं, जहाँ कविता विचार प्रधानता के साथ प्रगट होती है और दूसरे में सहज प्रवहमान भाषा, हमारा आज का समय और संघर्ष और मानवता की गरिमा के दर्शन करते हैं जहाँ कवि अपने ही 'स्वदेश' का निर्माण कर रहा है।

श्रीकांत वर्मा की प्रेम, प्रसन्नता, उछाह, सुख और तृप्ति से भरी रागमय कविता उन्हें गहरे आकर्षित करती है तो विजय देवनारायण साही भी अपने संवादों, बहसों और राजनैतिक चेतना की उत्तेजक अभिव्यक्ति के कारण उनके निकट स्थान पाते हैं। हमारे हाल के समय के प्रमुख कवि कुँवरनारायण कविता की नैतिकता और उसकी पारिस्थितिकी को बचाने का प्रयास करते हुए काव्य सौंदर्य के प्रतीक बन जाते हैं तथा अपनी छंदमयता में कविता की परंपरा के प्रतिनिधि भी।

कविता में 'स्वायत्तता' के आग्रह ने अशोक वाजपेयी की काव्य अभिरुचियों को बहुल और बहुवचनीय बनाया है और इस तरह कविता के संसार को सुंदर और भरा-पूरा। विचार और बौद्धिकता का उनके यहाँ निषेध नहीं बल्कि इस हद तक स्वीकार है कि कविता एक 'स्वाधीन' कर्म बन जाये।

मराठी के प्रख्यात कवि नारायण सुर्वे विचारधारा और कवि कर्म के संदर्भ में कहते हैं:

'मेरे लिए कविता आत्म संवाद भी है और लोक संवाद भी। कविता एक ही वक्त दोनों काम करती है। कविता के पीछे चिंतन होता है तो उसमें अनुभव की भूमिका भी होती है। एक के पीछे एक लाइन लिख देखा कविता नहीं है। कुछ ही पंक्तियों में कविता पूरी जिंदगी की दास्तान कह सकती है। कविता के शब्द सिर्फ शब्द नहीं होते, वे संवाद लेकर आते हैं। कविता में सिर्फ सरोकार होने से काम नहीं चलता, उसमें जनता का अनुभव भी जरूरी है। आप जनता के पास गए नहीं, तो जनता के कवि कैसे हो सकते हैं? यह भी सवाल है कि क्या आपकी कविता जनता की समझ में आती है? जनता के पास जाकर ही जनता की भाषा आपके पास आएगी और जब जनता की भाषा आपके पास आएगी, तो वह अवश्य ही संप्रेषित होगी। उनकी समझ में भी आएगी। जब तक आपका आम जनता से जुड़ाव नहीं होगा, उनसे हृदय से संवाद नहीं होगा, तब तक आपकी कविता में नए अर्थ नहीं होंगे। आप अपनी कविता में प्रयोग कीजिए, लेकिन उसमें हृदय होना चाहिए। वह विदेशी कविता के शिल्प की भौंड़ी नकल नहीं होनी चाहिए। मैं कविता को साहित्य की केंद्रीय विधा मानता हूँ, इसीलिए मैं उसमें भरपूर जोखिम भी पाता हूँ। मेरा यह भी मानना है कि जो इस जोखिम को ठीक से समझेगा, वह गंभीरतापूर्वक पूरी संलग्नता के साथ कविता लिखेगा।'

*

अब तक हमने वैचारिक एवं दार्शनिक धरातल पर 'स्वायत्तता' की संभावना की पड़ताल की है। अब देखते हैं कि क्या व्यावहारिक धरातल पर भी आज के समय में स्वायत्त रहना संभव है? साहित्य, विशेषकर कविता के सामने पिछली शताब्दी के अंतिम दशकों में तीन तरह की चुनौतियाँ उभरीं। पहली थी दृश्य से पूरी तरह घिर जाने की चुनौती। दृश्य माध्यमों के अभूतपूर्व विस्तार के कारण दृश्य ने हमें इस कदर घेर लिया कि कविता में शब्दों के माध्यम से बिंब और चित्रात्मकता की प्रस्तुति, कम से कम अपने पुराने रूप में, असंभव सी लगने लगी। दृश्य का विस्तार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और गति इतनी ज्यादा थी कि उसी की तरह की चमक और गतिशीलता कविता में शायद कोई प्रभाव न छोड़ पाती। कविता के सामने रास्ता संवेदनात्मक गहराई बढ़ाने का था। उसे उन स्थानों पर जाना था जहाँ दृश्य नहीं जा पा रहा था।

दूसरी चुनौती बढ़ते हुए बाजारीकरण की थी जहाँ हर वस्तु, जिसमें मनुष्य और मानवीय अनुभूतियाँ भी शामिल हैं, एक उत्पाद के रूप में परिवर्तित की जा रही थी। ऐसा करते हुए सभी उच्चतर मानवीय उपकरण कला, साहित्य, संगीत, मनुष्य को वह आंतरिक और आध्यात्मिक ऊँचाई नहीं दे पा रहे जहाँ से वह अपने जीवन में सुंदरता, कोमलता, प्रेम और परमार्थ जैसी अच्छाई बरकरार रख पाये। दूसरी ओर बाजारीकरण ने ऐसी क्रूर और कठोर दुनिया का निर्माण किया जहाँ आर्थिक विषमता और उससे उत्पन्न होने वाली निर्दयता, आतंक और पाशविकता ने दुनिया को असहनीय बना दिया। कविता सिर्फ लंबी मानवीय परंपरा से प्राप्त ज्ञान को पुनर्स्थापित करते हुए ही इस परिस्थिति से जूझ सकती है।

साहित्य और कविता के सामने तीसरी चुनौती स्वयं भाषा, विशेषकर हिन्दी भाषा, को अनावश्यक प्रभावों से बचाने और उसे और अधिक समृद्ध तथा व्यापक बनाने की थी। सूचना तकनीक के आगमन और विस्तार के बाद एक ओर जनतांत्रिकता का विस्तार हुआ और दूसरी ओर ब्लॉगिंग एवं सोशल साइट्स के माध्यम से ऐसी भाषा बनी जो पारंपरिक हिन्दी से बहुत अलग है। इसी के साथ बड़ी संख्या में स्त्री-पुरुष पिछले दो दशकों में साक्षर हुए। उन्होंने अभी अभी लिखे हुए को जानना शुरू किया। वे अपने शब्द, अपनी ध्वनियाँ, अपनी बोली लेकर आये। उन्होंने कहा कि उन्हें भी भाषा में शामिल होना है, संवाद में शामिल होना है। यह प्रक्रिया स्वागत योग्य थी पर सांस्कृतिक साक्षरता और भाषाई चेतना की दृष्टि से चुनौतीपूर्ण भी। इन समूहों से संवाद आज की बड़ी जरूरत है।

मराठी में दलित चेतना के प्रमुख कवि नारायण सुर्वे का मानना है कि:

'दलित साहित्य एक महत्त्वपूर्ण आंदोलन है। इसे बड़ी चेतना के साथ लिखा गया है और यह निरंतर लिखा जा रहा है। यह एक तरह से नवजागरण है। इसी नवजागरण की वजह से महाराष्ट्र में जमींदारशाही नहीं रही। महाराष्ट्र में महात्मा फुले की चेतना ने बहुत बड़ा काम किया। फुले खुद माली थे, लेकिन उन्होंने 125 वर्ष पहले लड़कियों के लिए पाठशाला खोली थी। उन्होंने हरिजनों के लिए कुआँ खुदवाया था। उनके पास एक सामाजिक दृष्टि थी और एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण था। फुले की सोच को ही बाबा साहब डॉ. भीमराव आंबेडकर आगे लेकर आए और उसका विस्तार किया। बुद्ध, कबीर और फुले की सोच ने लोगों के भीतर एक नई चेतना फैलाई। बाबा साहब आंबेडकर के पिता को पूरा कबीर याद था। इसका असर डॉ. भीमराव आंबेडकर पर भी पड़ा। कम लोगों को पता होगा कि खुद आंबेडकर भी कबीर को अपना गुरु मानते थे। बुद्ध और कबीर उनके आदर्श रहे हैं। यह सब मैं इसलिए कह रहा हूँ, क्योंकि दलित साहित्य का संबंध चेतना से है। नई दृष्टि से है। आज दलित साहित्य में बहुत अच्छी कविताएँ, कहानियाँ और उपन्यास लिखे जा रहे हैं। इन कृतियों में सिर्फ नारे नहीं हैं, जीवन भी धड़कता है। इस लेखन में विविधता है।'

*

इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में, विशेषकर हालिया वैश्विक महामारी के बाद हमारी विकास की अवधारणा पर उठते सवाल और तीखे हुए हैं। प्रख्यात आलोचक विजय कुमार कहते हैं कि विकास की ऐसी अवधारणा जब जंगल, पहाड़, नदियाँ, वनस्पतियाँ, प्राकृतिक संसाधन सभी पर कारपोरेट जगत का कब्जा होता जा रहा हो, उपभोगमूलक संस्कृति के फैलाव ने ग्रामीण समाजों, सामुदायिक जीवन शैली और परम्परागत जीवन मूल्यों तक घुसपैठ कर ली हो और इस प्रक्रिया में मनुष्य केवल अपने भौतिक परिवेश से ही विस्थापित नहीं हो रहा, उसका आत्मिक संसार भी उससे छीन लिया जा रहा हो तब लाखों-करोड़ों लोगों की खामोश विपदाएँ और उनकी अनसुनी आवाजों का सच हमारे समय का सबसे भयानक सच है। जन समूहों के रोजमर्रा के जीवन में विराट प्रचार-तंत्र द्वारा गढ़े जाते हुए झूठ, सतही सूचनाओं और जानकारियों का यह अंधा सैलाब, विज्ञापन की एक रुपहली दुनिया, बाजार की नित नयी लुभावनी अदाएँ, उपभोग की सनसनी, रची गई तमाम तृष्णाएँ, अभीप्साएँ, आत्मछलनाएँ, छद्म चेतनाएँ, एक अफरा-तफरी और भौतिक सफलताएँ पाने की एक अंधी दौड़। मनुष्य के मन में यह लगातार मिथक रचा जा रहा है कि बाजार उसे मुक्त कर रहा है और वस्तुओं का उपभोग उसके लिए खुशहाली और आनन्द के पल जुटा रहा है। अपनी आत्म-चेतना से विस्थापित यह मनुष्य जो विस्मृति, लालसाओं, आत्मकेन्द्रिकता, छिछोरेपन, उत्तेजना और हिंसा की नए प्रकार की गुलामी की ओर धकेला जा रहा है-

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्या मनुष्य की चेतना का यह 'पदार्थीकरण' इतने नियोजित तरीके से इतने विशाल पैमाने पर सभ्यता के इतिहास में पहले कभी हुआ था? यहाँ एक ऐसे विचारक की याद कर लेना आवश्यक होगा जिन पर आधुनिक हिन्दी के लेखक कम ही ध्यान देते हैं। ये थे दीनदयाल उपाध्याय जिन्होंने 'एकात्म मानववाद' पर जोर दिया, जो अपने सूत्र भारतीय ज्ञान परंपरा में ढूँढ़ते थे, जिनके यहाँ 'चिति' यानी मनुष्य का चित्त और स्वभाव महत्त्वपूर्ण था और प्रकृति के साथ समन्वय विकास की दृष्टि।

विकास की अंधी दौड़ से जुड़ी समस्या युद्ध और विस्थापन की है। हिन्दी के ख्यात कवि ऋतुराज का मानना है कि विस्थापन आज विश्व की सबसे बड़ी मानवीय समस्या है। हमने भी 1947 से लेकर अब तक विस्थापन की इस पीड़ा को लगातार देखा-भोगा है। पिछले एक दशक में ही दुनिया भर में चार करोड़ से अधिक लोग विस्थापित हुए हैं। यह बात इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि आधुनिकीकरण, औद्योगिकीकरण, रोजगार और अन्य प्राकृतिक-राजनैतिक-सांस्कृतिक वजहों से पलायन और विस्थापन पिछले कुछ वर्षों में बहुत तीव्रता के साथ हुआ है। दुनिया की सभी प्रमुख भाषाओं में कवि-कथाकार विस्थापन की इस पीड़ा को व्यक्त कर रहे हैं।

हमारे अत्यंत सुंदर उपग्रह पर शरणार्थियों और विस्थापितों की तादाद बढ़ती जा रही है। जो अभी तक अपनी जमीन, अपने मुल्क से उखड़े नहीं हैं वे भी रात-दिन अपने भविष्य की अनिश्चितता और दहशत में जी रहे हैं। इस सदी में जो सीरिया, लेबनान, तुर्की, अफगानिस्तान आदि देशों में हुआ और पिछली सदी में दो विश्व युद्धों के बाद हुआ, उसने साबित कर दिया है कि मनुष्यता के विस्थापन की इस बड़ी त्रासदी के लिए राजसत्ताएँ और केवल राजसत्ताएँ ही ज़िम्मेदार हैं। वरना लाखों-करोड़ों लोग रोजी-रोटी और जान बचाने के लिए अपना घर-बार छोड़कर अपनी गृहस्थी के साथ खतरनाक रास्तों से चलते हुए नये शरणस्थल खोजने के लिए भागते नजर नहीं आते। सत्ता की राजनीति, नीतियाँ मानव जाति की नियति तय करती हैं। युद्धोन्माद, धार्मिक, नस्ली हिंसा, नफरत, दूसरे की संपत्ति पर काबिज होने की बर्बर इच्छा किसी क्रूर शासक को और अधिक लोकप्रिय बनाने का अवसर देती है और उसके विरोधी अल्पसंख्यक विस्थापित होते हैं। एक समय ऐसा भी आता है जब मनुष्य गायब हो जाते हैं, सिर्फ आँकड़े रह जाते हैं। बस आँकड़े कि इतने विस्थापित हुए, इतने अप्रवासी हुए, इतने मरे, इतने गंगातट पर जलाए गए, बहाए गए।

ऐसे में सतीश कालसेकर जैसे कवि समय का अतिक्रमण करते हुए अच्छाई के पक्ष में, एक नई प्रार्थना रचते हैं:

जुबान तनिक भी
न लड़खड़ाए
अच्छे को अच्छा कहने में
हाथ जरा सा भी
खींचा न जाए
अच्छे काम में मदद करते समय
पाँव पलभर के लिए भी
न थकें
अपने इस सुन्दर देश में घुमक्कड़ी करते समय
खुशी के मारे
आँखें भर आएँ
कुछ अच्छा देखते पढ़ते सुनते वक्त
घर का घर जैसा होना देखकर
परिवार का परिवार जैसा होना देखकर
फूले न समाएँ
दिल भर आये
दोस्त जब भाई जैसे बनें
सहोदर
और पूरा अंतस्तल
अपने आगोश में आते वक्त
हम बन जाएँ अपने आप
बिलकुल अदने से
अनायास

*

इस क्रूर और जटिल समय में कवि को कविता से बहुत उम्मीदें हैं। कवि-आलोचक अच्युतानंद मिश्र का मानना है कि मानवीय व्यवहार और मानवीय सम्बन्ध या मानवीय व्यापार में आए परिवर्तन को भी सबसे विश्वसनीय तरीके से कविता के रास्ते समझा जा सकता है। हालाँकि यह काम तो साहित्य की तमाम विधाएँ करती ही हैं, लेकिन कविता इसे करने में अधिक सक्षम इसलिए है, क्योंकि वह अपनी गति, अपनी संरचना, अपनी भाषा और अपने अर्थ के लिए सरल सामाजिक तर्कों पर ही निर्भर नहीं है। वह अर्थ और अर्थ से परे जा सकने में सक्षम है। वह भाषा के नियमों के अनुरूप और उसके विपरीत जा सकती है। वह समय की सरल तार्किकता का विपर्यय रच सकती है। यह सब कविता में होता रहा है, इसलिए किसी समय, समाज, भाषा और मानवीय सम्बन्धों में आए परिवर्तन को सबसे अधिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विश्वसनीय तरीके से कविता में देखा जा सकता है।

कविता के संभव होने की प्रक्रियाओं ने, जटिलताओं ने, उसके रूपांतरण ने, उसके स्वरूप को बदल दिया है। पहले, यानी आज से तीन चार दशक पूर्व की कविता एक सरल सम्बन्ध में संभव हो रही थी। कविता का लिखा जाना, उसका प्रकाशित होना और उसके पढ़े जाने की प्रक्रिया एक सीधी प्रक्रिया थी। उसकी सीमित गति थी। मनुष्य के विवेक की गति के अनुसार उसका प्रसार था। यह गति कमोबेश व्यवसायिक संसार का प्रतिरोध रचती थी। लेखक, प्रकाशक और पाठक ये तीन मुकाम थे कविता संसार के।

आज की कविता प्रकृति के साथ मानव के सरल संबंधों से आगे बढ़ते हुए औद्योगीकरण और बाजार की जटिल दुनिया में प्रवेश करती है, तकनीक और समाज की बढ़ती गति से जूझती है और बाह्य और अन्तस के बीच की गति के मध्य सामंजस्य पैदा करती है। वह हर तरह के सरलीकरण के संभावित खतरों के प्रति हमें आगाह करती है।

आज की कविता का, कवि कर्म का बड़ा दायित्व तो यह होना चाहिए कि वह तकनीकी तार्किकता का, तकनीकीकरण की प्रक्रिया और तकनीक-जनित सामाजिक चेतना और सौन्दर्यबोध का क्रिटीक रचे। इसमें मानव सभ्यता द्वारा सदियों से अर्जित ज्ञान जो भाषा के शब्द युग्मों में संतुलन के साथ प्रगट होता है हमारे काम आ सकता है। आधुनिक समय के दबावों में, जिनका जिक्र ऊपर किया गया है इस संतुलन का टूटना, असल में मनुष्य का टूटना है जिसे बचाया जाना चाहिये। मेरी अपनी कविता 'धरम करम' देखें-

एक थे परम पिता मनुष्य
और उनकी थीं दो संतान
एक का नाम धरम
दूसरे का करम।

अब यह तो पता नहीं
कि दोनों में बड़ा कौन था
पर जानने वाले बताते हैं
कि करम पहले दुनिया में आया
और धरम बाद में।
पहले दोनों साथ-साथ रहते थे
करम का निवास भुजाओं में
और धरम का मन में।
जब तक दोनों साथ-साथ रहे
परिवार खूब फला फूला
सूरज का होता रहा सम्मान
और नदियों तथा वृक्षों की होती रही पूजा
धरती को कहा गया माता
और संतानों को मिलता रहा उसका प्रेम।
फिर करम अलग हुआ धरम से
उसे अब अपना घर छोटा पड़ता था
उसे चाहिये थी वह सारी जगह
जहाँ धरम का कब्जा था
धरती, पहाड़, नदियाँ और वृक्ष
सूरज, चंद्रमा, तारे और ब्रह्माण्ड
लघु से लेकर विराट तक
कण से लेकर क्षण तक
करम को सब चाहिये था।
धरम भी कब मानने वाला था
वह मन से निकला
और निकला मंदिर से
अब वह विद्यालयों में था और महाविद्यालयों में
बाजारों में था और कारखानों में
सड़कों पर था और चौराहों पर भी
वह इस कदर फैला
कि पहचानना मुश्किल
कि कौन सा स्थान धरम का है और कौन सा करम का।
कहते हैं
कि धरम और करम की इस लड़ाई में
परम पिता मनुष्य ने
अपना मानसिक संतुलन खो दिया है
और वह अक्सर विक्षिप्त की तरह
यहाँ वहाँ भागता दिख जाता है।
कलाओं
ये तुम्हारे हस्तक्षेप का समय है
इस परम पिता को रोको
ये कभी भी आत्महत्या कर सकता है।

*

तमाम कठिन समय, समाज और जटिलताओं से गुजरते हुए, युद्ध और विस्थापन की त्रासदी भोगते हुए, कवि प्रेम और करुणा का रास्ता नहीं भूलता, उम्मीद का दामन नहीं छोड़ता, जैसे पोलिश कवयित्री विस्लावा सिम्बोर्स्का की इस कविता में:

इसलिए लाजिम है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उम्मीद की किरण
प्रेमियों का पुनर्मिलन, खानदानों का मेल-मिलाप
शक का खात्मा, वफादारी को ईनाम
फिर से दौलतमंद हो जाना, खजानों का उजागर होना
ऐंठी गर्दन वाले पड़ोसियों का रास्ते पर आ जाना
इज्जत की बहाली, लालच पर काबू
बूढ़ी कुँवारियों के ब्याह काबिल पादरियों से हो जाना
फितरतियों को दूसरे गोलार्द्ध में देश निकाला
सीढ़ियों से फेंकना नीचे दस्तावेजों के जालसाज को
लम्पटों का लपकना इबादतगाह की तरफ
अनाथों को आसरा, बेवाओं को दिलासा
नीचा सर गरूर का, जख्मों का भरना
आवारा बेटों का लौट आना घरों में
समंदर में फेंक देखा गम के प्यालों को
सुलह के आँसुओं से भीगते रुमाल
हर तरफ जश्ने बहाराँ
और डॉगी फिडो का
जो भटक गया था पहले चैप्टर में
लौट आना खुशी से भौंकते हुए
आखिरी में

कविता अपने समय से जूझने में 'समय के पार' जाती है और शायद इसी तरह जटिल समय में हस्तक्षेप कर सकने की क्षमता अर्जित करती है।

*

'विश्वरंग' का यह अंक चौथे विश्वरंग समारोह के आयोजन के अवसर पर प्रकाशित हो रहा है। विश्वरंग की अवधारणाओं के अनुरूप इसमें हिन्दी और भारतीय भाषाओं के शीर्षस्थ कवि अशोक वाजपेयी (हिन्दी), नारायण सुर्वे (मराठी), सीतांशु यशचन्द्र (गुजराती), ऋतुराज (हिन्दी), अरुण कमल (हिन्दी), विष्णु नागर (हिन्दी), बलराम गुमास्ता (हिन्दी) जैसे कवियों के साक्षात्कार एवं कविताओं के साथ साथ और गुजरात से लेकर पूर्वोत्तर तक और कश्मीर से लेकर केरल तक के कवियों की वैविध्यमय कविता भी शामिल है। काव्य प्रवृत्तियों, काव्यालोचना के बदलते प्रतिमानों और इक्कीसवीं सदी में कविता की दिशा पर बात की गई है तो युवा कविता के उभरते स्वरूप पर भी विचार किया गया है। आधुनिक उर्दू शायरी का सर्वेक्षण जानकी प्रसाद शर्मा कर रहे हैं तो 'हाशिये पर खड़ी कविता' पर विजय कुमार विचार कर रहे हैं। 'विश्व कविता' खंड में पूर्वी एशिया, मध्य एशिया, रूस एवं पूर्वी यूरोप, तुर्की तथा अन्य देशों के प्रमुख कवियों को स्थान दिया गया है। इस तरह अपने सभी रंगों के साथ 'विश्व रंग' का यह कवितांक अब आपके सामने है। जिसे ख्यात कवि लीलाधर मंडलोई की प्रखर काव्य दृष्टि ने सँवारा है।

पिछले तीन वर्षों में विश्व रंग समारोह ने अपना वैश्विक विस्तार किया है। आज लगभग पचास देश इसके सदस्य हैं और यह संख्या बढ़ती ही जा रही है। अपनी पूर्वज्ञात अवधारणाओं के अतिरिक्त इस बार युद्ध और विस्थापन के हमारे समय में प्रेम और करुणा, दिव्यांग विमर्श, प्रवासी कविता, कथा और कथेतर गद्य जैसे नये विषय विश्वरंग में शामिल रहेंगे। चौदह से बीस नवंबर के बीच फैले इस समारोह के पहले तीन दिन संगीत, नाटक एवं कला पर तथा अगले चार दिन साहित्य तथा युवाओं पर केंद्रित रहेंगे। करीब 60 सत्रों में फैला यह समारोह अनूठा और अभूतपूर्व होगा जिसमें भारत और विश्वभर के करीब 1000 से अधिक कलाकार शिरकत करेंगे। पूर्वरंग के रूप में आयोजित ग्यारह पुस्तक यात्राओं ने देश के 100 जिलों और लगभग 500 पंचायतों से होते हुए करीब 30,000 किलोमीटर की यात्रा की और करीब पाँच लाख लोगों को पुस्तकों से जोड़ा। एक से दस नवंबर के बीच सभी सदस्य देशों में विश्वरंग उत्सव आयोजित किये जा रहे हैं। इस तरह 'विश्व रंग' भारत, भारतीय भाषाओं और बोलियों को समेटता, भारतीय गाँवों, कस्बों और शहरों से लेकर विश्व तक फैला एक अनूठा आयोजन बन जाता है।

रबींद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय एवं सी.वी. रामन विश्वविद्यालय की सरपरस्ती में आईसेक्ट सहित देश की सौ से अधिक संस्थाएँ इस अभियान में शामिल हैं। विश्वभर में किसी विश्वविद्यालय द्वारा की जाने वाली शायद ये एकमात्र और अनूठी पहल है।

मैं इस विश्वरंग कवितांक के आस्वाद के लिये और विश्वरंग समारोह में भागीदारी के लिये आपको सादर, सस्नेह आमंत्रित करता हूँ।

शुभकामनाओं सहित,

संतोष चौबे
प्रधान संपादक
मो. 9826256733

15 अक्टूबर 2022

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जोग लिखी

कोरोना से बचकर हम, अभी जिस समय में अपनों को खोकर जीने की कोशिश में हैं, तभी युद्धजनित हालात से घिर उठे हैं। यह परोक्ष प्रभाव के स्तर पर भी इतना ख़तरनाक है कि हमारी चेतना बम, टैंक और मिसाइलों के विस्फोटों से घबराती हुई है। मानो हम तीसरे विश्वयुद्ध की कगार पर हैं। पहले और दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान मनुष्यता पर आए विनाश के संकट को कविता ने दर्ज़ किया था। दरअसल वह उन भीषण कालों की आज भी विश्वसनीय गवाह है। कविता सवाल उठाती है। आगाह करती है। कविता सच का प्रत्याखान रचती है। कोरोना काल में हमने इस दुनिया में हुए त्रासद पारिवारिक और सामाजिक बदलावों को देखा और अकल्पनीय यथार्थ के ऐन बीच अपनी मनुष्यता को खोने से अधिक बचाने की कोशिश की है। आत्मा को झकझोरने वाले कुछ दृश्य याद आते हैं-

एक ही लम्हा मिला
और साँसों का बुझता चराग़
मैं समय पर पहुँचा
तब भी बहोत देर हुई

**

अजीब मंज़र है इस देश में यारो
ज़माने भर का दुःख था जिसे
उसके साथ कोई न था

**

क्या कुछ नहीं देखा,क्या कुछ नहीं खोया
फूल से बच्चे भी ख़ाक़ हो गये
कुछ पेट में, कुछ भूख से और कितने इलाज बिन चल बसे
देखा जो यह मंज़र तो सूरज नमनाक हुआ
और वह जहाँ था वहाँ आँसुओं में बह गया

**

एक चित्र देखा
चित्रों पर भरोसा होता है
चित्र में सुफ़ेद टोपियाँ पहने चार इंसान हैं
वे अपने काँधों पर एक अर्थी उठाये
पूरब की ओर चले जा रहे हैं

**

हमने जो देखा और भोगा वह अयाचित था। हमारी कातर आत्माएँ उन नामुराद पलों की चश्मदीद गवाह हैं। असहायों के बीच जीने का संघर्ष था। सड़कों पर मरते-जीते घायल लोगों का कारवाँ था। बुजुर्ग थे, गर्भवती स्त्रियाँ थीं। भूख से बिलखते बच्चे थे। सड़क के पास किसी पेड़ के नीचे आसरा था और रातें थीं। दूर-दूर तक सरकारी इमदाद न थी। कहीं पानी की सबीहें न थीं, परंतु जनसाधारण में प्रेम, करुणा और मनुष्यता थी। उनकी जिजीविषा ने जितना मुमकिन हो सका, जीने और लड़ने की उम्मीद को बचाया। वे मनुष्य रूपी उम्मीद को बाँहों, काँधों और गोद में लिए सफ़र में थे। वे हाथ नहीं धो रहे थे। वे कोई दवाई नहीं खा रहे थे। उन्हें तो ढंग का खाना भी नसीब न था। वे फिर भी थे। अपना सब खोकर भी आज जीवन संग्राम में हैं। इन्हीं के बीच कविता थी, जो संघर्ष के अनुपात में मुमकिन वैसी आ न सकी, जैसी वह धरती पर थी। फिर भी वही थी। प्रतिकूल स्थिति में वही हो सकती थी, कदाचित रास्ते को भारी होने से बचाती। और गवाह होने के आधे-अधूरे प्रयास में सही, वह पहले-पहल थी।

**

आज समय कम भयावह नहीं है। चारों ओर युद्ध का आगत अंधकार है। समय इतनी द्रुतगति में है कि उसे पकड़ना तो दूर, समझना कठिन होता जा रहा है। तब भी आभासों और भ्रमों के इस संश्लिष्ट समय में कविता ही उसे दर्ज़ कर पाने की हिम्मत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जुटा पा रही है-

घायल शौहर लापता है
जवान बेटी और कम उम्र के बेटे के साथ

मैं उनकी तलाश में
होती हूँ बलात्कार की शिकार
और मरती हुई रोज़, मर नहीं पाती
**

ऐ ख़ुदा!
ये कैसी मौत और इतनी एक साथ
कि क़ब्रिस्तान में जगह नहीं

ये कैसी बमबारी
कि शहर तबाह
और पशु-पक्षी फ़ना
**

मैं देख नहीं पा रही और सरहद बहोत दूर है अभी
बस सर ऊँचा किये
किसी तरह भाग रही हूँ उस सिम्त
जिधर निकला है मेरा ख़ाविंद
आसरे की तलाश में

शुक्र है कि यह घरेलू कुत्ता है
जो पहुँचा देगा हर हाल में
सूँघते देहगंध उनकी
**

पहले और दूसरे विश्वयुद्ध के बाद आज वैसा ही भयानक पसे-मंज़र है। इराक़, सीरिया, फिलीस्तीन आदि युद्धों के ज़ख़्म अभी भरे नहीं हैं। और यूक्रेन पर हमले गहरे घाव से दहक रहे हैं। शांति और सद्भाव की मिसालें कहीं खो रही हैं। वे कितनी साहित्य में हैं और किस तरह उनके पुनर्वास की चेतना का पर्यावरण साहित्य में संभव हो सकता है, यह सवाल अंक के बारे में सोचते हुए ज़हन में बना रहा।

मुमकिन है सोच के स्तर पर वह ख़्वाब हो लेकिन उसे बार-बार देखा जाना चाहिए। संकट चौतरफ़ा हैं। पर्यावरण और जैव पारिस्थितिकी ख़तरे के ज़द में हैं। जलवायु परिवर्तन के उदाहरण सृष्टि के भीतरी हलातोल की तरफ़ अमांगलिक इशारे कर रहे हैं। किसानों, मजूरों और तलछ्ट के लोगों का जीवन बद से बदतर हुआ जा रहा है। एक ध्रुवीय राजनीति के आक्रमण चिंताजनक हैं। मँहगाई और बेरोज़गारी ने आम आदमी का जीना मुहाल कर दिया है तब कविता को अपने समय की गवाही में खड़ा होना चाहिए। आलोचना को इस सदी के गंभीर और केंद्रीय मुद्दों की शिनाख़्त करनी चाहिए। न्याय, समता और एका की स्वर स्मृतियाँ आज साहित्य में बेहद ज़रूरी हैं जो इतिहास में दर्ज़ होकर आईना दिखाएँगी। विस्लावा शिम्बोर्स्का की कविता का एक अंश है-

''मुझे माफ़ करना टूटी उम्मीद
कि जब-तब मुस्कुरा देती हूँ
मुझे माफ़ करना मरुस्थलों
कि एक चम्मच पानी लेकर न आ सकी
काट डाले गये वृक्षों
मैं तुमसे क्षमा प्रार्थी हूँ
मेज़ के चार पायों के लिए
बड़े सवालों, माफ़ी चाहती हूँ
छोटे जवाबों के लिये''

इस कविता की शुरुआती पंक्तियाँ हैं-''बीते हुए युगों के युद्धों मुझे माफ़ करना/कि मैं फूलों के साथ लौट रही हूँ।''

एक कवि कविता में बड़े सवालों के छोटे मानीख़ेज़ जवाब देता है, देने की कोशिश करता है, करता रहेगा।

**

अमंगल से घिरी दुनिया में कविता का जवाबदेह होना अपेक्षित है। इसका अपना इतिहास है। और यह विश्व की सभी भाषाओं की कविता में है। इस तरह वह एक सार्वभौमिक वैचारिकी है। अपनी स्थानिकताओं में वह वैश्विक सरोकार अभिव्यक्त करती है। नौमान शौक़ लिखते हैं-''बढ़ते रक्षा बजट के साथ असुरक्षित होती दुनिया में/छतों पर बैठे हैं तेंदुए/देख रहे हैं चुपचाप /जंगलों को उजड़ते हुए।'' समकालीन कविता में न्याय की पक्षधरता है। वह मनुष्यता के विरुद्ध हो रही साजिशों को दर्ज़ कर रही है। वह प्रतिपक्ष में खड़ी है। पाबंदियों के दौर में वह चुप नहीं अपितु सक्रिय है-

''इतना तो अपने आप पर
भरोसा न कीजिए
कश्ती ज़रूर आपकी है
मल्लाह तो हम हैं''
**

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रचनाकार बचा लेना चाहता है क़ायनात का आदिम रूप। वह भूख, ग़रीबी, कुपोषण, प्रदूषण और बेरोज़गारी में छटपटाते सामान्य मनुष्य को अपना नायक बनाता है। वह विश्व भर में जनसाधारण के साथ हो रही क्रूरताओं, असहिष्णुताओं और ज़्यादतियों के ख़िलाफ़ है। वह वंचितों और शोषितों के मानवाधिकारों के लिए संघर्षशील है। वह सत्य को युग सत्य से जोड़कर अपनी बात रखता है। उम्मीद से भरे चिली के कवि जार्ज टेलियर 'दुनिया का अंत' कविता में कहते हैं -

''पगली बुढ़िया
सड़क पर छाता लेकर गुजरेगी
और मैं ख़ुद से कहूँगा
दुनिया ख़त्म नहीं हो सकती
क्योंकि सामने मेरे आँगन में
कबूतर और गौरय्या झगड़ रहे हैं
दानों के लिये, अब भी।''

**

समकालीन कविता आदिवासी, दलित, अल्पसंख्यक, स्त्री और पिछड़े वर्ग के साथ विश्व के साधारण लोगों को जानती है और न्यायपूर्ण मानवीय दुनिया को तामीर करने की फ़िक्रमंद है। हमारे समय की आलोचना भी समय के आसन्न ख़तरों को पहचान रही है। यह सवाल बना हुआ है कि रचना और आलोचना कितने सजग हैं। वे कितने तहों के भीतर हैं और कितने सतह पर। कितने ख़तरे उठाने की ताकत से लैस है और कितने उदासीन।

इस अंक में हमने भारतीय और विश्व कविता में हो रही हलचलों को अबेरने की कोशिश की है ताकि यथार्थ सामने हो। जहाँ हम आज हैं वहाँ से आगे रास्ता बना सकने के बारे में सोच सकें। यहाँ समय से जूझती-पुकारती आवाजों की करुण सिंफनी है और दुनिया को बदलने की उम्मीद है। यहाँ पराजयों के माहौल में टिटहरी सी चीख़ सही, वह सुनाई दे रही है। हो सकता है यह कालजयी कविताओं का समय न हो, अगर वह काल से जूझने वाली कविताओं का भी हो तो ज़मीन उर्वरा कही जाएगी। उन्हीं के होने से रास्ता बनेगा। और उसे सिर्फ़ हिंदी कविता में नहीं, हमने भारतीय कविता में देखने का प्रयास किया है और उसका विश्वकविता से विचार के स्तर पर संबंध को समझने की कोशिश की है।

आज कवि आशंकित शोक समय में नैतिक दायित्व के साथ परिदृश्य में है। जनतंत्र में भरोसा करती कविता दुनिया के गोशे-गोशे में मौजूद है। वह विकास के छल को समझ रही है। दुनिया को अपना उपनिवेश बना देने वाली साम्राज्यवादी ताकतों के षड़यंत्र को अनावृत करने का काम कर रही है। और यह सोचना सुखद है कि कविता आज अनेक रूपों और विचारों में रहते हुए भी इंसानियत के वजूद की रक्षा एक सिपाही की तरह करने वाली भूमिका में होना चाहती है।

**

हमें इस अंक में अग्रज और युवा आलोचकों का आत्मीय सहयोग मिला। वरिष्ठ कवियों से संवाद ने वर्तमान के बहुत से कुहासों को साफ़ करते हुए इस सदी का एक एजेंडा बनाने का काम किया है। यह काम प्रकाशित कविताओं में भी होता दीख रहा है। जो आ सका वह इस कठिन दौर में गहरे संतोष का विषय है। यह भारतीय कविता का इस सदी का उभरता चेहरा है।

हमने रचनाओं को कथ्य वैविध्य और तापमान की ज़रूरत के अनुसार रखा है ताकि पाठकों को विचार की भीतरी लय और आस्वाद मिल सके। हम इस अंक में क्या कुछ कर सके, यह पाठक तय करेंगे। हमने तो इस अँधेरे समय में मनुष्यता को आबाद करने के लिए एक दिया बारने का यत्न भर किया है-

''सफ़र मुश्किल भी होगा
और तवील भी
रात ही रात होगी दूर तलक
धूप होगी
और प्यास की आंधियाँ
अगर जो चल पड़े सहरा में चंद क़दम
इस अँधेरे में वापसी की भले ही राह न हो
हाँ! इसमें शक़ नहीं
मालूम है मुझे यह
कि आने वाले दिनों में
एक ख़ूबसूरत सुबह होगी
अदब-आबाद करती।''

अगर कविता का यह अंक इतना भरोसा दे सके तो यह कम तो नहीं।

लीलाधर मंडलोई
संपादक
मो.: 9818291188, 93153 05643

(क्षमायाचना : संपादकीय धर्म का निर्वाह करते हुए, कवि संपादक की कविताओं के उद्धरण और टिप्पणियाँ लेखों / संवादों से हटा दी गई हैं।)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कविता आत्म और लोकसंवाद है

(मराठी कविता का गौरव। दलित चेतना का आकाश। काव्य वैचारिकी का भारतीय प्रकाश स्तंभ।)

– मराठी कवि नारायण सुर्वे से हरि मृदुल की बातचीत

जहाँ तक मुझे याद है, यह नवंबर, 1995 की बात है। तब मराठी के प्रख्यात कवि नारायण सुर्वे अंधेरी (ईस्ट) में रहा करते थे। उनका ग्राउंड फ्लोर में एक छोटा सा फ्लैट था। अंधेरी रेलवे स्टेशन से ज्यादा दूर नहीं था उनका घर। मैं एक अखबार के साथी के साथ अचानक ही पहुँच गया था उनका इंटरव्यू करने। सुर्वे साहब उस समय घर से कहीं के लिए बस निकलने-निकलने को ही थे। बिना सूचना दिए घर पहुँचने पर वह थोड़ा असहज हो गए थे। वह थोड़ी उहापोह में थे कि क्या करें-क्या न करें। यह उनकी सदाशयता थी कि उन्होंने अपना जाना स्थगित कर दिया था और जल्दी ही वह बड़ी सहृदयतापूर्वक बातचीत में रम गए थे। तब मैंने बिना किसी भूमिका के एक लंबा इंटरव्यू लिया था। उन दिनों किसी कॉपी या नोटबुक में ही इंटरव्यू नोट किया जाता था। न तब छोटे टेपरिकॉर्डर सर्वसुलभ थे और न ही रिकॉर्ड करने के अन्य कोई साधन मेरे पास थे। मैंने सुर्वे साहब का वह इंटरव्यू एक पुरानी कॉपी के पन्नों में नोट किया था, लेकिन पता नहीं क्या गफलत हुई कि कुछ समय बाद मुझ से ये पन्ने खो गए। बहुत खोजा गया, लेकिन ये पन्ने नहीं मिले। अपनी सैकड़ों किताबों और कॉपियों को उलट-पुलट डाला। ये नहीं मिले, तो नहीं ही मिले। छोटी-छोटी चीजों को भी सहेजकर रखने के मेरे स्वभाव के बावजूद ऐसा हो गया। हालाँकि लंबे समय तक यह खोज चलती रही। कुछ दिन बहुत मलाल रहा। फिर धीरे-धीरे मैं इस इंटरव्यू को भूलने लगा। हालाँकि इस बीच सुर्वे साहब से तमाम कार्यक्रमों में मुलाकातें और बातें होती रहीं। उनके घर भी जाना हुआ। लेकिन उन्होंने कभी उस इंटरव्यू के बारे में नहीं पूछा। मैंने भी कभी नहीं बताया कि आपका जो इंटरव्यू मैंने लिया था, वह कहीं खो गया। जब 2010 में सुर्वे साहब का निधन हुआ, उनकी शवयात्रा में शामिल हुआ। शाम को घर पहुँचने के बाद एक बार फिर से उनके इस इंटरव्यू को खोजने का प्रयास किया, लेकिन इस बार भी सफलता हाथ नहीं लगी। फिर तो यही सोच कर दिल को तसल्ली देनी पड़ी कि इतने वर्षों में इतने घर बदले, तो इसी अदला-बदली में इंटरव्यू के वे पन्ने खो गए या नष्ट हो गए होंगे। इधर तीन साल पहले फिर से घर बदला, तो यह घर बदलना मानो वरदान बन गया। 24 साल के बाद वे पन्ने एक फाइल के भीतर रखी एक और छोटी फाइल में मिल गए। मेरे हाथ मानो कोई बड़ी निधि लग गई थी। मेरी प्रसन्नता की सीमा नहीं थी। मैंने एक बार फिर बड़े जतन से ये पन्ने सँभाल कर रख दिए कि ऑफिस के कामों से समय मिलते ही इन्हें विधिवत इंटरव्यू की शक्ल दी जाएगी, लेकिन यह समय भी मैं नहीं निकाल पाया। लेकिन इंटरव्यू लेने के 27 साल के बाद अब यह मौका मिला है। निमित्त बना है 'विश्वरंग' का यह विशेषांक। तो प्रस्तुत है नारायण सुर्वे का यह विशेष साक्षात्कार :

आप पिछले चालीस वर्षों से कविताएँ लिख रहे हैं, लेकिन तुलनात्मक रूप से इनकी संख्या ज्यादा नहीं है। अब तक आपके चार ही संग्रह सामने आए हैं। ऐसा क्यों ?

यह बात सही है कि मैं चालीस वर्षों में 180 के करीब ही कविताएँ लिख पाया हूँ, जो चार संग्रहों में संग्रहीत हैं। दरअसल मैं लिखने से ज्यादा पढ़ने में यकीन रखता हूँ। मैं अनुवाद के माध्यम से दुनियाभर का साहित्य पढ़ता हूँ। लोगों के बीच जाता हूँ। उनसे संवाद करता हूँ। जब मुझे अंदर से प्रेरणा मिलती है, तभी मैं कविता लिखता हूँ। मुझे साल में इतनी कविताएँ तो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लिखनी ही लिखनी हैं, ऐसी कोई प्रतिज्ञा नहीं करता हूँ। मुझे लगता है कि कविता हो या कहानी या फिर उपन्यास, ये सब जोखिम भरे काम हैं। मैं तो कहूँगा कि लिखना ही अपने आप में जोखिम भरा काम है।

लिखने को आप जोखिम भरा काम क्यों कह रहे हैं?

मैं यहाँ रचनात्मकता के जोखिम की बात कर रहा हूँ। बीसियों किताबों के पन्ने काले कर देने भर से कोई साहित्यकार नहीं बन जाता। लिखने से पहले जीवन को समझना जरूरी है। आम जन के जीवन को समझने के लिए सड़क का आदमी होना पड़ता है। उसके दुःख-दर्द को समझना पड़ता है। जिंदगी में कितने तो संघर्ष होते हैं, उनसे जूझ रहे लोगों के बीच जाना पड़ता है। जो आम आदमी के जीवन को नहीं समझता, वह अच्छा लिख ही नहीं सकता। समस्याओं को कलात्मकता के साथ उजागर करना, उन्हें सही अर्थ देना, मँजी हुई-पकी हुई भाषा में लोगों के सामने लाना ही साहित्य है। किसी रचनाकार के लिए सबसे बड़ा जोखिम यही है कि उसके शब्द कितने सच्चे हैं। उनमें कितना ताप है। यह ताप तो तभी आएगा, जब शब्द सच्चे होंगे। शब्द सच्चे तब होंगे, जब वे अनुभूतिपरक होंगे। देखने की बात यह है कि कवि या लेखक ने इन शब्दों को सिर्फ कल्पनालोक में जाकर लिखा है या फिर लोगों के बीच जाकर उनकी तकलीफों को महसूस करके लिखा है। कबीर ने कहा भी है कि 'तू कहता पोथिन की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी'। अक्सर देखा गया है कि लोगों के 15-15 कविता संग्रह आ चुके होते हैं, लेकिन इन संग्रहों में उन्होंने खुद को ही रिपीट किया होता है। किसी कवि का खुद को रिपीट करना अपने लिए जुटाया बहुत बड़ा जोखिम है।

आपके लिए कविता क्या है?

मेरे लिए कविता आत्म संवाद भी है और लोक संवाद भी। कविता एक ही वक्त दोनों काम करती है। कविता के पीछे चिंतन होता है। उसमें अनुभव की भूमिका भी होती है। एक के पीछे एक लाइन लिख देना कविता नहीं है। कुछ ही पंक्तियों में कविता पूरी जिंदगी की दास्तान कह सकती है। कविता के शब्द सिर्फ शब्द नहीं होते, वे संवाद लेकर आते हैं। कविता में सिर्फ सरोकार होने से काम नहीं चलता, उसमें जनता का अनुभव भी जरूरी है। आप जनता के पास गए नहीं, तो जनता के कवि कैसे हो सकते हैं? यह भी सवाल है कि क्या आपकी कविता जनता की समझ में आती है? जनता के पास जाकर ही जनता की भाषा आपके पास आएगी और जब जनता की भाषा आपके पास आएगी, तो वह अवश्य ही संप्रेषित होगी। उनकी समझ में भी आएगी। जब तक आपका आम जनता से जुड़ाव नहीं होगा, उनसे हृदय से संवाद नहीं होगा, तब तक आपकी कविता में नए अर्थ नहीं होंगे। आप अपनी कविता में प्रयोग कीजिए, लेकिन उसमें हृदय होना चाहिए। वह विदेशी कविता के शिल्प की भौंड़ी नकल नहीं होनी चाहिए। मैं कविता को साहित्य की केंद्रीय विधा मानता हूँ, इसीलिए मैं उसमें भरपूर जोखिम भी पाता हूँ। मेरा यह भी मानना है कि जो इस जोखिम को ठीक से समझेगा, वह गंभीरतापूर्वक पूरी संलग्नता के साथ कविता लिखेगा।

सच बोलना भी तो बड़ा जोखिम है आज के समय में, भले ही आप उसे साहित्य के माध्यम से बोलें। आपका क्या कहना है?

हाँ, यह सांसारिक जोखिम भी कम परेशानी वाला नहीं है। सच बोलने पर आपके घर पत्थरों की बारिश हो सकती है। आपको सड़क चलते पीटा जा सकता है। घसीटा जा सकता है। आपका परिवार है, बीवी-बच्चे हैं। आपकी वजह से उन्हें भारी तकलीफें उठानी पड़ सकती हैं। आप कितना ही सच बोलें, शासन आपका साथ नहीं देनेवाला। पूरी व्यवस्था ही एक अलग स्वरूप ले चुकी है। भ्रष्टाचार के इतने स्वरूप सामने हैं कि चकित हो जाना पड़ रहा है। लेकिन सच्चा लेखक इससे डरता नहीं है। वह अपनी बात रचनाओं के माध्यम से रखता ही रखता है। कवि या लेखक का दुःख अपार होता है। यह दुःख उसका खुद का नहीं होता, बल्कि जमाने का होता है। इसी वजह से वह रात-रात भर जागता है और रोता है। कबीर ने कहा ही है - सुखिया सब संसार है, खाबै और सोवे। दुखिया दास कबीर है, जागे और रोवे।। तो साहित्य के रचयिता को यह जोखिम तो हर युग में उठाना ही पड़ता है।

कहा जाता है कि हर एक अच्छी कविता में एक कहानी भी होती है, जैसे हर अच्छी कहानी में छिपी हुई एक कविता। आपकी कविताओं में भी कहानियों के उत्स मिलते हैं...

हाँ, हर अच्छी कविता के शब्द सिर्फ शब्द नहीं होते, वे संवाद लेकर भी आते हैं। इन संवादों में कोई न कोई कहानी होती है। चूँकि मेरी कविताएँ सड़क के जीवन से निकली हैं,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मिल मजदूरों के बीच से निकली हैं, वेश्याओं के मोहल्लों से निकली हैं, झोपड़पटि्टयों से निकली हैं, इसलिए इनमें संवाद हैं। इनमें कहानियों के सूत्र दिखाई दे सकते हैं। दरअसल कविता एक पुकार है, एक आर्त पुकार। हर कविता किसी न किसी की एक राम कहानी होती है।

लेकिन इधर तो कविताओं में नारेबाजी काफी दिखाई दे रही है। इन कविताओं में कलात्मक अनुशासन कम दिखता है। वे चाहे हिंदी की कविताएँ हों या मराठी की?

जीवन की तस्वीर को कलात्मक रूप देकर कविताओं में ढालना ही तो अच्छे कवि की पहचान है। कुछ नायाब किस्म के प्रतीक, कुछ बड़े आदर्शवादी वाक्य और कुछ असंभव सी धारणाएँ लाकर कोई सोचे कि वह महान कविता लिख रहा है, तो वह सिर्फ महत्त्वाकांक्षा है। वह अच्छा कवि हो ही नहीं सकता। नारेबाजी वाली कविताएँ कई बार सुनने में अच्छी लगती हैं। खासकर साहित्य में रुचि रखनेवाले नए लोगों को, लेकिन इनमें सिर्फ जुमलेबाजी ही होती है। ऐसी कविताएँ लंबे समय तक टिक नहीं सकतीं। हाँ, आत्मसंघर्ष से कोई बात आती है और वह शब्दों का रूप लेती है, तो उसका असर अलग ही होता है।

आपकी कविताओं के अनुवाद हिंदी सहित तमाम भारतीय भाषाओं में तो हुए ही हैं, विश्व की कई भाषाओं में भी हुए हैं। अनुवाद वह माध्यम है, जिसके सहारे हमारा साहित्य दुनिया के कोने-कोने तक जा सकता है। आपका क्या कहना है?

यह बात बिल्कुल सही है। आप देखिए कि रूसी साहित्य भारत में कितना लोकप्रिय हुआ है। संसार की तमाम दूसरी भाषाओं का साहित्य भी हमने अनुवाद के जरिए ही पढ़ा है। पाब्लो नेरुदा, ब्रेख्त, नाजिम हिकमत, गोर्की, तालस्तॉय, चेखव, रबींद्रनाथ टैगोर, नजीरुल इस्लाम आदि तक हम अनुवाद के जरिए ही तो पहुँचे हैं। लेकिन लोगों तक पहुँचने के लिए अच्छा अनुवाद जरूरी है। खुद मेरी कविताओं का कई भाषाओं में अनुवाद हुआ है। हिंदी में भी तो मुझे अनुवाद के जरिए ही जाना जाता है। 'पहल', 'साक्षात्कार' और 'वागर्थ' जैसी पत्रिकाओं में मेरी कविताओं के अनुवाद समय-समय पर प्रकाशित हुए हैं। इस संबंध में मुझे खूब चिट्ठियाँ मिलती रही हैं। फोन आते रहे हैं। अगर मेरी कविताओं के अनुवाद दूसरी भाषाओं में नहीं होते, तो इतने प्रशंसक मुझे कहाँ से मिलते। हिंदी प्रदेशों में तो मेरे प्रशंसक हैं ही, कन्नड़, उर्दू, गुजराती, बांग्ला, अंग्रेजी, पंजाबी में भी लोग मुझे जानते हैं। यह अनुवाद की वजह से ही संभव हुआ है। विदेशी भाषाओं फ्रेंच और स्पेनिश आदि में भी मेरी कई कविताएँ ट्रांसलेट हुई हैं। मेरी एक कविता है - 'तुमचच नाम लिवा' (अपना ही नाम लिख लीजिए), जो फ्रेंच, स्पेनिश, रूसी, अंग्रेजी सहित दुनिया की कई भाषाओं में अनूदित होकर लोकप्रिय हुई है।

लेकिन देखने में यह भी आया है कि ज्यादातर रचनाओं या कृतियों के अनुवाद जटिल और अरुचिकर होते हैं। इन अनुवादों में मूल रचना का आस्वाद गायब हो जाता है...

यह सच है कि अनुवाद बहुत ही कठिन कार्य है। इसके लिए बहुत बारीक ज्ञान चाहिए। एक नहीं, दो भाषाओं का गहन ज्ञान। सबसे ऊपर यह बात कि अनुवादक का भी रचनाकार होना आवश्यक है। तभी अनुवाद से पूरी तरह न्याय हो सकता है। खास कर कविताओं का अनुवाद तो बड़ा कठिन काम होता है। मूल कविता जैसी बात लाना हर किसी के वश की बात नहीं। कविता के मर्म को समझना और फिर उसे दूसरी भाषा में मूर्त स्वरूप देना एक तरह से पुनर्रचना ही है। एक अच्छा अनुवादक अपनी अनूदित रचना को नए आयाम दे सकता है और एक बुरा अनुवादक उस रचना की आभा को नष्ट कर सकता है। मुझे लगता है कि हमारे यहाँ अच्छे अनुवादकों का बड़ा अभाव है। कविताओं के मर्म तक पहुँचने वाले अनुवादक तो और भी कम हैं। इसी वजह से अनुवाद का काम काफी कम किया जाता है। देखिए कि भारतीय भाषाओं में कितनी अद्वितीय रचनाएँ हैं, लेकिन इनमें से कितनी कम कृतियाँ दूसरी भाषाओं में अनूदित हो पाई हैं। रचनाकार को अच्छे अनुवादक मिलना मानो नसीब की बात होती है।

एक दौर में आपने गीत भी लिखे थे। आपके एक गीत 'डोंगरी शेत मा जग, मी बेनू किती...' (पहाड़ पर बने अपने खेत में मुझे हर साल कितनी तो मेहनत करनी पड़ती है...) को तो अपार लोकप्रियता मिली थी। इस गीत के बारे में बताइए?

यह गीत 1956 में लिखा गया था। इस गाने को ग्रामीण महिलाओं ने विशेष रूप से लोकप्रिय बनाया था। कितने ही मौकों पर मैंने इसे हजारों महिलाओं को एक साथ गाते देखा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है। 1958 में इस गाने का रिकॉर्ड एचएमवी ने भी जारी किया था। तब इस गाने के एवज में मुझे 15 रुपये मिले थे। यह गाना खूब चला था। इस गाने को ग्रामीण महिलाएँ तो गाया ही करती थीं, सैकड़ों मिल मजदूरों की जुबान पर भी यह रहता था। मुंबई में तब पचासों मिलें थीं। इस गाने का रिकॉर्ड इन मिलों में खूब बजता था। उन दिनों 'सौंग ऑफ द इयर' की तर्ज पर 'साँग ऑफ द मिल्स' अवॉर्ड दिए जाते थे। इस गीत को यह अवॉर्ड मिला था। इस गाने की लोकप्रियता की वजह से मुझे दो बार मराठी फिल्मों में गीत लिखने के भी प्रस्ताव मिले, लेकिन मैं दूसरी व्यस्तताओं के कारण यह काम नहीं कर पाया। सिनेमा के लिए गीत लिखने का मतलब है रिकॉर्डिंग तक उसमें कई महीने लग जाना। मेरे लिए यह संभव नहीं था। नौकरी थी, साहित्य था, सामाजिक प्रतिबद्धताएँ थीं। सिनेमा के पीछे लगने पर दूसरे काम नहीं हो सकते थे, यह बात मेरी समझ में आ गई थी। हालाँकि मैं इसे अपनी सीमा मानता हूँ, हो सकता है कि कई लोग सिनेमा में काम करते हुए भी दूसरे रचनात्मक या सामाजिक काम अच्छी तरह कर लेते होंगे।

इतना सफल गीत लिखने के बावजूद आपने छंद में ज्यादा नहीं लिखा। आपको बड़ी संख्या में गीत लिखने चाहिए थे?

मैंने गिने-चुने ही गीत लिखे हैं। इसकी वजह यह है कि जब कोई काव्य छंद में लिखा जाता है, तो उसमें विचार एक सीमा तक ही आ पाता है। उसकी एक लिमिटेशन हो जाती है। छंद की मुक्ति ही इसलिए हुई कि उसमें अभिव्यक्ति की एक सीमा थी। छंद के अनुशासन की वजह से आप एक सीमा तक ही अपनी बात कह सकते थे। जीवन के कई रूप-रंग होते हैं। कभी असीम उल्लास होता है, तो कभी विडंबित जीवन होता है। सुख का विस्तार होता है, तो दुःख भी कई-कई प्रकार के होते हैं। यातनाएँ होती हैं। धोखाधड़ी होती है। दर्द होता है। तो जिंदगी के तमाम पक्षों को समेटने के लिए छंदबद्ध रचना नाकाफी साबित होती है। हालाँकि मैं यह कतई नहीं कह रहा हूँ कि छंद में अच्छी रचनाएँ संभव नहीं हैं। तमाम भाषाओं में सैकड़ों छंदबद्ध महान रचनाएँ हमारे सामने हैं। ये बड़े उस्तादों की रचनाएँ हैं। लेकिन अब वक्त बदल चुका। जीवन स्थितियाँ ज्यादा कठिन हैं। जिंदगी ज्यादा रहस्यमय हो चुकी है। ऐसे में मुझे मुक्त छंद में रचना करना ही ज्यादा मुफीद लगता है।

आपने गीतों के अलावा मराठी में लावणी भी तो लिखी हैं...

हाँ, मिलों के जीवन को विषय बनाकर मैंने कई लावणी लिखीं। मिलों के कामगारों में यह विधा बहुत पॉपुलर है। लावणी में बड़े-बड़े कलावंतों ने काम किया है। यह लोक विधा है। लोगों तक पहुँचने के लिए ऐसी विधाएँ बहुत महत्त्व रखती हैं। हालाँकि बहुत से साहित्यकार इस बात को समझ नहीं पाते हैं।

किसी भी अच्छे कवि का एक व्यक्तित्व होता है। उसकी प्राप्ति कैसे होती है? वह कैसे बनता है?

आपका आचरण ही आपका व्यक्तित्व बनाता है। आप लिखते कुछ हैं और करते कुछ, इससे आपका व्यक्तित्व नहीं बनता। वह खंडित होता जाता है। आपको छद्म त्यागना होगा। आपको पक्षधरता तय करनी होगी। इस पक्षधरता के आपके पास ठोस तर्क होंगे। आप कलावादी हों, समाजवादी या फिर मार्क्सवादी, आपके क्रियाकलाप तय कर देते हैं कि आप व्यक्ति के रूप में कैसे हैं। संदेहास्पद होना किसी भी रचनाकार के लिए मौत के समान होता है। लेखकों को अंदर और बाहर दोनों ही ओर से स्वच्छ होना चाहिए। जो जैसा है, वैसा ही दिखे। लेखक को यह कहने की हिम्मत होनी चाहिए कि मैं ऐसा हूँ। जिसे मुझे इस रूप में स्वीकार करना है, तो करो। वरना मुझे छोड़ दो।

आप हिंदी में किन कवियों के व्यक्तित्व से प्रभावित हैं?

आप देखिए कि अज्ञेय का विशेष व्यक्तित्व था। वह कलावादी थे, लेकिन बड़े रचनाकार थे। नागार्जुन का व्यक्तित्व असाधारण है। वह जनता के कवि हैं। उनकी कविताएँ पढ़कर समझ सकते हैं कि उनका जुड़ाव आमजन से किस कदर है। केदारनाथ सिंह का भी व्यक्तित्व मुझे आकर्षक लगता है। वह जमीनी व्यक्ति हैं और उनकी कविता भी इस बात की गवाही देती है।

आपको हिंदी के इधर के किन कवियों ने प्रभावित किया है। आप किन्हें सबसे ज्यादा पसंद करते हैं?

मुझे निराला, मुक्तिबोध और नागार्जुन बहुत पसंद हैं। रघुवीर सहाय और धूमिल की कविताएँ मुझे आकर्षित करती हैं। केदारनाथ सिंह अच्छे कवि हैं। इन्होंने कविता का विस्तार किया है। ये हिंदी के ही नहीं, हिंदुस्तान भर के कवि हैं। इन कवियों के अनुवाद मराठी में भी खूब हुए हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कबीर भी तो आपको बहुत प्रिय हैं। अपने वक्तव्य में आप अक्सर ही कबीर को कोट करते रहते हैं?

हाँ, कबीर मुझे बहुत प्रिय हैं। मैं उनकी दृष्टि का कायल हूँ। साढ़े पाँच-छह सौ साल पहले उनकी सोच कितनी वैज्ञानिक थी और कितनी आधुनिक थी, यह देखकर चकित हो जाना पड़ता है। मुझे उनकी निडरता बहुत प्रेरित करती है। वह बिना किसी डर के अपनी बात कहते हैं और बिना लाग-लपेट के कहते हैं। देखिए कि उनकी दृष्टि कितनी प्रोग्रेसिव है। वह हिंदू हो या मुसलमान, पंडित हो या मुल्ला कितने बेधड़क होकर लताड़ लगाते हैं। एक दिलचस्प बात बताऊँ कि कबीर और मेरे जीवन में थोड़ी-बहुत साम्यता भी है। उनका लालन-पालन जुलाहे के घर हुआ था और मैं भी मिल वाला जुलाहा हूँ। कबीर की तरह मैं भी त्यागा हुआ हूँ। जब मैं कुछ महीने का ही था, तो मुझे मेरी माँ ने त्याग दिया था। मेरी कहानी कुछ अलग ही है। मुंबई के चिंचपोकली स्टेशन पर मुझे छोड़ा गया था, जहाँ से गंगाधर सुर्वे नाम का मजदूर मुझे उठाकर अपने घर ले आया। उन्होंने मुझे पाला-पोसा। अपना सरनेम दिया। सुर्वे दंपत्ति निःसंतान थे। जब मैं दस साल का हुआ, तो उन्होंने अपने गाँव कोकण जाने का फैसला कर लिया और मुझे दस रुपये देकर कहा कि आगे का संघर्ष अब तुम्हें खुद करना है। वे पल आज भी मेरी स्मृति में अंकित हैं। सुर्वे दंपत्ति के अपने गाँव लौट जाने पर मुझे लगा था कि मैं एक बार फिर से अनाथ हो गया हूँ। लेकिन न मुझे जन्म देनेवाली माँ से कोई गिला-शिकवा है और न ही मेरे पालनहार सुर्वे दंपत्ति से। लेकिन यह बात बहुत तकलीफदेह है कि आज भी भारत में प्रतिवर्ष 6 से 7 लाख बच्चे अस्पतालों, रेलवे स्टेशनों, मंदिरों के आगे छोड़ दिए जाते हैं। उनमें से कम ही ऐसे किस्मतवाले निकलते हैं, जिन्हें कोई परिवार अपना लेता है। बाकी की अकाल मृत्यु हो जाती है। यह कितनी दुःखदायी स्थिति है।

इक्कीसवीं शताब्दी आने को है। इस नई शताब्दी में यह दुनिया क्या स्वरूप ले सकती है? आपका क्या अनुमान है?

विज्ञान आगे बढ़ेगा। नई टेक्नोलॉजी सामने आएगी। विचारणीय यह है कि इस नई टेक्नोलॉजी का फायदा आम जनता को कितना मिलेगा। कहीं ऐसा तो नहीं कि गरीब आदमी का जीवन जस का तस बना रहेगा या फिर वह और भी गरीब हो जाएगा। अमीर आदमी और भी अमीर होता चला जाएगा! मुझे लगता है कि जैसे पहले ज्ञान के चारों ओर दुनिया घूम रही थी, आनेवाले वक्त में धन के चारों ओर चक्कर लगाएगी। धन अवश्य ही धन को बढ़ाता है, लेकिन लोगों के बीच दूरी भी तो बढ़ाता है। धन हमारे मन को नहीं जोड़ पाता। जब सब कुछ धन ही होगा, तो धर्म भी अपने भौंड़े स्वरूप में सामने आ सकता है। यह एक बड़ा खतरा है। लेकिन हमें अपने युवाओं से उम्मीद रखनी चाहिए कि वे अवश्य ही एक बेहतर दुनिया रचेंगे।

इक्कीसवीं सदी में साहित्य का रूप कैसा होगा? क्या कुछ अंदाजा लगा सकते हैं आप?

इक्कीसवीं सदी में साहित्य का स्वरूप बदलेगा। साहित्य के मायने बदलेंगे। कहानी, कविता और उपन्यास से ज्यादा विज्ञान लेखन लोकप्रिय हो सकता है। लोग जीवनियों, संस्मरणों और यात्रा वृत्तांतों आदि में अधिक रुचि लेंगे। कई फिल्में भी साहित्य का रूप ले सकती हैं। आम आदमी के सुख-दुःख में शामिल होनेवाले फिल्मी गीतों का महत्त्व बढ़ सकता है। नई सदी में आप साहित्य के नाम पर कुछ भी लोगों पर नहीं थोप पाएँगे। नई सदी में लोगों की रुचियाँ अलग होंगी।

लोगों का कहना है कि टीवी के सर्वसुलभ हो जाने के बाद अब लोगों की साहित्य से दूरी बढ़ती जा रही है। पाठक निरंतर कम होते जा रहे हैं। क्या यह नुकसान आगे बढ़ता ही जाएगा?

ऐसा कुछ नहीं होगा। टीवी और फिल्मों की अपनी जगह होगी और साहित्य की अपनी जगह। किताबों की अहमियत हमेशा रहेगी। यूरोप में अच्छी नॉवेल आज भी लाखों में बिकती हैं। वहाँ 60-70 वर्ष पहले टीवी आ गया था, हमारे यहाँ तो पच्चीसेक साल हुए होंगे। मेरा मानना है कि प्रिंट मीडिया का अपना महत्त्व है और वह हमेशा बरकरार रहेगा। किताबें बची रहेंगी और वे पढ़ी जाती रहेंगी।

मराठी भाषा में तो साहित्य और साहित्यकारों की काफी पूछ होती है। उनकी लोकप्रियता किसी फिल्म स्टार से कम नहीं होती...

हाँ, यह बात सही है कि तुलनात्मक रूप से मराठी में साहित्य को काफी इज्जत मिलती है। जब साहित्य सम्मेलन होता है, तो एक-एक लाख लोग इसमें शिरकत करते हैं। इनमें दूसरे लोगों के साथ रिक्शेवाले, ताँगेवाले, होटलों के बेयरे, दलित, वंचित, मुस्लिम, महिलाएँ और विद्यार्थी भी भाग लेते हैं। इतना

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ही नहीं, इन सम्मेलनों में नवशिक्षित वर्ग की भी बड़ी भागीदारी होती है। वे अपने पाठ्यक्रम में हम लोगों को पढ़ चुके होते हैं। वे हम लोगों के बारे में कहते हैं कि ये हमारे लेखक हैं। यही लोग तो हमारी किताबें खरीदते हैं। यह एक नया तबका है, जो जागरूक हो रहा है। इस जागरूकता के पीछे महात्मा फुले और बाबा साहब आंबेडकर आदि का बड़ा योगदान है। इन्होंने एक बड़े वर्ग को नई दृष्टि दी है।

इस समय के भारतीय लेखन को आप किस तरह से देखते हैं?

इस समय तो ज्यादातर भारतीय लेखन पार्टटाइम है। मेरी बात किसी को बुरी लग सकती है, लेकिन यही सच है। हम सब नौकरी करने के बाद जो थका हुआ समय मिलता है, उसमें साहित्य सृजन करते हैं। आप गुरुदेव रबींद्रनाथ ठाकुर और प्रेमचंद को देखिए कि उन्होंने लेखन में अपने आपको झोंक दिया था। मेरी सोच है कि 1960 से पहले हमारे यहाँ अधिकतर मध्यवर्गीय राइटिंग हुई है। इस राइटिंग पर संस्कृत का दबाव था या फिर अंग्रेजी का। 1960 के बाद ही अन्य तबके के लोग लेखन में सक्रिय हुए। ये लोग साहित्य में अपने शब्द, स्टाइल, संवेदना और अपना अनुभूत सत्य लेकर आए। यह एकदम नया तबका था, जो आज तक साहित्य में अनुपस्थित था। दलित, मुस्लिम और आदिवासी साहित्य में आने शुरू हुए। वर्णाश्रम पर प्रहार शुरू हुए। शुरू में इस नए तबके के लेखन को कोई महत्त्व नहीं मिला। लेखक बिरादरी के अपने पूर्वाग्रह थे। दरअसल एक अलग किस्म का समाज था, जो बदलना नहीं चाहता था। थोड़े समय के बाद नए तरह के लेखन से परंपरावादी परेशान होने शुरू हो गए। लेकिन इस बीच काफी सोच बदली है। अब नया लेखन प्रकाश में आना शुरू हो चुका है। उसने काफी हद तक अपनी जड़ें जमा ली हैं।

महाराष्ट्र में दलित साहित्य का अपना महत्त्व है। दलित लेखकों ने एक से बढ़कर एक रचनाएँ दी हैं। इन रचनाओं का पूरे देश पर प्रभाव पड़ा है। इस साहित्य के बारे में आपका क्या कहना है?

दलित साहित्य एक महत्त्वपूर्ण आंदोलन है। इसे बड़ी चेतना के साथ लिखा गया है और यह निरंतर लिखा जा रहा है। यह एक तरह से नवजागरण है। इसी नवजागरण की वजह से महाराष्ट्र में जमींदारशाही नहीं रही। मैं तो छत्रपति शिवाजी को भी नवजागरण का प्रतीक मानता हूँ। वह जनता के सुख-दुःख से वास्ता रखते थे। वह अकाल में दान करते थे। इसीलिए तो उन्हें 'लोकांचा राजा' कहा गया। महाराष्ट्र में महात्मा फुले की चेतना ने बहुत बड़ा काम किया। फुले खुद माली थे, लेकिन उन्होंने 125 वर्ष पहले लड़कियों के लिए पाठशाला खोली थी। उन्होंने हरिजनों के लिए कुआँ खुदवाया था। उनके पास एक सामाजिक दृष्टि थी और एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण था। फुले की सोच को ही बाबा साहब डॉ. भीमराव आंबेडकर आगे लेकर आए और उसका विस्तार किया। बुद्ध, कबीर और फुले की सोच ने लोगों के भीतर एक नई चेतना फैलाई। बाबा साहब आंबेडकर के पिता को पूरा कबीर याद था। इसका असर डॉ. भीमराव आंबेडकर पर पड़ा। कम लोगों को पता होगा कि खुद आंबेडकर भी कबीर को अपना गुरु मानते थे। बुद्ध और कबीर उनके आदर्श रहे हैं। यह सब मैं इसलिए कह रहा हूँ, क्योंकि दलित साहित्य का संबंध चेतना से है। नई दृष्टि से है। मेरे एक संग्रह का तो नाम ही 'नव्या माणसाचे आगमन' (नए आदमी का आगमन) है। मैंने रेखांकित किया है कि यह नया आदमी कौन है। आज दलित साहित्य में बहुत अच्छी कविताएँ, कहानियाँ और उपन्यास लिखे जा रहे हैं। इन कृतियों में सिर्फ नारे नहीं हैं, जीवन भी धड़कता है। इस लेखन में विविधता है।

लेखक संगठनों की कितनी भूमिका है इस नवजागरण में?

मैं इस समय थोड़ा निराश हूँ लेखक संगठनों से। प्रगतिशील लेखक संघ, जनवादी लेखक संघ और जन संस्कृति मंच देशव्यापी संगठन हैं, लेकिन विचारणीय यह है कि क्या ये सही तरह से अपनी जिम्मेदारियाँ निभा पा रहे हैं। मेरा मानना है कि इन संगठनों को लगातार काम करना चाहिए। जो भी इन संगठनों के शीर्ष पर बैठे हैं, यह उनकी जिम्मेदारी है कि वे लेखकीय समाज के बारे में भी सोचें। ये लेखकों के लिए क्या ठोस कार्य कर रहे हैं। ये अपने संगठनों को देखें कि क्या-क्या हो रहा है और क्या नया किया जा सकता है। सत्य आप से दो सौ किलोमीटर दूर है और आप समझते हैं कि उसे आपने पा लिया है। सत्य तो भिड़ने से सामने आता है। ध्यान रहे कि लोग दिल से जुड़ते हैं, शब्दों से नहीं। प्रेमचंद ने यह किया। उन्होंने किताबें भी लिखीं और समाज से जुड़े भी रहे। अब सोचने की बात यह है कि प्रेमचंद के शताब्दी समारोह में होरी है क्या? यहाँ तक कि इधर लिखे जा रहे साहित्य से होरी ही गायब है। महाराष्ट्र में ऐसा नहीं है। हमारे यहाँ प्रेमचंद क्रिएटिव राइटिंग में मौजूद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैं। मैं महाराष्ट्र का हूँ, इसलिए तारीफ नहीं कर रहा हूँ। लेखक संघ से जुड़े लोगों का काम सिर्फ किताबें लिखना नहीं है, लोगों को जोड़ना भी है। उनसे मिलकर बात करनी है। उनमें वैज्ञानिक सोच भरनी है। तभी तो समाज में वास्तविक जागरूकता संभव हो पाएगी।

जागरूकता की बात तो यह है कि अभी कुछ दिन पहले मुंबई सहित देश के लाखों लोगों ने गणेश जी को दूध पिलाया और इस चमत्कार पर बड़े अभिभूत भी हुए...

हाँ, अंधश्रद्धा के इस नमूने ने मुझे बहुत व्यथित किया। लोग गणेश जी को दूध पिला रहे थे और दूध था कि नालियों में बह रहा था। लोग इसे चमत्कार मान रहे थे। एक दिन का यह नाटक खूब हिट हुआ। सिर पीटने वाली बात तो यह कि यहाँ का मुख्यमंत्री भी इस काम में लगा था। पूरी दुनिया हम पर हँसी। हमारी सोच और समझ पर प्रश्नचिह्न लगे।

खैर, यह बताइए कि आप किस परंपरा के लेखक हैं?

मेरी परंपरा केशव सुत की परंपरा है। कुसुमाग्रज की परंपरा है। केशव सुत ने कहा था कि तुम्हारा हृदय फटा हो, तो कविता लिखो। केशव सुत ने हरिजनों पर पहली कविता लिखी थी 1886 में 'मजुरावर उपासमारीची पाड़ी'। सोचिए कितने चेतनशील कवि थे केशव सुत। अपने दौर में वह कैसा रचनात्मक हस्तक्षेप करते थे।

महाराष्ट्र में बहुत से दलित लेखक केशव सुत और कुसुमाग्रज को अपना लेखक नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि सवर्ण लेखक उनका दर्द लिख ही नहीं सकते?

हाँ, इस तरह की आवाजें उठती रही हैं। असल में दलितों का दर्द बहुत ज्यादा है। उन्होंने लंबे समय तक इसे भुगता है। बावूजद इसके मैं ऐसी सोच नहीं रखता कि दलित वर्ग के लोग सिर्फ दलित को ही अपना लेखक मानें। केशव सुत, कुसुमाग्रज या विंदा करंदीकर हम सबके लेखक हैं, भले ही वे सवर्ण हैं। प्रेमचंद हम सबके लेखक हैं। कितने ही नाम हैं - रबींद्रनाथ ठाकुर, शरत। आप जेनुइन लेखकों को इस तरह खाँचे में नहीं बाँट सकते। मैं मार्क्सवादी हूँ, इसलिए बहुत से दलित लोग मुझे अपना लेखक नहीं मानते। हालाँकि ऐसे लोगों की संख्या ज्यादा नहीं है। चलता है यह सब समाज में। समाज भी बदलता है और सोच भी बदलती है। असल चीज प्रतिबद्धता है कि आप किसके साथ खड़े हैं। सर्वहारा के प्रति आपका क्या रवैया है। मेरी कविताएँ देख लीजिए कि मेरी सोच क्या है। मेरी कविताओं में किसकी आवाज है।

आपने कविताओं का सृजन तो बखूबी किया, लेकिन साहित्य की दूसरी विधाओं में नहीं गए?

मैंने कविताओं के अलावा कुछ गीत भी लिखे। लावणियाँ लिखीं। कुछ नाटक भी लिखे। उपन्यास नहीं लिख पाया। कथा में भी मेरा मन नहीं रमा। यह मेरी सीमा रही। मैंने 'मानुष, कलावंत आणि समाज' निबंध में अपनी बात रखी है। हाँ, यह जरूर हुआ कि मेरी तीन कविताओं के नाट्य रूपांतरण किए गए हैं। रोहिणी हट्टंगड़ी, जयदेव हट्टंगड़ी और कमलाकर सोनटक्के ने यह काम किया। प्रख्यात चित्रकार एम.एफ. हुसैन ने मेरी चार कविताओं पर पेंटिंग बनाई हैं।

आप कवि सम्मेलनों में कितना जा पाते हैं। आपकी कविताएँ तो पूरे महाराष्ट्र में पढ़ाई जाती हैं। आपकी अपार लोकप्रियता है...

मैं सोच-समझकर ही कवि सम्मेलनों में शिरकत करता हूँ। अब कवि सम्मेलनों का स्वरूप बदल गया है। वहाँ साहित्य कम लोकप्रिय चीजें ज्यादा हैं। कुछ लोग कविताओं को मनोरंजन की तरह लेते हैं। कुछ नहीं मिला, टाइमपास करना है, तो कवियों को सुन आए। यह बहुत गलत एप्रोच है। यही वजह है कि मैं किसी भी कार्यक्रम में जाने से पहले देख लेता हूँ कि इसका आयोजक कौन है। लेकिन मुझे जहाँ जाना जरूरी लगता है, वहाँ मैं हर हाल में जाने की कोशिश करता हूँ। मैं जनता का कवि हूँ। जनता का स्नेह मिला है, इसीलिए मुझ पर अभी तक 5 पीएचडी, 13 एमफिल हो चुकी हैं। पूरे महाराष्ट्र के 11 विद्यापीठों के पाठ्यक्रम में मेरी कविताएँ पढ़ाई जाती हैं। मुझे देशभर से साहित्यिक समारोहों में शामिल होने के आमंत्रण मिलते रहते हैं, लेकिन अब मैं ज्यादा दूर नहीं जा पाता। सेहत भी ज्यादा साथ नहीं देती। उम्र हावी होती जा रही है।

नारायण सुर्वे मराठी के शीर्षस्थ कवि हैं। उनकी ऐसा गा मी ब्रह्म, माझे विद्यापीठ, जाहीरनामा, सनद और नव्या माणसाचे आगमन आदि प्रसिद्ध कृतियाँ हैं। 16 अगस्त 2010 को उनका मुंबई में निधन हुआ। उन्हें पद्मश्री, सोवियत लैंड नेहरू अवॉर्ड, कबीर सम्मान, साहित्य अकादमी सम्मान मिले हैं।

हरि मृदुल – +91 89990 27424

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भारतीय भाषा कविता समय

सतीश कालसेकर

(खुली आँखों वाला प्रतिरोध का पुरखा कवि। सृष्टि के अमंगल के ख़िलाफ़ गंभीर और कालजयी आवाज़।)

कलेजे की फाँक

कलेजे की फाँक काटकर
कविताएँ लिखना

इस तरह कविताएँ लिखना
कभी किसी कवि के नसीब में न आएँ

लेकिन इससे कोई अलग रास्ता नहीं होता
अच्छी कविता के लिए

अब लिख नहीं पाता हूँ
कविताओं की पंक्तियाँ
संगीन और निरंतर

यातनाओं के इस तहख़ाने में
कविताओं की उपज करते वक्त
ख़ाल भूनकर

गाढ़ा होता जाता है अँधेरा
और रतजगी आँखें
कविता की संगत करती हैं

अतिरिक्त दाब से
दुखती हैं नसें
खून के भीतर की पुकारों का
घुटता है दम
सब कुछ समेटने की
राहों तले

इन सभी बातों को समझ बूझकर
मैं अपनी कविता को
आगे लेकर जा रहा हूँ

प्रार्थना

जुबान तनिक भी
न लड़खड़ाए
अच्छे को अच्छा कहने में

हाथ जरा सा भी
खींचा न जाए
अच्छे काम में मदद करते समय

पाँव पलभर के लिए भी
न थकें
अपने इस सुन्दर देश में घुमक्कड़ी करते समय

ख़ुशी के मारे
आँखें भर आएँ
कुछ अच्छा देखते पढ़ते सुनते वक्त

घर का घर जैसा होना देखकर
परिवार का परिवार जैसा होना देखकर
फूले न समाएँ

दिल भर आये
दोस्त जब भाई जैसे बनते हैं
सहोदर
और पूरा अंतराल
अपने आगोश में आते वक्त
हम बन जाएँ अपने आप
बिलकुल अदने से
अनायास

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

डरावना

डरावना होता है
अपने गुनाहों को
खुद के सामने
कुबूल न कर पाना

मैं समझ सकता हूँ
इस ढलती उम्र में
असहाय स्थिति में
तुम्हारा मुझे यातनाएँ देना
चारों ओर से

और पहले से ही
बँधे हुए यह हाथ
इसका अंजाम तो
यही होना था

अब चारों ओर से
हार चुका मैं
शस्त्र उठाये हुए हैं अदृश्य हाथ

और साथ में भ्रम की
प्रियतम दीवारें

अच्छाई से अच्छाई पैदा होती है
यह बुनियाद भी ढह चुकी

तुम याद आते हो

(चंद्रकांत देवताले के लिए)

तुम याद आते हो
हमेशा की तरह
और आज साथ है
तुम्हारी यह कविता
'यमराज की दिशा'
'दक्षिण की तरफ पाँव करके मत सोना
वह मृत्यु की दिशा है'

और मैं लगाता हूँ तुम्हें फोन
बात आधी कट जाती है

अंतरंग की कोई बात ये हमें
बिना काटे करने भी नहीं देते

मुझे याद आता है राजेश जोशी
'मास्टर मदन, वह तुम्हें गाने नहीं देते'
यह भरोसा केवल यादों पर

यह पंक्ति तो अब मेरी ही हो गई है
और राजेश जोशी की *'समर गाथा'*
वो तो कब की चली जा चुकी है
बिना खबर किये किसी का हाथ थामकर

हमेशा याद रखता हूँ
दूसरों की कविताओं की पंक्तियाँ
लेकिन आज लगता है
वह मेरा ही लिखा है

तुम्हारे अधकटे फोन का जवाब...
बिजली कब की जा चुकी है

फिर से फोन लगाता हूँ अपनी ओर से
तुम्हारी आवाज भी मेरी जैसी ही नम

ये हमें बात नहीं करने देंगे
सुनने भी नहीं देंगे मास्टर मदन के
कोमल कंठ से निकली आवाज

यम के निवास की सर्वव्यापी दिशा
समझने से पहले ही
तुम्हारी माँ निकल गई दक्षिण की ओर

उसे अपनी श्रद्धा की राहत थी
दक्षिण में ही होता है यम का निवास
हमें तो अब वह भरोसा भी नहीं

किताबों के संग्रह के बारे में

किताबें जमा होती हैं
पहले
आदिम पुरखों ने पूजाघर में
रेशमी बस्ते में बाँधकर रखी
फिर चली आती है कहीं से
किसी होड़ से भौचक
अचानक
सिंदबाद, रणाविण स्वातंत्र्य से
ठेठ सुखी संसार तक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपनी मासूम छपाई से
किताबें देखती रहती हैं
जीवन की आपाधापी

किताबें
बेची नहीं जा सकतीं
गहनों जैसी
या उन्हें गिरवी भी
नहीं रखा जा सकता
किसी जमीन जायजाद की मानिंद

पहले किताबें दरबदर
भटकती रहीं
बँधे हुए सामान जैसी
उन दिनों किताबों का
अपना कोई छत भी नहीं था

किताबें संक्रामक रोग से
बहुत जल्दी बाधित हो जाती हैं
इसलिए पहले आते हैं
संस्कृति पर लिखे फेंकने लायक ग्रन्थ
प्रेम कविताओं की तूफानी पंक्तियाँ भी
उसी के साथ जश्न मनाती हैं

किताबें यह नहीं देखतीं कि
उतना ही पाँव पसारा जाय जितनी चादर होय
किताबें निराश नहीं होतीं
बदन पर धूल की परतें चढ़ जाने के बावजूद
उन्हें आने के बाद विदा लेने का
कोई गिला नहीं होता

उम्र के साथ पीड़ा का प्रभाव बदलता जाता है
इस बात को किताबें भी बड़ी सहजता से अपनाती हैं
वे जाती हैं कबाड़ में
किसी अनाथ लाइब्रेरी की अलमारियों में
किताबें सहसा रद्दी में नहीं जातीं
किताबों का रद्दी में बेचा जाना
प्रेमपत्रों को दूर करने जैसा
क्रूर लगता है

किताबें अपनी बढ़ती उम्र को
समझदारी से स्वीकार नहीं कर पातीं

अब तो किताबें दिखावे जैसी
लगती हैं कभी कभार
फिर भी नए सिरे से आती ही रहती हैं
बदलती हवा का रुख अपनाकर
उन्हें कभी कभार हवाबदली के लिए
दूसरी जगह रखना पड़ता है
अलमारियों से परछत्ती पर
परछत्ती से संदूक में
संदूक से फिर अलमारी में
वे तो बिना कोई फ़रियाद किये
तुम्हारी मर्जी से साथ निभाती रहती हैं

अँधेरे में भी किताबें
आपके कहने पर आँखें खुली रखती हैं
या कहें कि दिनदहाड़े
किताबें तुम्हारी नज़रों के सामने
किसी दोस्त का हाथ थामकर गुमशुदा हो जाती हैं

किसके साथ रहना है इस बात की समझ
किताबों को नहीं होती

कहें तो किताबें आपकी होती हैं
कहें तो किताबें दुःख देती हैं
कहें तो सँभालती हैं
लेकिन किताबें कभी भी
चल-अचल संपत्ति जैसी नहीं होतीं

आपको उनकी नज़रों के सामने
या उनके पीठ-पीछे
भले घसीटते जाना पड़े
लेकिन किताबों को रोटी के लिए
बेचा नहीं जा सकता।

(अनुवाद : प्रफुल्ल शिलेदार समकालीन मराठी कविता के अनुभवी अनुवादक और कवि।)

सम्पर्क - 9970186702

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समकालीन मलयालम कविता की युक्तियाँ

अनुवाद और टिप्पणी : ए. अरविंदाक्षन

(कविता और आलोचना में ईमान के पक्षधर लेखक। अनुवाद में भावपक्ष को रोशन करने वाले वरिष्ठ रचनाकार। दक्षिण भारतीय और हिंदी साहित्य संस्कृति के बीच आत्मीय सेतु।)

सन् उन्नीस सौ अस्सी के आसपास मलयालम कविता में समकालीन कविता स्वीकृत एवं चर्चित होने लगती है। इसमें मुख्य रूप से तीन प्रमुख धाराओं की कविताओं का अनुभव किया जा सकता है। नव-स्वच्छंतावाद के बुजुर्ग कवि, आधुनिकता के दौर के कवि तथा युवा कवि। बुजुर्ग कवियों की बहुत-सी कविताएँ समय और यथार्थ की सघनता के साथ अवतरित मिलती हैं। आधुनिकता की यूरोपियन मोडर्निज्म से मुक्ति का आह्वान करते हुए समकालीन मलयालम कविता में उनका प्रवेश करना साधारण बात नहीं थी। उनमें देशीयता और वैश्विकता से जुड़े यथार्थ की ग्राह्यता अधिक थी। तब तक ये कवि एशियाई तथा लैटिन अमेरिका की कविताओं के नजदीक आ चुके थे। ये कवि तीसरी दुनिया के यथार्थ को व्यंजित करने वाले थे। मगर इन सबों ने अपने लोक को सुरक्षित रखा। युवा कवियों की एक नई पीढ़ी पूरे सामर्थ्य के साथ आ गई। उन्नीस सौ नब्बे के आसपास युवा कवियों के पुरोधा और समर्थ कवि के. जी. शंकर पिल्लै के संपादकत्व में 'समकालीन कविता' नामक पत्रिका आने लगी। केरल की जितनी पॉपुलर-पत्रिकाएँ हैं, उनमें भी समकालीन कविता प्रमुखता के साथ छपती रही है।

समकालीन मलयालम कविता अपने 'देस' को लिखने में विश्वास करती है। वह उससे यथार्थ की स्वीकृति की निरंतरता है। इसलिए मलयालय की इधर की कविताएँ जिस सत्वरता से अपने आप को व्यंजित करती हैं उसी सत्वरता से विश्व मानविकता के त्रासद प्रसंगों को उठाती हैं। समकालीन मलयालम कविता केरल के लोक की अभिव्यक्ति होने के साथ-साथ भारतीयता और वैश्विकता की भी अभिव्यंजना है।

कविता में चिह्नित मानवाधिकार उसके सर्जनात्मक ढंग से जीने के अधिकार से संबंधित है। इसलिए मलयालम कविता अपने मूल में मानवीयता के स्रोत को तथा उसकी सही व्यंजना पर विश्वास करती है। मानवीयता के लिए जो भी नुकसानदेह है उसके प्रति कविता अपने श्रवण पुटों को खोल रखती है। कुछ यंत्रों और यांत्रिक सभ्यता के प्रति, कुछ रिश्तों के प्रति सतर्क हैं, अधिकार के रूपकों के प्रति भी ये ध्यान देती हैं। बुनियादी संकल्पनाओं को संस्कृति के नए पाठ के संदर्भ में ये देखना पसंद करती हैं।

आज का समय इसलिए जटिल और दुरूह है कि उसने संवेदनाओं की सकारात्मकता के विरुद्ध युद्ध घोषित किया है। किसी के ज्यादा संवेदनात्मक होने की जरूरत नहीं है - यह प्रस्ताव या अभिप्राय नहीं बल्कि यह एक आदेश है। उस आदेश की आँखें संवेदनात्मक ज्ञान को कई कोणों से देखती हैं। समय का, हमारी संवेदना पर, जो बलात्कार चल रहा है, उसको प्रतिरोधित करना समकालीन मलयालम कविता की सबसे बड़ी युक्ति है। वह सिर्फ यह नहीं कह रही है कि स्वतंत्रता की संवेदना साध्य है बल्कि वह यह भी कह रही है कि मानवीयता को साध्य बनाने का दायित्व भी उसका है।

समकालीन मलयालम कविता मात्र रुदितानुसारि ही नहीं है, वह स्वयं रुदित अवस्था की सार्थक व्यंजना है।

सच्चिदानन्दन

विस्मृति

हजारों कवि
कविता लिखते रहे और विस्मृत होते गए।
अतुलनीय और मित्रहीन
अनश्वर मात्र कवि बनने से ज्यादा
मुझे पसंद है
अनेकों कवियों के साथ
नश्वरता का भाईचारा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

वैविध्य

कल की तरह ही नदी बह रही है
हवा चलती है कल की तरह ही
कल की तरह ही धूप खिली है
फूल खिल रहे हैं, कल की तरह ही
सुबह, मध्याह्न, साँझ, रात,
सब कुछ जस का तस

परंतु, आज का मेरा दुःख
कल की तरह नहीं
इस वैविध्य के लिए शुक्रिया
यह मुझे जीने के लिए प्रेरित करता है।

मूर्ति

मैं गाँव के चौराहे की मूर्ति हूँ
काइयों से भरी पीठ पर
शताब्दियाँ बरसती-बरसती रहीं
नाम व तिथि गायब हो गए

इतिहासकारों में से कुछ मानते हैं
यह संघ कालीन[1]
यह चेर[2] वंशज राजा है, चोल[3] राजा के सेनापति हैं
पुर्तगाली सेनाधिप हैं
अरब के व्यापारी हैं
वाद-विवाद चलता रहे।
वाद-विवाद चलते रहें।

सिर के ऊपर है कुछ
पगड़ी, मुकुट या शिरोवस्त्र
या सेनापति की टोपी
मीनाक्षी[4] का तोता

बढ़ाए गए हाथ से जो छूट गया है
कुछ के अनुसार तलवार है
लिखने के लिए उपयुक्त पंख है
अपनी प्रमिला की प्रतीक्षा में खड़े-खड़े जो पत्थर बना प्रेमी
यह भी मानना है
अगले शब्द की प्रतीक्षा में खड़े कवि हैं जो पत्थर बन गया,
मोर से उतरा स्कंध है,
यहाँ तक कहा जाता है
वह तिरुवल्लुवर[5] है जिन्होंने अपनी दाढ़ी अलग की थी।

1. तमिल साहित्य का प्राचीन काल, 2. तमिल प्रदेश का राजवंश, 3 तमिल प्रदेश का राजवंश, 4 मधुरै का मीनासी मंदिर में मीनासी को कंधे पर एक तोता है, 5 तमिल के प्राचीन कवि, 6, 7 तमिल प्राचीन काव्य

मैं सब कुछ भूल चुका हूँ
चारों तरफ गवेषकों ने खुदाई की
चिलप्पदिकारम्[6] के समय का एक नूपुर मिल गया है
एक कंगन भी मिला जिसका जिक्र मणिमेखला[7] में मिलता है
राजा के पक्षधर लोगों का कहना है वे रानी के हैं
व्यापारियों के समर्थकों का कहना है कि वे उनके हैं
पुर्तगालियों का मानना है कि यह चोरी का माल है
कवि के समर्थकों का कहना है कि वे उनकी प्रेमिका के हैं
नूपुर और कंगन ने चुप्पी साध ली

मुझे लगता है कि स्मृतिभंग का फायदा ही हुआ।
कुछ भी प्रतिबिंबित करने लायक आईना है
मेरा मन
खड़े-खड़े मैं कोई भी बन सकता हूँ
भूत और भविष्य में संशोधन कर सकता हूँ
इस धरती के जीवन को स्वप्न बनाया जा सकता है
चुपके से हँसा जा सकता है
मरने की अनुमति नहीं है
वह कब की बीत चुकी है
सृजन के बाद
कवि की तरह
ईश्वर भी सिर्फ पत्थर है।

सत्रहवीं मंजिल की लड़की

मैं सत्रहवीं मंजिल में रहती हूँ
चाँद मेरा एकांत देख सकता है
लेकिन चाँद का आसमान मैं छू नहीं सकती

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सामने समुद्र दिखाई देता है
उसमें है एक आसमान
पीछे मुड़ने पर बस्तियों का समुद्र
उसमें नहीं आसमान

मैं जो बीन बजाती हूँ दोनों जगह आवाज सुनाई पड़ती है
मैं जो रो रही हूँ
दोनों की भाषा एक ही है

कहीं भी पुल नहीं है

शहर सज-धजकर लेटा है
रात्रि मेहमानों की प्रतीक्षा में।

2
दूर पर एक मरुथल का बढ़ना
मैं देख सकती।
वहाँ पर हरापन था
बीच में एक तालाब
उसमें कमल खिले थे।

देखते देखते
वह तालाब सूखता चला गया
रेत किनारे तक आ गया
प्राचीन इतिहास के पहले के
एक जानवर की तरह
उसने हरेपन को खा लिया।
पौधों और पेड़ों की अस्थियाँ
रेत में बाकी रह गई हैं।

3
एक दिन यह समुद्र भी मरुथल बन जाएगा
हवा के साथ उसका सत्रहवीं मंजिल तक चढ़कर आना
मैं देख सकती हूँ
यह भी देख सकती हूँ कि इस शहर को भी वह निगल सकता
है।
उस समय मैं एक काँटेदार पौधा बन जाऊँगी
मुझमें संकोच के साथ एक फूल खिल उठेगा
उसके चारों तरफ
मधु, मक्खियाँ, भालू,
हरे रंग के तारों के नीचे
हरे रंग के मनुष्य।

हरा नहीं

(एक सेल्फ क्वारंटीन डायरी)

दस गुना दस
नरक की यही माप है
नरक की दीवारों का रंग
हल्का पीला है।

दीवार पर एक चित्र है
उसके रंगों को देखते समय
लगता है कि सूरज अभी-उदित होगा
लेलिन उदित नहीं होगा
वह एक अमूर्त चित्र है।
उसकी कोई चलायमानता नहीं।

आठ गुना आठ
दीवार का रंग लाल
एक खिड़की है, पहले जब उससे देखते समय
बच्चों को खेलते देखा जा सकता था, लेकिन
उन्होंने अपना खेल समाप्त किया है
आसमान वहीं पर है, उसमें
दिन में सलेटी रंग के पक्षी,
रात को अल्पायु, वाले नक्षत्र आते-जाते हैं,
इन्द्रधनुष आजकल नहीं आता

छह गुना गुना
दीवार नीले रंग की
मेज़ पर पानी है।
आधी पढ़ी गई पुस्तक की
आधी बरसी बारिश भी।
अब मैं जीता हूँ
छायाओं की दुनिया में।
वे बातें करती हैं, उन से मैं भी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कभी-कभी-कविता का वाचन भी करता हूँ
छायाओं से
छायाओं के बारे में
छायाओं की भाषा में लिखित।

चार गुना चार
स्क्रीन पर समाचार
बिना फूल के समाचार
सभी फूल शब्दों के अभाव में
मृतकों को दिए गए।

गासा में मरे हुए बच्चों को देने
न फूल हैं न शब्द
आँसू के सोते
भूगर्भ के जल के साथ सूख गए।

दो गुना दो
दीवार माटी के रंग की
यहाँ पर मैं ठीक-ठाक हूँ
आप भी स्वस्थ होंगे।
जिनके पास खिड़कियाँ हैं
वे खुशकिस्मतवाले हैं।
जेल सभी-देश स्नेहियों से भरे पड़े हैं।
वहाँ भी मेरे लिए जगह नहीं।
एक गुना एक
दीवार काले रंग की
अँधेरा घना ही आ रहा है, वह मुलायम है
उसमें प्राण वायु कम होती जा रही है
किताबें मुझे आकर्षित नहीं करती हैं
जिंदगी बिल्कुल नहीं।

पी एन. गोपीकृष्णन

ज्ञान जब सोता है तब ज्ञान कहाँ है?

अलकनंदा के तट पर
गुफा में
दस बरस ध्यान मग्न रहने के बाद
सर्दियों में
जब ज्ञानी जाग उठे
तो देखा, सामने एक मालक
काँपता हुआ खड़ा था
उसका सवाल है :
ज्ञानी जब सोता है,
तब ज्ञान कहाँ है?
ज्ञान को सोने न देने के लिए ही
क्या धरती को दो हिस्सों में बाँट दिया था?
एक हिस्से में सूरज जब उदित होता है
तो दूसरे में चाँद।

प्रपंच को क्या अलग-अलग भागों में विभाजित किया गया था?
जब एक भाग अँधेरे में डूबता है
अलग-अलग भागों में शोर-शराबा
जब एक नदी जड़ होती
अलग-अलग भागों के समंदर तरंगायित होते हैं

ऐसे में
ज्ञानी का मतलब
क्या जान का रखवाला?
कालिदास के टूटने पर
कालिदास की कविता को
क्या दूसरे बर्तन में नमक डालकर रखा जा सकता है?
मुझसे ज्यादा चार-पाँच जी. बी. मेमोरी के
हार्ड डिस्क वाले सुकरात हैं?
इडिपस से सवाल करने वाले स्फिंक्स को
जवाब भी मालूम था
पब्लिक सर्विस कमीशन की परीक्षा लिए
प्रश्न-पत्र तैयार करने वाले
जवाब जानने वाले खानदानी हैं
इसलिए सवाल करने वाले बालक की खोज में गए
योगी
हिमालय से उतर आए।
आँखें कभी न मूँदने वाले सेवरी की दुनिया में
ज्ञानी को, ज्ञान को
प्रश्न को भुला दिया गया
नहीं तो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रश्न बच्चा बन गया
जीवन अन्वेषण बन गया।

लंबी दूरी तय करने पर
पैर फिसलते गए बीच-बीच में
एक बच्चे की ओर
गिरने की आतुरता है
हर किसी के अंदर।

उस बालक की ओर
बाँक देने वाले
हम नहीं,
हमारी आवाज़ नहीं
हमारा मन भी नहीं
वह ज्ञानी है।

मलयालम में

इस हफ्ते मैं पढ़ रहा हूँ फ्रेंच उपन्यास।
देखी मैंने एक इतालवी फिल्म।
संदेह हुआ संस्कृत व्याकरण को लेकर।
जख्म भरे गए अंग्रेज़ी दवाओं के लेपन से
मेरा आनंद हिंदुस्तानी संगीत में
जरूरत है आंध्र के चावल की
भरी दुपहरी में
मैं
खर्राटे मारता हूँ
मात्र मलयालम में।

कृष्ण

'निगलना नहीं, निगलना नहीं'
दही मथने वाली माँ ने कहा।
नदी तट पर
कपड़े धोने वाली औरतों ने भी।

'निगलना नहीं'
भैया ने कहा
जिसकी आवाज़ में कीचड़ की बू थी।

'निगलने दो, भुगतने दो'
नदी के कालिया नामक
पनियल साँप ने कई बार लिखा।

निगल लिया
गिनीज बुक में नाम आने की खबर पाकर
बिस्तर पर लेट गया।

जगने पर
तमाम सड़कों के लिए मेरा नाम
ऊपरी पुलों के लिए भी

नदी एवं डेम के लिए
मेरा नाम।

बैंक जो बंद हो गया
विकसित होने वाले बैंक के लिए
मेरा नाम।

हरे-भरे टीलों को उगलने वाले के
इस्पाती हाथों के लिए
मेरा नाम।

फरों में, विद्यालयों में, गलियों में
बच्चे मेरे नामधारी हैं

'निगल लो, निगल लो'
लाकर आक्रोश करने वाले बुजुर्ग

बस, बस
मुँह खोलने पर सबको भयभीत करने वाला
जिस प्रपंच को निगल लिया गया था, मुझे
कै करके उसे बाहर करता है।

मैं बाँसुरी, मोरपंख
नृत्य
और गोपियों की आँखों में प्रतिबिंबित
आँखों का तारा ही नहीं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

काली और बंजर जमीन भी हूँ
याद रखें यह
स्मरण दिलाने के लिए है।

बच्चे इसे दो बार देखें

उन नदियों को
जिनसे हमने मुँह मोड़ लिया था
उन बारिशों को
जिनको हमने छाते से छिपा लिया था
हमने जिन पहाड़ों को कूट-पीसकर रख लिया था
बच्चे दो बार देखें।
वे यह सीखें,
यह परती जल की कारुणिकता है
यूरोप और अमेरिका
वे कह सकें
कि अरब सागर और एटलैंटिक
समुद्र मात्र नहीं हैं।

3. एस. जोसेफ

घर बनाने वाले गा रहे हैं

हमारे घर
वास्तव में घर नहीं
समय के प्रवाह में गोता लगाकर जाने पर, शायद
क्या ये घर देख पाएँगे?

बचपन में
नन्हे-नन्हे सपनों से बनाया गया घर
दलिया और आम का अचार,
माँ के चुंबन से बनाया गया घर
काले धुएँ से भरी रसोई
उसके अंदर जलती लकड़ी की तरह माँ
दीमकों से खाया गया पर
उसके आँगन में कोई बच्चा खेलता नहीं था

पत्थरों से लोगों के लिए हमने घर बनाए
मिट्टी से लकड़ी से जल से कई-कई घर
जो हमने बनाए,
वे हमें देखकर मुँह बिचका रहे हैं
बोरियों के टुकड़ों को सीकर बनाए गए दरवाज़े
जिसके भीतर हमारे बच्चे और बीवियाँ।

पत्थर फोड़कर लोगों के लिए
हमने कितने घर बनाए?
बारिश के शुरू होते ही
हमारे घर की टाँगें टूट जाती हैं
छिपकली, साँप, मेंढक और शतपद
हर कोने से मुँह बिचका रहे हैं
प्यारी बहन को भूख ले गई।
हमारे घर असल में घर नहीं
मानो हमने यह घर बनाया नहीं

बेटे को पढ़ने-लिखने के लिए मेज,
उस पर लाइट, खान-पान का कक्ष, गुसलखाना
बेटी को खेलने के लिए बरामदा
फूलदार पेड़ों का मातृ स्नेह, खिड़कियाँ खूब
नारियल के पेड़ों की छाया, आकाश उसका चौकीदार।

कल्पना से बनाए गए घर पर
हम रह नहीं पाएँगे
हथौड़े की मार पड़ने पर
हृदय हमारा हिलता है
उम्मीद ही हमारा खान-पान है।

ईंट पर ईंट रखकर
जब घर बनने लगता है
कल्पना से बना घर टूट गिरता है

हमारा घर असल में घर नहीं
हमें घर खोजना पड़ता है

उस तरफ बारिश में जब घर ढह जाता है
बच्चे, मुर्गियाँ, माताएँ, कुत्ते, तोते का पिंजरा
बैलगाड़ी एक और झगड़े के अंदर जब सभी जुड़ जाते हैं
माँ-बाप के साथ, भाई-बहन के साथ
घर खोजना है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

समय बढ़ता जा रहा है
बच्चे घर के बारे में गीत गा रहे हैं।

मिट्टी से घर बनाकर
कच्चे आम की सब्जी बनाकर
तुम्पा[1] के फूल-सा चावल पकाकर
बारिश में नहा-धोकर
साँझ के आसमान से बनी धोती पहनकर
हवा से वाद-विवाद करके
जंगली मैना को देखकर
घर के अंदर जंगल को देख
जगल में इंतज़ार करके
मिट्टी से घर बनाकर, कच्चे आम की सब्जी बनाकर...

1. एक छोटे से पौधे का सफेद फूल

चाँ से प्रेम करने वाली लड़की

आँगन में झाड़ू लगाकर
चप्पल पहले मुर्गे को अन्न बिखेरकर
हँसती बिल्ली को दूध देकर
नाश्ता तैयार करके, स्नेह बिखेरकर
चाँदनी से प्रेम करके
रात से डरकर क्या तुम सो रही हो?

सोफी, नन्ही जान, मेरी कविताओं के चिरैये
तुम्हारे लिए हैं।

चाँद को प्रेम करने वाली बच्ची,
क्या तुम्हें एकांत से बनाया है?
विद्यालय के आँगन में जब सहेलियाँ तुम्हें पकड़ती हैं।
तुम चुप खड़ी रहती हो, सोफिया,
चुप क्यों हो, क्या भूख लगी है?

बिन सहेलियों वाली बच्ची, एक बार
तुम्हारा गाना सुना मैंने, तुम्हारे लंबे बाल
हवा में हिल रहे थे, घूमते-घूमते तुम गिर पड़ी थी
तुम्हें मुस्कुराते देखा मैंने, रस्तों में अपने आप से
बातें करते हुए तुम्हें जाते देखा मैंने।

एक बार तुम्हारे लापता होने पर
नाले के तट तक जाकर वापस आया था
तुम्हारे पालतू कुत्ते ने भौंकते हुए क्या पूछ लिया था?
तुमने क्या जवाब दिया था? उल्लुओं की आवाज भरी
रात में तुम्हारी बिल्ली और तुम सो रही हो
प्रार्थना की तरह, आड़ी-तिरछी रेखाओं-सी।

चीते के शावकों-सी सुबह की धूप
कुलांचें मार रही है
घर के दरवाजे को खुला छोड़कर
तुम जो मुस्कान दे रही हो वह जीवन का जल है।

तुम्हारी माँ नहीं रही,
तुम्हारी भूख के लिए मैं तुम्हें क्या दूँ?
प्रेम के लिए मेरे हाथ खाली हैं
हृदय विष से युक्त
नहीं, नहीं कीचड़ में खिला सौगंधिक।

मेरी कविता जंगली जामुन
मेरी कविता माँ के होंठ
मेरी कविता के ज्ञानस्नान से
मैं तुम्हें अपनी बहन बना रहा हूँ

सभी दुःखों को कविता में बदलने
दुःख! तुम्हें मेरा साथ देना होगा।

अम्मा

अपने अकेलेपन का अर्थ तक समझे बिना
माँ जीती रहीं।

माँ की दुनिया बिलकुल छोटी थी
या फिर
हमारे तालुके के बराबर बड़ी
भागती तमाम गाड़ियाँ माँ के लिए
एक ही दिशा की ओर जाने वाली थीं
सभी राहगीर
एक ही जगह जाने वाले।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दूर से
पसीने और धूल से भरी पेटी की तरह
जब भी पहुँचता था
माँ पूछती:
'आलुवा वाली गाड़ी में ही आए हो?'
मैं कहता
'वह गाड़ी अब नहीं है।
उस समय माँ पान-तम्बाकू में उतर जाती
अकेलेपन, पता नहीं, माँ से परिचित था या नहीं?
मेरे अलेपन को
जब मैं प्रतिशोध की भावना के साथ काटता था
तब आमा
आँतों की पीड़ा और वात-रोग सहित
अपने अकेलेपन से अनजान होकर भूल गई होगी।
यह तब मैंने जाना,
जब बड़ी आँतों के प्रति छोटी आँतों की शिकायतों में
कोई काव्यात्मकता नहीं है
सभी बीमारियाँ भले ही युक्ति संगत हैं
वे हम पर अयुक्तिक ढंग से असर करती हैं
यह तब मैंने जाना,
सभी मनुष्य कोई न कोई बीमारी से ग्रस्त हैं
इसका पता हम उनके नक्षत्रों से लगाये जा सकते हैं
और रोगहीन अवस्था ही
एक रोग है।

शारीरिक रोगग्रस्तता के साथ-साथ
क्या माँ मानासिक स्तर पर भी रोगग्रस्त थी?
तपेदिक की बीमारी से मरा भाई
पागल बना भाई।
अपनी बीवी द्वारा छोड़ दिया गया भाई
माँ अपने भाइयों लिए संबोधित गीत में
इधर से उधर, उधर से इधर भागते रही।

इतने पर भी
छोटे बच्चों के साथ कंकड़ का खेल खेलते
नन्हें बच्चों को पालते
कुत्तों से, मुर्गों से
बात करते हुए मैंने देखा है।

अँधेरी रातों में
गवाही की तरह
बीच वाले कमरे की बत्ती बुझाकर
जब माँ अपनी चादर के अंदर छिप जाती हैं
तब मुझे इस बात का डर होने लगता है-
सपनों को निगलने का समय हो गया है
भिखमंगों और यात्रियों के बिना चलती रेलगाड़ियाँ
हवा में उड़ता कचरा
मुझ में भरता जा रहा है।
डर के मारे एक दिन मैंने
माँ को बुलाया
माँ ने मेरे लिए आकाश में रहने वाले ईश्वर घर का
प्रार्थना-गीत गाया
बारिश के साथ मैं सो रहा था।

माँ से अलग होकर
बड़े-से एक मकान में
अकेले में सो गया
चमगादड़ों और अन्य कई जानवरों से भरे
उस घर में
मेरी शब्दहीन आवाजें
लटकती रहीं
मैंने माँ को लिखा
अक्षरों से नहीं
मात्र स्मृतियों से
माँ सिर्फ 'अ' अक्षर से परिचित थीं
माँ मेरे लिए प्रार्थना-गीत गा रही होंगी
मैं सो गया
मृत रिश्तेदारों के यहाँ
मृत शरीर देखने माँ नहीं जाती थीं
माँ के पैरों में दर्द जो था
उस समय माँ का चेहरा तुड़ा-मुड़ा सा लगता था
मैंने देखा है
माँ के पैर ने निश्चल छलाँगों का सामना किया होगा
मृत्यु को पतझड़ की सहजता से माँ ने अनुभव किया होगा।
विवाह के बाद की दावतों से
विशेष त्योहारों से
उत्सवों से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पिताजी के रास्तों की ऊष्मा से
सूली-पहाड़ों से
श्मशानों से
हरे रास्तों से
माँ अलग ही रहीं।

भूख से, बीमारियों से
निकट के लोगों के बिगड़ने से
लोगों के बिछुड़ने से
कुछ लोगों के स्वार्थ के कारण
धोखाधड़ी से
अपनेपन के नष्ट होने से
मृत्यु निस्संगता गड्ड-मड्ड होती थी
तब मैं एक मोमबत्ती बन जाता था।

तब भी माँ
सुबह-सुबह मुर्गे के बाँग देते समय
मेरियम के प्रार्थना-गीत में मगन रहती थी।

बच्चों के चित्रकार

बच्चों के फल, परिंदे, रेशमी कपड़े कागजी बाघ
एक ही बादल के टुकड़े के सोता जो आसमान
दु:खहीन ज्ञान और प्रेम
चित्तबार, ब्रश से एक हाथी का चित्र पसंदीदा रंग में खींचना।
अपने सड़न-युक्त दाँतों के साथ बच्चे
क्या हरी धूप को देखते खड़े रहेंगे?
कुकुरमुत्तों के नीचे बारिश को देखकर खड़े रहेंगे?
चित्रकार, खींचता आम से भरी टोकरियाँ
जामुन का नीलापन, दूध को मोटा बना देना
गायों को फूलों के बीचोंबीच खींचना
चित्रकार, चित्र खींचते-खींचते
क्या तुम बच्चा बनकर वापस जाना चाहोगे?

4. वि. एम. गिरिजा

अंतिम इच्छा

उसका नाम नहीं जानती, देखने में वह खूबसूरत था, मैं
नवीं कक्षा में पढ़ रही थी, छोटा स्कर्ट पहनी हुई
आम की मंजरियों की खुशबू सघन थी
कोयल की आवाज़ में पीड़ा और माधुर्य की मिलावट थी;
पड़ोस के घर में दसवीं कक्षा वाला आ गया था
किताब में मुँह छुपाकर खड़ा था नीले रंग का पैंट पहने
चेहरा छोटा था, मूँछ उग रही थी
सभी पर्चों में उसको शत-प्रतिशत अंक
नाम नहीं जानती, लज्जा की वजह से पूछा नहीं....
रात हो गई, जूही के फूलों की सुगंध, आम की मंजरियों की
प्रतियोगिता भी
हवा ने किसको ज्यादा चुंबन दिया?
छोटी सी बत्ती मेज़ के ऊपर थी
मैंने लिखा ''जुही के फूल तुम अपनी सुगंध से मुझे पीड़ा दो''

पुराने समय की रात, अँधेरा जितना घना है,
आम के नीचे चमकते दो तारे ....
बत्ती बुझाई, खिड़की के पास। मायानिद्रा में डूबी रही
अँधेरे के हाथ धीरे से चेहरे पर प्रवाहित
जब होठों पर उँगलिया स्पर्श करती होती हैं प्यास ज्वलित होती
है
सीने पर एक तूफान ने नीड़ बनाया...
ताड़ के पत्तों से बना छप्पर था, जो अच्छा हुआ, मैं
दूध की नदी की तरह बाहर बहती रही, वह एक
मधु की नदी-सी
होठों पर गोंद किसने लगाया, आँखों में
मुझसे अलग न होने की रट लगी थी
उसकी लंबी उंगालियाँ जब द्राक्षासव की तरह
उबल रही थीं, छोटे-से स्तनों में उद्वेलन
और और और मेरा बदन उठता-गिरता जा रहा था...
कमल की नाली जैसी इस्पाती बलिष्ठता के साथ
वह कुछ दे रहा था, उँगलियाँ खोज रही थीं
परस्पर स्पर्श से सटकर बैठे रहे, गरमी बढ़ती गई,
अलग हुए, घर की तरफ भाग आई, हृदय में मधु भर गया
था।

आगे के दिन प्यास से गीले हुए थे
फिर मिला नहीं, सपनों का नित अतिथि।

सोने से सजकर धन से दीवाल खड़ी कर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गीत-तीन बच्चे, चार गाड़ियाँ, तीन-तीन घर
मृत्यु नज़दीक आ रही है, दूसरी दुनिया बुला रही है
माँ को क्या चाहिए, दुख के साथ पूजा जाता है

इच्छा है ... इच्छा है....कहने को मैं आतुर :
पूस की रात के कोहरे में फूले हुए आम से लिपटकर
जूही की लता बनने की, अँधेरे के मधु बनने की इच्छा...

दूर किसी शहर में बढ़िया-से होस्टल में
माटी के रंग की चूची से युक्त कन्या-स्तन चाह रचा है एक
आम्र मंजरिमों की सुगंध को जूही के फूलों में मिलाकर रात
रात को द्राक्षासव को मधु से मिलाकर जिसने दिया
उसको ये होंठ और गाल ढूँढ़ रहे हैं
रात्रि अंनत होती जा रही है।

बाँध लो मुझे

हिम की विस्तृति से,
घास की हरीतिमा से,
समंदर की तरंगों से,
चाँदनी की ठंडक से,
धूप की चमक से,

कंधे पर रखी आग से
उससे अधिक कंधे पर रखी
नन्हीं तीलियों से
बाँध लो मुझे
मैं तुम से प्रेम करती हूँ

सम्पर्क - +91 98950 18088

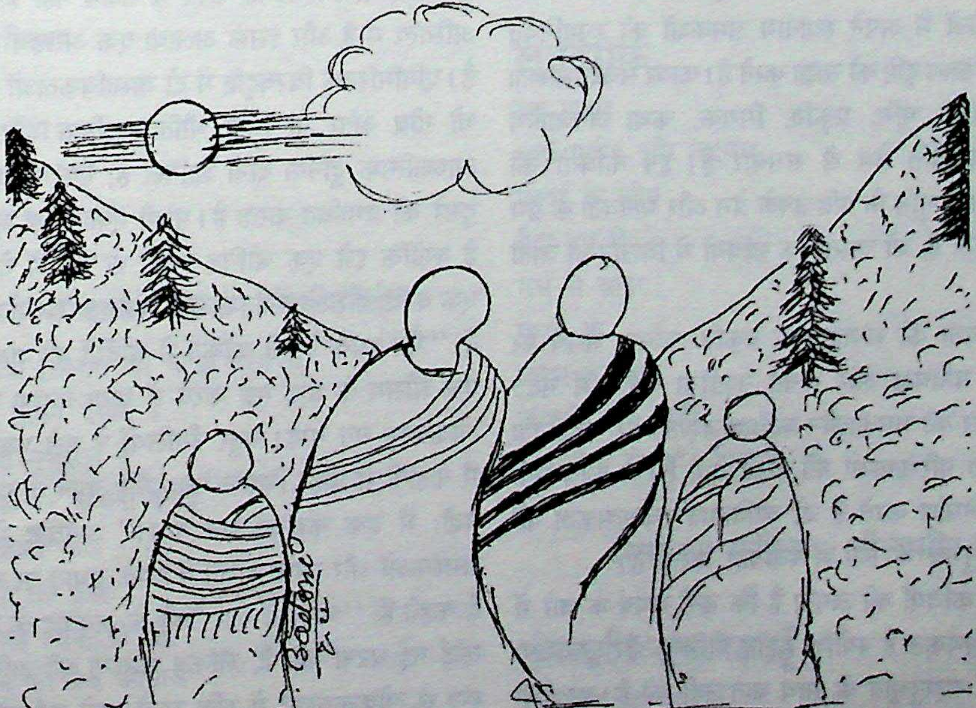

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पूर्वोत्तर की कविता

दिनकर कुमार

(पूर्वोत्तर साहित्य को हिंदी में मजबूत पहचान देने वाले कवि, अनुवादक और आलोचक। उनके अनुवादों में रचनाओं के मूल स्वर की अनुगूँज दूर तक पीछा करती है।)

पूर्वोत्तर की कविता कथाओं, गीतों, लोककथाओं, मिथकों और बारीक कहानी की एक सिम्फनी है जो अपने अनुभवात्मक पहलुओं को पार करना चाहती है। जैसा कि अक्सर बताया गया है, मौखिक कविता एक तरीका है जिससे लोग अपनी संस्कृति, कानून, परंपरा, समारोह, पीढ़ी दर पीढ़ी प्रसारित करते हैं; कविता का उद्देश्य इतना प्रतिनिधित्व नहीं है जितना कि एक प्रभाव पैदा करने का गंभीर प्रयास, जो एक ही समय में सौंदर्यपूर्ण और भावनात्मक है।

पूर्वोत्तर का साहित्य केवल संघर्षपूर्ण पृष्ठभूमि का साहित्य है, यह एक बहुत बड़ा मिथक है क्योंकि पूर्वोत्तर के कवि अतीत और वर्तमान दोनों में अपने स्थानीय समकक्षों की रूमानियत और पौराणिक-काव्य दृष्टि को साझा करते हैं। काव्य संवेदनशीलता का सामान्य बंधन भूमि, प्रकृति, मिथक, कथा जनजातीय लोककथाओं के प्रति प्रेम से सराबोर है। इन कवियों की सार्वभौमिक संगति भूमि के प्रति उनके प्रेम और मानवता के प्रेम में परिलक्षित होती है, जो वास्तविक छवियों में विलीन हो जाती है।

उनकी कविता की संवादात्मक प्रकृति वर्तमान समय पर एक एकीकृत, प्रतिबद्ध और सचेत नजरिया बनाने में मदद करती है। पूर्वोत्तर की समकालीन कविता जड़ता और जड़हीनता की सभी खंडित परिभाषाओं को उलट देती है। ये कवि एक ''बिम्ब'' का निर्माण करते हैं जो व्यक्तिगत रचनात्मकता को एक जीवित अनुभव के रूप में स्वीकार करता है।

पूर्वोत्तर के कवियों को लगता है कि उन्हें संघर्ष के बारे में लिखने की आवश्यकता है क्योंकि राष्ट्रीय मीडिया और मुख्यधारा ने इसके बारे में सहानुभूति के साथ बात नहीं की है। हालाँकि इसका मतलब यह नहीं है कि पूर्वोत्तर की कहानियाँ केवल संघर्ष के बारे में हैं, भूमिगत कहानियों को अकादमिक पाठ्यक्रम के फोकस में कभी नहीं लाया जाता है, जैसे बाढ़ और आतंक की कहानियाँ होती हैं, प्रेम और शांति की कहानियाँ भी होती हैं। इसका मतलब यह है कि साहित्य की किसी भी शैली में संघर्ष को पढ़ने के लिए हमारे दृष्टिकोण को भी विषयपरकता और देखभाल के साथ शुरू करने की आवश्यकता है क्योंकि विभिन्न संस्कृतियों को जोड़ने का एक सबसे महत्त्वपूर्ण माध्यम कल्पना है।

पूर्वोत्तर के कई हिस्सों में ईसाई धर्म स्थानीय लोक धर्म को पूरी तरह से विस्थापित करने में सक्षम नहीं है, लेकिन सह-अस्तित्व में है और इसके अलावा एक असहज तनाव बना रहा है। एनिमिस्टिक विश्वदृष्टि में दो वास्तविकताओं के बीच किसी भी तीव्र अंतर के बिना भौतिक दुनिया और अनदेखी या आध्यात्मिक दुनिया दोनों शामिल हैं; एक में जो होता है वह दूसरे को प्रभावित करता है। पृथ्वी एक प्रमुख भूमिका निभाती है क्योंकि इसे एक जीवित इकाई के रूप में देखा जाता है। एक कवि और लोकगीतकार डेसमंड एल खरमावफ्लांग लिखते हैं, ''मैंने इसके रेशमी कोकून में सर्दियों की शुरुआत की और एक मौसम के बाद मुझे करघे में धागा बनाया गया : मैं एक लोककथा बन गया। चतुर उँगलियों ने मुझे पकड़ लिया और मैं कहानी से बाहर निकल गया, मैंने अपने अनुभव की जुबान गढ़ीः मैं एक कहावत बन गया।'' अनुवाद में कविता की समस्याओं और लोक जीवन में इसके प्रभाव पर चर्चा करते हुए वे कहते हैं: ''भाषाओं और ग्रंथों के अनुवाद के लिए अभेद्यता कोई नई घटना नहीं है, लेकिन समस्या की अनिवार्यता मुख्य रूप से लोककथाओं में रुचि रखने वाले कवियों द्वारा महसूस की गई। इससे एथनो-पोएटिक्स का विकास हुआ, जो अनुवाद,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रदर्शन और आलोचना के माध्यम से गैर-पश्चिमी और सीमांत संस्कृतियों की रचनात्मक अभिव्यक्ति का अध्ययन करता है।''

अस्सी और नब्बे के दशक में पूर्वोत्तर भारत में साहित्य और रचनात्मक लेखन में तेजी देखी गई। वे इस क्षेत्र में आकस्मिक संकट के दिन थे: हिंसा, अलगाव की माँग, बार-बार बंद करने की माँग और निश्चित रूप से ऐतिहासिक असम आंदोलन। ऐसी स्थिति में रचनात्मक लेखन का विकास हुआ। आम आदमी सैन्यवाद और उग्रवाद के दुष्चक्र में फँस गया। अचानक कविता का विस्तार हुआ।

चकमा भाषा की कविताः रीता चकमा

शब्दों का निर्भीकता से उच्चारण किया जाएगा

क्योंकि वे विस्थापित हैं
अपनी मातृभूमि से
घुसपैठियों की वजह से,
ओस गीली
आँगन में पानी भर गया
आँसू के साथ
उनके अस्तित्व का ज्वार
जब्त कर लिया गया है
मध्यरात्रि का विलाप

लेकिन किसी दिन
शब्दों का निर्भीकता से
उच्चारण किया जाएगा

ख़ासी कविताः किम्फम नोंगकिंरिहो

जब प्रधान मंत्री शिलांग की यात्रा करते हैं,
तो बाँस मौन होकर देखते हैं
जब प्रधानमंत्री गुजराल ने
शहर की यात्रा की योजना बनाई
फुटपाथ से उछले बांस
स्वागत समिति की तरह
लेकिन जब वह आए, तो थी
केवल सायरन की तेज आवाजें
युद्ध के समय बमबारी में चेतावनी की तरह
वह दो उद्देश्यों के साथ आए थे
शांति और प्रगति के लिए एक मिशन
और कुछ कहते हैं कि वह आए थे
मिसाइल की तरह घर लौटने
और बाण की तरह उड़ते चले गए

मिज़ो कविताः मोना ज़ोटे

लिलियम

हे अल्लाह वह यीशु के बारे में सोचती है
जब रात के छत्ते से बाहर
चर्च ड्रम तेजी से गूँजता है
आस्था का उच्च प्रतिशत।
संकर भूमि के वारिस होंगे।
भगवान का शुक्र है मैं देखती हूँ
कोई संश्लेषण नहीं
अपने दर्द में
सिज़ोफ्रेनिया।

नगालैंड की अंग्रेजी कविताः टेम्सुला आओ

लुंगटेरोक

छह पत्थर
जहाँ पूर्वज और उद्गम
पत्थर के लोग
पैदा हुए थे
गर्भ से बाहर
पृथ्वी के
पत्थर के लोग
जंगली और ऋषि
लुंगटेरोक से कौन निकला था

असमिया कविता : नीलमणि फुकन

हंसध्वनि सुन रहा हूँ

हंसध्वनि सुन रहा हूँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सुबह हुई है या रात हुई है
मेरे हाथों की उँगलियों में
पर्णांग उगे हैं
मैंने खुद को गँवा दिया है
तुम खुद को तलाश रहे हो
कहीं ठिठका हुआ हूँ क्या
या जा रहा हूँ
आकाश पाताल अंधकार प्रकाश
एकाकार हो गए हैं
हंसध्वनि सुन रहा हूँ
काफी अरसे बाद इस
बारिश में भीग रहा हूँ
कालिदास के साथ सर्मन्वती
नदी में उतरा हूँ
लहूलुहान छाया मूर्तियों ने
शरीर धारण किया है
सैकड़ों हजारों हाथों ने शून्य में बढ़कर
ब्रह्मांड को थामा है
हंसध्वनि सुन रहा हूँ
अपनी साँस में ही हरी हवा का
एक झोंका भरता हूँ
मेरे अंदर से मुझे
पुकारा गया है
हंसध्वनि सुन रहा हूँ
शाम हुई है या सुबह हुई है
मेरे समूचे बदन में
डरावनी घास उग गई है

असमिया कविता : अनुपमा बसुमतारी

जीवन के उस पार भी

गोधूलि की धूल भरी राह
दोपहर का निर्जन खेत
रात की झिलमिल चाँदनी

हर चीज में रोशन रहता है
हमारे बचपन का गाँव

बारिश का काला बादल
अचानक उतरने वाली मूसलाधार बारिश
कीचड़ भरी राह से भीग कर गुजरता हुआ
हमारे सुनहरे बचपन का गाँव

आश्विन के कोहरे का धुंधलका
अगहन के धान खेत का पीलापन
पूस के जाड़े में ठिठुरता हुआ
हमारा गुमसुम गाँव

संगीत की तरह गुन गुन हवा की आवाज
बाँसुरी की तरह तीव्र झींगुर, पतंगे की आवाज
आम के बौर खिलने के मौसम में
डाल पर कूकती कोयल की पुकार में
वसंत के आगमन की
एक अनुभूति का प्रांतर हमारा गाँव

किसान की मेहनत
चरवाहे का खेल
फसल बोने-काटने वाली महिलाओं के सपने
टोकरी के साथ मछुआरे के निर्मल आनंद से
भरपूर हमारा गाँव

सेहतमंद युवक के कंधे पर
हिलते डुलते फसल के गट्ठर की
मधुर ध्वनि के साथ प्रतिध्वनित
हमारे गाँव की निर्जन राह

उस गाँव के बगल में ही
मैं बनाऊँगी
अपने सपने का कुटीर

जीवन के उस पार भी जो बाँटता रहेगा
मेरे जीवन का सुप्राण, प्रेम का सान्निध्य
और आश्रय का सुरक्षित स्पर्श!

असमिया कविता : विजय शंकर बर्मन

कवि

मरने के बाद भी
नहीं लिखी गई वह कविता
राख कुरेद कर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मुझे ढूँढ़ती फिरेगी
हवा-बाँस की गाँठ में
नहीं फूटे हुए एक बारूद के सीने में
मेरी साँस को ढूँढ़ती हुई
उँगली मोड़कर रुकी रहेगी

नदी के डबरे में
एक तितली बनकर
कुछ सूँघती फिरेगी

कविता के पृष्ठों को
आईना समझ कर
झुक कर देखना चाहेगी
रुकी रहेगी

तब भी
मेरे सजे धजे घर की
आराम कुर्सी पर
एक बार भी नहीं बैठेगी

सिर्फ़
दीमक की तरह
एक रास्ता खोदकर
सीने में घर बनाएगी

और बारिश रुकने के बाद
मुझे देख पाएगी सोचकर
सिर टेढ़ा कर निकल आएगी
मेरा सममर्मी हाथ
नीली शिराएँ ढूँढ़ते हुए निकल आएगा
शायद
काफी कविताएँ आएँगी
और जाएँगी

मेरी मृत्यु के बाद भी
कविता मेरे लहू माँस के शरीर को ढूँढ़ती हुई
भटकती फिरेगी

जंगल के कोने में
चुपचाप
एक सफेद फूल गिरेगा

ओ मेरे प्राण पोखरी के कविगण
कविता से कहना
अनदेखा वह फूल
मैं ही हूँ

असमिया कविता : बर्णाली भराली

मैं अर्जुन बोल रहा हूँ

उसी दिन एक युद्ध की जरूरत थी
हमारे निर्वाक, निष्पंद मुखड़ों के पीछे
एक युद्ध क्रिया कर रहा था
अभी भी सवाल है-
वह प्रियतमा का वस्त्रहरण था क्या
एक आधुनिक नाटक?
जिसके उपभोग की निर्लज्ज साक्षी
हमारी धुँधली हो चुकी आँखें?

बार-बार युद्ध की कामना करते हुए भी
हमारे भीरु कलेजे सोये रहते हैं--
गीदड़ की आवाज को ही सिंह गर्जना समझकर।
प्रतिदिन हम खुद से
पलायन करते हैं
प्रतिदिन हम युद्ध के दिन की
घोषणा करते हैं
तेरह सालों तक मां के करुण मुखड़े
पत्नी की सुप्त क्रोधाग्नि में
खुद के साथ हम सभी युद्ध करते हैं
छिन्न-भिन्न हो चुकी शत्रु की देह देखकर
अट्टाहास करते हैं।
सपने खत्म होने पर
नींद से जागकर सोचते हैं-
एक युद्ध की बहुत जरूरत थी।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्षत्रिय का शौर्य-वीर्य हमारा
मज़ाक उड़ाते हैं तन्हाई में
पासा के मोहरे हमारे अज्ञातवास के
क्षण गिनते हैं
कैसे समझाऊँगा-
क्यों हमने राजसभा में नेत्रहीनता धारण किया था
निश्चित मृत्यु के लाक्षागृह से
क्यों पलायन किया था
जबकि हम जानते हैं
हमें एक युद्ध चाहिए।

युद्ध चाहिए लेकिन कुरुक्षेत्र नहीं चाहिए
हमारे दिल और दिमाग में चल रहा है
उसका अन्य एक निर्णायक युद्ध
तुम किस युद्ध की रणभेरी बजाओगे
मेरे प्राण के सखा?
मैं हूँ खुद से ही भागा हुआ
रणछोड़ योद्धा

हाँ, मैं अर्जुन बोल रहा हूँ-
तृतीय पांडव अर्जुन बोल रहा हूँ।

सम्पर्क - 94351 03755

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ओडिया कविता

प्रवासिनी महाकुड

(समकालीन ओडिया कविता की महत्त्वपूर्ण कवि। अनुवाद कवि के हैं।)

जिप्सी : मार्च का महीना

जिप्सी!
आज के डिजिटल समय से
मैं पीछे छूट गई हूँ,
वैसे तो काफी कुछ सीखा है
पर उसकी
कोई खास जरूरत नहीं है
मेरे लिए ...
क्योंकि मैं दूसरों के
आवेग को समझ लेती हूँ,
खुशी को महसूस कर पाती हूँ
आँसुओं को छू सकती हूँ
उनके अनुभवों को
अपनी अनुभूति में बदल सकती हूँ,
उनके हृदय में जी सकती हूँ मैं
उनके दुःखों में दुःखी हो सकती हूँ ...

जिप्सी,
जिस तरह तुम्हारे साथ
मौन होकर बात कर लेती
उसी तरह पेड़ पौधे, बौर, फूल,
और चिड़िया के संग
सूखे पत्ते और आँसुओं के साथ भी
खुद को बाँट सकती हूँ
चुपचाप, निःशब्द ...
फागुन में क्या खोया, क्या पाया
जान लेती हूँ
जब उँगलियों की फाँक से
झर जाते कई अर्थ जीवन के
प्राप्ति अप्राप्ति की युगलबंदी में ...
जिप्सी,
यह सच है कि
पीछे छूट गई हूँ डिजिटल समय से
लेकिन चिंतन और चेतना में
हमेशा उर्ध्वमुखी रही हूँ
आज मुझे अपने पुराने हृदय में
रहने दो,
क्योंकि वहाँ हमेशा बह रहा है
नया ख़ून, ताजगी से भरा।

जिप्सी : जाड़े को लेकर

जिप्सी! कुछ दिनों से
मेरे इस छोटे से शहर में
सर्दी चिपक गई है हर जगह,
जा नहीं पाई मैं
इस सर्द हवा और धुंध के मौसम में
न फूल के पास
न पत्तों की थरथराहट तक,
पेड़ से टपक रही ओस की
कँपकँपी तो मुझे सुनाई पड़ती
अपनी ही धड़कनों से,
यही है मौसम वह
जिसे मैं बहुत चाहती हूँ
सारी अन्य ऋतुओं की तरह।

जिप्सी! इस ठंड की ठंडक
मेरे मन में सुलगा देती आग,
कल सड़क के किनारे
वह वृद्ध दंपति जिसे उनके
रसूखदार बहू बेटे ने निकाल दिया है
घर से,
मीडिया में चर्चा जिसकी जोरों पर है,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उन्हें देख कर मैं सोच में पड़ गई
अब वे किसकी प्रतीक्षा कर रहे?

वे जाकर क्यों नहीं रहते
किसी रैन बसेरे में,
वहाँ धूनी रमा कर
उसकी गर्मी को क्यों नहीं सोखते,
उस करुण दृश्य ने
मुझे झकझोर दिया
रात भर सोने नहीं दिया,
कल की वह जो असहनीय सर्दी
ताप मात्रा उतर आई थी
दस डिग्री से नीचे
मेरी कलम की नोक पर
जम गई थी स्याही
डायरी के पन्नों पर ओस की बूँदें।

वे बूँदें मुझे खींच कर ले जातीं
मेरे दिल के एक सर्द कमरे में
जिसके भीतर सो गये हैं
मेरी कविताओं के बालिग बीज सारे
जो कोहरे के छँटते ही उगने लगेंगे।

जिप्सी! यह उगना क्या
हमारे रिश्ते की तूरीय बेला है?
आज जितने भी फूल खिले हैं
न जाने क्यों मैं उन्हें छू नहीं पा रही
बाहर कुहासा और जाड़े का मौसम,
ऊपर से नुकीली हवा,
सुबह के नौ बज चुके
बाहर अभी भी हल्का अँधेरा
सच कहूँ तो इस जाड़े में लिखना और
इस सर्द मौसम से प्यार करना
किसी चुनौती से कम नहीं है।

जिप्सी : रास्ता

जिप्सी! तुम्हारे संग हवा में रहना नहीं है
पानी पर चलना नहीं है
तुम्हारे संग न जाना है स्वर्ग लोक
न ही नर्क को।

चलना है तुम्हारे संग इसी धरती पर
स्वप्न की देह में
यथार्थ के चुंबन की आँधी में।

कभी रेगिस्तान के बालू पर
तो कभी साइबेरिया की बर्फीली सड़क पर
चलना है बीहड़ वन के उलझे हुए रास्ते पर
कभी पतझड़ के टूटे बिखरे पत्तों पर
पत्तों को तकलीफ होगी, जानती हूँ
कभी वसंत के बिखरे हुए फूलों पर
फूलों को भी तकलीफ होगी, मानती हूँ
पर मेरी तकलीफ से तो कम ही होगी।

जिप्सी! क्या तुम दुनिया भर की
प्रशांति से भरपूर निश्छल प्रेम से
सराबोर वह अनोखे सफल आदमी हो
जो अपने अकेलेपन से जूझते
बार-बार हारता रहता है।

आजकल तुम्हारी देह में बेशुमार गर्मी
तुम्हारे भीतर के आकाश में
टुकड़े भर बादल भी नहीं है
मेरे भीतर आषाढ़ की तेज धारा
हहराती हुई बह रही।

उदास हो रही हूँ
उदासी के पानी से ये भेज रही हूँ
सह रही हूँ बरसात की ठंड सिहरन
अब तितलियाँ कहाँ जाएँ?
रेगिस्तानी फूलों के पास या आसरा लें
बरसात से भीगी मधुमालती का
मेरे चारों ओर अनगिनत तितलियाँ।

जिप्सी! मैं सच में अपने आँसू पसीने से
ऐसे ही छटपटाती रहती
रीत जाने के कगार पहुँची एक जिंदगी के लिए।

कोई लंबी आयु नहीं
प्रीत की एक कविता जो
बार-बार अपनी जिस्म में
तुम्हारे समंदर के रंग से
लिखता थोड़े ही में स्याही की कलम से
जिप्सी! विश्वास हो रहा है न?

सम्पर्क - +91 70083 10268

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गुजराती युवा कविता

अनुवाद : मालिनी गौतम

(गुजराती और हिंदी के भाषा संस्कार को अर्जित और अनूदित करने वाली रचनाकार। उनके अनुवाद कर्म में मूल भाषा की वस्तु और दृश्य संस्कृति की उजास दिखाई देती है।)

साहिल परमार

रोज़ सुबह होती है

रोज़ सुबह होती है और मैं
बिस्तर में छिन्न-भिन्न हो चुके
मेरे अंगों को असेम्बल करके
कूच करता हूँ, प्रभात की पहली किरण
हर समय मुझ पर टूट पड़ने के लिए
तैयार रहती है
उससे कटते, चिरते,
लहूलुहान होते हुए भी मैं शुरू रखता हूँ मेरा सफ़र,
क्योंकि जानता हूँ मैं कि हर रोज़ यहाँ
एक जबरदस्त मुकाबला है।
दोपहर की हवा
भारी-भरकम हथौड़े की तरह
टकराती है मेरे कंधों से
और इस महानगर की भीड़ में से शाम होते-होते मैं
निकाल लेता हूँ स्वयं को अलग
मनुष्य होने का अर्थ
मैं समझता हूँ अच्छे से
लेकिन फिर भी मेरी तरह
छिन्न-भिन्न हुए ये मनुष्य मुझे मनुष्य के रूप में
नहीं स्वीकारते उस समय मन होता है कि
दिन खत्म होते-होते
बिस्तर में छिन्न-भिन्न हुए मेरे अंगों को
अब मैं असेम्बल नहीं करूँगा लेकिन फिर भी रोज़ सुबह होती
है
और मैं...

बस इतना ही, विशेष कुछ नहीं

वैसे तो रघु मेरी चाली और तेरी सोसाइटी के बीच कुछ खास नहीं बस एक दीवार है पाँच-साढ़े पाँच फुट की दीवार बस इतना ही, विशेष कुछ नहीं...

पंद्रह अगस्त और छब्बीस जनवरी को तेरे बंगले पर जब ध्वज फहराया जाता है

तब ''वंदेमातरम्'' और ''जन गण मन'' के सुर मिल की मशीनों की घरघराहट को भेदकर मेरे कानों तक नहीं पहुँच पाते
बस इतना ही, विशेष कुछ नहीं...
तेरा भाई जिस वक्त एयरकंडीशन्ड कमरे में
टी. वी. पर रंगीन कवायद और सलामी
देख रहा होता है
उस वक्त मेरा भाई सिपोर गाँव में
किसी दूसरे के खेत में मज़दूरी कर रहा होता है बस इतना ही,
विशेष कुछ नहीं...

रथयात्रा के दिन जब तू अपने बहनोई के ट्रक में बैठकर मुट्ठी भर-भर के अनाज का दान करते हुए खुशी से पागल हो रहा था तब मेरा पड़ोसी टाइफॉइड से चल बसी
अपनी लड़की की मृत्यु पर
रो भी नहीं सका था
उसकी अश्रु ग्रंथियों पर असह्य दबाव था उसका चेहरा और मन
दोनों तने हुए थे,
उसे नहीं रोने का फरमान दिया गया था
बस इतना ही, विशेष कुछ नहीं...
तू जन्माष्टमी के दिन
अपने परिवार के साथ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कार में घूमने निकला था तब
मैं अपनी बच्ची के फटे हुए फ्रॉक में
थिगड़ा लगा रहा था
बेबी समझदार हुई तबसे पाँच-पाँच मेले निकल गए मैं उसे
खेलने के लिए चाबीवाली मोटर तक लाकर न दे सका बस
इतना ही, विशेष कुछ नहीं...
आरक्षण के हुल्लड़ में एक दिन तेरी छत पर से एक सनसनाता
पत्थर मेरे माथे में लगा था
और खून की धार बह निकली उसके तुरंत बाद फेंकी गई मशाल
ने मेरा घर जला दिया था बस इतना ही, विशेष कुछ नहीं..

पाठशाला जीवन के दरमियान तोते की तरह रटा हुआ पाठ
''भारत मेरा देश है'' याद आ जाता है तब मैं खिलखिला कर
हँस पड़ता हूँ बस इतना ही, विशेष कुछ नहीं।

लेकिन

प्रिय नीपा जो तुम्हें पसंद है
उससे मुझे घिन आती है
जो मुझे पसंद है
उससे तुम्हें घिन आती है
लेकिन फिर भी
मिल चुकी हैं निगाहें अपनी,

तुमने अपने बचपन में पढ़े होंगे
चिकने पन्नों पर सचित्र छपे हुए
रामायण, महाभारत और गीता के श्लोक
मैं तो जब से अक्षर पहचानने लगा
तभी से देखता और पढ़ता आया हूँ
मेरे मोहल्ले के
सार्वजनिक शौचालयों की
पीली दीवारों पर
कोयले से बनाए हुए चित्र
और लिखावट,

'बा बा.....बा बा ब्लैक शीप' और
'ट्विंकल ट्विंकल लिटल स्टार' से
शुरू हुई तुम्हारी शिक्षा ने
तुम्हें बात-बात में
'थैंक्यू' और 'सॉरी' कहने की
आदत दी है
लेकिन
'एक बिलाड़ी जाड़ी' से शुरू हुई
मेरी पढ़ाई ने
मैनरिज़्म से मुझे
योजनों दूर रखा है,
बैंक में आते
उस बूटपॉलिश वाले लड़के को
तुम अपनी टेबल से दूर भगा देती हो
और मैं उसे
दो रुपये ज्यादा देकर
उसके पास पॉलिश करवाता हूँ
किसी चाली के सामने से निकलते वक्त
तुम नाक पर रुमाल रख लेती हो
और मैं ऐसी ही किसी चाली में
आज भी आराम से
रात गुज़ार लेता हूँ,
और इसलिए ही
यहाँ आने के बाद
मेरे कपड़ों की साफ-सफाई
और मेरी भाषा की स्वच्छता से
आकर्षित होकर
जब तुमने मुझे
रेस्टोरेंट में आइसक्रीम खाने का
प्रस्ताव दिया तब
जैसे ठंडी आइस्क्रीम नहीं बल्कि
धधकती आग का गोला
मुँह में रखना है
मैं इस तरह काँप उठा....
प्रिय नीपा,
तुम मुझे आकर्षित करती हो....लेकिन
प्रिय नीपा,
तुम मुझसे आकर्षित होती हो लेकिन....

1 एक बिलाड़ी जाड़ी' (एक बिल्ली मोटी) गुजराती बाल गीत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अरविंद वेगड़ा

हमें भी जीना है

''तू कर्म करता जा
फल की आशा मत रख''
इस बात में कोई शंका नहीं है
लेकिन उससे पहले
तुम यह कहो
कि किसने चिपका दी यह जाति
मेरे साथ?
और किसने मेरी परछाई को भी माना अछूत?
नदी, तालाब और कुएँ भी रखे हमसे दूर?
चेहरे पर आजिज़ी के भाव
आखिर कब तक रखने होंगे?
और कब तक सहने होंगे
ये ज़ख्म?
तुम्हारे धनुष का तीर हम बनें,
कब तक आखिर कब तक
तुम्हारी बंदूक का बारूद हम बनें?
जानता हूँ मैं कि तुम मूक हो
जवाब नहीं है तुम्हारे पास
देखो इसीलिए त्याग दी है
तुम्हारी संभ्रांत कुलीन सीख (भगवत् वाक्य)
अब हम कर्म करेंगे
और फल की आशा भी रखेंगे
सुन सकते हो तो सुन लो
सिर्फ तुम्हें ही नहीं
हमें भी जीना है।

दीवारों के कान नहीं होते

बार-बार कहा जाता है कि
दीवारों के भी कान होते हैं
पर
ये दीवारें तो बहरी हैं
वे लोग
चारदीवारों में बैठ कर
पोथियाँ पढ़ते हैं
मंत्र रटते हैं
सिर हिलाते हैं
किसी की आँखों में आँसू हैं....
ब्रह्म सत्यम्जगत् मिथ्या
या
जगत्सत्यम् ब्रह्म मिथ्या के
भ्रम से ग्रसित
उनका जयघोष
नहीं सुनाई देता
दीवारों के बाहर,
कारण कि
इन दीवारों के कान नहीं हैं,
मनुष्य ईश्वर का अंश है सभी को एक समान मानो,
कण-कण में ईश्वर विद्यमान है
ऐसे उपदेशात्मक गीत मधुर वाणी में झूम-झूमकर गाते हैं
लेकिन उनकी आवाज़
बाहर नहीं सुनाई देती
इन दीवारों के कान नहीं हैं
अब माथा फोड़ने का कोई अर्थ नहीं
इन दीवारों के कान नहीं ही हैं
जहाँ कान नहीं, वहाँ मान नहीं,
सन्मान नहीं,
सम्मान नहीं ऐसी दीवारों को
बारूद के धमाके से उड़ा देना होगा क्योंकि!!
इन दीवारों के कान नहीं हैं ।

समरसता

तुम भी गजब हो ! ''गाँव के सभी चूल्हे बंद रहेंगे'' का एलान
करके एक ही पंगत में बैठकर
भोजन करने के लिए
आमंत्रित करते हो,
और फिर
शामियाने लगवा देते हो
अलग-अलग,
तुम्हारे शामियाने में
जाजम और चटाई...थाली और कटोरी
और यहाँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दोना और पत्तल...वह भी छेद वाले
तुम भी गजब हो...
तुम इसे समरसता कहते हो
कहाँ है समता? कहाँ है बंधुता?

भी. न. वणकर

मृत्यु का घोषणा पत्र

तुमने मुझसे
शस्त्र गढ़वाए
शास्त्र लिखवाए
घर और मन्दिर चुनवाए
खेत और कुएँ खुदवाए
कपड़े बनवाए
चमड़े कटवाए
गलियाँ और पैखाने साफ करवाए,

फिर मुझे धिक्कारा, तिरस्कृत किया
और गुलाम बनाया
मेरे होने के
सारे सबूत नष्ट करने के लिए
मुझे जीते-जी कत्ल कर दिया
परछाई सहित मुझे जलाया
बस इसी तरह
तुम मुझे मारते रहे
और मैं मरता रहा,
अफ़सोस!
तुम्हारी इन वीभत्स रस्मों को
चुपचाप सहने के बजाय
यदि मैंने
जोर-जोर से चीखकर
बगावत की होती तो
आज इतिहास को खून की स्याही से
मेरी ''मृत्यु का घोषणापत्र''
लिखने की जरूरत नहीं पड़ती।

दास्तान

दलित हूँ युग की दास्तान हूँ फूलों की चाहत में
काँटे चुभते हैं फिर भी हँसता रहता हूँ इतना नादान हूँ

वस्त्र बुनते-बुनते खुद बुन जाता हूँ
फिर भी नंगा रहता हूँ इतना बरबाद हूँ
रहने के लिए घर नहीं फिर भी
ब्रह्मांड का भार लिए घूमता रहता हूँ इतना मस्तान हूँ
मेरे हाथ हथौड़ी हैं और पैर कुल्हाड़ी
फिर भी ज़िंदा हूँ इतना बलवान हूँ

1 मस्तान- जिंदादिल, मस्ताना

सेतु

भले ही तुम्हारे और मेरे मोहल्ले
अलग-अलग हैं,
पर धरती और आकाश तो एक हैं न?
ज्योतिषी भले ही कहते हों कि भाग्योदय अवश्य होगा
लेकिन आज तो मैं बिल्कुल खालीखम आकाश के नीचे
जिंदगी के अभाव लिए खड़ा हूँ।

चारों ओर दोपहर की धूप,
जंगल की तपती लू और वैशाखी
चक्रवात का गर्जन है लेकिन फिर भी मैं तुम्हें दूँगा
मुट्ठी में बंद मीठी सुगंध,
अतृप्त होठों का तड़पता मौन,
और व्याकुल हृदय के वैभवी गीत लेकिन,
कहो न, तुम मुझे क्या दोगे?

सम्पर्क – +91 63510 42133

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बांग्ला कविता

अनुवाद : लिपिका शाह

(समकालीन बांग्ला कविता की सांस्कृतिक और वैचारिक भूमि को अनुवाद में आविष्कृत करने के गुण से संपन्न।)

कृष्णा बसु

बन्दिनी के गीत

स्वप्न था उच्च शीश हो, बनूँ मैं आजाद नारी
उसके बदले आनतशिर सेवा करूँ मैं सबकी!
हूँ नतमस्तक, घुटते स्वर में, नम्रधीर नारी

मन रखती हूँ सबका, मैं, मन रखना जानूँ सबकी
किसी और के परिचय में, मैं तो ऐसे ही जीऊँ

तभी तो, पराधीन के जैसी पराये का अन्न मैं खाऊँ।
हाथों में बेड़ियाँ मेरी, बेड़ियाँ पैरों में भी, बाहर जाना है मना,
रसोई से सौरी तक केवल यही है मैंने जाना।

आकाश से झर रही है वृष्टि, बारिश हो रही है जोर
स्वयं में है अंधकार, पराधीना का घोर!
इस बंधन को छिन्न कर चाहूँ आकाश तक उड़ना,
बाहर दहन, अन्तर्दहन, अग्नि को समेटे ही जीना।

कन्या भ्रूण

आ गई मैं भ्रूण हत्या के देश में, अचानक से
शिशुकन्याओं के भ्रूण कत्ल होते हैं निर्दोष अँगुलियों से
उत्थित होकर सुसभ्यता घोंटती है कसकर
अजात कन्या का कोमल गला।

जिस मुँह ने चखा नहीं दूध का स्वाद अभी तक
उसी के नन्हें मुँह में उड़ेला है तुमने गरल
सभ्यता तुमको अयुत धन्यवाद।
नहीं, इस सकरुण उप महादेश में
नारी बनकर, कन्या रूप में, अब नहीं लूँगी जन्म मैं
मृत्यु का सलोना फंदा डलवाने तुम सबके हाथों से।

शब्दकोश में 'देवी' का अर्थ है पूज्यनीया,
व्यवहार से तो तुमने दासी ही जाना,
इस पाखंडी, भूल मातृतंत्र के देश में,

तंत्राचार में, माँ की है सबसे अवहेलना
उपेक्षा- ठोकरें ही दिया है तुमने सुसभ्यता!

नहीं, कोई अभिमान नहीं, अभिमान अति
महार्घ संचय, व्यर्थ ही गँवाया जो, उसे

ठीक नहीं नष्ट करना, न क्रोध है, न शिकायत,
प्रत्याहार करती हूँ सारी माँगों को...।

बस रख जाती हूँ एक प्रार्थना, महाकाल के निकट
...नारीहीन, मातृहीन, कन्याहीन, योषित संसर्गहीन

सखीविहीन हो जीवित रहे, आगामी पीढ़ी।

बांग्ला की वरिष्ठ एवं प्रख्यात कवि कृष्णा बसु कॉलमिस्ट भी हैं। दिल्ली के साहित्य अकादमी से 'राइटर इन रेसिडेन्स', स्वीडेन से उत्तर पथ पुरस्कार, अमरीकी बंगालियों के उत्सव पुरस्कार आदि पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है।

जया चौधरी

दयावान

अरे छोड़,
इन प्रज्ञा-कामिनियों को ना
दबोच कर बना भी दें निर्भया, तो कुछ गलत तो नहीं!
चाहे कितना ही कर लो ना तुम इनके लिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आत्मस्वाधीनता का रोना, इनकी बीमारी रही हमेशा से
मातृधारा में इनके बसी हैं ये बातें।

राजद्वारेश्मशाने च यः तिष्ठति स बान्धवः,
अरे भाई, क्या मिथ्या हो सकता है ये शास्त्रवाक्य?
कालान्तर में दोहराए जाते हैं ये अपने टाइप बदलकर,
तभी तो मैं हूँ उसके संग
राजमार्ग से ऑनलाइन तक,
एफएम से सितार तक

रबड़ी से गोभी के पकौड़े में
रमा हूँ मैं उसके सब में,
उसके लिए देख मेरी फिक्रमंदी,

जब कहते हैं सारे, मेरे जैसा साथी मिलता है
बड़ी किस्मत से,
सोचने लगता हूँ खुश होकर मैं,
कर्ज मेरा क्या कभी उतार पाएगी वो
चलो, तुम·गिरी ही सही, पर क्यों न महान बनूँ मैं!

मानो या न मानो

मनुष्य का मर जाना बात है बहुत हैरानगी की
अभी तो थे, बातें कर रहे थे या फिर नहीं भी,
एक लम्हे में थम जाता है सब
मृत्यु, है एक अनन्त सत्य
जिसने न कभी आकर्षित किया, न ही छोड़ा मुझे आजीवन
मनुष्य के जन्म ने मुझे अवाक किया है सदा से,
अभी कुछ था ही नहीं, कहा भी नहीं कुछ,
स्पर्श भी तो नहीं किया
और क्षण भर में भर देता है हृदय, जीवन, उसके बाद...
जन्म किसी भी मुहूर्त का है एक सम्भाव्य सत्य,
ये सारी भागादौड़ी प्लान प्रोग्राम ठीक जैसे
हो सद्य वृष्टि में भीगा कोई फूल
पेड़ से लटक रहा था, हँस रहा था खिलखिलाकर
सिकुड़ गई पंखुड़ियाँ उसकी
तथापि बिखेर रहा है वह रूप-सुगंध,
जन्म-मृत्यु तो हैं बस दो गणित पाठ मात्र
बल्कि प्रेमहीनता को दुःख मान सकती हूँ मै
मृत्यु को नहीं, कदापि नहीं।

(जया बांग्ला अकादमी के 'लीला राय स्मारक पुरस्कार' जैसे कई पुरस्कारों से सम्मानित की जा चुकी हैं।)

मृन्मय चक्रवर्ती

हनन काल

सड़कों-चौराहों पर हाथापाई करते हो तुम स्वयं के ही संग,
अपना ही श्लीलता हनन कर, दबा रहे हो अपना ही गला
ये कैसे युद्ध में संलिप्त हो गए हो तुम, कौन से एक नशे में!
युद्ध करते- करते क्रमशः छोटे होते जा रहे हैं तुम्हारे दोनों हाथ,
बड़ा होता जा रहा है पुरुषांग, प्रहरी एक सशस्त्र दीवार!

हन्तारक काल की कहानी

जिन्होंने खाये हैं पेड़ों के फल, वृक्षतल से भी लिए हैं उठाए,
उनके ही हाथों में कुल्हाड़ी देख चौंक जाते हैं हम,
हम, जो ऋणी हैं छाया के
प्राणपण से जकड़े रहते हैं शाखों डालियों से।

यह पृथ्वी अब भर चुकी है राक्षस और दानवों से,
जो मग्न हैं उपद्रुत, कुठारमय, हत्या के उल्लास से।

शायद बह रही है हवा अभी भी,
अभी तक तो पक्षी गा रहे हैं गीत,
आकाश अभी तक उड़ेलता है वृष्टि को,
लेकिन नहीं रहेगा कल ये कुछ भी,

लिखी ही न जाए एक भी कविता उस आगामी में
फिर भी हम, जो ऋणी रहे हैं छाया के
प्राणपन से पकड़ रखा है, शाखों-लताओं को।

काजलरेखा

इस पृथ्वी के अक्षय अंधकार में
छूकर धान, खड़ा रहा कितनी बार तुम्हारे दुआर
ये शस्य मेरे नहीं, नहीं तुम भी मेरी जानूँ मैं
ध्रुपदी स्वप्न झरते, क्षय होते ही आए हैं सदा से

हिलोरे लेती हैं लहरें नीले शव पर, नदी के पैरों तले
तुम्हारी खोज में हृदय की तीव्र आँख-मिचौली
चिरकाल से, काजलरेखा!

आकाश का अंतिम तारा भी बुझ गया गहरे कृष्ण खाद्र में,
हम फिर जरूर मिलेंगे
आकर तुम्हारे ही दुआर, फिर से आनन्द संवाद में
जानूँगा ये शस्य इंसान के ही हैं, अब तुम भी नहीं बेदखल

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मृतक राजकुमार को मिलेगी तुम्हारी अंजली से,
प्रतीक्षा का प्रिय अश्रुजल।

(इनको 'एपारबांग्ला-ओपारबांग्ला' के पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है।)

अमृता भट्टाचार्य

कुहेलिका

धुंधली रोशनी के फ्रेम में कैद हो तुम !
जो रश्मि सीप को नींद से जगाये,
जो रश्मि युवती के होंठ रंग दे;
उस रश्मि को कभी देखा नहीं तुमने...
तभी तो तुम्हारी बन्दीदशा है अन्तहीन !
न जाने वो कौन, जो प्रकाश के हथौड़े से...
तुम्हारा फ्रेम रहे अविकल इसलिए
उन लोगों ने ढँका है कोहरे की चादर से-
तुमको छू नहीं सकते कीचड़-धूल
स्पर्श भी नहीं कर सकते तुमको माटी-रेत;
बस घेरे रखता है धुंध!

न जाने कौन, प्रकाश के हथौड़े से
तोड़ रहे हैं तुम्हारा फ्रेम-
जल-तूलिका से चित्रित हो रही है तुम्हारी मुक्तिदशा
अंतहीनता के अंत में वो दिगन्तरेखा।

सामान्या

जो नहीं बन सकी कभी किसी जुलूस का चेहरा
देखा है मैंने उसकी आँखों में धधकती आग,
जिसके भाग्य में नहीं मिला कभी प्रेम का गरिमा-सुख
जानती हूँ उसके हृदय में है अनि:शोषित चिर-फागुन,
समादृत आसनों के मध्य नहीं दिया जिसे मान,
टूटेगी जब सभा जान चुकी हूँ , वही होगी सबसे मूल्यवान।
दूर से जो जान पड़ती, हौले से सामान्या नारी
पास आकर देखा मैंने वही तो है, दशप्रहरणधारिणी!

(गुवाहाटी आई आईटी से पी.एच.डी. कर चुकीं यह युवा साहित्यिक किशोर वय से ही लेखन में रुचि रखती हैं। टाइम्स ग्रुप एवं एबीपी ग्रुप के बांग्ला साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं से जुड़ी हैं।)

तृष्णा बसाक

मेकिंग ऑफ बार्बी

बोलती है माँ, 'बन सकेगी तू, कर पाएगी वैसा ही?
सुनहरे बालों, नीलाभ नयनों से जैसा करती है बार्बी?
ढल जाएगी ना, लाडो मेरी, साँचे में हूबहू जैसे हो बार्बी?

देखा नहीं तूने, अंधी गलियों के जलसों में भी होते हैं अब रैम्प,
अभी के लिए ही सही, तू बन जा ना किसी में भी चैम्प!
शेफ बन या सौन्दर्य विशारद या पकड़ना हो स्टेथो
कभी न बनना मेरी तरह धुर गँवार तू तो,
सुन मेरी बच्ची, जिस पेशे में भी खोलेगी अपने म्यान,
हर पूजा का एक ही मंत्र, तेरे कमर की नाप!
उसी मंत्र से ब्रह्माण्ड बहकाए विनोदिनी बार्बी,
बुद्धू लड़की जानें कब तू छोड़ेगी ये खाना दाल-रोटी।
बन पाएगी ना, बन तो जाएगी ना, वैसी ही, जैसी है डॉलबार्बी?

शान्ति और कल्याण

इन दिनों मेरा कोई चेहरा रहा ही नहीं,
अब मेरी कोई चीख भी नहीं,
सब हो चुका है शान्त,
चारों ओर है शान्ति और कल्याण,
सेतु सभी हैं अब सुरक्षित ही,
हे अग्नि, करो उत्सव, बीच इस नगर-बवाली
हे मृत्तिका, उत्सव धरो तुम, शहादतवाली
जान लो, अब कोई चेहरा नहीं रहा मेरा,
न कोई चीख बची है मेरी !

पुन:

क्योंकि जानती है मिट्टी ही, माटी जान चुकी है सब,
जितने भी तुम कर लो बवाल यत्र-तत्र
डिक्की में भरी लाशें और खलिहान में भरे धान,
पैरों तले नाचे साला भगवान !

(अब तक 4 उपन्यास, कई कहानी संग्रह एवं कई काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इला चंद स्मृति पुरस्कार, सोमेन चन्द स्मृति पुरस्कार आदि कई पुरस्कारों से सम्मानित की जा चुकी हैं। तृष्णा बसाक मैथिली से बांग्ला में अनुवाद भी करती हैं।)

सम्पर्क - +91 94334 61301

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संवाद

जनजीवन का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करना साहित्य का धर्म है

सीताकांत महापात्र

(ओडिया कविता में विश्व चेतना और मनुष्यता के शीर्ष कवि और आलोचक।)

सीताकांत महापात्र आधुनिक भारतीय कविता के प्रमुख स्वरों में समादृत हैं। प्राय: हर भारतीय भाषा में उनकी कविता संकलन अनूदित और प्रकाशित है। 80 से अधिक पुस्तकों के रचयिता, ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित ज्ञानपीठ विजेता, केंद्र और राज्य साहित्य अकादेमी, सारला पुरस्कार और कबीर सम्मान से सम्मानित एक विरल साहित्यिक, पद्म विभूषण प्राप्त श्री सीताकान्त महापात्र अब परिवार सहित भुवनेश्वर में रहते हैं। उनकी कविताओं का विशेषत्व है — ऐतिहासिकता और परंपरा के साथ अन्तर्दृष्टि और आधुनिकता का अंतर्मिश्रण। हमारे विस्मृत विश्वासों के बीजमंत्र एवं मूल्यबोध की मूल चेतना को वे हमें बार-बार याद दिलाते हैं। प्रस्तुत है वर्षास्नात अपराह्न में एक आत्मिक वार्तालाप का सार -

आज पूरे विश्व के सम्मुख एक नया संकट दिख रहा है, ऐसी स्थिति में हमारा साहित्य आंचलिकता के साथ वैश्विक होने की अपेक्षा रखता है इस विषय में आप क्या कहेंगे?

आज हमारे चारों ओर का संकट हमें हिंसा का विरोध करना सिखाता है। वह सिखाता है कि असूया, क्रोध से खुद को और सारे विश्व को मुक्त रखें। समग्र विश्व में भी हम आंचलिकता को देखते हैं। मेरी व्यक्ति चेतना बहुत आशावादी है। साहित्य की साहसिकता ही कवि की अन्वेषा है इसीलिये इस संकट के समय में वैश्विक होना मनुष्य जाति का एकांत काम्य है, कवि होने के नाते मैं यह कह सकता हूँ।

पिछली शताब्दी में भूमंडलीकरण के साथ दुनिया में एक बड़ा परिवर्तन आया है, इसमें कवि का क्या महत्त्व रहना चाहिए।

लेखक की भूमिका है वह पवन की तरह मुक्त होना चाहता है। भूमंडलीकरण के साथ जो भी परिवर्तन होता है उसके लिए हमें भाग्यवादी न होकर यथार्थवादी होना चाहिए। यह मानव समाज के लिए मंगलमय होगा।

ग्लोबल वार्मिंग के संकट के कारण पर्यावरण और जैव परिस्थिति में विपत्ति आसन्न है, आप इसे कैसे देखते हैं।

पर्यावरण की बाधाएँ तो एक कवि की कल्पना में सुंदर मनोरम जंगल जलपूर्ण नहीं, झरना और पेड़-पौधों का पूर्ण चित्र सामने आता है और इस चित्र से प्रकृति झलक रही है।

यह सुंदर पृथ्वी हर पीढ़ी के लिए हरियाली में भरी रही। कवि एक सुंदर संसार की कामना करने के अतिरिक्त और कुछ कर नहीं सकता। यहाँ कवि की असहायता झलकती है, उसकी कल्पना वास्तविकता का रूप नहीं ले पाती।

युद्ध, विस्थापन, मानवाधिकार का हनन, सांप्रदायिकता, स्थानीय भाषा और संस्कृति पर लोकप्रिय उपभोक्तावादी पाश्चात्य संस्कृति के आगमन ने हमारी भारतीय संस्कृति को एक तरह स्थाणु बना दिया है। एक जागरूक साहित्यिक हिसाब से आप क्या चाहते हैं?

पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण अच्छा है लेकिन अंधा बनकर नहीं, अपनी संस्कृति के साथ जुड़े रहो, हमारी परंपरा, ऐतिहासिक एवं बहुत पुरातन है। समाज में युद्ध, सांप्रदायिकता, संस्कृति का अपमिश्रण तो होता ही है, लेकिन किसी भी स्थिति में हद से अधिक ठीक नहीं है। अतीत में अनेक सभ्यताओं की इसी प्रकार अपमृत्यु घटी है। उसी प्रकार यह सभ्यता भी मिट न हो जाए, यह कौन जानता है? सहनशीलता का अभाव, खुद को तथाकथित सभ्य कहने की हीन मानसिकता ही पतनोन्मुखी समाज का परिचायक है। इसे खुद न समझने से, हृदयंगम न

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करने से साहित्यिक के हिसाब से मैं इतना ही कहूँगा कि अपने परिवार को, महान संस्कृति को अपने आसपास की दुनिया को प्यार करो। अच्छा समय जरूर आएगा।

विभिन्न राजनैतिक दलों के साहित्य में बेकार का प्रधान्य देने को आप कितना गुरुत्व देते हैं ?

साहित्य को राजनीति से दूर रहना ही अच्छा वरना वे राजनीति को लेकर अच्छा साहित्य रचें। जो भी सत्ता में रहें वे एक सुंदर राज्य दें। प्रादेशिक लोगों का दुःख दर्द समझें, इनसान को इंसान की तरह रहने को स्थान दें, यह मेरा व्यक्तिगत मत है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय साहित्य पर आपका दृष्टिकोण या अभिमुख्य क्या है ?

भारतीय साहित्य के प्रति मेरा अभिमुख स्पष्ट है। साहित्यिक गण समाज सचेतक और जीवनधर्मी लेख लिखने में अधिक बल देते हैं, इस विषय में मैं बहुत आशावादी हूँ।

देश के एक विशिष्ट कवि होने के नाते आगामी पीढ़ी को आप क्या संदेश देंगे।

आगामी पीढ़ी के प्रति मेरी श्रद्धा है। वे आपस की रचनाएँ पढ़ें, स्वस्थ आलोचना करें, आपस में श्रद्धा और आदर का भाव रखें, इनसानियत को दृढ़ रखें।

साहित्य की विभिन्न विधाएँ होते हुए भी आप कविता के ही प्रति आकृष्ट हुए ? ऐसा क्यों ? पहली रचना प्रकाशित होने की अनुभूति के बारे में आप क्या कहेंगे ?

बचपन से भागवत सुनना, भीमभाई जी का भजन सुनना, गाँव के किनारे बहती हुई नदी (चित्तोत्पला) मेरे पिताजी, ये सब मेरे कविता लिखने की प्रेरणा रहे। मैं पहले से ही कविता से प्यार करता था। मेरी पहली कविता रेभेनसा कॉलेज (अब यूनिवर्सिटी) छात्रावास की पत्रिका 'जागरण' में प्रकाशित हुई थी। उस खुशी को भाषा में व्यक्त नहीं कर सकता।

बीता हुआ कल आपके लिए खास था। मनुष्य जितना आगे बढ़ता है वह उतना ही पीछे अर्थात् बचपन की ओर लौटता है जो कि आपकी कविता में देखने को मिलता है, गाँव के प्रति मोह इसकी मुख्य बात है क्या ? अतीत, वर्तमान और भविष्य को लेकर एक सभ्यता खड़ी होती है। आप इसके बारे में क्या कहेंगे ?

मैं कविता लिखता हूँ क्योंकि मैं अपनी अन्तरात्मा से बच्चा बनकर रहकर गया हूँ। बुद्धि-सचेतक मनुष्य की आँख लेकर कोमल मन लेकर जीवन को, पृथ्वी को, मनुष्य को और हमारा साधारण भाग्य समझने की कोशिश करना है।

मैं पीछे नहीं लौटा बल्कि मैं अपने बचपन के साथ हमेशा रहता हूँ, हर मनुष्य रहता है। इसका एक आकर्षण है। हर बाधा विघ्न पर भी मनुष्य जिन्दा रखने की कोशिश करता आया है यह आकर्षण ही सभ्यता का मूल है। हजारों वर्ष से यह हमारी परंपरा और संस्कृति के अन्दर रहता आया है।

आपके प्रिय कविता संकलन हैं - 'अष्टपदी' और 'सारा जीवन लोकदा'। आपके और भी कविता संकलन है, पर ये दोनों ही आपको सर्वाधिक प्रिय हैं, क्यों ?

'अष्टपदी' और 'सारा जीवन लोकटा' ये दोनों संकलन मुझे बहुत दिनों से आच्छन्न करके रखे हैं, ये कविताएँ मेरी चेतना के विशेष मुहूर्त में आई हैं इसीलिए प्रिय हैं।

नदी और समुद्र को लेकर आपका कविता जगत बहुत समृद्ध है जो कि आपकी कविता की विशेषता भी है। इस बारे में आप क्या कहेंगे ?

हाँ नदी और समुद्र के प्रति मेरी विशेष दुर्बलता है। नदी के किनारे मैं बढ़ा। उसका संगीत सुना, वह मेरे जीवन प्रवाह का एक अंश बन गया और सागर महाप्राणत्व का आकार, एक सचेतन अन्वेषण जीवन और जीवित रहने का द्वेततान का मिश्रित कुंजन इसीलिये सागर मेरा प्रिय है। बाइबल में लिखा है कि नदी समुंदर में मिलने पर भी अपूर्ण है। एक महापूर्णता की संभावना लेकर चलचंचल और छलछल, इन दो अवस्थाओं के बीच जीवात्मा का विरह, कारूण्य और क्रंदन लेकर कविता लिखता हूँ। इसे आप काव्यिक जलन कह सकते हैं।

यात्रा वृत्तांत, कहानी, प्रबंध और अनुवाद भी आपके लेखन में सम्मिलित रहा है। वह भी उच्चतर लेखन। एक सफल और दायित्ववान उच्च प्रशासनिक अधिकारी का दायित्व निभाते-निभाते इतना क्रियेटिव काम आप कैसे कर पाते हैं ? आपने दोनों के लिए समय कैसे निकाला।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हाँ, सृजन जीवन और कर्म जीवन के बीच में समन्वय रखता हूँ। क्योंकि अपने कर्त्तव्य के प्रति अवहेलना संभव नहीं है और कविता मेरे जीवन का अनिवार्य सुख है। मेरी अन्तरात्मा का आह्वान है। इसीलिए मुझे समय को देखना पड़ता है। कर्म जीवन की अवहेलना नहीं की और सृजन जीवन को कष्ट नहीं दिया। इन दोनों के बीच मैंने समन्वय रखा।

हम जानते हैं मनुष्य शांतिकामी व प्रकृति प्रेमी, पृथ्वी की आज की अवस्था या परिस्थिति वैसे नहीं है जैसे पहले थी। यह पृथ्वी बहुत ही सुंदर थी, इसकी सुन्दरता को मानव खुद ही ध्वंस करता चला है। प्रगति के नाम से गलत रास्ते पर चल रहा है। कवि होने के नाते आप इस समस्या का क्या समाधान सोचते हैं ? जन जीवन का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करना साहित्य का धर्म है। आज का मनुष्य जटिल और कितना ज्यादा जागरूक है ?

हाँ जन-जीवन का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करना साहित्य का धर्म है। आज का मनुष्य एक जटिल और बहुत अभाव बोध के अंदर गति करता है। एक विषम अवस्था आज के मानव को कष्ट देती है। उसमें से वह मुक्ति चाहता है। कवि का दुःख उसकी सहायता, उसकी कविता सिर्फ एक निरंहकार है। कवि की भाव प्रवण यात्रा ही एक अन्वेषण है। यह अन्वेषण वास्तविकता रंग भरने की प्रचेष्टा है। कवि सिर्फ कविता के माध्यम से ही रंग भरने की कोशिश करता है, और कुछ नहीं कर सकता। यह उसकी विडंबना है। मनुष्य को प्यार करने वाला हर कवि यह अनुभव करता है।

आज हम तीन भय या आतंकों से गुजर रहे हैं - आधिभौतिक, अधिभौतिक आध्यात्मिक और नाना प्रकार के दुःस्वप्न से, हमारा स्वप्न है निर्भीकता ही हमें इससे मुक्त कर पाएगी। यही निर्भीकता वास्तविकता का रूप लें।

सीताकांत महापात्र - सम्पर्क : 9437778601

(भेंटकर्ता एवं अनुवादक : प्रवासिनी महाकुड-ओडिया साहित्य की समर्थ अनुवादक और कवि।)

सम्पर्क - +91 70083 10268

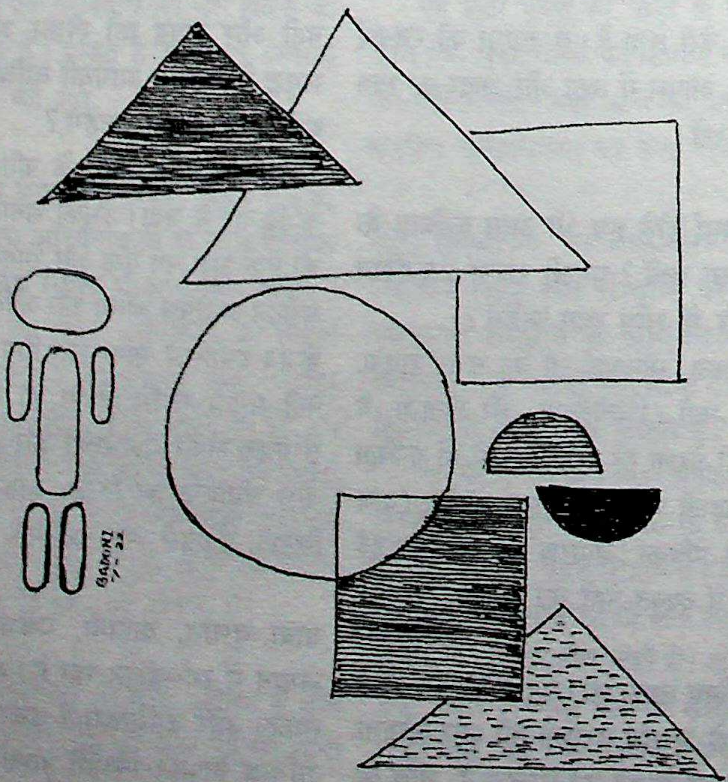

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कवि सितांशु यशश्चन्द्र से पीयूष ठक्कर और वसंत जोषी की बातचीत

"नौटंकीवालों और नाहटों इन दोनों के बीच जो बड़ा अंतर है, उसे न जानने वाला समाज अपने पतन के काफी करीब पहुँच जाता है।"

(सितांशु यशश्चन्द्र - गुजराती के शीर्षस्थ कवि, नाटककार, विमर्शकार, आलोचक, संपादक एवं शिक्षाविद। अतलस्पर्शी विश्व संवेदना को ध्वन्यार्थ में अभिव्यक्त करने की क्षमता से लैस सांस्कृतिक कवि।)

सितांशु यशश्चन्द्र (सि.)
वसंत जोषी (व.जो.), पीयूष ठक्कर (पी.ठ.)

क

पी.ठ. - सर, एक छोटी सी बातचीत में हमें आपसे जैसे बहुत कुछ जानने की उत्सुकता है। कहाँ से शुरू करें और किन-किन मुद्दों को रखें यह एक असमंजस में हम हैं। लेकिन जैसा कि पत्रिका का प्रस्ताव है हमें बात तो समकालीन परिस्थितियों पर केन्द्रित करनी है। एक कवि और प्रबुद्ध नागरिक के तौर पर आपके विचार जानने का यह अवसर पत्रिका ने उपलब्ध कराया है। पत्रिका के संपादकों के आभार के साथ कुछ प्रश्न।

सि. - आप से, पीयूष, और वसंत जी से यह गोष्ठी करने का आनंद ही तो है - निजी दृष्टि और निजी स्वर से युक्त मेरे उत्तरसमकालीन कवियों से। सामयिक 'विश्वरंग' के लोकेशन में मिलना, हम तीनों के लिए बड़ी खुशी का अवसर है, और कुछ अंतरंग गोष्ठी करने का। शुरू करें...

पी.ठ. -तो सर, यह जो शब्द है, समकाल, समकालीन, समसामयिक और उससे जो अर्थ अभिप्रेत है, उन्हें आज आप कैसे व्याख्यायित करना पसंद करेंगे? किन-किन बातों को लेकर चलना पड़ेगा?

सि. : पीयूष, मैत्री और स्नेहभाव होते हुए भी किसी का समकालीन होना कितना दुष्कर कार्य है! हर व्यक्ति के भीतर समय के अनेक टुकड़े बिखरे पड़े होते है। प्रिय स्वजन के भी भीतरी कालखंड कितने विविध होते हैं! खुद अपने भी! कौन कब किसका समकालीन, व्यक्ति स्तर पर भी तय करना मुश्किल है। हर व्यक्ति एक सुहावना लेकिन क्षणोपलब्ध केलाइडोस्कोप!

दूसरी ओर, पूरे समाज का वर्तमान बहुत विस्तृत, बहुस्तर समय होता है। प्रायः आर्थिक, धार्मिक, भाषाकीय अन्तर्विरोधों के तनावों से भरा। अपने ही समाज का समकालीन बनना भी कितना मुश्किल और जोखिम भरा है, वो तो महात्मा गाँधी का जीवन और मृत्यु हमें बताता ही है। — पीयूष, आपने पहला ही प्रश्न कठिन सा पूछा, धन्यवाद!

'वैष्णव जन तो तेने कहिए जे पीड़ परायी जाणे रे'। — जिन्हें 'पराये' बनाए गए हैं, उनकी 'परायी पीड़ा' जानने वाला, अपनाने वाला ही उन का 'समकालीनजन' बन सकता है। और ऐसा 'वैष्णवजन' ही अपने संपूर्ण सांप्रत में बस, अपनी संपूर्ण जीवनी जी सकता है, मृत्यु के निरंतर सान्निध्य में। 'विष्णु' शब्द का अर्थ ही 'व्यापकता' से है। और व्यापकता अंतर्विरोधों से एवं विविध संयोजनों से भरी हुई ही होती है। हम सब तो आधे-अधूरे से हैं। वर्तमान समय के कई छोटे-बड़े टुकड़ों पर तो हम सब बस गए हैं, अपना और अपनों की सुख-सलामती का खयाल रखते हुए। 'निजरंग' और 'प्रतिबद्ध' दोनों शब्दों का उपयोग अपने लिए करने से पहले हमें काफी समय ठीक से सोचना चाहिए।

एक बात और, पंचमों की पीड़ा जानकर उनके मोहल्ले में जाकर हरि कीर्तन करने वाले नरसिंह को जूनागढ़ की उनकी जाति ने बाहर कर दिया था। समकालीनता के एक (अछूते, अन्यजन) विस्तार में जाने का साहस करने वाला उसी समकालीनता के दूसरे (डोमिनन्ट, सत्ताशील) विस्तार में प्रवेश प्रतिबंध पा सकता है। मार्क्स और गाँधी यह बात ठीक से जानते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

थे। भक्ति और सूफी कवि भी। दूसरी ओर, अपने निजी, गहरे, तलफटे वर्तमान में प्रवेश करना, बसना, जीना भी कोई आसान बात नहीं है। फ्रॉइड और ब्रेतों यह बात ठीक से जानते थे। बेकेट और मार्केज भी।

समकालीनता के रंगमंच पर कुशल नट बन प्रतिबद्धता, आध्यात्मिकता या रूमानियत की नौटंकी मंचित करना, एक या दूजी बॉक्स ऑफिस पर तगड़ी कमाई कर लेना, एक बात है। और समकालीनता के समरांगण में अपनी आत्मप्रतीति के बल पर केसरिया कर, नाहटा बन युद्ध करना, दूसरी - दो बहुत अलग सी बातें हैं। नौटंकीवालों और नाहटों — इन दोनों के बीच जो बड़ा अंतर है, उसे न जानने वाला समाज अपने पतन के काफी करीब पहुँच जाता है।

'टाइम' को अगर 'स्पेस' के रूप में देखें तो पता चलता है कि समकालीनता का प्रश्न 'बाउन्ड्रीज' और 'होराइजन' का है। अपने पूरे समय का समसामयिक नागरिक या लेखक बनना एक 'प्रोसेस' की बात है, 'प्राप्ति' की नहीं। नई-नई सीमा रेखाएँ पार करनी होती हैं, नयी-नयी क्षितिजें खुलती दिखाई देती हैं। मेरी पुस्तक 'सीमांकन अने सीमोल्लंघन' जिसके कुछ अंश हिंदी अनुवाद में 'गोपन और अयन' तथा 'दृश्य और ध्वनियाँ' नाम से ये दो संचयन राजकमल प्रकाशन से उपलब्ध है।

पी.ठ. - आज का समय राजनैतिक रूप से, सामाजिक रूप से, सांस्कृतिक रूप से बहुत ही ज्यादा उथल-पुथल का समय रहा है। ऐसे में एक कवि एवं प्रबुद्ध नागरिक की भूमिका के बारे में आपके क्या विचार हैं?

सि. : एक संवेदनपटु कवि और कुशल चित्रकार होने के नाते, पीयूष, आप हमारे समय को, उसकी 'उथलपुथल' को स्वानुभव से जानते हो।

इस बारे में मेरी भी 'तीन कसमें' हैं! किसी अन्य की समझ के बलबूते पर कभी अपना लेखन न करना, ये पहली कसम। सभी के 'आइडिया' का स्वागत; किसी की 'आइडियोलोजी' उसे मुबारक; मेरा लेखन कोई भी आइडियोलोजी का सब-सेट नहीं है। आप मेरे लिए, ऑन मांय बिहाफ, सोचने का कष्ट न लें, भले ही आप के पास सत्ता, धन, विशेषज्ञता हो। मेरी सोच मैं ही सोचूँगा, नागरिक, कवि और मनुष्य होने के बलबूते पर। ये मेरी पहली प्रतिबद्धता। दूसरी कसम ये कि अपनी सोच समझ को उत्तरोत्तर साफ-सुथरी एवं विशद बनाते जाना, अपनी दृष्टि को अधिक सूक्ष्मदर्शी और दूरदर्शी बनाते जाना, अपनी भौतिक आवश्यकताओं को हो सके इतनी कम करना (ताकि आर्थिक प्रलोभन टल सके) और कष्ट सहने की क्षमता कुछ बढ़ाते रहना। उसे अपनी साधना भी कह सकता हूँ।

तीसरी कसम तो जैसे वो हिरामन की वैसे हम सब की सब से मुश्किल कसम है! स्नेह की। मेरी तीसरी कसम— अपनी कलम कहीं गिरवी न रखना, किराये पर कहीं न भेजना। कहीं भी — राजमहल में या मार्केट प्लेस में; बड़ौदा-पालनपुर-भेंडीबाजार के लोकल मुशायरे या दिल्ली-लंदन-स्टोकहोम के इंटरनेशनल जमावड़े में; कोई 'थिन्क टैन्क', 'पोलिट ब्यूरो', हेड क्वार्टर', 'चिंतन शिविर' में या कोई भी धर्मालय या मदिरालय में। आज हम हैरान हैं कि कितनी-कितनी विविध जगहें खुली है, एक ये पॉन शॉप की! वॉल्टर बेन्जामिन सोचते रहें ऐसे-ऐसे आर्केइड्ज! तीसरी कसम पर अटल रहना कठिन है, उस पर टिकने का बल केवल हृदय दे सकता है, बुद्धि नहीं; स्नेह दे सकता है, सोच नहीं। इसके लिए भोली सी, अटूट प्रीति हो जानी चाहिए, कविता के लिए; जैसी हिरामन को हीराबाई के लिए हो गई थी। इसी कारण, 'रेणु' ने कह रखा है: 'मारे गए गुलफाम!!

अलबत्ता, जिसे आप सही अर्थ में 'बहुत ही ज्यादा उथल-पुथल का समय' कहते हैं, ऐसे हमारे समय में 'गुलफाम' बने रहना संभव नहीं। मेरी कविता का और नाट्य रचनाओं का चेहरा न्यूयार्क वाले कवि ऑडन के चेहरे जैसा है, बैलगाड़ी वाले राज कपूर के चेहरे जैसा नहीं। 'वखार' काव्य संग्रह में वखार शीर्षक की रचना और 'आ माणस मद्रासी लागे छे' नामक नाटक (जिसे सत्यदेव दूबे ने मंचित किया था, दिल्ली में) आदि को इस संदर्भ में पढ़ें।

पी.ठ. - सर, हम यह भी जानते हैं कि आप राजनीति से परहेज नहीं करते बल्कि अपने समकाल की बुनावट के एक अविभाज्य अंग के रूप में आप उसे देखते रहे हैं। एक विमर्शात्मक साहित्य-संस्कृति बनाने के लिए आप सक्रिय रूप से राजनीति के कुछ आयामों से मुठभेड़ करते रहे हैं। आपके अपने विचार इस संदर्भ में आप बताएँगे?

सि. : कोई राज्य सत्ता व राजकीय पक्ष या आर्थिक/सांस्कृतिक विचारधारा के पक्ष या विपक्ष में न रहने का मतलब ये तो नहीं है कि मुठभेड़ न हो! कुछ गंभीर और निर्णायक मुद्दों पर राज्य, विश्वविद्यालय, साहित्यिक संस्थाएँ आदि सत्ता-केन्द्रों से संघर्ष

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक अरसे से होता रहा है। उदाहरणार्थ: गुजरात राज्य की आर्थिक सहाय पाने वाली 'गुजराती साहित्य अकादेमी' (गाँधीनगर) के बंधारण के अनुसार उसके प्रमुख और कार्यकारी समिति के सभ्यों का चुनाव उसके सभ्य लेखकों द्वारा किया जाता था। यकायक गुजरात सरकार ने कुछ समय पूर्व इस बंधारण का भंग कर, एकेडेमी के प्रमुख और अन्यों को सरकारी हुकुम से नियुक्त कर दिए। कड़ा विरोध किया। बहिष्कार भी। अन्यत्र भी कई मुद्दों पर कई सत्ताओं से जूझना पड़ा है, महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी में एक कुलपति की मनमानी के सामने आजीवन उपवास भी अपने कैम्पस में तंबू लगाकर शुरू किया था, जब तक बात ठीक से हल नहीं हुई तब तक। दूसरी बार, एक डेढ़ लाख रुपये का एक पुरस्कार स्वीकार करने से जब मैंने इनकार किया था (देने वाले तंत्र का संचालन साहित्येतर परिबलों के वश होने के कारण) तब भी असहज परिस्थिति का निर्माण किया गया था। मुठभेड़ के भी दिलचस्प तरीके होते हैं, दोस्त! बलप्रयोग के सामने बलप्रयोग की बात नहीं थी, ये सब। बात थी सामाजिक, न कि केवल राजकीय, धार्मिक अथवा विद्यकीय। इस अर्थ में कि ऐसे संघर्ष में वर्तन, वक्तव्य और लेखन द्वारा, विविध समूह माध्यमों की सहायता से, गुजराती समाज को इन प्रश्नों में, इस्युज में सम्मिलित करने का काम हम सबने किया। ये तो है लोकशाही की, देश के स्वातंत्र्य की जड़ें। उन जड़ों में साहित्य और साहित्यकार, विद्या और अध्यापक पानी डालता है, मीरां का 'असुंवन जल...'

व.जो. - सामाजिक संप्रज्ञता के प्रति सर्जक का किस प्रकार का उत्तरदायित्व होना चाहिए?

सि. : वसंत, मेरा उत्तर इस बात पर निर्भर रहता है कि ये प्रश्न कौन पूछता है? आपने पूछा, एक समकालीन कवि ने, तो उत्तर देता हूँ।

– उत्तरदायित्व के प्रश्न अपने-आप से पूछता रहता है, जो सर्जक है, वो उन प्रश्नों का उत्तर स्वयं को देने का उत्तरदायित्व रखता है। बिना अनवधान ये प्रश्न खुद को बार-बार पूछना जो नहीं जानता, वो लेखक आहिस्ते-आहिस्ते अपने आप से भी एलिएनेट हो जाता है, अपने समय से, संसार से, पड़ोसी से भी! खुद को ही यह प्रश्न पूछा जा सके, ऐसा भी नहीं। प्रश्न उस के समकालीन अन्य लेखक या पाठक भी पूछ सकते हैं, सप्लिमेन्टरी क्वेश्चन्स! सेल्फ-इंटरोगेटिव राइटर इन पूरक प्रश्नों का स्वागत ही करेगा। परन्तु जब ये प्रश्न कोई शासक अथवा संस्थाधिपति अथवा धनपति द्वारा लेखकों को पूछे जाने का सिलसिला चालू हो तब न केवल साहित्य का, समाज और संस्कृति का भी अध:पतन होना शुरू हो जाता है, सत्वर। इंट्रोस्पेक्शन और इंटरोगेशन के बीच जगह छोटी है, तफावत लंबा है।

व.जो. - आपकी कई रचनाओं में प्रतिबद्धता का संज्ञान होता है। आपकी इस संदर्भ में क्या सोच है?

सि.: आप कवि हैं और मेरी कविता के करीबी दोस्त! मैत्री और कविता दोनों में कई बात बिना कहे ही समझी जाती है। बल्कि कह देने से कुछ सिमट सी जाती है। 'उपदेश' भी, जैसे मम्मटाचार्य ने बताया है, स्वामी और सेवक के बीच, गुरु शिष्य के बीच की बात हो सकती है। आजकल कई तरह के राजकीय शासकों ने और विविध धर्म/महजब के स्वामियों/मौलवियों ने कवियों के गुरु का पद कालिदास के पास से छीन अपने लिए रख लिया है। इसका (प्र)दर्शन कई बड़े छोटे 'साहित्यिक' मंचों पर होता भी है।

बहरहाल, एक रीत कान्तासम्मित उपदेश की भी है — जब प्रियतमा कुछ करवाना चाहती है तब प्रीतमजी को ऐसा ही लगता है मानो वो इच्छा स्वयं उनके मन में ही अभी-अभी पैदा हुई!

कविता में प्रतिबद्धता का संज्ञान कवि या पाठक को अगर होता है तो उसे पता ही नहीं चलना चाहिए कि उसको कुछ संज्ञान हुआ है और वह भी प्रतिबद्धता का!

पाठक शायद मेरी ये रचनाएँ पढ़ना चाहें, इस संदर्भ में : 'हो ची मिन्ह', 'चे गुवेरा', 'इब्राहिम रुगोवा' और 'युसुफ महेरअली' विषयक मेरी कविता और 'अश्वत्थामा आज भी जीता है (और मरता है)' ये नाटक।

पढ़ने के बाद अगर आपको उनमें कुछ 'संज्ञान' सा होने लगे, और वो भी 'प्रतिबद्धता' का, तो शीघ्र ही मुझे बताएँ, कि मैं उन रचनाओं को अपनी पुस्तकों की अगली आवृत्ति (अगले संस्करण) से निकाल सकूँ।

व.जो. - आज विश्व तीसरे विश्वयुद्ध की कगार पर खड़ा है। युद्ध की विभीषिका पूरे मानव जीवन के लिए विध्वंसक है। इन हालात को एक सर्जक के रूप में आप किस तरह से आंकलन करते हैं?

सि. : सही बात, वसंत। इरावती कर्वे ने जिसे 'युगान्त' कहा था, इसी तरह की विभीषिका आज मंडरा रही है। 'महाभारत' के उस

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भयंकर अंत में, काव्यगत पात्र बन, महाकवि व्यास कहते है: 'दोनों हाथ उठा कर मैं चिल्लाता हूँ, फिर भी कोई मुझे सुनता नही है।' आज कविता क्या कर सकती है? कला, सौंदर्य क्या कर सकते हैं? सही पूछा।

कालिदास का अनूठापन इसमें है कि वो महाशय कभी कोई भी 'युगप्रश्न' का सीधा उत्तर देते ही नहीं है! कोई बड़ा 'युगप्रश्न' उन्हें पूछो तो कभी एक खंडकाव्य सुना देते हैं, कभी नाटक दिखाते है, कभी महाकाव्य के पीछे छिप जाते हैं। वाल्मीकि-व्यास से अलग। फिर भी कालिदास कवि सब को प्यारा लगता है और कई सवालों के टेढ़े-मेढ़े फिर भी सही जवाब भी उन्हीं के पास से मिल जाते है!

'अभिज्ञान शाकुंतलम्' नाटक में यह कवि 'भावस्थिराणि जननांतर सौहृदानि' की बात करता है। कैसी सहृदयता? जननांतर की, मृत्यु को पार कर सकने वाली सुहृदता। भाव स्थिर है, केवल होना (भाव) इस सहृदता को आधार दे सकता है। 'अबोधपूर्व' भी है वो, पहले उस का बोध नहीं हुआ था, तरोताजा है, नित्य नूतन। इस की स्मृति ही नहीं है बुद्धि को, मन को। इस स्नेहभाव की स्मृति तो है केवल चेतस् को, जीवनबल को। ऐसे 'सौहृदानि' (बहुवचन देखें) किस तरह से मृत्यु को पार कर के जीवनबल में प्रगट होते हैं? कालिदास का उत्तर एक कविकुलगुरू ही दे सके, उत्तमोत्तम कवि, ऐसा है: रम्य दृश्य को देख, मधुर शब्द को सुन, पंचेंद्रिय से सौंदर्य के सन्मुख हो कर। सुख भरा जीव हो तो भी सौंदर्य के सन्मुख होते हुए वो 'पर्युत्सुक' हो जाता है। उत्सुकता उसे चारों ओर से घेर लेती है। काहे की उत्सुकता? नये सुख की नहीं, पंचेंद्रियों के नये भोग की नहीं। जिस की स्मृति भी उस व्यक्ति के मन को नहीं, केवल उसके 'भाव' को, 'चेतस' को है, ऐसे 'सौहृदानि' की अब प्रतीक्षा है, उसके लिए पर्युत्सुकता है। जननांतर से, मृत्यु को पार कर भी वो आएगी।

वसंत, तेरे सीधे सवाल का टेढ़ा जवाब मैने दिया। क्योंकि 'आज विश्व तीसरे विश्वयुद्ध की कगार पर खड़ा है। युद्ध की विभीषिका पूरे मानव जीवन के लिए विध्वंसक है' तब कविता के पास मानवजात को देने के लिए ऐसी पर्युत्सुकता के सिवा और कुछ अब बचा नहीं है।

व.जो. - आज विश्व पर्यावरण की बड़ी समस्या का सामना कर रहा है। कई संस्थाएँ इस के लिए प्रवृत्त हैं। इस माहौल में ऐसा भी माना जाता है कि साहित्यिक गतिविधियों के द्वारा लोगों को जागृत किया जाना चाहिए।

सि. : 'September 1, 1939' के दिन, जब नाजी जर्मनी ने पोलेन्ड पर आक्रमण कर दिया और द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो गया, तब कवि डबल्यु. एच. ऑडेन ने अपने समय की पहचान इस शब्दों में दी: 'a low dishonest decade', जिस समय में 'the clever hopes expire' ऐसा धूर्त दशक। ऐसे में हमें क्या करना होगा? ऑडन सात ही शब्दों में बताते है: 'We must love one another or die।'

सन् 1939 से 2022 : आठ दशक से अधिक समय बीता। तब तो केवल मनुष्य जाति के अस्तित्व का प्रश्न था। आज समूचे जीवन का। बेलियाँ, पौधे, पंखी, मृग, पानी से घिरी शकुंतला का आलेखन कालिदास ने किया है। राजा का अतिक्रमण उस समूचे कण्वाश्रम पर था। कुलपति तब कोई राजा के पास दान पाने के लिए गए थे। तभी राजा ने आश्रम का अतिक्रमण किया।

आज पूरी धरती कण्वाश्रम सी है। पृथ्वीपति राजा वैसे ही हैं। बोधक कविता से या 'क्लेवर होप्स' बाँटने वाले रचनाकारों की फॉर्म्यूला पोएम्स से क्या होगा? पर्यावरण की समस्या वैसी ही रहेगी, लेकिन कविता की हानि होगी।

बहरहाल, माया एंजेलो की विख्यात कविता, 'Caged Bird', मेरे शोक को अपने इस श्लोक में बदल देती है: 'The caged bird sings / with a fearful trill / of things unknown / but longed for still / and his tune is heard / on the distant hill / for the caged bird sings of freedom।' बोरिस पास्तरनाक के 'डॉ. जिवागो' उपन्यास में उपन्यासकार ने 'युरी जिवागो की कविताएँ' पुस्तक के अंत में रखी है। स्नो स्टोर्म के बीच, बड़ी ठंड में, एक खिड़की के काँच के पीछे, एक छोटी सी मोमबत्ती जल रही है, उस का चित्रण पास्तरनाक ने किया है। 'A candle burns।'

पंछी पिजरे में गाता रहे, मोमबत्ती खिड़की में जलती रहे, ध्वन्यार्थ भरी कविता कवि लिखता रहे, बस।

ख

पी. ठ - पिछले एक साल में चार भाषाओं में, बांग्ला, मराठी, अंग्रेजी एवं हिन्दी में, आपके कविता संकलन अनुवाद में उपलब्ध हुए हैं। भारतीय कविता की यह एक विशिष्ट घटना है। अनुवाद के द्वारा यह जो भाषाओं के बीच एक संवाद की भूमिका रची गई है, उसके चलते आप भारतीय कविता के किन बिंदुओं से संवाद की एक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संभावना को देखते है?

सि. : बांग्ला, मराठी और हिंदी के कुछ उत्तम कवि-अध्यापक-आलोचक-पाठकों को मेरे कुछ भी कहे बिना इन गुजराती रचनाओं का अपनी भाषा में अनुवाद करने की इच्छा हुई, इस की खुशी है। एक गहरा शोक भी कि बांग्ला की एक अग्रणी कवि, आलोचक, मेरी कविता की अनुवादक, हमारी अच्छी बहन, प्रो. सुतपा चौधुरी का असमय अवसान हो गया, कोरोना के कारण। मेरी कविता के हिंदी अनुवाद पुस्तक रूप करने का स्नेह संकल्प पहली बार जिन्होंने किया वो मेरे मित्र, हिंदी के बड़े विद्वान, दिवंगत महावीर सिंह जी चौहान का स्नेह स्मरण होता है। मराठी अनुवाद प्रो. सुषमा कारोगल ने प्रत्येक रचना की गहराई में (अर्थात उस की वाणी, भाव और ध्वनन की विशेषताओं में) जा कर किया है, मैं साक्षी हूँ, क्योंकि मराठी भाषा से मैं अपरिचित नहीं हूँ और हम दोनों एक ही शहर में रहते हैं, बहुत बार अनुवाद-गोष्ठी होती रही है। केदारनाथ-जी सिंह, ज्योत्स्ना मिलन, गगन गिल, रंजना अरगडे जैसे उत्कृष्ट हिंदी कवियों-काव्यज्ञों ने मेरी कविता के हिंदी अनुवाद किए, बड़ी खुशी की बात है मेरे लिए।

भारतीय भाषाओं के लेखकों के प्रत्यक्ष मिलन और परस्पर सघन कृतिवाचन, दोनों का तालमेल आज बार-बार हो सकता है, वो भारतीय साहित्य की रचना में एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। मेरा अनुभव आप के पास रखूँ : 1960 के दशक में पुणे में प्रभाकर पाध्ये और प्रो. ए. बी. शाह का 'सेन्टर फॉर इन्डियन पोएट्री' और बम्बई में सदानंद भट्कल का सामयिक 'इंडियन राइटिंग टुडे' हमारा मिलन स्थान था। गुजराती, मराठी, कन्नड़, अंग्रेज़ी, क्वचित बांग्ला और हिंदी में लिखने वाले कवि, नाट्यकार, कहानीकार मिलते थे। कलकत्ता की जादवपुर युनिवर्सिटी का तुलनात्मक साहित्य का उत्कृष्ट विभाग (मेरे समय में जहाँ अमीय देव, मानवेंद्र बंदोपाध्याय, नबनीता देव सेन, इशिता चंदा जैसे तेजस्वी प्रोफेसर्स कार्यरत थे) भारतीय साहित्य मीमांसकों का मिलन केंद्र था (आज भी है)। 1970 से अशोक वाजपेयी ने भोपाल में 'भारत भवन' का चमत्कार किया — कविता, कथा, नाटक के साथ चित्रकला, स्थापत्य, नृत्य, लोककला के कलाकार भी अनेक भाषाओं से, लोकेशन्स से आकर वहाँ मिलते-जुलते रहे — 'जुलते' का अर्थ भी तब समझ में आया! दिल्ली स्थित साहित्य अकादेमी भी उमाशंकर जोषी, यू. आर. अनंतमूर्ति, और सुनील गंगोपाध्याय, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, चंद्रशेखर कंबार जैसे अध्यक्ष और सचिव इंद्रनाथ चौधुरी, के. सच्चिदानंदन श्रीनिवासराव की कल्पनाशीलता और कुशलता के कारण भारतीय साहित्य के नये-नये नव सेन्टर्स भारत भर में पल्सेट होते चले। कलकत्ते की 'भारतीय भाषा परिषद', असम के चाय बागानों द्वारा समर्थित, गोहाटी स्थित आयोजना, केरल, आंध्रप्रदेश, राजस्थान, पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र आदि की, अन्य भारतीय भाषाओं के रचनाकारों को यथा संभव निमंत्रित करती हुई संस्थाएँ — एक बहुबिंदु संकेतन जाल (Multi-centred Semiotic Network)-की रचना बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जो हुई, उसका साक्षी ही नहीं, सहकारी होने का अवसर मुझे मिला।

उस दौर के समग्र भारतीय साहित्य या कविता को, विभिन्न भारतीय भाषाओं में से अनुवाद द्वारा एकत्र करने वाले कई सामयिक थे। अकादेमी के 'इंडियन लिटरेचर' और 'समकालीन भारतीय साहित्य'। सुजीत और मीनाक्षी मुखर्जी का 'वागर्थ', अंतरा देवसेन का 'द लिटल मैगजीन', जयंत महापात्र का 'चंद्रभागा' और अरुंधति सुब्रमण्यम का 'पोएट्री इंटरनेशनल' का भारतीय विभाग, भारत भवन का 'वागर्थ', ये सब आधुनिक भारतीय काव्यपुरुष और विद्यावधू के सुदृढ़-सुंदर देह के पंचाधिक स्कंध थे, सप्ताधिक नाड़ी-चक्र थे! — अथवा, आधुनिक भारतीय कविता की हजारों ख्वाहिशें ऐसी थीं, कि हर ख्वाहिश पे दम निकले! - 'सुरतरुवरशाखा लेखिनिम्' वाला श्लोक याद आ जाए ऐसी मनःस्थिति है। परन्तु, अलम्।

भारतीय साहित्य की बात केवल आजकल की तो है नहीं! भारतीय भाषाओं के साहित्य का जो सेमियोटिक नेटवर्क बना है, शताब्दियों से, दो या तीन सहस्राब्दों से, वो कभी एकमार्गी नहीं रहा। संस्कृत से प्राकृतों ने जैसे बहुत लिया ऐसे ही उनसे संस्कृत ने बहुत कुछ लिया। भारत की सभी भाषाओं और बोलियों के आंतरसंबंधों की यही अनूठी विशेषता है। लुप्त सी पैशाची 'बृहद्कथा' और संस्कृत 'कथासरित्सागर' के संबंध की जो कथा कही जाती है, उससे हम समझ सकते हैं कि 'लोक साहित्य' और 'शिष्ट साहित्य' वाला कोलोनियल वर्गीकरण या 'ओरल' और 'रिटन' वाला पाश्चात्य विरोध भारतीय साहित्य के डायनेमिक्स में प्रस्तुत नहीं है।

पी. ठ. - गुजराती साहित्य परिषद के प्रमुख-पद से आपने लगातार तीन वर्ष तक भारतीय कविता को संभव करते विभिन्न स्रोतों को, विशेषतः समकालीन भारतीय कविता की प्रमुख आवाज़ों के जरिए व्याख्यायित एवं प्रश्नांकित

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करने का एक सनिष्ठ प्रयास किया है। इस भारतीय कविता यात्रा के बारे में कुछ कहेंगे।

सि. : हमारी 'गुजराती साहित्य परिषद' में एक परंपरा थी कि उसके प्रतिष्ठित मुखपत्र 'परब' के हर अंक में, परिषद के चुने गए प्रमुख एक लेख लिखें। साहित्य, संस्कृति आदि पर गहन सोच प्रस्तुत करने वाले बहुत से लेख उसी कारण हमें मिले हैं। मेरी बारी आई, 2018 से 2020 तीन वर्ष, तो मैंने सोचा कि बेहतर होगा कि मेरे लेखों द्वारा पाठक समकालीन भारतीय कविता की रचनाओं का आस्वाद तीन साल, 36 अंकों में करे! इस तरह मैं स्वयं पाठक बन गया, अनुवादक भी, काव्य मीमांसक भी! और अनेकानेक विख्यात या अल्पख्यात, प्रौढ़ या युवा समकालीन भारतीय कवियों की रचनाओं के अनूठे सेमिओटिक ओर्बिट में अपनी भी पंख पसारे उड़ने लगा।

असम, बंगाल, ओडिसा, नागालैंड से ले कर कश्मीर, जम्मू, पंजाब, राजस्थान, महाराष्ट्र, कर्णाटक, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, तमिलनाडु, केरल के समूचे हिंदी भाषी राज्यों के मेरे समकालीन (पूर्व और उत्तर समकालीन सहित) विविध कवियों की रचनाएँ गुजराती-भाषी पाठकों के सामने मैंने 'परब' के माध्यम से रखी।

सुनील गंगोपाध्याय, नामदेव ढसाल, अमृता प्रीतम, गुलजार, शंख घोष, पु.शी. रेगे, अरुण कमल, नीलमणि फूकन, केशव मलिक जैसे, वैसे ही तेनजिंग (तिब्बती), टी केजित्सु (नागालैंड), अनिपींदी जयप्रभा (तेलुगू), गायत्रीबाला पंडा (ओडिया), अंजली बसुमातारी (बोरो भाषा की कवि), निगहत साहिबा, अग्निशेखर और रहमान राही (कश्मीरी), और भी विख्यात या अल्पख्यात भारतीय कवियों की कविता का संग मिला, तीन अद्भुत वर्षों तक! — तब पता चलता था कि 'कविता' नामक शब्द के कितने अर्थ निकलते ही रहते हैं!

भारतीय साहित्य हमेशा बहुकेंद्री रहा है: संस्कृत के साथ ही प्राकृत और अपभ्रंश; भक्ति साहित्य में तमिल के साथ अन्य भाषाओं का निरंतर संवाद और उन के बीच का एक और संवाद; लोक और शिष्ट के बीच निरंतर आदान प्रदान। फारसी और इंग्लिश (और अन्य पाश्चात्य एवं जागतिक) साहित्य का प्रभाव तो भारतीय साहित्य के इतिहास में था ही।

और सांप्रत विश्व कविता! - गुजराती साहित्य परिषद को एक गुजराती उद्योगपति दंपति द्वारा दी गई उदार धनराशि की सहाय से अब सांप्रत विश्व कविता के गुजराती अनुवादों का एक मल्टी वॉल्यूम प्रकाशन, ऐसे ही एक स्वरबहुल, विविधकेंद्री स्ट्रक्चर वाला, प्रकाशित करने का मेरा काम चल रहा है।

पी. ठ. - साहित्य को आप एक व्यापक धरातल पर रखने का प्रयास करते रहे हैं। गुजराती साहित्य के प्रमुख पद के समय पर या उससे पहले साहित्य अकादेमी के कन्वीनर के तौर पर हो या बलवंत पारेख सेन्टर के ट्रस्टी के रूप में हो आपके आयोजित कार्यक्रम एक कल्पनाशील सर्जक के व्यापक वितान का परिचय देते रहे हैं। इसे देखते हुए जानना चाहेंगे कि आपके लिए साहित्य के क्या मायने हैं? आप वाङ्मय शब्द का, उस अवधारणा का अकसर उल्लेख करते रहे हैं। इस वाङ्मय की आपकी व्याख्या क्या है?

'साहित्य' क्या है, कविता किसे कहा जाए, उपन्यास, नाटक आदि का स्वरूप और कार्य क्या — आदि प्रश्न के उत्तर जब कुछ जल्दी ही मिलने लगे, तब लेखक और पाठक दोनों को चौकन्ना होना चाहिए। उपरान्त, लेखक का दायित्व, फ्रीडम ऑफ एक्सप्रेशन, पुरस्कारों का वितरण, साहित्यिक/सांस्कृतिक संस्थाओं का संचालन आदि समस्याएँ जब एक हद से अधिक महत्त्व की बनने लगें, तब भी सावधान होने का समय आ जाता है।

'साहित्य', 'साहित्यकार', 'पाठक' — इन तीनों संज्ञाओं के अर्थ जब निश्चित और व्याख्याबद्ध हो जाते हैं तब तीनों निश्चितार्थ की दीवारों से घिर जाते हैं, अंतिम उत्तरों के कठिन कारागार में बंदी बन जाते हैं। राज्य, धर्म, बाजार, समाज, नीतिशास्त्र आदि का कार्य सीमांकन का है; साहित्य, कलामात्र सीमोल्लंघन का काम भी किए बिना जिंदा रह नहीं सकें, ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं।

'साहित्य' को ऐसे निश्चितार्थ के कारावास से मुक्ति दिलाने में 'वाङ्मय' शब्द का खुलापन काम आ सकता है। 'जिस रचना में ये लक्षण हों उस को ही कविता कहा जा सकता है', अथवा 'इन इन शर्तों का पालन करे वो ही मान्य लेखक' ऐसा माहौल, प्रगट या अप्रगट, बनता रहता है। ऐसे माहौल में साहसिक और सृजनशील लेखक (और वाचक) कह सकता है कि 'हाँ, ''साहित्य'' न सही, पर मेरी रचना ''वाङ्मय'' तो है - वाणी से बनी हुई एक चीज।' एपोलो जब अतिशासन करने लगे तब डायोनिसस का आना आवश्यक बन जाता है।

साहित्यिक अवधारणाएँ बनती रहें, बढ़ती रहें, बदलती रहें और टूटती भी रहें — ये ही है साहित्यकार और पाठक की एक अनिवार्य आवश्यकता। आलोचना और सिद्धांत स्थापना का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्थान अवश्य है, परंतु साहित्य रचना के पीछे है, आगे नहीं। जब राज्य, समाज, धर्म, बाजार आदि की सत्ता साहित्य का नियंत्रण करने लगे, साहित्य की निजी पहचान का उत्तर अपने हस्तक कर ले, तब हमें लिखने और पढ़ने वालों को) ऐसे 'साहित्य' के सीमाबद्ध (और भारी सुविधाओं वाले) लोकेशन से निकलकर 'वाङ्मय' के मुक्त (और कठिनाईयों से भरे) लोकेशन की ओर पैदल चल पड़ना चाहिए।

साहित्यिक या विद्याकीय या सांस्कृतिक संस्थाओं (गुजराती साहित्य परिषद तथा साहित्य अकादेमी; सौराष्ट्र युनिवर्सिटी, फार्ब्स गुजराती सभा, बलवंत पारेख सेन्टर आदि) – के साथ जुड़ने का कालसंयोग हुआ है। संस्था और साहित्य, इंस्टीट्यूशन और लिटरेचर — इन दोनों का संयोग एक मूलगत तनाव से भरा ही होता है। वो तनाव, धनुष पर चढ़ाए गए बाण के तनाव जैसा होना चाहिए। प्रमुख, अध्यक्ष, वाइस चान्सलर, ट्रस्टी आदि का काम प्रत्यंचा सही जोर से, सही हद तक, सही दिशा में खींचने का है। संस्था का स्वरूप ही संरक्षक का है। साहित्य का स्वरूप ही साहसिक का, एक्सप्लोरर का है। साहित्य कहता है (नीत्शे के शब्दों में) 'लिव डेंजरसली'। संस्थाओं का काम ही है , 'मेक लिविंग सेफ'। धनुष टूट न जाए, बाण का वेग कम न हो जाए, इस तरह प्रत्यंचा को खींचना, वो सृजनशील संस्था-संचालक का काम है।

पी. ठ. - गुजराती भाषा की डेढ़ सौ साल पुरानी एक बहुत ही गरिमामय संस्था की संशोधन पत्रिका 'फार्ब्स गुजराती सभा त्रैमासिक' के पिछले सोलह सालों से आप संपादक रहे हैं। विगत समय में अनुभव के नित नये आयामों को सँजोने का और उसका विमर्श रचने का आपका प्रयास रहा है। एक से एक विशिष्ट विशेषांको का आपने संपादन किया है। आपकी अपनी एक संपादक की कल्पना क्या है?

सि. : 'फार्ब्स गुजराती सभा त्रैमासिक' 1936 से निरंतर प्रकाशित होता रहा है, आज अस्सी से भी ज्यादा साल का वो हो गया (मुझसे सात साल बड़ा!) और सभा का जन्म 1865 में। 'डेढ़ सौ साल पुरानी' जैसे आपने कहा। 'त्रैमासिक' के संपादक के रूप में और 'गुजराती सभा' के ट्रस्टी के रूप में मेरा एक ही काम है, मूलभूत, कि कहीं ये सभा और ये सामयिक बूढ़े न हो जाए। दोनों क्रियाशील और संरक्षक/साहसिक रहें, जवान रहे, उस का एक ही उपाय है: योग! यानि कि संस्था और सामयिक का समकालीन समय से नित नया संयोग। बोथ शुड कॉन्स्टन्टली रीइन्वेन्ट दमसेल्वज़ - लेकिन अपने आप को, अपने स्वरूप को भूले और खोये बिना!

'त्रैमासिक' का पहला अंक जिसका मैंने संपादन किया, उसके मुखपृष्ठ पर ही बाय लाईन रखी थी: 'आपओळखनी मथामण', 'स्व-रूप-पहचान की जद्दोजहद।'

पी.ठ.- पूर्व आप साहित्य अकादेमी की एन्साइक्लोपीडिया के प्रधान संपादक रह चुके हैं। इसके चलते भारतीय साहित्य के अध्ययन एवं आकलन करने का सुअवसर आपको मिला था। इस बृह्द कार्य के संदर्भ में आपके अनुभव जानने की हमें उत्सुकता है?

सि. : 1972 से 1978 तक, पाँच साल, सामान्यतः हर रोज, सुबह नौ से शाम आठ बजे तक साहित्य अकादेमी में, रवींद्र भवन के पहले मजले की अंतिम केबिन में, 'एन्साइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन लिटरेचर' पर काम करता रहा। इंडियाना युनिवर्सिटी, ब्लूमिनाटन, यू.एस.ए.-से 'कंपेरेटिव लिटरेचर' में मास्टर्स और डॉक्टरेट का अभ्यास पूर्ण किया था, फुलब्राइट स्कॉलरशिप साथ, और फोर्ड फेलोशिप से एक साल पॅरिस में 'मेक्बेथ' के अंग्रेज़ी और फ्रेंच विवर्तों पर रीसर्च प्रोजेक्ट किया था, 1968 से 1972 तक। युनिवर्सिटी ऑफ बॉम्बे (1972 से 1976) में दूसरा पीएच.डी. किया था, इमेन्युएल कान्ट और पंडितराज जगन्नाथ के काव्यशास्त्रों की कुछ समस्याओं पर।

तब मिला 'एन्साइक्लोपीडिया ऑफ इन्डियन लिटरेचर' के चीफ एडिटर का काम। मानो तीसरा डॉक्टरल प्रोजेक्ट। मेरे गाइड थे स्वयं प्रो. इंडियन लिटरेचर! वो ही विषय, वो ही गाईड, वो ही परीक्षक! उसी में पाँच साल डूबा रहा! बहुत काम करवाया, बहुत सिखाया, बहुत तालीम दी, नये-नये उपकरण बनाके उनका प्रयोग करने की। पाँच साल पढ़ाई चली। मेरे पुरोगामी प्रधान संपादक ने जो ढाँचा बनाने का आरंभ किया था, मुझे काफी हद तक बदलना पड़ा। संक्षेप में कहूँ तो पूरी संकल्पना का ('भारतीय साहित्य' की एवं 'एन्साइक्लोपीडिया' की संकल्पनाओं का) डीकोलनाइजेशन करना पड़ा। एक उदाहरण: प्रिंस्टन आदि के मॉडल अनुसार यहाँ भी संस्कृत साहित्य का तो विभाग था, परन्तु प्राकृत और अपभ्रंश, पालि और अर्धमागधी का विभाग ही नहीं था। क्यों? — क्योंकि साहित्य अकादेमी में प्राकृत और अपभ्रंश के 'एडवाइजरी बोर्ड' या 'कन्वीनर' नहीं थे! मैंने उन दोनों भाषा साहित्य के अनेक उत्कृष्ट ग्रंथ और अनेक महान लेखकों का समावेश भारतीय साहित्य के हमारे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एन्साइक्लोपीडिया में तब तक था ही नहीं, किया। अर्वाचीन भारतीय भाषाओं में भी किस भाषा को कितना स्थल-विस्तार दिया जाए, कोई ओवर ऑल डिजाइन दिखाई नहीं दिया। हर 'एडवाईजरी बोर्ड' हर 'कन्वीनर' अपनी-अपनी भाषा के साहित्य का इस एन्साइक्लोपीडिया के लिए, एडिटर था। एक उदारचित्त बोर्ड ने अपनी भाषा के 300 से अधिक लेखकों का समावेश किया, अन्य दृढ़ चित्त बोर्ड ने 60 से कम। तीसरी बात, कोई स्टाइलशीट बनाया नहीं गया था: ग्रंथसूची, ग्रंथनाम, ग्रंथकार नाम लिखने की पद्धति, ट्रान्सलिटरेशन की बारीकी आदि। आगे, कौन सी पुस्तक 'साहित्यिक', कौन सी केवल 'धार्मिक', ('गुरु ग्रंथसाहेब' या ऋग्वेद' उदा.), निश्चित करने की भूमिका बनी न थी। काफी मजूरी (मजदूरी) की, ज्ञान गोष्ठियाँ की। काफी तालीम मेरे गुरुजी, जिनका नाम 'भारतीय साहित्य के तीन सहस्राब्द' — था, उन्होंने दी।

दिल्ली में मैं अकेला रहता था। बेटी को फिजियोथेरेपी ही नहीं, फिजिकली चैलेंज्ड विद्यार्थियों के लिए जो विशेष सुविधायुक्त एजुकेशन चाहिए, वो भी बम्बई में ही मिलती थी। परिवार बंबई में था, इसी कारण। उपरांत, मेरे पुरोगामी प्रधान संपादक ने निवृत्ति के बाद, दिल्ली से दूर रहने की सुविधा ले कर, यह प्रोजेक्ट लिया था, सो सेलेरी भी उसी प्रकार थी। मैंने एप्लिकेशन की, सेलेरी बढ़ाओ! रिजेक्टेड! - इतने दशकों बाद हँसी सी आती है!

पाँच वर्ष बीते। बड़ौदा के विख्यात विश्वविद्यालय में, गुजराती विभाग में, महानाम प्रो. सुरेश जोषी जहाँ थे वहीं 'युनिवर्सिटी प्रोफेसर' की जगह खाली पड़ी हुई थी। एप्लिकेशन की! सिलेक्टेड!

एन्साइक्लोपीडिया ऑफ इन्डियन लिटरेचर का स्ट्रक्चरल ट्रान्सफोर्मेशन करने का संतोष लेकर दिल्ली छोड़ा। बीच में एक बार सोवियत यूनियन जाना हुआ था — पुश्किन फेस्टिवल में। मॉस्को के सोवियत लिटरेरी एन्साइक्लोपीडिया के संपादक मंडल से मुलाकात हुई। 'आप मध्यकालीन और प्राचीन ग्रंथों के रचनाकारों के नाम किस तरह तय करते हो? इतने प्रक्षेप, इतने वर्जन, इतनी अनस्टेबल टेक्स्ट्स?!' उन्होंने हमला किया। 'मैं 'हूज हू' का संपादन करता नहीं हूँ' उस वाक्य से शुरू कर, भारतीय साहित्य में 'ऑथर', 'ऑथोरिटी' एवं 'इंटर टेक्स्ट्युएलिटी' के विवर्तों का सेमिऑटिक ओर्बिट कितना गतिशील है, फिर भी कितना स्टेबल है, उस पर गोष्ठी की। 'वादे वादे जाएते तत्त्व बोध:' इस बात का आनंद उन्होंने, जहाँ वाद विवाद को खास प्रोत्साहन दिया नहीं जाता था, ऐसे माहौल में, लिया। मॉस्को से हमें कीअव और रीगा तक जाना था, सो बात ज्यादा चली नहीं। आज याद आई।

ग

पी. ठ. - 19 अगस्त 1941 को भुज में आपका जन्म हुआ। आज आयु के 82 वर्ष के पड़ाव से आप जब पीछे मुड़कर देखते हैं तो आप अपनी विविधता से भरी साहसिक यात्रा को किन आधार बिंदुओं को जोड़कर रेखांकित करना पसंद करेंगे? साहस इसलिए कि आपकी कविता की नींव में साहस के बीज हैं।

सि. : जब मेरे समकालीनों में अपने-अपने कद की तुलना के बारे में स्पर्धा सी होती देखता हूँ, तब अपने आप को कहता हूँ कि भास, कालिदास, माघ; तुलसी, कबीर, नरसिंह; गाँधी, रवींद्रनाथ, अरविंद, आंबेडकर — इन सब पुरोगामियों का कद मीलों में मापना पड़ता है, और हमारा सबों का सेंटीमीटरों में - तब अपनी-अपनी ऊँचाई में कितने मिलीमीटर का फर्क है, उसकी बहस क्या करनी?!

मेरे स्नेहीजन, आप जैसे, एक स्नेहसिक्त दृष्टि से मेरे वाङ्मय कार्य को देखते हैं, क्या कम है, जो भी साहस कर सकता हूँ उसे बिना रोक आगे बढ़ाते जाने के लिए — इस अस्सी के दशक में भी।

घ

पी. ठ. - आप गुजराती भाषा के शीर्षस्थ कवि के रूप में पढ़े एवं पढ़ाये जाते हैं। परंपरा-प्रयोग एवं अनुभव के विभिन्न आयामों को रचती आपकी कविता नित-नवीन भी है और पुरातन का संभ्रम रचती पारंपरिक भी है। आपकी कविता की व्यापकता और गहराई बहुत कुछ समेटे हमारे सामने प्रस्तुत होती है। अपने काव्यलेखन का आपका अपना क्या आकलन है?

सि. : अब तो मेरे व्यक्तिगत वास्तव से अलग ऐसे अपने ही सत्य में जाने के लिए मेरी वाङ्मय रचनाएँ, (कविता, नाटक, आलोचना आदि) मुझसे विदा ले रहे हैं। मुझे अच्छा लगता है। ये कृतियाँ आहिस्ते-आहिस्ते अब मेरी न रहकर आप जैसे बहुत से उत्तम लेखकों, आलोचकों, संपादकों, दिग्दर्शकों, अनुवादकों, प्रकाशकों की हो रही हैं, देखकर एक अद्भुत सेन्स ऑफ लॉस भी होता है, एक सेन्स ऑफ गेइन भी! फिर दोनों सेंसिस आपस में विगलित होती जा रही हैं! - विगलन!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अपनी रचनाओं को उनके रचनाकार की दृष्टि से नहीं, एक पाठक के नजरिये से देखना आसान तो नहीं है, पर कर सके तो करने जैसा काम है। ऐसा करने से अपनी रचनाओं के बहुत से पहलू अपने को आप के सामने खुले कर सकते हैं। इस तरह से देखने का प्रयत्न करता हूँ तब आप के इस मार्मिक प्रश्न को भी ज्यादा समझ पाता हूँ। — हाँ, आपने सही कहा कि पाँच दशकों से चलती आई इन रचनाओं 'नित नवीन भी है और पुरातन का संभ्रम रचती पारंपरिक भी है।' पीयूष, मेरा पूरा लगाव मेरे 'आज और यहाँ' को पूर्णत: जीने पर है। 'विश्वंभर' तो नहीं हो सकता मानव, परन्तु 'अत्रंभर' और 'अद्यंभर' तो हो सकता है। अपने 'आज' के, अपने 'यहाँ' के पूरे विस्तार में बसने का प्रयत्न वाङ्मय साधन से करते ही पता चलता है कि दोनों का विस्तार कितना व्यापक है! इतना ही नहीं, हम सब का 'आज' और हम सब का 'यहाँ', दोनों खुद ही कितने गतिशील है। 'नवीन' अपने में 'पुरातन' को समेटे बैठा है और 'यहाँ' की सीमारेखा कितनी बदलती रहती है।

दूसरी बात भी है, मिथक और इतिहास के पात्रों, प्रसंग आदि का एक नये ढंग से आलेखन करने में। फ्रेडरिक जेमसन जिसे 'पॉलिटिकल अनकॉन्शियस' कहते हैं, ऐसे कई फेक्टर्स और फोर्सिस हमारे वर्तमान स्थल और काल की 'टेक्स्ट' के तले, पालिम्पसेस्ट से, पड़े हैं। एक कवि और नाट्यकार होने का अर्थ मेरे लिए इन गहराइयों में साहस से, स्नेह से, निर्भयता से, अपनेपन से जाना, जाते रहना, वो है। अगर मेरा और मेरे समकालीनों का वास्तव बहुस्तरलेखन सा है तो मेरा वाचन (मेरी साहित्यरचना- रूप वाचन) भी बहुस्तरवाचन है! साइकोलोजीकल और पोलिटिकल अनकॉन्शियस; पर्सनल और कलेक्टिव अन्कॉन्शियस – मेरा 'मोंए जो दड़ो' काव्य तो आपने पढ़ा है। दशकों पुरानी रचना है। 'वखार' नयी सी है। 'धेरो' भी उन बीच। तीनों में 'आज और यहाँ' का एक्सप्लोरेशन है। कल और कहाँ तक ले जाता है!

पी. ठ.- आप नाट्यकार भी हैं। आपके लिखे नाटकों ने आधुनिक रंगभूमि की प्रयोगशीलता को विस्तारा है एवं भारतीय रंगभूमि की परंपरा को आगे बढ़ाया है। अभी हाल ही में आपका लिखा नाटक *अश्वत्थामा* छप कर आया है। कविता और नाट्यलेखन में अपने आपको आप किन मायनों में प्रवृत होते देखते हैं?

सि. : काव्यलेखन की रूढ़ि बनने लगे तो नाट्यलेखन से उस को इरेज कर लेता हूँ, नाट्यलेखन की रूढ़ि बने तो काव्यलेखन से उसे मिटा देता हूँ। साथ में ही, आश्चर्य तो ये है कि कविता नाटक में, नाटक कविता में छिप कर उस इरेजर से अपने को बचा लेतें हैं! — तब अनुभव होता है कि रूपरचना और प्रतिबद्धता, कला और वास्तव परस्पर ऐसे ही तनाव के बिना जी ही नहीं सकते! अकेले हो गए, ये रूपरचना और ये प्रतिबद्धता, तो दोनों मृतवत् होंगे! – रंगभूमि पर ये सब प्रत्यक्ष होता है, प्रयुक्त होता है।

च

पी. ठ. – समकालीन गुजराती साहित्य के प्रवाह को आप किन दिशाओं में अग्रसर देखते हैं?

सि. : मुझे पता नहीं है। अच्छा ही है कि ऐसा है। बट आइ होप इट वुड सरप्राइस मी। एस्टोनिश इवन। जैसे ये अंग्रेजी वाक्य यकायक आ पहुँचा, न जाने कहाँ से। न जाने कहाँ से नया गुजराती साहित्य किस तरह यहाँ आएगा। अपरिचित सा हो तो अच्छा। जैसे अपने हनीमून से लौटा बेटा या बेटी कुछ अपरिचित से लगते हैं, ऐसा। गुजराती साहित्य की शादी जल्दी हो जाए तो अच्छा, अच्छा सा हनीमून। ऐसे ही तो भारतीय साहित्य का परिवार बढ़ेगा; विश्व साहित्य का। फेमिली रिसेम्बलन्स अच्छी बात हो सकती है, क्लोनिंग बहुत बुरी चीज है।

शुभाशीष। मुक्त हो, अनागत!

(संवादकर्ता-समकालीन गुजराती साहित्य सृजन और अनुवाद में आधुनिक चेतना के प्रतिनिधि।)

सम्पर्क -
सितांशु यशश्चन्द्र : 9228187436
बसंत जोषी : 91 94269 87882
पीयूष ठक्कर - : +91 97260 68447

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कवि अशोक वाजपेयी से लीलाधर मंडलोई की बातचीत

कविता इस समय सत्याग्रह है : उसका धर्म है सच बोलना, बिना डरे या संकोच किए और स्वतंत्रता, समता-न्याय के मूल्यों की हिफ़ाज़त करना - अशोक वाजपेयी

(भारतीय साहित्य और कलाओं की आबरू के संवर्धन में फ़िक्रमंद और सक्रिय रचनाकार। हिंदी कविता और आलोचना के लहजे को लोकतांत्रिक और समावेशी देखने के पक्षधर। समय के अलक्षित वस्तु सत्य को लक्ष्य करते तत्सम के विरल लेखक।)

कविता का आपका कैनवास अधिक खुला, लोकतांत्रिक और विविध है। नए वस्तु जगत में जाने के लिए आपके भीतर कौतूहल, विस्मय और चिंतन की अंत:क्रिया का जो ईमानदार जगत है, उससे आग़ाज़ करें?

मेरे कविता के वितान को 'खुला, लोकतांत्रिक और विविध' पहचानने-कहने के लिए आभार। अक्सर उसके बारे में ऐसी शिनाख्त नहीं की गई है। मुझे शुरू से ही लगता रहा है कि वस्तु जगत और कविता का संसार दोनों ही कौतूहल और विस्मय उपजाते हैं। इस समय संसार से दोनों तत्त्व गायब हो गए या कर दिए गए हैं! कविता में उनका, किसी हद तक, पुनर्वास एक उचित और ज़रूरी काव्ययत्न हो सकता है। मैंने इसकी कुछ कोशिश की है। आखिर कविता में जाना हुआ और न जाना हुआ भाषा में आकर विस्मित ही करते हैं। जाहिर यह सभी पहले से सोचकर नहीं होता : अकस्मात् हो जाता है पर जब होता है तो कविता को एक तरह की दीप्ति मिल जाती है।

बड़े गुलाम अली खान ने रेडियो पर एक गुफ़्तगू में कहा था - मैं सुर को देखकर, पकड़कर गाता हूँ। क्या कविता लिखते हुए आप भी इसी प्रक्रिया से गुज़रते हैं?

कविता और संगीत में कई समानताएँ हैं पर कुछ बुनियादी अन्तर भी हैं जो दोनों के रूपाकार को एक-दूसरे से अलगाते हैं। सुर का अपने-आप में कोई अर्थ नहीं होता और संगीतकार उसमें मनचाहे अर्थ का निवेश कर सकता है। कविता में शब्द या आत्यन्तिक अर्थ भी होता है जिसे कवि रूपान्तरित कर सकता है पर उसके मूल अर्थ का प्राय: अतिक्रमण नहीं कर सकता, भले उसे जरूरत के अनुसार थोड़ा दबा दे। कभी किसी बिम्ब से, कभी किसी शब्द से, कभी 'किसी लयात्मक हलचल से, आप कविता रचना शुरू करते हैं और जैसे-जैसे वह आगे रची जाती है वैसे-वैसे वह स्वतन्त्र भी होती जाती है और कई बार तो अपने प्रस्थान-बिन्दु से इतनी दूर चली जाती है कि उस बिन्दु से उसका संबंध या संवाद समाप्त तक हो जाता है। एक और संगीतकार उस्ताद अली अकर खाँ ने कभी कहा था कि थोड़ी देर तो वे सरोद बजाते हैं और फिर सरोद उन्हें बजाने लगती है। कविता में भी ऐसा कुछ होता है : थोड़ी देर कवि उसे लिखता है, फिर कविता उसे लिखने लगती हैं। कवि के लिए यह आह्लाद और विस्मय का, साथ ही विनय का मुकाम होता है।

कविता और उससे इतर कलाओं से आपका रोमांस प्रकृत है अथवा सुप्रयास अर्जन?

अगर आपको याद हो तो मेरे पहले कविता संग्रह 'शहर अब भी सम्भावना' में जो 1966 में प्रकाशित हुआ था, अली अकबर खाँ के सरोदवादन, मकबूल फिदा हुसेन के एक चित्र, खजुराहो और शमशेर बहादुर सिंह के पहले कविता संग्रह पर कविताएँ हैं। तो मेरे संवेदना और सृजन के जगत में कलाएँ लगभग शुरू में ही आ गई थीं। मुझे उनका होना कविता का अनिवार्य, आत्मीय और सुन्दर पड़ोस लगता था। तब मेरी जानकारी और अनुभव कम थे। 1960 से 1965 तक जब मैं दिल्ली में स्नातकोत्तर छात्र और फिर अध्यापक के रूप में रहा तो मैंने अपनी संस्कृति साक्षरता को गहरा और समझदार बनाने का प्रयास किया। उस दौरान दिल्ली में ऐसी कोई कला प्रदर्शनी, कोई शास्त्रीय संगीत सभा, कोई शास्त्रीय नृत्य प्रस्तुति, कोई नाटक आदि, शायद ही हुए हों जिन्हें मैंने न देखा हो। यह सुखद संयोग था कि इस तरह मैं अपने समय के अनेक मूर्धन्यों जैसे बाल सरस्वती, पण्डित रविशंकर, उस्ताद विलायत खाँ, उस्ताद

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अमीर खाँ, उस्ताद बड़े गुलाम अली खाँ, वेदान्तम सत्यनारायण शर्मा, गंगूबाई हंगल, यामिनी कृष्ण मूर्ति, उस्ताद बिसमिल्लाह खाँ, शम्भु मित्र, हबीब तनवीर, इब्राहीम अलकाजी के नाटक, बिरजू महाराज, रामकुमार, ग्रुप 1890, सतीश गुजराल आदि की प्रदर्शनियाँ साक्षात देख-सुन पाया। कलानुराग ही कथक नर्तकी रश्मि से प्रेम और विवाह में परिणत हुआ।

कविता में जो हमारा अपूर्ण है, वह किसी एक या दूसरी कविता की अभिव्यक्ति में क्या संपूर्ण की तरह आ पाता है? इस बिंदु पर आत्मस्वीकार का अपूर्ण उद्‌घाटित होने से सदैव छूटा रहता है। इस स्थिति में आप क्या सोचते हैं?

जो अधूरा छूट जाता है वह, कम से कम मेरे यहाँ, कभी कहीं पूरा नहीं हो पाता। कई बार सुगठन कविता में रसे-बसे अधूरेपन को ढाँप देता है। पूर्णता और उसकी आकांक्षा अनिवार्यत: सपने के अहाते में आते हैं, सचाई में वे हमेशा छूटते रहते हैं। मुझे यह आत्मस्वीकार करने में कोई संकोच नहीं है कि मेरी जीवनकथा और काव्यकथा दोनों ही अधूरेपन की गाथा हैं।

आपकी कविताओं में आब्जेक्ट के साथ सब्जेक्ट की जुगलबंदी होती है या ऐसा होता है कि सब्जेक्ट के साथ कल्पना में आब्जेक्ट मूर्त होता रहता है?

मुझे सब्जेक्ट-आब्जेक्ट के युग्म की कविता के सिलसिले में कोई खास समझ बल्कि अनुभव भी नहीं है। इसी तरह, कब मूर्त अमूर्त के अहाते में दाखिल हो जाता है और कब अमूर्त के परिसर में मूर्त घुसपैठ करने लगता है, यह कहना मुश्किल है। अज्ञेय का मुहावरा लेकर कहूँ कि दोनों 'चिर सखा, बन्धु मेरे।' याद आता है कि कभी समझा था कि एमिली डिकेन्सन की कविता में मूर्त इतनी दूर ढकिल जाता था कि अमूर्त लगने लगता था और अमूर्त इतने पास आ जाता था कि मूर्त लगने लगता था। शायद मैंने कुछ कोशिश इसकी की है। ज़्यादातर अनायास ही, स्वत:स्फूर्त ढंग से।

हर कवि के साथ यह होता है कि जब वह प्रकृति के साथ या उसमें रहते हुए कविता लिखता है तो जो तत्त्व दृश्य, ध्वनि, रंग, लय, गति, गंध-सुगंध और संगीत के साथ होते हैं, वे पूरी तरह बरामद नहीं होते। क्या समकालीन कविता को पढ़ते हुए आपको ऐसा लगता है?

कवि को पूरी तरह से बरामद तो कुछ नहीं होता : वह जो पाता है, अगर प्रतिभाशाली और अध्यवसायी, संवेदनशील और नवाचारी हुआ, वह हमेशा नाकाफी होता है। हम प्रकृति से लगातार घिरे होने के बावजूद उसे आज कविता में अलक्ष्य करते हैं : आज हमारी ज़्यादातर कविता प्रकृति से दूर छिटक गई कविता है। क्या यह आश्चर्यकारी नहीं है कि अज्ञेय हमारे लगभग अन्तिम बड़े कवि हैं जो प्रकृति के कवि भी थे! कभी कभी कहीं दूरदराज़ में रहने वाले युवा कवियों में, आदिवासी कवयित्रियों में प्रकृति का सहज-सजल सान्निध्य नज़र और अनुगुंजित होता है तो वह प्रीतिकर अनुभव होता है। संयोगवश, कोविड प्रकोप और लम्बे लॉकडाउन के दौरान हमने देखा कि प्रकृति मनुष्य की यंत्रणा से निरपेक्ष अपनी गति से चल रही है- हरी हो रही, खिल-खिलखिला रही है।

अभिधा में अक्सर महदूद हो गई हमारी ज़्यादातर कविता ध्वनि-रंग-लय-गति-गंध, सुगंध और संगीत पर, हर कुछ पर फैसला देखते देने की तेजी में, ध्यान तक नहीं देती उन्हें कविता में लाने और सक्रिय करने की बात तो दूर!

कवि की भीतरी और बाहरी दुनिया में जो हमआहंग संधिस्थल अपेक्षित है यानि एक होने की जो न्यूनतम ज़रूरी शर्त है, वह आपकी दृष्टि में कैसी हो?

कविता के सन्दर्भ में यह संधिस्थल लगभग अनिवार्य और स्वाभाविक होता है। उसमें अक्सर बाहर-भीतर का द्वैत या भेद पिघल जाता है : कविता भीतर और बाहर की निरन्तरता में अपने को अवस्थित करती है। अन्दर बाहर का, और, बाहर अन्दर का, विस्तार हो जाते हैं। दोनों में जब-तब तनाव और अन्तर्द्वन्द्व भी होता है : वे कविता को समृद्ध ही करते हैं। हमारे समय में यह द्वैत शायद अधिक तीखा और तेज़ हो गया है और कविता को इसे संबोधित कर सकना चाहिए। आज की कविता में कभी-कभी ऐसा संबोधन जरूर कौंधता है। 'हम आहंग संधिस्थल' शायद बारीक होता है और आसानी से पकड़ में नहीं आता। कविता आजकल इस धरपकड़ के लिए धीरज नहीं जुटा पाती : वह अक्सर कविता है, जो जल्दी में है। उसमें सूक्ष्मता और जटिलता के लिए अवकाश लगातार घटता गया है। वह कई बार परिणति पर पहुँचने की हड़बड़ी में प्रक्रिया से मानो गुज़रना ही नहीं चाहती: अधिकांश अच्छी कविता प्रक्रिया में होती है, परिणति में नहीं। कविता वैसा तर्क नहीं है जिसे परिणति पर पहुँचना आवश्यक हो या जिसकी बौद्धिक आवश्यकता हो।

कवि होने के लिए बुनियादी भावदशा में उसका होना या

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसे पाना कितना आवश्यक है और क्यों?

बुनियादी भावदशा कुछ गोलमोल सा पद या अवधारणा है। हर कवि का अपना स्वभाव होता है : वह पहले से दिया हुआ उतना नहीं होता जितना वह रचने की प्रक्रिया में बनता है। यह स्वभाव, फिर, एक तरह का गेटकीपर बन जाता है और कविता में क्या आए और न आए इसका निर्णय लेने लगता है। उसे आत्मप्रश्नांकित करना कविधर्म है। कवि अपने स्वभाव की कारा में नहीं रह सकता : उसे निरन्तर अधिक समावेशी, अधिक पर्युत्सुक, अधिक गृहणशील बनाने की चेष्टा करता रहता है ताकि वह एक खुला उदार स्पेस होता रहे। स्वभाव कई बार कवि की रूढ़ि या उसका मैनरिज़्म भी बन जाता है। हमारे यहाँ विनोद कुमार शुक्ल से लेकर कई कवि इसके दुखद उदाहरण हैं।

कविता जिस धड़कती भाषा में लिखे जाने की प्रत्याशा में होती है, वह आज कितनी है और अगर नहीं तो न होने के क्या कारण हैं अथवा हो सकते हैं?

आज कविता फड़कती, कड़कती, अकड़ती, सड़कती [अगर ऐसा एक शब्द अनायास गढ़ लिया जाये] भाषा में तो लिखी जा रही है। पर उसका अधिकांश धड़कती भाषा में नहीं है : उसमें जीवन की कई धड़कनें सुनाई नहीं देतीं। जीवन में फड़कन, कड़कन, अकड़न और धड़कन सब निश्चय ही हैं पर उसमें जो अपराजेय अनाक्रान्त धड़कन है वह कविता की काया में विन्यस्त होती नहीं लगती। यह भी जोड़ दूँ कि बुढ़ाते हुए, हो सकता है, यह धड़कन हैं तो पर मुझे सुनाई नहीं दे रही है। जीवन एक विशद व्यापार है : वह समय और समय के पार फैला हुआ है और वह कविता से कहीं बड़ा है। पूरा जीवन कविता में कभी कहीं आ नहीं सकता। उसकी धड़कन बल्कि धड़कनें, अलबत्ता, कविता में आ सकती हैं, आना चाहिए। इधर की कविता में अतियथार्थ तो नहीं, अतिरिक्त नाटकीयता आ गई है : हम कविता में कुछ मुद्राएँ बनाते हैं जो कि प्रभाव डालती लगती हैं। तुरन्त प्रभाव, तुरन्त सफलता से अक्सर सार्थकता की हानि होती है। जीवन की धड़कनों को पकड़ना-सुनना-चरितार्थ करना जैसे कविकौशल और धैर्य की माँग करता है उसका आज व्यापक अभाव है। ऐसी धड़कनें निरी अभिधा के अहाते में सुनी नहीं जा सकती।

कवि बिल्कुल आज में कम साँस लेते हैं या कहें युगबोध की जैसी बेख़ौफ़ अभिव्यक्ति उसे कविता में करना चाहिए, वह अधिकतर संकेतधर्मी होकर चश्मदीद गवाह होने से बच जाती है, क्या आपको ऐसा लगता है?

आज युगबोध क्या हो यह थोड़ा जटिल मामला है और उसका कोई एक उत्तर संभव नहीं है। हम अपना युग तो शायद नहीं चुन सकते पर अपना बोध चुन सकते हैं। यह कभी-कभार एक तरह की आत्मतुष्ट या आत्मबंधित अराजकता में भी बदल जाता है। तरह-तरह के युगबोध हैं और वे परस्पर विरोधी हो सकते हैं, हमारे समय में हैं भी। हमारे लोकतांत्रिक समाज में एक बड़ा वर्ग ऐसा है जिसका युगबोध इसमें है कि यह युग हिन्दुओं के वर्चस्व का है और उसको सशक्त करने के लिए अपने धार्मिक दूसरों की बलि देना, उन्हें भारत में दोयम दर्जे का नागरिक बनाना जरूरी है, भले यह हमारे संविधान के प्रावधानों और आत्मा के सर्वथा विरुद्ध है। एक और वर्ग है जो सामाजिक और आर्थिक विषमताओं से उद्वेलित होकर समता स्थापित करने के लिए हिंसा का सहारा लेना आवश्यक मानता है। एक युगबोध यह भी है कि हमें पश्चिम से, उसकी संदिग्ध सार्वभौमिकता के छद्म से अपने को मुक्त कर अपनी भारतीय अस्मिता स्थापित करना चाहिए। ऐसे में यह सोचना रोचक होगा कि क्या साहित्य मात्र का अपना कोई युगबोध है जिसे हम सब लेखक साझा कर सकते हैं। मुझे लगता है कि ऐसा युगबोध है जो संविधान द्वारा प्रस्तावित मूल्यत्रयी स्वतंत्रता-समता-न्याय को अपने लिए अनिवार्य मानता है – सच्चाई को पहचानने और उसकी जाँच-परख दोनों के लिए। यह युगबोध हमारे साहित्य में सक्रिय रहा है और आज भी है। आज भारतीय लोकतंत्र और उसकी सत्ता केन्द्रित राजनीति और व्यवस्था में ऐसा युगबोध स्वीकार्य नहीं है : उस पर इसरार आपत्तिजनक माना जा सकता है। जब सत्ता लगातार असहमति को दबा और नागरिकों को तरह-तरह से डरा रही हो तो युवाओं का उससे आतंकित होना अब अस्वाभाविक तो नहीं है पर साहित्य के सन्दर्भ में उपयुक्त और नैतिक नहीं है। ऐसे कुसमय में साहित्य को साक्ष्य होना होगा और अन्तःकरण का बुर्ज भी। अभिधा-प्रेमी युवा वह होने से अगर बच रहे हैं तो यह नैतिक कायरता है और अनैतिक सुरक्षा कामिता।

पूँजीवाद के रास्ते एक भयावह क्रूर, निष्ठुर, वेगवान और हिंसक समय अपने अलक्षित आयुधों पर सवार, हमारे सामने है। प्रेम, करुणा, उदारता, नैतिकता और घृणा तक हमारी आत्मा से जैसे विदाई के सरहद पर अस्मिता के लिए

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संघर्षरत हैं। ऐसे हालात में कवि अपनी आत्मा का संरक्षण कैसे करे ?

कवि की आत्मा अवेध्य नहीं है और वह समय-समय पर उसकी दृष्टि से विकसित-सक्रिय और विचलित होती रहती है। अगर एक ओर वह कविता में विन्यस्त होती है तो दूसरी ओर कविता भी उसे रचती-गढ़ती रहती है। आज जब झूठ-झाँस में, घृणा और भेदभाव, अन्याय और अत्याचार हमें चारों ओर से घेर रहे हैं अपने को बचा पाना आत्मा और कविता दोनों का धर्मयुद्ध है, इन सबके विरुद्ध। वह कविता के मोर्चे पर लड़ा जा रहा है और नागरिकता के मोर्चे पर भी। ऐसा बहुत कुछ मानवीय और वांछनीय है जो हो सकता कविता में बचे लेकिन नागरिकता में नष्ट नहीं तो बहुत लहूलुहान, क्षत-विक्षत हो जाये। अगर कवि में साहस, प्रेम-सद्भाव-न्याय-स्वतंत्रता समता के लिए पक्षधरता नहीं है तो वह दोनों मोर्चों पर याने आत्मा और कविता दोनों में पराजित होगा। उसे सिर्फ अपनी आत्मा और कविता भर को नहीं बचाना है, व्यापक सन्दर्भ में कुछ मूल्यों को भी बचाना और सशक्त करना है। इसका कोई एक रास्ता नहीं है पर लगता है कविता भाषा की सभी शक्तियों का इस्तेमाल करके ही संघर्ष, सच्चा और टिकाऊ, कर सकती है।

सृष्टि अनेक संकटों से घिरती जा रही है। पर्यावरण विनाश की कगार पर है। जैव पारिस्थितिकी ख़तरों की ज़द में है। युद्ध और विस्थापन की त्रासदी न केवल मनुष्य अपितु प्रकृति के संतुलन में धरती से आकाश तक सेंध लगा चुकी है। ऐसे आशंकित शोकसमय में कविता की भूमिका क्या होनी चाहिए ?

पर्यावरण को लेकर विश्वव्यापी चिन्ता है पर अक्सर वह हमारे दैनन्दिन व्यापार में, विकास की हमारी अवधारणाओं और उपायों में शामिल और सक्रिय नहीं है। ऐसी स्थिति में कविता प्रकृति से एक नए और जीवनग्राही संबंध का एहसास और दबाव, मनुष्य और प्रकृति की समरसता और संवाद की नई सम्भावना का संकेत कर सकती है। परस्परता और आदर का, प्रकृति की पवित्रता का भाव जगा सकती है।

आपकी कविता में भाव और विचार की रागदारी और लयकारी में कौन से अदृश्य सूत्र होते हैं?

जो भी सूत्र हैं उन्हें मैंने जानबूझ कर अदृश्य नहीं रखा है : वैसा होना उनकी नियति है। ऐसा कम होता है कि विचार भाव को जन्म दे। अक्सर तो भाव ही विचार का जनक है। शायद कविता में वही विचार उचित और सटीक होता है जो इसके रागसिक्त भावबोध से उपजता-उमगता है। हमारे यहाँ इसके श्रेष्ठ उदाहरण निराला, अज्ञेय और मुक्तिबोध हैं। निराला ने शायद ही कभी कोई विचार लेकर कविता लिखी हो लेकिन अज्ञेय और मुक्तिबोध ने लिखी है। दोनों के यहाँ जब-जब विचार राग सिक्त भावसिक्त है वह प्रभावशाली लगता है और जब-जब वह ऐसी सिक्त या आसक्ति में रसा-बिंधा नहीं होता तो निष्प्राण लगता है।

आप अपनी कविता के शास्त्रीय गायक हैं। इतनी लंबी यात्रा में आपके बेताला हो जाने की कुछ या कोई याद है। या किसी कविता में भीतर से कोई चेतावनी सुनाई दी हो ?

अभी तक मुझे ऐसी चेतावनी कविता के भीतर से आती सुनाई नहीं पड़ी है और इसलिए अब भी अबाध लिखे जा रहा हूँ! लिखना आदत और जरूरत दोनों है। वह लगभग जीने का पर्याय हो गया है। इधर मेरी कविता में कई नए अनुभव आए हैं। खासकर कोविड प्रकोप और उससे प्रगट हुई अक्षम्य क्रूरता को लेकर। कविता इतनी चेतावनी तो देती ही रहती है कि ''मनुष्यो! प्रकृति, मानवीय संबंधों, ब्रह्माण्ड-चेतना का साथ मत छोड़ो : थको, पर हारो नहीं।''

क्या लेखन को प्रकृत लोक में एक बार फिर से लौटने की दरकार है ताकि मानव जाति का जो विदीर्ण आत्म यथार्थ है उसमें कुदरती भाव संपदा से एक रिश्ता पुनः क़ायम हो सके ?

'विदीर्ण आत्म यथार्थ' कविता किसी तरह से रफ़ू कर सकती है यह एक लुभावना पर जरूरी भ्रम है। हमें जो मिला है वह बहुत है, हमने जो दिया है वह बहुत कम है। इसलिए हम पर ऋण चुकाने की ज़िम्मेदारी तो है। इधर कविता दूसरों को ज़िम्मेदार ठहराने पर इतनी अड़ गई सी लगती है कि उसे अपनी शिरकत समझ में नहीं आती या दिखाई नहीं देती। ऐसी नैतिक अबोधता कवि की मानवीयता में कटौती करती है। प्रकृति में लौटना बहुत मुश्किल है। पर वह ऐसी मुश्किल है जिसे कविता को पार कर सकना चाहिए : उसके पास कल्पना और स्वप्नशीलता है तो वह पार जा सकती है।

हमारी कविता का कौन सा अंतः विरोध प्रमुख है या कहें

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

है जिन पर काम होना ज़रूरी लगता है?

एकदम से जो सूझता है वह यह है कि सचाई बदल रही है पर उसे कविता में विन्यस्त करने वाले रूपाकार नहीं बदल पा रहे हैं : कविता उत्तराधिकृत रूपों में ही, ज़्यादातर, लिखी जा रही है। यह सिर्फ़ शिल्प की अवज्ञा का मामला नहीं है बल्कि यह बदली हुई सचाई के साथ एक तरह का विश्वासघात है। दूसरा अन्तर्विरोध यह नज़र आता है कि कविता के विषय को उसका अर्थ मान लिया जा रहा है : यह पाठक नहीं स्वयं कवि भी कर रहे हैं। कविता अपने घोषित विषय से बिलकुल अलग या विपरीत जा सकती है, इस संभावना की अनदेखी हो रही हैं। प्रेम की कविता संसार को अलग ढंग से महसूस करने का न्योता हो सकती है।

कविता और गद्य की भाषा को सामने रखकर आप दोनों में किस बुनियादी फ़र्क को देखना या पढ़ना चाहेंगे?

दशकों पहले फ्रेंच कवि पॉल वैलेरी ने कविता और गद्य की भाषा में अन्तर करते हुए कहा था कि कविता नृत्य की तरह होती है—वह वहीं रहती है और कहाँ-कहाँ को छू आती है। इसके बरक्स गद्य चलने की तरह है जहाँ आप वहीं नहीं रहते और यहाँ-वहाँ जाते रहते हैं। आधुनिकता के दौर में, जो इन दिनों उत्तर-आधुनिकता आदि कई नामों से अभिहित किया जाता है, कविता और गद्य के बीच आवाजाही बहुत तेज़ और सार्थक हुई है। गद्य कविताएँ लिखी गई हैं— मैंने भी लिखी हैं और निर्मल वर्मा, कृष्ण बलदेव बैद, कृष्णा सोबती, रेणु आदि के गद्य में कई बार कविता जैसी अनुभूति होती है।

आपकी कविता तत्सम में अधिक है और तद्भव से दूर होती जा रही है। इसके पीछे क्या कोई सुविचारित कारण है?

तत्सम के प्रति मेरे मन में बहुत आकर्षण है : वह हमारी जातीय स्मृति के एक बड़े हिस्से को कविता की काया में पुनरायत्त करता है। उसमें संक्षेप की अद्भुत क्षमता है। मैंने विधिवत् संस्कृत बी. ए. तक पढ़ी है और संस्कृत की महान् कविता, उसकी दार्शनिक विपुलता, उसमें अनुस्यूत भारतीय निर्भयता आदि मुझे अपने उत्तराधिकार का अंग लगते हैं। मेरी कविता में वेद, कालिदास, भवभूति आदि की अन्तर्ध्वनियाँ हिन्दी आलोचना में अनसुनी गईं : दो ही अपवाद हैं — श्रीराम वर्मा और पोलिश विदुषी रेनाता चेकाल्स्का। हिन्दी कविता विशेषत: रघुवीर सहाय के बाद और उनके प्रभाव में बेहद अख़बारी होती गई है। मैंने अपनी कविता को कोशिश कर इससे बचाने की कोशिश की और इसमें तत्सम काम आया। पर मेरी कविता में कबीर, ग़ालिब आदि की भी स्मृतियाँ हैं, इसे ध्यान में लाना ज़रूरी है। तत्सम सिर्फ़ शब्दों और पदों तक सीमित नहीं है : उसमें कई काव्यरूप भी शामिल हैं जिनका मैंने अपनी दृष्टि के अनुरूप समायोजन किया है, विशेषत: प्रेम-कविता में।

किसी भी कला का यह महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि जो आज तक रचा है उससे मुक्त हो जाओ ताकि नया रचा जाना संभव हो सके। आपकी रचना प्रक्रिया में यह कैसे संभव होता है?

यह एक मुश्किल समस्या है। नए का ऐसा आतंक सा है कि आपको हर कवि से यह अपेक्षा होती है कि वह हर बार कुछ नया करे। बड़ी मुश्किल से कोई कवि अपना एक मुहावरा विकसित करता है और उसे विस्तार देता रहता है, यथावश्यक बदलता भी करता रहता है। पर कई बार ये परिवर्तन बहुत बारीक होते हैं। मैंने ही अभिधा का अधिकतर निषेध करने के बाद अपने पिछले तीन-चार कविता संग्रहों में उसका सहारा लिया है। कविता में एक तरह की शास्त्रीयता रचने की चेष्टा भी अधिकतर अलक्षित गई है। ऐसे समय में जब शास्त्र और परंपरा का खुलेआम अन्यायपूर्ण दुरुपयोग किया जा रहा हो तो ऐसी शास्त्रीयता की प्रासंगिकता है, वह भी प्रतिरोध है। यह सब कुछ एक प्रवाह में होता है और कई बार बहुत अन्त:सलिल ढंग से प्रगट होता है।

युवा पीढ़ी के लिए कला आस्वादन और सौंदर्य बोध में विकास का कोई ज़रिया नहीं बन सका है। इसमें शासकीय और गैर-शासकीय इच्छा और प्रयास की कमी को किस तरह देखते हैं?

हिन्दी अंचल सांस्कृतिक दृष्टि से देश का सम्भवत: सबसे विपन्न अंचल है। आज वह हिंसा-हत्या-बलात्कार में, स्त्रियों-बच्चों-अल्पसंख्यकों-दलितों के प्रति हिंसा और बदसुलूकी में देश में सबसे ऊपर है। इसी अंचल से हिन्दुत्व नामक हिंसक-हत्यारी मानसिकता और घृणा फैलानेवाली राजनैतिक विचारधारा को सबसे अधिक समर्थन मिल रहा है। संस्कृति के नाम पर तरह-तरह के साम्प्रदायिक और छिछली धार्मिकता से उत्प्रेरित तमाशे होते रहते हैं। इस परिस्थिति में हिन्दी की युवा पीढ़ियों को संस्कृतिवंचित, अध्यात्मरहित बनाने की जिम्मेदारी हमारी पीढ़ियों की है : हमने निजी और सार्वजनिक स्तर पर, शिक्षा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

में, सामाजिक व्यवहार में संस्कृति, कला और साहित्य को हमेशा हाशिये पर रखा। हिन्दी में इस समय कम-से-कम पाँच पीढ़ियाँ सक्रिय हैं: उनमें से कितने लेखक हैं जिन्होंने संस्कृति के जीवित रूपों में, संगीत-नृत्य-रंगमंच-ललित कलाओं में कोई रुचि ली या फैलाने का प्रयत्न किया? अपनी जनसंख्या के बल पर भले हम देश में सबसे ऊपर हैं पर इन सभी कलाओं में हम आनुपातिक रूप से बहुत पीछे हैं। बंगाल-महाराष्ट्र-कन्नड़, कर्नाटक-केरल-तमिलनाडु-असम आदि से। हिन्दी में कलाओं पर, कलाकारों पर कितनी पुस्तकें और कितने पाठक हैं?

हमारे देश में अनुवाद की सुचिंतित संस्कृति के विकास का आज़ादी के बाद से अब तक कोई रोड मैप नहीं है, इस अभाव से साहित्य की आपसदारी में बने शून्य को पाटने का कोई विकल्प नज़र आता है?

अब फिर हिन्दी को इस मामले में विपन्नता का जिक्र करना होगा। दरअसल हिन्दी यों भारत की सबसे आतिथेय भाषाओं में है और उसमें जितने अनुवाद प्रकाशित होते हैं उतने दूसरी भाषाओं में कम होते हैं। आप हिन्दी से यह जान सकते हैं कि मोटे तौर पर भारत में क्या साहित्य लिखा जा रहा है और उसके प्रमुख लेखक कौन हैं। लेकिन दूसरी भाषाओं में हिन्दी में अनुवाद हिन्दीभाषी दूसरी भाषाएँ सीखकर नहीं करते : अधिकांशतः अन्य भाषाभाषी हिन्दी सीखकर अपनी मातृभाषा के साहित्य का अनुवाद हिन्दी में करते हैं। हिन्दी में उदारता और गृहणशीलता तथा संकीर्णता एक साथ हैं। फिर, व्यापक रूप से भारत में अनुवाद की प्रतिष्ठा कम ही है, अगर आप पश्चिम से तुलना करें। वहाँ अनुवादक को प्रतिष्ठा और मान्यता है, हमारे यहाँ नहीं। अभी गीतांजलि श्री के उपन्यास के अंग्रेज़ी अनुवाद के कारण उसे जो बुकर पुरस्कार मिला है उसका शायद कुछ प्रभाव अनुवाद की मान्यता और प्रतिष्ठा पर पड़े। लेकिन अनुवाद के अलावा साहित्य में आपसदारी बढ़ाने के अन्य प्रयत्न होते रहे हैं जिनमें तरह-तरह के साहित्य समारोहों की कुछ भूमिका है।

क्या हमारी कविता समय के संश्लिष्ट यथार्थ को भेद पा रही है?

यथार्थ संयोग से सिर्फ़ संश्लिष्ट भर नहीं जटिल और सूक्ष्म भी होता है। उसकी विपुलता और बहुलता तो पकड़ में आ जाती है, कई बार सूक्ष्मता और जटिलता हाथ नहीं आती। कोई सामान्यीकरण उचित नहीं होगा पर यथार्थ का ख़ासा सतही विन्यास आम तौर पर होता नज़र आता है। यथार्थ की बहुत इकहरी धारणा और व्यवहार प्रचलन में है। इसे लेकर कोई आत्मालोचक चिन्ता भी लेखकों में कम ही दिखाई देती है। कविता का अपना यथार्थ भी खासा सीमित और सतही नज़र आता है। आज जब हमारे पास यथार्थ को जानने-समझने के माध्यम कहीं अधिक सुघर और सूक्ष्म हैं, हमारी कविता में यथार्थ, लोकप्रिय रूढ़ियों से बाहर और परे, कम होता जा रहा है। यथार्थ कविता से अधिक तेजी से बदल रहा है।

सोशल मीडिया के प्लेटफॉर्म पर कविता का जो रूप-स्वरूप बन रहा है, उसके भविष्य पर कोई टिप्पणी?

भविष्य इतना अकल्पनीय है कि उसे लेकर कोई टिप्पणी करना उचित नहीं है। सोशल मीडिया के प्लेटफार्म पर कविता के नाम पर जो हो रहा है उसमें एक अधीर तात्कालिकता और उत्तेजना तो है पर उस पर जो रचनाएँ आती हैं उनमें से अधिकांश तुरन्त ही और बहुत जल्दी ध्यान से ओझल हो जाती हैं। उनका कुछ प्रभाव जरूर पड़ता है। पर अभी मुझे उन पर कोई फैसला देना अपरिपक्व लगता है जैसे कि वे भी ज़्यादातर अपरिपक्व रचनाएँ हैं।

विश्व कविता से पाठ और अनुवाद के स्तर पर आपकी गहरी रागदारी है, उसका एक कवि निर्माण में क्या योगदान है?

विश्व कविता में मेरी दिलचस्पी के साठ से अधिक वर्ष हो चुके। मैंने 18 बरस की उम्र में एक डच कवि ह्यूगो क्लास की कविता का अनुवाद किया था। मेरे पास शायद भारत में विश्व कविता का, अंग्रेज़ी अनुवाद में, जितना बड़ा संचयन है उतना बड़ा और विविध शायद ही किसी और के पास होगा, निजी स्तर पर। मैंने पाँच पोलिश कवियों के हिन्दी में पुस्तकाकार अनुवाद किये और प्रकाशित किए हैं।

विश्व कविता का वितान बहुत व्यापक है। मुझ पर रिल्के, ईलियट, यीट्स, आक्तावियो पाज़, पाब्लो नेरूदा, ज्नीयेव हेर्बेर्त आदि का गहरा प्रभाव पड़ा है। उनसे मैंने कविता क्या कर सकती है, कैसे कर सकती है, कैसे निपट स्थानीय को कॉस्मास में बदल सकती है, कैसे साहस उसका स्वभाव बन सकता है, कैसे वह अपने वितान में सकल संसार को उसकी नन्हीं-नन्हीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चीज़ों और सच्चाइयों के साथ सहेज सकती है, कैसे शब्द कभी हार नहीं मानता; कैसे वह संसार का अथक उत्सव बनाती है और उसकी विडम्बनाओं को देख पाती है। कई बार जब लिखने में कुछ अवरोध सा आया तब इस कविता ने कोई दिशा सुझाई। मैंने विश्व कविता से बहुत सीखा।

सत्ता के एक ध्रुवीय चरित्र ने आज अभिव्यक्ति के सामने जो संकट खड़े किए हैं, उनके बरक्स जो कोशिशें रचनाओं और अपीलों में हैं, उनसे हटकर ज़मीनी स्तर पर कुछ होता नहीं दिख रहा। क्या हो रहे प्रयास पर्याप्त हैं?

निराशा के भी कर्तव्य होते हैं जैसा कि दशकों पहले राममनोहर लोहिया ने बताया था। सत्ता सर्वसत्तावादी और एकध्रुवीय हो गई है और उसे विरोध की कोई परवाह नहीं क्योंकि मध्यवर्ग, विशेषकर हिन्दी मध्यवर्ग का एक बड़ा हिस्सा, हर हालत में उसके साथ है। हम जानते हैं कि अपीलों, प्रतिरोध, रचनागत विरोध से कुछ नहीं होता तथाकथित जमीनी स्तर पर लेकिन हमारा साक्ष्य तो दर्ज होता है। हम कुछ मूल्यों का कुछ दबाव तो परिदृश्य पर बना पाते हैं। परिवर्तन या विकल्प के लिए यह काफी नहीं है पर उसमें विस्तृत होने की संभावना तो हमेशा है। निजी तौर पर या सामूहिक स्तर पर भले हम अकेले पड़ जाएँ और अपने ही समाज से अलग-थलग क्यों न पड़ जाएँ हमें सच की ज़िद नहीं छोड़ना चाहिए। साहित्य इस समय सत्याग्रह है : उसका धर्म है आज सच बोलना, बिना डरे या संकोच किए, और स्वतंत्रता, समता, न्याय के मूल्यों की हिफ़ाज़त करना।

आलोचना के करुण वर्तमान पर तज़किरा करने की गुज़ारिश है?

आलोचना हर समय में काफी हद तक खराब रही है। आज जिन आलोचकों के नाम हम याद करते हैं उनके समय में भी आलोचना में अकादेमिक विद्वत्ता, विचारधारा, परम्परा, आधुनिकता आदि के नाम पर खासी अराजकता, मीडियोक्रिटी और साहित्य से अनुराग का अभाव था। आज स्थिति थोड़ी बदतर जरूर है पर गंभीर आलोचना कई पत्रिकाओं जैसे 'आलोचना', 'समास', 'तद्‌भव', 'मगध', 'कथादेश', 'स्त्री विमर्श', 'प्रतिमान' आदि में आती रहती है। फिर भी, रचना को उसके विचार में घटाकर उसका विश्लेषण, सुघर पाठ करने के बजाय सरसरी निगाह डालना, अन्तर्लोक की उपेक्षा, सामाजिक आशयों पर जरूरत से ज़्यादा आग्रह, व्यापक भारतीय परम्परा का शिथिल आलसी बोध, विचारधारियों से अलग या असहमत महत्त्वपूर्ण लेखकों की उपेक्षा, पहले की क्लासिक कृतियों के पुनर्पाठ से विरक्ति आदि अनेक अवांछनीय प्रवृत्तियाँ आज की आलोचना में हैं। कई युवा आलोचक अपने समवयसियों के लगभग अधिकृत प्रवक्ता बन गए हैं। आलोचना का काम अपने समय, समाज, अपनी परम्परा में साहित्य की समझ और जगह बढ़ाना और कुछ बुनियादी साहित्यिक मूल्यों की रक्षा करना है। इस पैमाने पर जाँचने से युवा आलोचना का पलड़ा भारी नहीं है। उसमें नई आलोचनात्मक अवधारणाओं, विश्लेषण की नई युक्तियों, नए शिल्प का खासा अभाव है। किसी भी तरह की आलोचना के प्रति आक्रामक ढंग से असहिष्णु इस समय में साहित्य की आलोचना अपनी बहुलता में बची हुई है, यह फिर भी आश्वस्तिकर है।

अशोक वाजपेयी - सम्पर्क : 98115 25653
लीलाधर मंडलोई - सम्पर्क : +91 98182 91188

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ऋतुराज

(हम जिस दुनिया में रहते और जिसका ख़्वाब देखते हैं, उनकी कविता उसके लिए समझ बनाने का न केवल काम करती है बल्कि भीतर की आग से अँधेरे के ख़िलाफ़ रोशनी पैदा करती है।)

मारियापोल

गुलमोहर फूल रहे हैं
शहर की सड़कों पर बिछी हैं लाल पंखुड़ियाँ
उन्हें कौन बताए कि मारियापोल में
बिखरा है चारों तरफ ख़ून निर्दोषों का

तुम ख़ून दो ताकि बच सकें कुछ ज़िंदगियाँ
कुछ ख़ूबसूरतियाँ

मनुष्यता के बहुरंगी फूल कुचले जा रहे हैं

ऋतुएँ आदतन आएँगी जाएँगी
भले ही कितनी भी हों निर्ममताएँ, बर्बरताएँ
जब तक फूलों से दुबारा लदे होंगे गुलमोहर
मृत मनुष्यों का एक बहुत बड़ा पहाड़
शहर में खड़ा होगा।

काबुल

एक जाहिल आदमी के हाथों में राइफल दे दो
तो लो वह बादशाह हो गया

उसकी यह दुनिया मौत के ख़ौफ़ से बनती बिगड़ती है
जब भी वह चाहे घोड़ा दबा सकता है
जब चाहे लहरा सकता है राइफल

औरतें, बच्चे, बूढ़े उसकर रियाया हैं
उसे देखकर लगता है कुछ भी नहीं बदला है
इस इक्कीसवीं सदी में

बीस बरस पीछे नहीं बल्कि बीस सदी पीछे
धकेल दी गई है हमारी यह दुनिया
एक कमांडर ने दूसरे कमांडर को हुक्म दिया
'भून कर रख दो'

उनकी सारी राइफलों में मज़हबी कारतूस भरे हैं
पहियों में नफ़रत की आग है
निर्दोषों का ख़ून सना है और वक्त के मारे
मनुष्य कुचले जा रहे हैं
उन्हें कुचल कर मारने की कोई सज़ा नहीं है

हम ज़िंदा बचे उनके आश्रितों के आँसू पोंछने जाते हैं
हम कहते हैं हम तुम्हारे लिए लड़ेंगे
लड़ भी रहे हैं और हमारी लड़ाई जारी है
मौतें भी जारी हैं

इंसाफ़ एक अंतहीन प्रतीक्षा है।

बुद्ध और नशा

शहरों को बरबाद करने का हक़
उन्हें किसने दिया
हमारी सभ्यता के प्रकाश-स्तम्भों को
मिसाइलों से ध्वस्त करने का ज़ौम
उनमें कहाँ से आया

क्या वे शुरू से ही जंगली वहशी थे
हमने देखा उन्होंने सबसे पहले जंगलों को नष्ट किया
उन्हें सुविधाजनक शहरों में बदला
सड़कें, रिहाइशें, लाल-पीली-हरी बत्तियाँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बाल-उद्यान, मॉल, मीनाबाज़ार, फव्वारे
होटल, प्रार्थना-स्थल टावर...सभी कुछ तो बनाए

इन मनुष्यों ने भरपूर प्रेम किया कलाओं से
फिर मनुष्यों ने ही मनुष्यों की हत्याएँ कीं
अपने ही बनाए शहरों को खण्डहरों में तब्दील किया

अब जो बचे हुए हैं
वो जो महज़ तमाशबीन हैं और दूर हैं
सभ्यता के इस मलबे से

जो तटस्थ हैं और निरपेक्ष हैं
वे न हारे हैं न जीते हैं
वे अनैतिकता का आसव पिये अपनी अपनी
भाषाओं के नशे में मस्त हैं।

दानिश

जब कोई अचानक मारता है
इस दुनिया के बहुत से काम अधूरे रह जाते हैं
मसलन, किसी तानाशाही की चीरफाड़
उसके फरेबों का पर्दाफ़ाश

इंसाफ़ माँगती जनता का भरोसा टूटता है
जब यकायक कोई लिखना बंद कर देता है
ख़ून सने फोटो आना बंद हो जाते हैं
और दबे-कुचले, ग़ुलामी के मारे लोग
बेबस नज़र आते हैं

जब कोई मार दिया जाता है
तो जवाबदेही और उम्मीद का आईना
चकनाचूर हो जाता है

तब सच्ची जानकारियाँ, आवाज़ें, चीख़ें
उसकी मौत की अंतहीन गुफ़ा के बाहर
खामोश हो जाती हैं
सब कुछ ग़ायब हो जाता है।
सड़क बंद है
कोई नहीं आया
औरतें सड़क पर बैठी रहीं
घरों से निकलीं
कोई कोई तो असूर्यंपश्या

गोद के बच्चों को सर्दी में भींचे हुए
वे सड़क पर बैठी रहीं
और संसद के विशिष्ट जन उन पर
व्यंग्य कसते रहे
हँसते रहे
उन्हें आतंकवादी कहते रहे

किसको परवाह थी कि वे सड़क पर
इतने दिनों से क्यों बैठी हैं
जैसे उनके कोई घर न हों
जैसे उनका देश उनसे पराया हुआ जा रहा हो
जैसे देश से उनका तलाक़ हो चुका हो

सीएए एनआरसी एनसीआर
इनके अलावा कोई और तीन शब्द सुनाई दे रहे थे
जैसे उनके लिए संसद सिर्फ़ एक रूह हो
और सड़क ही उनका जिस्म हो

औरतें बैठी रहीं अपना फैसला सुनाने
उन्हें चिढ़ाने जो औरतों को
कमज़ोर समझते आए हैं
उनकी आवाज़ दबाते आए हैं

यह एक भयावह फिल्म जैसी थी
जिसमें औरतों के हाथों
सड़क पर आने से डरते खलनायकों का
ख़ात्मा होने वाला था

उन्होंने काली पोशाकें पहन ली थीं
जैसे कि वे लोकतंत्र का सोग मना रही हों
ज़िंदगी के काले दिनों के अंदेशे में
काले दिल वालों के लिए
जैसे यह कोई आख़िरी पैग़ाम हो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

औरतों का अपना घर-बार छोड़कर बाहर आना
ठण्ड में जमी सड़क की धड़कनें बढ़ा रहा था

यह जुलूस नहीं था न कोई मुठभेड़ थी
न अंत तक खिंची कोई चीख़
यह सिर्फ़ एक बैठक थी...
सड़क पर एक चेतावनी देता व्यवधान-
कि 'सड़क बंद है
लोकतंत्र के टूटने की मरम्मत चल रही है
हर किसी को आज़ादी से इस देश में जीने के लिए
सड़क बंद है।'

न आऊँगा न जाऊँगा

एक वक्त ऐसा भी होगा
कि बुलाने पर भी नहीं आऊँगा
न आऊँगा न जाऊँगा

इस धरती पर काबिज़ हुई सत्ताएँ
बारी-बारी से पलटती रहेंगी
और फौजें, पुलिस हमेशा उनके पीछे चलेंगी
मीडिया उनके हुक्के भरेगा
खारिज़ हुए सारे वयोवृद्ध प्रतिरोधी
खामोश रहकर उनका समर्थन करेंगे

न आऊँगा न जाऊँगा किसी अवसरवादी मजमें में
न देखूँगा सचाई दिखाने का दावा करती कोई फिल्म
न सुनूँगा हुस्न तराशती कोई ग़ज़ल
हृदय डूब रहा होगा किसी पोखर में
और आँखों में समुद्र भरा होगा
परिचित अपरिचित मल्लाह रुके हुए अपनी नावों में
पुकारते होंगे

न आऊँगा न जाऊँगा।

सम्पर्क - 98290 08188

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गोविंद माथुर

(अपने समय के भूगोल में परंपरा और आधुनिकता को यथार्थ सम्मत शब्द संस्कार देने वाले कवि।)

मित्र संवाद

जिन मित्रों से
मिलना होता था अक्सर
अब अर्से बाद मुलाकात होती है
पहले इतनी होती थीं बातें
समय गुजरने का
पता नहीं चलता था

अब मिलते हैं तो
मुख्तसर बातचीत होती है
पूछ लेते हैं एक-दूसरे से
स्वास्थ्य कैसा है
कुछ घर-गृहस्थी की बाबत
साहित्य और फिल्मों पर
कुछ बात होती है
बचते हैं राजनीति पर
बात करने से
डरते हैं कहीं सम्बन्धों में
दरार न आ जाए

मोबाइल पर भी बात
होती है तो सहमी सहमी
कोई खुल कर
नहीं बोलना चाहता
आक्रोश तो है पर दबा-दबा सा
संदेह है कोई सुन तो नहीं रहा
टेप तो नहीं कर रहा

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है
विचार की भी
कब किसका विचार बदल जाए
कह नहीं सकते

शहर का नाम

किसी शहर का नाम सुनते
या पढ़ते हुए किसी पत्र-पत्रिका में
उस शहर की स्मृति
बिजली सी कौंध जाती है

यदि उस शहर में गए हों कभी
वहाँ की इमारतें
बाजार और गलियाँ
वह रेस्टोरेंट जहाँ
किया था नाश्ता
उस शहर के उद्यान
बहती हुई नदी
तैरने लगती लगती है
आँखों की कोर में

यदि नहीं गए हों उस शहर में
शहर की सुनी हुई बातें
कल्पना में साकार हो जाती हैं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शहर छोटा हो या बड़ा
हर शहर की एक तमीज होती है
हर शहर में एक बाँकपन होता है
भाषा में एक लहजा होता है

बदले हुए नाम से स्मृति में
बिजली नहीं कौंधती
जबकि नाम बदलने से
कुछ नहीं बदलता

किसी शहर का नाम बदलने से
क्या उस शहर की
बदल जाती है संस्कृति

देश बदल रहा है

चलन बदल रहा है
चाल बदल रही है

अतीत बदल रहा है
वर्तमान बदल रहा है

सभ्यता बदल रही है
संस्कृति बदल रही है
भाषा बदल रही है

नीति बदल रही है
रीति बदल रही है
राजनीति बदल रही है

सत्य बदल रहा है
तथ्य बदल रहा है

न अमीरी बदल रही है
न गरीबी बदल रही है

वेश बदल रहा है
संदेश बदल रहा है
मेरा देश बदल रहा है

आततायी

एक फुंसी निकल आई थी
गर्दन के पीछे

बालों को सँवारते हुए
कंघा छू जाने पर उठा दर्द
हाथ से छू कर महसूस किया
लंबे बालों में छुपी हुई थी फुंसी

जब तनाव महसूस होने लगा
लगा जैसे किसी ने कटार
रख दी हो गर्दन पर
सोचा खुरच दूँ नाखून से
किन्तु कुछ सोच कर
बेंड-एड लगा कर छोड़ दिया

चिकित्सा काम नहीं आई
गर्दन उठा कर
नहीं चल पा रहा था मैं
दर्द असहनीय होता जा रहा था

तय किया क्यों नहीं
सुई चुभो कर कर दूँ
अंत आततायी का
इससे पहले कि नासूर बन जाए

सम्पर्क - govindmathur.1950@gmail.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अरुण कमल

(लोक के जिस्म और रूह के संगीत से कविता में आज की गवाही लिखते और एकरेखीयता का निषेध करते कवि।)

कुछ ख़ाके

मुझे दिशाओं की चुप ने रोक लिया
धान के खेतों की गंध ने
वो रहा भादों चौठ का चाँद।
**

अब जब मैंने बदल ली है खाट
परेशान है खटमल
मेरे रक्त से मत्त।
**

एक बहुत पुराना मकान टूट रहा है हाते वाला
कहाँ जाएगा वो मेंढ़क
जो पानी पड़ते टर्राता था।
**

जर्जर मकान को तोड़ते मजदूर
खींचते हैं एक एक ईंट सावधानी से
बनाने से मुश्किल है ठीक से तोड़ना।
**

निभृत निःशब्द नीरव रात
सब चुप नींद में कुत्ते भी खामोश
बस एक ध्वनि-प्रपात—धवल पात्र में गड़गड़ाता मूत्रपात।
**

यह कैसी जीत जहाँ मैं अकेला उम्मीदवार
न मतदान न घोषणापत्र
विजय निर्विरोध।
**

जब गीदड़ों के टूटे दाँत हड्डी के वज्र पर
बोले, टूटे कहाँ
हमारे तो इतने ही थे जन्म से।
**

जिसका छत्ता नहीं अब तक
वो मधुमक्खी भी बैठी है
फूल पर।
**

कौए झाड़ते हैं पंख
कई दिन बाद
निकली धूप में।
**

रात की आहट पर
जगते हैं मच्छर
और रजनीगंधा के अँखमुँदे फूल।
**

ऊपर जहाज़ से भी चाँद
उतना ही ऊपर
जितना जमीन से।
**

वह लड़की खड़ी है द्वार पर
हथेलियों में भरे
अगस्त्य के फूल।
**

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

गश्त लगाता एक फौजी
रुक कर देखता है दुकान के टीवी पर
यूक्रेन युद्ध के हताहत
**
एक बहुत दुबला बूढ़ा
मापता है लोगों का वजन सड़क किनारे
वजन मशीन पर
(ज़रूरत से ज्यादा वजन देशद्रोह है)।
**
वह कुत्ता फिर यहीं आयेगा
जहाँ त्यागा है मल
दुर्गंध की यादें ज़्यादा ताकतवर हैं जगत में।
**
इतनी ओस इतना भार
कली के मुख पर
कि फूटना दूभर।
**
हाथ में टाँगे फल की टोकरी
जा रही है घर एक महिला—
ताकता है युवक खिड़की से।
**
चार दीवारों के बीच जो बंद जगह है
वही घर है
सुबह रात दोपहर है।

सम्पर्क - 99314 43866

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विष्णु नागर

(सामाजिक जीवन में यातना, असहायता, विडंबना के सच और असहमति की ज़रूरत को अभिव्यक्त करते कवि।)

इंसाफ की तलाश

इंसाफ की तलाश ने
पाँच किलो मुफ्त अनाज
तक ला पटका है

इंसाफ की छलनी में हजारों छेद हैं
जबकि पाँच किलो अनाज में
केवल आधा किलो कचरा।

बनते पत्थर

खाने को भी पत्थर
पूजने को भी पत्थर
दिमाग में भी पत्थर
माँ अब पथराती जा रही है
देख अपने सुतों को
बनते
पत्थर।

लाश भी अकड़ती है

अकड़ने में क्या रखा है दोस्तो
तीन घंटे बाद तो शव भी
अकड़ना शुरू हो जाता है।

इजाज़त

रोशनी की यह बात मुझे पसंद है
नोंक भर जगह दिखे तो घुस जाओ
किसी की इजाज़त की जरूरत नहीं!

स्त्री का बाल

जो कहे कि मेरे खाने में
स्त्री का बाल कभी नहीं आया
समझो कि उसने इस धरती पर
जनम नहीं पाया।

पेंच

जिस बात में कोई पेंच न हो
वह बात फौरन रुला देती है।

बहाना

हरा इतना हरा न होता
नीला इतना नीला
तो अच्छी कविता न लिखने के लिए
हम कविगणों को
सौ बहाने कहाँ से मिलते!

भ्रम

कितने भ्रम में रखता है चाँद
कभी कहता है तुम्हारे आगे हूँ
कभी कहता है फिकर न करो
मैं ठीक तुम्हारे पीछे हूँ
देखो अब मैं तुम्हारे साथ चल रहा हूँ
इस भ्रम ने उसे चाहना सिखा दिया।

ज़िन्दगी के गीत

वे भी जो आज नहीं हैं
कभी ज़िन्दगी के गीत गाते थे
हम भी जो नहीं रहेंगे
ज़िन्दगी के गीत गाते हैं।

दूर के घर

घर से दूर कई घर हैं
कहीं कुछ छूट जाता है, कहीं कुछ
एक चीज लेने जाता हूँ
दूसरी भूल आता हूँ।

सम्पर्क - 98108 92198

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हरीश चन्द्र पाण्डे

(देश-दुनिया की अमंगलकारी सत्ताओं के प्रति सचेत-जागरुक और अँधेरों की शिनाख़्त करते कवि।)

युद्ध

एक बार फिर शांति-वार्ता विफल हुई
विराम, युद्ध के चरम पर नहीं शांति की पहल पर लगा

युद्ध जारी है
युद्ध होते रहें इसलिए युद्धाभ्यास भी जारी हैं
पनडुब्बियाँ जल की प्रशांतता में अभ्यासरत हैं
टैंक रेगिस्तानों को रौंद रहे हैं

युद्ध का दमामा सबसे पहले दिमाग में बजता है
युद्ध इसीलिए हमेशा खब्तियों की प्रतीक्षा में रहते हैं
खब्ती आते हैं
युद्ध उनकी खोपड़ी में सवार हो जाता है

युद्ध कापालिकों का हार है

युद्ध वसंत के दिनों में रुक नहीं जाते
पतझड़ सी झरती हैं जानें
युद्ध एक उर्वर खेती है
इसमें यतीमों और बेवाओं की फसलें उगाई जाती हैं
युद्ध रोजगार का सबसे बड़ा दफ़्तर है
वह दुनिया भर में कृत्रिम अंगों की फैक्ट्रियाँ खुलवाता है
लघु उद्यमियों से बैसाखियाँ बनवाता है और दर्जियों से कहता है
वे एक डेढ़ या बिना बाँह की कमीजों की खेपें तैयार करें

वंश तिरोहित होते हैं युद्ध नहीं
एक अशोक तलवार छोड़कर कमण्डल थामता है
तो एक पुश्यमित्र कमण्डल छोड़कर तलवार उठा लेता है

युद्ध में कंधों की कमी बढ़ती जाती है
सबको कंधा देते-देते
खुद युद्ध के लिए कोई कंधा नहीं बचता

युद्ध रक्त को माथे का टीका कहता है
वह रक्तदान में विश्वास नहीं करता
उसका रक्त यूनिवर्सल प्राप्तकर्ता समूह का है
युद्ध के दिनों में 'जाना' और 'आचा' कियाएँ नहीं रह जातीं
युद्ध के लिए जीवन उपसर्ग है मृत्यु प्रत्यय
युद्ध के दिनों में लौटना
सीमा से लौटने का इंतजार ही नहीं
मवेशियों की फैलती आँखों में चारा लाने गए हाथों का
इंतजार भी है

युद्ध सभ्यता-जलयान की पेंदी में किया गया सुराख है
युद्ध अपनी अपरिहार्यता की दलील देते हुए कहते हैं
उन पर घृणा की तोहमत नहीं
प्रेम स्तर की जायजता आयद की जाए
जबकि उनके प्रहार
जूड़े में फूल खोंसने भर की भी प्रतीक्षा नहीं करते

युद्ध के दिनों में खेतों को सिंचित करतीं नदियाँ
खुद रक्त से सिंचित होती हैं
और विजयी सेनाएँ
विजित जमीन में गर्भ बाँटकर सर उठाए चली आती हैं

युद्ध के दिनों में नदियों और संबंधों के
अपने ही बनाए पुलों को ध्वस्त किया जाता है
थियेटरों में ऑर्केस्टा की धुनों पर थिरकते हुए पाँव
सायरनों की धुन पर भगदड़ की सिंफनी रचने लगते हैं

तमाम तमाम कोशिशों के बावजूद युद्ध जारी हैं
सुरंगें बिछाई जा रही हैं आईसीबीएम दागे जा रहे हैं

पर युद्ध को ठेंगा दिखाने वाले भी कम नहीं हैं
बम वर्षा के बीच वे बंकरों में शादी के प्रस्ताव रख रहे हैं
यह कहते हुए कि साथ-साथ जियेंगे
यह न कहते हुए कि साथ-साथ मरेंगे

सम्पर्क - 9455623176

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संवाद

वरिष्ठ कवि ऋतुराज से प्रेमचंद गांधी की बातचीत

भुखमरी मानव-शरीर का डाइनामाइट है : ऋतुराज

(कविता और आलोचना में प्रगतिशील चेतना का शीर्ष स्थानीय स्वर।)

आपकी इधर की एक नई कविता है 'शाहीन बाग़'; जिसमें एक जगह आप कहते हैं:

उन्होंने काली पोशाकें पहन ली थीं
जैसे कि वे लोकतंत्र का सोग मना रही हों

देखिए, भारतीय ज्योतिष की एक शाखा है-रमल विद्या। जातक प्रश्न पूछता है और ज्योतिषी प्रश्न पूछने का समय नोट करता है और उत्तर देता है। प्रेमचंद जी, आपके और मेरे इस संवाद में समय अत्यंत महत्त्वपूर्ण तत्व जा रहा है। भयानक समय है। हम लोकतंत्र को धीरे-धीरे फासीवाद में बदलते देख रहे हैं। मिथकों और इतिहास का 'गौरवशाली' इस्तेमाल शासक दल बतौर प्रोपेगंडा करने में लगा है। शायद अमृत-मंथन के मिथ की सचाई का मिथकीकरण किया जा रहा है। देवताओं ने अपने राक्षस भाईयों से छल-छद्म करके अमृत चोरी कर लिया था। और यह कैसा अमृत पिछले 75 वर्षों में चखा है जब हम किसी देश की मूल प्रकृति को उलटने की कोशिश करते हैं तो शायद यह सब ज़रूरी हो जाता है। शासन कोई और कर रहा है, डोर किसी और के हाथ में है।

सोशल मीडिया को देखें तो लगता है कि पिछले कुछ वर्षों में हिंदी प्रदेशों में बहुत-से नए रचनाकार आ रहे हैं और अपनी भाषा के साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। लेकिन यदि गंभीरता से देखें तो कुछ निराशा भी होती है, क्योंकि लिखा बहुत जा रहा है, छप भी रहा है फिर भी इसका बड़ा असर कहीं नहीं दिखता।

सबसे अधिक ग़रीबी और अशिक्षा हिंदी प्रदेशों में ही है। इसका कारण जानते हैं, सब समझते हैं पर कोई प्रतिरोध जैसी चीज नहीं है। एक सुविधाभोगी, अपेक्षया सुरक्षित जमात है लेखकों की, जिसे सोशल मीडिया, मुख्यतः फेसबुक और व्हाट्सएप ने अपने मोहजाल में फँसा लिया है। लेखक आत्मरति से ग्रस्त हैं, वे सामान्यतया राजनीति के प्रति निरपेक्ष भाव रखते हैं और कोई जोख़िम नहीं उठाना चाहते। एक अपढ़, कुपढ़ किस्म का मित्र संवाद है हरेक की दीवार पर, एक जल्दबाज़ी में हुआ विरेचन, स्खलन जैसा लगता है। और जो कुछ गंभीर उबाऊ है, वह प्राध्यापकीय जुगाली भर है।

नये लेखकों और उनके लिखे के बारे में क्या कहेंगे?

वे सीधे आँखों में आँखें डालकर अपने अग्रजों-पूर्वजों से पूछते हैं-हम आपको क्यों पढ़ें? लिहाज़ा, हिंदी में कोई सुचिंतित पाठकवर्ग नहीं बन पाया है। आत्ममोह ने आलोचना का विवेक नष्ट कर दिया है, प्रतिरोध को एक ख़ास किस्म के अमूर्तन में बदल दिया गया है जिससे शासक दल तनिक भी विचलित नहीं होता। संवैधानिक संस्थाओं के साथ-साथ सारे सांस्कृतिक केंद्रों का क्षरण हो चुका है, मीडिया पर पूँजीपतियों का अधिकार है और व्यापक रूप से विसंस्कृतिकरण और बाज़ारीकरण सफल हो चुका है।

यह साहित्य की आसन्न मृत्यु का लक्षण है। शायद मंगलेश डबराल ने जब अपनी घोर हताशा में इसे लक्षित किया था तो सब चौंक उठे थे। प्रतिवाद हुआ, उन्हें आत्महंता तक कहा गया। ज़ाहिर है, लेखक संगठन पहले से भी अधिक दीन-हीन हैं, वे अवसरवादियों और सत्तोन्मुख चापलूसों से घिरे हैं। प्रसिद्ध होने के लिए एक चतुर, मोहक, अराजनीतिक और रोमांटिक आत्मकेंद्रित साहित्य रचा जा रहा है। हम साहित्य के पलायनवादी 'आइवरी टावर' में फँस गए हैं। हमारे पास अब नामवर जी जैसे मूर्धन्य आलोचक नहीं हैं। अब तक हिंदी ने जो अर्जित किया था वह स्मृतिनाश के गर्त में पहुँच गया है।

विस्थापन आज विश्व की सबसे बड़ी मानवीय समस्या के रूप में सामने है। हमने भी 1947 से लेकर अब तक विस्थापन की इस पीड़ा को लगातार देखा-भोगा है। पिछले एक दशक में ही दुनिया भर में चार करोड़ से अधिक लोग

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विस्थापित हुए हैं। यह बात इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि आधुनिकीकरण, औद्यौगिकीकरण, रोजगार और अन्य प्राकृतिक-राजनैतिक-सांस्कृतिक वजहों से पलायन और विस्थापन पिछले कुछ वर्षों में बहुत तीव्रता के साथ हुआ है। दुनिया की सभी प्रमुख भाषाओं में कवि-कथाकार विस्थापन की इस पीड़ा को व्यक्त करते आए हैं।

इस हमारे अत्यंत सुंदर उपग्रह पर शरणार्थियों और विस्थापितों की तादाद बढ़ती जा रही है। लोकतांत्रिक व्यवस्थाएँ तानाशाही में बदलती जा रही हैं। जो अभी तक अपनी ज़मीन, अपने मुल्क से उखड़े नहीं हैं वे भी रात-दिन अपने भविष्य की अनिश्चितता और दहशत में जी रहे हैं। इस सदी में जो सीरिया, लेबनान, तुर्की, अफ़गानिस्तान आदि देशों में हुआ और पिछली सदी में दो विश्व युद्धों के बाद हुआ, उसने साबित कर दिया है कि मनुष्यता के विस्थापन की इस बड़ी त्रासदी के लिए राजसत्ताएँ और केवल राजसत्ताएँ जिम्मेदार हैं। वरना लाखों-करोड़ों लोग रोज़ी-रोटी और जान बचाने के लिए अपना घर-बार छोड़कर अपनी गृहस्थी के साथ ख़तरनाक रास्तों से चलते हुए नये शरणस्थल खोजने के लिए भागते नज़र नहीं आते। सत्ता की राजनीति, नीतियाँ मानव जाति की नियति तय करती हैं। युद्धोन्माद, धार्मिक, नस्ली हिंसा, नफ़रत, दूसरे की संपत्ति पर काबिज़ होने की बर्बर इच्छा किसी क्रूर शासक को और अधिक लोकप्रिय बनाने का अवसर देती है और उसके विरोधी अल्पसंख्यक विस्थापित होते हैं। एक समय ऐसा भी आता है जब मनुष्य गायब हो जाते हैं, सिर्फ़ आँकड़े रह जाते हैं। बस आँकड़े कि इतने विस्थापित हुए, इतने अप्रवासी हुए, इतने मरे, इतने गंगातट पर जलाए गए, बहाए गए।

जी, आपने सही कहा। आपने इसी प्रकार की बात 2 साल पहले जून, 2020 में भी जितेंद्र भाटिया जी के साथ एक बातचीत में कही थी, उस समय कोरोना महामारी का जबर्दस्त प्रकोप था। हम सबने देखा कि उस वक़्त मज़दूरों के विस्थापन को लेकर अनेक युवा और वरिष्ठ रचनाकारों ने उस त्रासदी पर अत्यंत मार्मिक कविताएँ लिखीं, जिन्होंने आम लोगों को प्रभावित किया। इसका एक परिणाम यह भी देखने में आया कि असंख्य नागरिकों ने पीड़ित मज़दूरों की दिल खोलकर सहायता की। फिर वह चाहे खाना-पानी देने की बात हो या दवाएँ और दूसरी मेडिकल सेवा उपलब्ध कराने की बात हो। कालांतर में आपके नेतृत्व में हमने भी जयपुर में प्रगतिशील लेखक संघ की ओर से एक हेल्पलाइन शुरु की थी, जिसे हमारे युवा रचनाकार साथियों ने पूरी शिद्दत से चलाया और बहुत-से ज़रूरतमंद लोगों की सेवा की।

हाँ, इस प्रकार की मदद या सहायता उस समय की तात्कालिक ज़रूरत थी, संवेदनशील मनुष्य और रचनाकार होने के नाते।

आपने जितेंद्र भाटिया जी से उस बातचीत में कहा था : ''लेखकों से तो हम पूछ ही सकते हैं कि उन्हें इस आपदा काल में क्या करना चाहिए। उन्हें कैसा लिखना चाहिए, हालाँकि बहुत अवसाद है, बहुत निराशा है, बहुत संशय है, बहुत संदेह।''

हाँ यह महामारी के पहले दौर की बात है।

जी, लेकिन उस चर्चा में आपने एक अंग्रेजी कविता सुनाते हुए हिंदी कविता पर बहुत ही मार्मिक बात कही थी। आपको याद है कि नहीं ?

क्या...

आपने कहा था, 'कोरोना ने हमें जो अनुभव दिया, जो हमारी संवेदनाओं का विस्तार किया, उसके बारे में तो लिखा जाना चाहिए था ना... कोरोना ने हमको ऐसे विषय दिए हैं जो दुनिया में बहुत बड़ी-बड़ी दुर्घटनाएँ-घटनाएँ हुईं हैं , तो वो विषय हमारी बातचीतों में आने चाहिए थे, हमारी कविताओं में आने चाहिए थे, हमारी कहानियों में आने चाहिए थे... मैंने अभी इन दिनों मास्क पर एक बहुत अच्छी कविता पढ़ी, उसकी कुछ पंक्तियाँ बता रहा हूँ कि किस तरह हम कविता में उन रूपकों का, उन उपकरणों का इस्तेमाल कर सकते थे। कविता में कुछ पंक्तियाँ हैं:

चलो, मेकअप पूरा हुआ
अब तुम मुझे देखोगे
एक अपारदर्शी मास्क में
चलो मेकअप पूरा हुआ
तुम्हें सिर्फ़ मेरी आँखें दिखाई देंगी
कोरोना ने बहुत कुछ बदल दिया है
जब मास्क उतारूँगी तो
तुम्हें उस पर लिपिस्टिक के दाग़ दिखाई देंगे।

हाँ उस समय की मानसिकता में यही सब चीज़ें परेशान करती थीं।

आपने एक लंबा समय चीन में गुज़ारा है, जिस पर आपकी 'चीन डायरी' प्रकाशित हुई है। भारत और चीन के रिश्ते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कभी बहुत अच्छे नहीं रहे। दोनों देशों की वर्तमान स्थिति पर आप क्या कहेंगे?

कहावत है कि आप अपने पड़ोसी नहीं चुन सकते। विस्तारवादी चीन की सरकार अपने सर्वहारा को हर प्रकार से समृद्ध और सुखी रखना चाहती है, इसके लिए वह पूँजीवाद की सभी बुराइयों को स्वीकार करती है, उपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी होने की हद तक। चीन में लोकतंत्र नहीं है और एक साम्यवादी दल का अधिकार है। उसकी जनता पर पकड़ जब-जब कमज़ोर हुई है तब-तब हाँगकांग, मकाओ, तिब्बत और थाइवान का मातृभूमि में विलय का राग अलापने और कर गुज़रने के कौशल से उसने जनलोकप्रियता हासिल की है। भारत के लिए वह नंबर एक का व्यापारिक प्रतिद्वंद्वी और निर्यातक है। दोनों कभी भावनात्मक रूप से मित्र नहीं हो सकते क्योंकि चीन अब बौद्ध नहीं है और भारत ने उसके परम विरोधी दलाई लामा को शरण दे रखी है। वे तिब्बत की समांतर सरकार भारत में चलाते हैं और विश्वसमाज को चीन के अन्याय और अनैतिकता की याद दिलाते रहते हैं। तिब्बत को लेकर भारत की नीति विरोधाभासी रही है। भारत तिब्बत पर चीन का अधिकार स्वीकार करता है पर विरोध भी करता है।

विकास का जो यूरो-अमेरिकी मॉडल आज पूरी दुनिया में अपनाया जा रहा है, उसमें पर्यावरण, जैव पारिस्थितिकी से लेकर आदिवासी तक सब संकटग्रस्त हैं। दुनिया भर के रचनाकार इन संकटों से आगाह कर रहे हैं। आप इसे कैसे देखते हैं? आप तो इसे लेकर बहुत संवेदनशील हैं क्योंकि आपकी कविता और काव्य-चिंता का एक बहुत बड़ा हिस्सा इन्हीं संकटों को लेकर है।

हाँ, कविता की बात अपनी जगह, लेकिन युद्धोन्माद और वर्चस्ववाद ने हमारी दुनिया को इस तरह तहस-नहस कर दिया है कि पर्यावरण, प्रदूषण और जैविक विविधता के बारे में बात करना बेहद बेमानी-सा लगता है। पर्यावरण का सीधा संबंध पूँजीवाद की अमानुषिक उत्पादन प्रक्रिया से है। प्राकृतिक संसाधनों का क्रूर दोहन, कॉर्पोरेटीकरण और एकाधिकारीकरण राजनीति के गठजोड़ के बिना संभव नहीं है। इनका अन्योन्याश्रित संबंध है। हमने देखा इसी सदी में अमेज़ॅन जलता रहा और ब्राज़ील का शासक वर्ग इसमें सहयोग करता रहा। स्कूल की एक छात्रा ग्रेटा थनबर्ग ने ग्रीन हाउस गैसों के द्वारा हो रही 'ग्लोबल वार्मिंग' के खिलाफ़ आंदोलन छेड़कर सारी दुनिया को चेताने की पहल की। बहुतेरे आंदोलन चल रहे हैं और जागरूकता बढ़ रही है, लेकिन साथ ही पूँजीवादी तानाशाहियों की जकड़बंदी के कारण जलवायु परिवर्तन का दुष्प्रभाव दुनिया के सबसे ग़रीब लोगों पर गहराता जा रहा है। हमने देखा, ट्रम्प ने किस तरह इस मुद्दे पर विश्वासघात किया और अमेरिका ने अपनी जिम्मेदारी से किनारा कर लिया। सबसे ज्यादा संकट साउथ एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका और कैरेबियाई देशों पर मंडरा रहा है। भारत के बहुसंख्यक आदिवासी क्षेत्र अपने जल, जंगल, ज़मीन बचाने के लिए संघर्षरत हैं और मुनाफ़ाखोर कॉर्पोरेट राजनेताओं के साथ मिलकर वंचित आदिवासियों-वनवासियों को नवउपनिवेशवादी ग़ुलामी की ओर धकेल रहे हैं। वन-संपदा, खनिज, पानी, वन-पशु, ऑक्सीजन, मिट्टी... सबके सौदागर मौजूद हैं, जो इस उपग्रह और युगों से इस पर बसे लोगों को विस्थापित करने में लगे हैं। पर्यावरण बचाने की उनकी चिंता और तैयारियाँ छद्मपूर्ण हैं। हमने देखा कि हर परियोजना में कुछ चहेते पूँजीपतियों, ठेकेदारों और राजनेताओं के हाथों में विकास का यह मॉडल सौंप दिया गया है और पर्यावरण की समस्या गुरुतर होती गई है।

हाँ, भारत में भी यही प्रक्रिया अपनाई जा रही है। आपने ग्रेटा थनबर्ग की बात की, हम सबको लगता है कि उसकी मार्मिक अपील ही अपने आप में एक बड़ी कविता है।

हाँ, बिल्कुल उसे कविता की तरह लिया जा सकता है। लेकिन भारत जैसे विकासशील, पर पिछड़े, लोकतंत्र में एक दुर्घटना और घटित हुई है। हमने विकास के यूरो-अमेरिकी मॉडल को पर्यटन व्यवसाय से जोड़ दिया है और वन्यजीव संरक्षण के नाम पर हमें विश्व वन्यजीव फण्ड (WWF) की नीतियों का पालन करने की बाध्यता है। यह उत्तर साम्राज्यवादी नीति का ही विस्तार है। भ्रम फैलाया जा रहा है कि बाघ, बघेरे और तेंदुए जैसे हिंसक पशुओं, प्रजातियों को लुप्त होने से बचाने के लिए अभयारण्यों की बढ़ोत्तरी की जाए और उनके लिए वनों को सुरक्षित-संरक्षित किया जाए। परिणामस्वरूप, युगों से इन वनों में बसे, उन पर आजीविका-निर्भर आदिवासियों-वनवासियों को बेदखल किया जा चुका है और किया जा रहा है। लेकिन दूसरी ओर उनसे छीने गए जंगल, ज़मीनें-जल स्रोत पूँजीपतियों के लिए सहज सुलभ किए जा रहे हैं ताकि वे राष्ट्र के आर्थिक विकास में अपना 'पवित्र योगदान' दें। अब आदिवासी उनकी फैक्ट्रियों, मिलों, खदानों में मज़दूर बनकर काम करने को विवश हैं। यह आवारा पूँजी का कुत्सित अर्थशास्त्र ही है जिसने पर्यटन और आर्थिक विकास के नाम पर लोगों को उनके जल-जंगल-ज़मीन से बेदखल कर दिया है। एक कवि और प्रकृति प्रेमी होने के नाते मुझे व्यक्तिगत रूप से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसका बड़ा नुकसान हुआ है। कभी मुक्त होकर पैदल पहाड़, जंगल ट्रेकिंग करता था और वहाँ बैठकर कविता करता था। अब सब तरफ पाबंदियाँ हैं, अभिजात, अतिसंपन्न लोगों का वन-विहार है। हमारे वन और उनके विविध जीव-जंतु हमसे दूर कर दिए गए हैं। आदिवासी-वनवासी जिस तरह का पारिस्थितिकीय संतुलन बनाए रखते थे, उन्हें अब हिंसक नीतियों से बढ़ते जा रहे हिंसक पशुओं के द्वारा खदेड़ा जा रहा है। यह हमारे शासकों की नवउपनिवेशवादी सोच का सबसे घिनौना कृत्य है।

चरम उपभोक्तावाद और मीडिया की चकाचौंध ने पूरी दुनिया में नए किस्म के अपराधों की रचना की है, जैसे मानव-तस्करी, मानव अंगों की तस्करी, संकटग्रस्त वन्य जीव-जंतुओं का अंधाधुंध आखेट, राह चलते लूटपाट-चैन स्नैचिंग, बालक-बालिकाओं का यौन शोषण, स्त्रियों के साथ बढ़ते बलात्कार और यौन अपराध... आप एक कवि के रूप में समाज में उभरी इन नई प्रवृत्तियों को कैसे देखते हैं?

आपने और लाखों पाठकों ने 6 अगस्त, 2022 के दैनिक भास्कर के मुखपृष्ठ की यह हेडलाइन ज़रूर पढ़ी होगी- ''हाँ, बेटी है मेरी, उम्र 15 साल, एक लाख से कम नहीं लूँगा' और उसने बच्ची को शोपीस की तरह खड़ा कर दिया।'' उदयपुर, राजस्थान के लगभग बीस गाँवों की रिपोर्ट है कि किस तरह आदिवासी-दलित बच्चियों की तस्करी हो रही है। जीवन-यापन में भीषण कठिनाइयों, अभावों के कारण शोषित समाजों के अस्तित्व को अमानवीय व्यापार में बदल दिया गया है।

जी हाँ, लेकिन ऐसी घटनाएँ तो सभी ग़रीब देशों में हो रही हैं। इनके पीछे आप क्या देखते हैं?

हाँ, जिस देश में दुनिया के सबसे अधिक ग़रीब लोग रहते हों, वहाँ मानव शरीरों, अंगों, श्रमिकों, स्त्रियों, बच्चों की तस्करी कोई अनहोनी घटना नहीं है। इस तस्करी का सीधा लाभ विकसित देशों के संपन्न वर्ग को होता है। उन्हें सस्ता श्रम, सस्ता इलाज, मनोरंजन और व्यभिचार के सुगम अवसर मिलते हैं। कई देशों में यह तस्करी अनिवार्य रूप से मादक पदार्थों के अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का हिस्सा है। भारत, अफ़गानिस्तान, पाकिस्तान या दक्षिण एशिया और अफ्रीका के देश इसकी गिरफ्त में हैं। विकासशील और ग़रीब देशों के वास्तविक मालिक तो वे अतिसंपन्न देश हैं जो उनके ऋणदाता हैं। ऐसे देश अपनी विकसित टेक्नॉलोजी के बल पर ग़रीबों से निम्नतम पगार पर बने उत्पादों को विश्व बाज़ार में खपाते हैं और अपना दबदबा बनाए रखने के लिए उदारता का दिखावा करते हुए अपनी दोयम दर्जे की टेक्नॉलोजी बेचते हैं। साथ ही वे ऐसे ज़रूरतमंद देशों में असुरक्षा की भावना बनाए रखते हैं। ताकि समय-समय पर वे उनसे हथियार खरीदते रहें और अपना कर्ज़ बढ़ाते रहें। यह व्यापारिक उपनिवेशवाद पिछले दो-तीन दशकों में ख़ूब फला-फूला है। ज़ाहिर है कि ग़रीब देशों का राजनीतिक तंत्र शक्तिशाली देशों की माँग-आपूर्ति का माध्यम हो गया है। एक शासित मनुष्य, मनुष्य नहीं बल्कि मात्र एक उपभोक्ता होता है, जिसका आर्थिक विकास और सुरक्षा उसके अभावग्रस्त होने, स्वप्न देखने और सदैव परजीवी, प्रतीक्षारत होने पर निर्भर करती है। 'भुखमरी मानव-शरीर का डाइनामाइट है।' इसका इस्तेमाल सत्ता में बने रहने के लिए होता है। आर्थिक विकास के नाम पर ग़ैर-बराबरी और सामाजिक भेदभाव स्वभाविक परिणाम माने जाते हैं। जितनी बातें मानवाधिकारों, मानव गरिमा और निर्दोष न्याय प्रणाली की होती हैं उतनी ही प्रगति झूठ, लंपटता, एकाधिकार और उत्पीड़न के नये से नये माध्यमों की खोज में होती है। अतः राजनैतिक स्वार्थ के आगे कुछ भी नैतिक और सत्य नहीं है। हम सत्य के बजाय निरंतर एक झूठ से दूसरे झूठ की ओर अग्रसर होते रहते हैं।

पिछले दो दशकों से सारी दुनिया लोकतंत्र से अधिनायकवाद में संक्रमित होती गई है। देशों में बढ़ी भीतरी और बाहरी हिंसा-प्रतिहिंसा इसका प्रतिफलन है। लोकतांत्रिक देशों में यह हिंसा समता, न्याय, स्वतंत्रता के दावों से आच्छादित होती है। लेकिन जब ये देश तानाशाही की तरफ मुड़ने लगते हैं तो इनमें फैलाई गई हिंसा-प्रतिहिंसा-नफ़रत साफ़ दिखाई देने लगती है। भारत भी इसका कोई अपवाद नहीं है।

जी, इस भयावह माहौल को आपने और अनेक समकालीन कवियों ने अपनी कविताओं में रचा है, जैसे राजेश जोशी की कविता है 'जुनैद को मार दो', इसी प्रकार आपकी कविता है 'दानिश'।

कवि अपना काम कर रहे हैं लेकिन...

कविता हर दौर की तरह एक असफल कोशिश साबित हो रही है। दुनिया भर में जिस प्रकार की हिंसा और नफ़रत बढ़ रही है, वह हमारी सदी की बौद्धिकता पर ही संदेह पैदा करती है। अब देखिए न, रूस-यूक्रेन युद्ध ने विश्व के समक्ष एक नया संकट खड़ा कर दिया है, असंख्य बेगुनाह नागरिक मारे जा रहे हैं, कई पीढ़ियाँ नष्ट हो रही हैं। इसी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रकार विश्व के कई क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार के अघोषित-अप्रत्यक्ष युद्ध निरंतर जारी हैं। आज भले ही दूसरे विश्व युद्ध जैसा वातावरण नहीं है, लेकिन युद्ध को लेकर एक विशेष प्रकार की नागरिक मानसिकता अवश्य आकार ले रही है, जो हर सवाल के जवाब में युद्ध और प्रतिहिंसा को ही अंतिम उपाय मानती है। इस युद्ध को लेकर आप क्या सोचते हैं?

फरवरी, 2022 से यूक्रेन पर रूस के आक्रमण और निरंतर युद्ध छेड़ने ने हमें द्वितीय विश्वयुद्ध की याद दिला दी है। अपनी सैन्यशक्ति और विक्षिप्त-सी हठधर्मिता के ज़ौम में पुतिन भी किसी हिटलर से कम साबित नहीं हुए हैं। सारा अंतर्राष्ट्रीय समाज, नाटो के सदस्य देश यूक्रेन को विनाश से बचाने में असफल हैं। बल्कि कभी-कभी तो लगता है शक्तिशाली देश इस युद्ध को जारी रखना चाहते हैं। यूक्रेन को लड़ने के हथियार मुहैया करवा रहे हैं ताकि हथियारों के बाज़ार से उन्हें मुनाफ़ा होता रहे। भले ही रूस का आक्रमण 24 फरवरी, 2022 को हुआ हो, दरअस्ल, इसकी शुरुआत तो आठ साल पहले रूस के क्रीमिया हड़पने से हो चुकी थी और डोनबास को कुचलने की, यूक्रेन से मुक्त करने की योजना बन चुकी थी। यूक्रेन 1918 में आज़ाद हुआ, फिर लाल सेना ने उस पर कब्ज़ा कर लिया। पोलैंड से पश्चिमी रूस तक फैला यूक्रेन द्वितीय विश्वयुद्ध में रूस और नाज़ियों के बीच समान रूप से प्रताड़ित हुआ। लेकिन सोवियत संघ के पतन के बाद 1 दिसंबर, 1991 को यूक्रेन को स्वतंत्र देश घोषित किया गया था।

1994 में बुडापेस्ट संधि के तहत यूक्रेन ने अपने विशाल परमाणु हथियारों के भण्डार को नष्ट कर दिया और सब देशों ने उसे एक संप्रभु, स्वतंत्र राष्ट्र स्वीकार किया। पुतिन यूक्रेन पर हमला करके फिर से रूसी साम्राज्य की नींव रखना चाहते हैं जबकि यूक्रेन के बहुत से लोग जहाँ यूरोपीय संघ में तो बाकी लोग नाटो के सदस्य देश होना चाहते हैं। पुतिन चाहते हैं कि नाटो 1997 की स्थिति में ही रहे, यानी रूस की सीमाओं के आसपास सैन्यीकरण नहीं हो। नाटो पूर्व की ओर बिल्कुल दखल नहीं दे और क्रीमिया, डोनबास पर रूस का नियंत्रण स्वीकार किया जाए। पुतिन नाटो के बरअक्स स्लाव देशों का एक मज़बूत संघटन चाहते हैं।

लेकिन किसी अपेक्षया छोटे देश को अपनी वहशी ताक़त से मजबूर करना कौन सी नैतिकता है यूक्रेन नष्ट हो रहा है, उसके शहर बरबाद हो रहे हैं और लगभग पाँच लाख निर्दोष यूक्रेनी शरणार्थी पोलैण्ड, मालडोवा, रूमानिया, स्लोवाकिया, हंगरी जैसे देशों में शरण लेने भाग रहे हैं। इस युद्ध ने सारी दुनिया को गहरे आर्थिक-राजनीतिक संकट में डाल दिया है और कई देशों, संगठनों की बदनीयती और व्यापारिक स्वार्थपरता का पर्दाफ़ाश किया है। 'यूक्रेन मर रहा है लेकिन उसके साथ-साथ अंतर्राष्ट्रीय संतुलन की ईंटें भी खिसकती जा रही हैं।'

विगत 32 सालों में दुनिया वैश्वीकरण के नाम पर ग्लोबल गाँव में बदल गई है। लेकिन इसके जो प्रभाव सोचे गए थे, जो स्वप्न हमें दिखाए गए थे, वे तो कहीं दिखाई नहीं देते, बल्कि परिणाम कुछ और ही सामने आ रहे हैं। आवारा पूँजी ने दुनिया के कई देशों का नक्शा बदल दिया है। आज हम जिस नए विश्व में आ गए हैं, वहाँ मानव कल्याण के स्थान पर विकास का एक अमूर्त मार्ग प्रस्तुत कर दिया गया है जिसमें आम आदमी कहीं नहीं है और पूरी दुनिया जैसे पूँजी की गिरफ्त में है। हमारे कवि-लेखकों की चिंता और सृजन के दायरे में इस प्रकार के सवाल आरंभ से ही रहे हैं। आप एक चिंतक-कवि के रूप में इसे कैसे देखते हैं?

प्रेमचंद जी, यह भूमण्डलीकरण अब एक मिथक में बदल गया है। इसकी शुरुआत सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप के साम्यवादी देशों के पतन से हुई थी। इसका लक्ष्य संपन्न और शक्तिशाली देशों, प्रमुखत: अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी, जापान द्वारा विश्व का एकध्रुवीकरण करना था। यह साम्यवाद के पुनर्जन्म को रोकने का षड्यंत्र था। इससे पूँजीवादी देशों के व्यापारिक हितों की ख़ूब भरपाई हुई है। दूसरी ओर, विकासशील देशों की अमेरिका और यूरोप के समृद्ध देशों पर निर्भरता बढ़ी है। भूमण्डलीकरण के अंतर्विरोधों ने ही विश्व में आर्थिक राष्ट्रवाद और संरक्षणवाद को जन्म दिया है। लोकतांत्रिक व्यवस्थाएँ ढह रही हैं और छद्म राष्ट्रवाद से अधिनायकवादी सत्ताओं का उदय हो रहा है। एशिया के कई देशों में भी अधिनायकवादी ताक़तों ने कॉरपोरेटों और चहेते पूँजीवादियों के साथ साँठगाँठ करके अपने एकाधिकारों का इजाफ़ा किया है। चीन में, क्योंकि राज्य-नियंत्रित पूँजीवाद है और वह अंतर्राष्ट्रीय पटल पर अपनी भूराजनीति (जियोपॉलिटिक्स) से अपना वर्चस्व बनाए रखना चाहता है, भूमण्डलीकरण की बात करना फ़ायदे का सौदा है। ज़ाहिर है कि सत्ता की हवस ने हमें फिर से एक संकीर्ण गलियारे में खदेड़ दिया है जहाँ जनता, सर्वहारा के हित गौण हो गए हैं।

भारत की स्वाधीनता के बीते 75 सालों में हमने देश में राजनीति के कई रूप-रंग देखे हैं। पिछले कुछ सालों में बहुदलीय राजनीति का अनेक कारणों से प्रसार हुआ है, लेकिन इससे कोई बड़ा बदलाव समाज में निचले स्तर पर देखने को नहीं मिला है। आवाज़ ध्वनित हो रही है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हम सब देख रहे हैं कि भारत में लोकतंत्र सिर्फ़ वोट बटोरने, सत्ता में बने रहने और अपनी विचारधारा को सब पर थोपने तक ही सिमट चुका है। दरअसल, यह समय लोकतंत्र की आसन्न मृत्यु और अधिनायकवाद के उदय का जश्न मनाने का है। विश्व का इतिहास गवाही देता है कि मज़बूत से मज़बूत सत्ताओं का भी पतन हुआ है। सबसे तरल, रूपहीन पानी होता है फिर भी वह कठोर से कठोर पत्थर को तोड़ देता है...

समकालीन हिंदी साहित्य को आप किस रूप में देखते हैं?

ब्रेख़्त ने न जाने किस लेखकीय आत्मविश्वास से कहा था कि अँधेरे वक्त में अँधेरे के बारे में लिखा जाएगा। काश यह विचार समकालीन हिंदी साहित्य के बारे में सच होता। टेक्नॉलोजी ने साहित्य चेतना को संकीर्ण और इकहरी बना दिया है। हिंदी साहित्य की हर विधा में मीडियोक्रिटी हावी है और तुरत-फुरत संप्रेषित होना चाहती है। सब कुछ खण्डित हो चुका है और समय की गति से उछलता हुआ समय-निरपेक्ष हुआ जा रहा है। लिखना कोई जोख़िम भरा प्रतिरोध या व्यतिक्रम नहीं है, बल्कि यथास्थिति बनाए रखने का उपक्रम है।

वैश्विक पटल पर हिंदी साहित्य की स्थिति को आप किस प्रकार देखते हैं, 'रेत समाधि' को मिले बुकर के बाद लोग कह रहे हैं कि अब हिंदी की वैश्विक पहचान और बढ़ गई है।

हिंदी साहित्य की वैश्विक पहचान की बात करना भारत के विश्व-गुरु होने की बात करने जैसा ही है। जैसे अन्य विकासशील देशों की उपस्थिति सारे विश्व में है, वैसे ही भारत की भी है। विश्व साहित्य की बात करेंगे तो भारतीय साहित्य को भी शुमार किया ही जाएगा। सिर्फ़ एक 'रेत समाधि' के अनुवाद को बुकर मिल जाने पर अति उत्साह से फूले हिंदी साहित्यिकों को समझ में आना चाहिए कि बुकर पुरस्कार वैश्विक पहचान की कोई कसौटी नहीं है। और तानाशाहियों, शोषण, उत्पीड़न, ग़ैरबराबरी, उपनिवेशवाद, रंग और नस्लभेदों से जूझते विश्व के अनेक देशों में जो लिखा जा रहा है, उसकी तुलना में भारतीय साहित्य और ख़ास तौर से हिंदी साहित्य में बहुत कम लिखा गया है, लिखा जा रहा है।

लेखकों का एक्टिविज़्म न्यूनतम है। शाब्दिक 'एक्टिविज़्म' तक नदारद है। हिंदी भाषा में फ़ासीवाद से लड़ने के नये औज़ारों, जुझारूपन, लक्ष्यभेदी राजनैतिकता सिरे से गायब है। क्या लातिनी और अफ़्रीकी देशों के लेखकों ने प्रतिरोध की इस भाषा का आविष्कार नहीं किया है? हम आत्मप्रचार के रूमान और रूढ़ि से ग्रस्त हैं जबकि खण्डित होते इस देश में भयमुक्त खड़े होने के लिए हमारे पाँवों से मिट्टी तक छीनी जा रही है। फिलहाल, हिंदी साहित्य लेखन को देश की राजनीति से अछूता रखना और वर्तमान के प्रति पलायनवादी आत्मकेंद्रित होना लोकजीवन के प्रति विश्वासघात है। प्रासंगिक बने रहने के लिए लेखकों को अपना नज़रिया साफ़ तौर से बताना होगा कि शासक दल, उसके निज़ाम से उसका क्या रिश्ता है, नव-पूँजीवादी व्यवस्था से वह कैसे वैचारिक और शाब्दिक मुठभेड़ करना चाहते हैं।

मैंने पढ़ा-सुना है कि हिंदी कविता विश्व-स्तरीय है। आपकी दृष्टि में समकालीन हिंदी कविता कहाँ है?

प्रेमचंद जी, मेरी राय में एक कवि से कविता के बारे में बिल्कुल नहीं पूछा जाना चाहिए। वह अगर कविता के पेचोख़म का जानकार होता तो शायद ही कविता करता। कवि से कविता के बारे में पूछना उसे अपनी कविता के मानकों में क़ैद करने जैसा है। वह एक निहायत असंतुष्ट, असफल ट्रेजिक हीरो होता है जो कविता में ही जीता है, मरता है।

कुछ कवि बार-बार कविता के बारे में ही कविता लिखते रहे हैं जैसे नींद में गाफ़िल कोई शिशु बार-बार माँ के स्तनों पर मुँह मारता है। यहाँ माँ यानी कविता-माँ।

फिलहाल, हिंदी के समकालीन कवि कविता के 'सुरक्षित परिसर' में बने रहना चाहते हैं। उन्हें, प्रतीत होता है लोकतंत्र के ढहते जाने से कोई शिकायत नहीं है। वे मध्यवर्गीय कवि हैं, निम्न से उच्चतर, उच्चतम होते हुए लेकिन अपनी जवाबदेही और जनता की बदहाली के लिए कोई अपराध-बोध उनमें नहीं है। वे अपनी वर्गीय चेतना में प्रसन्न हैं और उन्होंने एक ख़ास किस्म की छद्म, प्रतीकात्मक, शाब्दिक प्रतिरोध करने की चतुराई अर्जित कर ली है। अधिकांश कविताओं में इस चेतना का इकहरापन साफ़ दिखाई देता है। शायद टेक्नॉलोजी के सहज-सुलभ माध्यमों ने कवि-दृष्टि, कल्पनाशीलता और मानवीय ऊष्मा को संकरा कर दिया है। कहना न होगा कि जो संकट विश्व की कविता के सम्मुख हैं वे ही कमोबेश हिंदी कविता के सामने भी हैं। मेरा कवि भी इनसे कैसे बचा रहता। शाश्वत की कविता लिखने के बजाय वर्तमान का 'पैरानोइया' (दहशत) चेतना का घेराव किए जा रही है कि कोई जेल कवि का इंतज़ार कर रही है, कोई भीड़ 'लिंचिंग' के लिए उमड़ रही है...

संवादकर्ता : प्रेमचंद गांधी
सम्पर्क - +91 98291 90626

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी कविता समय - 2

उपेन्द्र कुमार

(मिथकीय चेतना के समाजी आधुनिक कवि।)

अपराध और चाय के बीच की दूरी

एक पात्र आता है
अपना परिचय देता है और स्पॉट लाइट के बगल के अँधेरे में बैठ जाता है
दूसरा आता है पहले की चुगली करता है और उजाले की तरफ से निकल जाता है
तीसरा तटस्थ भाव से
जेब से हरे-हरे नोट निकालकर गिनता है और संबंधित अधिकारी की ओर देखकर
गिनता चला जाता है-

एक तरफ हस्तिनापुर के सैनिक
पर कोई किसी को कुछ भी नहीं देता
बस संबंधित व्यक्ति की आँखें पढ़ लेता है
पलकों की इबारत आते ही सौदा पक्का हो जाता है

सारी व्यवस्था पंगु हो जाती है
बीच-बीच में अपराध और चाय की बीच की दूरी मिट जाती है

धृष्टराष्ट्र अंधा है
गाँधारी की चुप्पी भी आँखें पाती हैं

छू नहीं पाता पत्थरों को

राजगृह में थे
गर्म जल के सोते
घने जंगल, पत्थर और पहाड़
पहचान थे राजगीर के
जो तब भी जाना जाता था
राजगृह के नाम से

राजगृह में अक्सर
आते थे बुद्ध
देते थे प्रवचन
ठहरते थे
कई-कई दिन

अभी भी
बचे-खुचे हैं कुछ
जंगल, पहाड़
सोते गर्म पानी के

आते हैं अब चर्म-रोगी और
बौद्ध पर्यटक
बनवाते हैं
खैरात में चौड़ी सड़कें
भव्य शांति-स्तूप
जिसे देखने आते हैं
और पर्यटक

नहीं बस, आता इतिहास
अब यहाँ

छू नहीं पाता
पत्थरों को
कोई प्रवचन!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फिर भी रुकता ही नहीं गिरना

आग से धुआँ धुएँ से कालिख
और जो हो गई एक बार
कालिख से काली जीवन-गति या मति
चदरिया या चुनरिया
तो फिर होती नहीं उजरी चाहे धोते रहो लाख बार

आग तो है, उन्माद
मज़हबी हो, या मतलबी
उठता है तूफ़ान की तरह
तेजी से लाँघता हुआ सागर, पर्वत, जंगल, रेगिस्तान
आ बसता है हमारे पड़ोस में
घुस जाता है हमारे माँस-मज्जा में
लाख रोको रुकता नहीं
घुसता जाता है नाख़ूनों की पोरों तक में
करता हुआ परेशान

बार-बार हम
काटते हैं बढ़े नाख़ून
मिलाते हैं हाथ
फिर भी रुकता ही नहीं गिरना
सरों पर हमारे फतवों और जयकारों की ईंटों का
होते रहते हैं हम लहू-लुहान
उन्माद की बाढ़ में गंदला हो, उफनता है, उबलता है
गंगा-जमुना का संस्कार

क्या अब, ख़ूँख़ार हमलावर हाथों से ही
हाँके जाएँगें पगलाकर दौड़ते काल-अश्व
रौंदते खुरों से धरा की धरोहरें, हमारा वर्तमान और भविष्य

काश हम रहें हमेशा व्यस्त कुछ से कुछ जोड़ने में
और नहीं तो खुद को ही खुद से
बुझाते रहें अपनी और दूसरों की लगाई मिलकर साथ-साथ

जिस वक़्त हो सकता था वक़्त

प्रत्येक बुजुर्ग कहता हुआ वक़्त तो हमारा था
प्रत्येक पुरानी पीढ़ी करती घोषणा, पहले के वक़्तों की बात ही कुछ और थी
अपनी चाल चलने वाला वक़्त होता है सबके साथ और
होकर भी होता नहीं किसी के भी साथ
पहाड़ों, नदियों, बादलों की तो खूब पटती है वक़्त के साथ
प्रगाढ़ पारस्परिक समझ के साथ
बतियाता है बहुत कुछ यह नालायक वक़्त
तूफानों और बारिशों से
आकाश और अन्तरिक्ष के शून्य से

कहाँ पिछड़ रहे होते हैं हम
जब नहीं होते वक़्त के साथ

खेल रहे होते हैं गेंद
तोड़ रहे होते हैं आम, इमली, लीची
या ऐसा ही कुछ
अपने पुराने जिला स्कूल के मैदान में

टहल रहे होते हैं उन सरकारी पार्कों में
(जो हो गए होते हैं कब के उजाड़)
अपनी उन पुरानी प्रेमिकाओं के साथ
जो दादी, नानी की अपनी-अपनी भूमिकाओं में
होती हैं पड़ी पस्त और
और जिनसे नहीं जाएँगे कभी भी मिलने हम

परन्तु आदतन खोजेंगे जरूर उस खोए वक़्त को

सम्पर्क - 9818934640

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सुधीर सक्सेना

(समय की राजनैतिक और सामाजिक इबारतों में दुनिया के लिए मंगलकामना उकेरते कवि।)

फ़ासला बरतता है प्रेम

अगर दुनिया की सारी घड़ियों में काँटे
घूमते हैं नामावर्त : बाएँ से दाएँ
तो प्रेम की घड़ी के कांटे
घूमते हैं दक्षिणावर्त : दाएँ से बाएँ

वे जो भयभीत हैं ग्रीष्म में घाम और
शिशिर में शीत लहर से,
वे जो डरते हैं बारिश में भीजने से
और डर जाते हैं दिल के धड़कने से तेज रफ़्तार
वे जो कभी फैसला नहीं कर पाते
श्वेत और श्याम में,
और चुन नहीं पाते वर्णक्रम में अपना पसंदीदा रंग,
वे जिन्हें भाता नहीं खिड़की पर पाखी का कूजना
जिनका मन कभी नहीं करता टी-बीटी-टुट टुट
वे जिन्हें भाता नहीं,
बिल्लियों के आँख मींच धूप सेंकने का दृश्य
वे जो मंझे के काँच और
कनकौव्वे के कटने के डर से
कभी नहीं उड़ाते गुड़ी
वे जो बंद कमरे में भी
होंठ गोलकर बजा नहीं पाते सीटियाँ
कृपा करके वे दूर रहें प्रेम की दुनिया से
यूँ तो आज तक जड़े नहीं गए
प्रेम की दुनिया के दरवाजों में कपाट,
अलबत्ता जो फैसले से बरतते हैं फासला
और मिलने पर रखते हैं फासला दरम्यान
उनसे खुद फासला बरतता है प्रेम।

देह पर गोदना

कहा! प्रिया ने
तुम्हें आता होता अगर गोदना
तो तुमसे गुदवा लेती
सारी देह पर तुम्हारी कविताएँ

माना कि झरती हैं तुम्हारी कविताएँ
मन के आँगन में
और उन्हीं फूलों की सुवास है देह में

मगर सोचो तो
कैसी लगेगी देह
कविताओं के इतिहास में
किसी भी हस्तलिखित पांडुलिपि से कहीं ज्यादा
दिलफ़रेब कि क़ातिब भी पलक झँपना भूल जाए
भूल जाए हवा बहना
और बाँचने लगे कविताओं की अनूठी बही

सोचने लगा मैं
कि सोचते ही ऐन अटक गया
अधूरी पंक्ति पर
और अटक ऐसी कि अटका हूँ अब तलक
हालाँकि कविता से तुक कभी के जा चुके हैं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मगर सोचना कठिन था कि कैसा लगेगा
प्रिया की देह पर अतुकांत कविताओं को आँकना

सोचना कठिन था
कि कैसे सधेगी प्रिया की देह पर
कविता की देह

तन्द्रा से बाहर था
पूछा प्रिया से हठात्
कि क्या कर आया
देह पर कविता गोदवाने का खयाल

कहा प्रिया ने
यूँ ही नहीं, बल्कि यूँ
कि कुछ और नहीं,
फ़क़त गोदना जाता है
परलोक में साथ।

प्रेम गली

गली आगे मुड़ती है
गली बेतरह पेंचदार है
गली क्या, कुल्हिया है कम्बख़्त

आज से नहीं
सृष्टि के आदिकाल से
यह ऐसी ही है
इसे बदलने की कोशिश न करें, श्रीमान!
यह दो के लिए नहीं,
एक के लिए बनी है

उत्तर-आधुनिक तो क्या
उत्तरोत्तर-आधुनिक और उसके उपरांत भी
यह ऐसी ही संकरी
और पेंचदार रहेगी, जनाब !

इत्ते साल

दूरी थी हमारे-तुम्हारे बीच
बेतरह इसलिए
कि उसे तय किया जाए
तय हुई वह
औचक नहीं, आहिस्ता-आहिस्ता
इत्ते दबे पाँव
कि पिंजरे में बंद पाखी
ने कूजा और
न पंख फड़फड़ाये उसने
एक भी बार
धूप का पसरा होना हमारे-तुम्हारे बीच
छाँह का आमंत्रण था
छाँह हुई
तदंतर तुम थीं
देह के बाहर आकर अपनी देह को देखती हुई
विस्फारित
किमसाब के बटुवे सी देह
जीवन के सांध्य-प्रहर में मैं अवाक्
कि जिनगी भर खरचने के बावजूद
बटुवे के सारे सिक्के सलामत
मानो खुला ही नहीं बटुवा एक भी बार

अब तलक
जीवन में आखिर
क्या खरचती रही हो तुम
इत्ते साल?

वास्ता

दाड़िम से
उसका वास्ता उतना ही
कि उसके होंठ
उतने ही लाल
जितना दाड़िम?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पतझड़ में पेड़

देह पर
एक भी किसलय नहीं
खुले आसमान तले
यह गाछ है
या कि स्त्री
झुकी हुई ग्रीवा
निहारती हुई
अपना वक्षोज़
अपनी ही पिंडलियाँ
पहली दफ़ा
उसकी आँखों में थिरता है
उसे विस्फ़ारित करता
उसका अपना ही सौन्दर्य!

अलबत्ता

आपने प्रेम किया
तो भी मरेंगे
और नहीं किया
तो भी मरेंगे एक रोज

प्रेम से मौत खारिज़ नहीं होती
मौत का एक दिन मुअइय्यन है

प्रेम से नहीं बदलती मौत की तारीख़
अलबत्ता प्रेम से बदल जाती है जिंदगी
आमूल चूल।

स्मृति
उँगलियों की स्मृति में है
स्पर्श
बाँहों की स्मृति में है
गलबाँह
वक्ष की स्मृति में है
आलिंगन
होंठों की स्मृति में है
चुम्बन
स्मृति और कुछ नहीं चाहती
स्मृति चाहती है
फिर से हरी हों स्मृतियाँ।

सातवीं ऋतु
ऋतुओं से नाता नहीं है प्रेम का
कि प्रेम अपने आप में अलग ऋतु है
सातवीं ऋतु है प्रेम
छहों ऋतुओं को समोये अपने आप में

प्रेम में ताप है
प्रेम में शीत
प्रेम में बयार है
प्रेम की वृष्टि

प्रेम को फ़र्क नहीं पड़ता, न आँधी से, न पानी से
भीति नहीं जानता प्रेम, न ओलों से, न पाले से
उतना ही उदात्त फूटता है
जितनी ज्यादा विषम होती है परिस्थितिकी

अगर्चे देह में उमगता है हठात् रोमांच
और मन की डार पर फूटता है अचानक बौर
तो समझ लो आ गई जीवन में
सातवीं ऋतु प्रेम की।

सम्पर्क – 97111 23909

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनामिका

(देश-दुनिया की पारिवारिकता और सामाजिकता को अर्थसंपृक्त करती बैचेन स्वरसंपदा की कवि।)

अत्यन्तगता माँ के लिए 'तर्पण' सीरीज की कुछ कविताएँ

देह एक छरियाई बच्ची है

देह एक छरियाई-जिदियाई बच्ची है
बहुत देर सखियों में बैठ गई माँ
तो खींचने लगती है आँचल।
टूँगती है, मारती रहती है कोहनी।
फिर एकदम मचा देती है ताण्डव!
कब तक मटियाएगी,
माँ उठ ही जाती है-
आधे उचारे हुए वाक्य
पान के बीड़े-सा
मुँह में दबाए।
एक बार रूठी हुई देह
जल्दी नहीं मानती,
बीच रास्ते लोट जाती है
कहीं भी अचानक!

कनेक्टिविटी

इतनी अकेली थी वो
कि कभी-कभी विज्ञापन-कम्पनियों के फोन भी
पूरा सुन लेती!
दो सिम थे उसके मोबाइल में जैसे दो फेफड़े!
एक धीरे-धीरे सुन्न हो गया!
दूसरा सिम ही जीवन्त रहा-
चूँकि सिम-कम्पनी का नाम ही 'जियो' था,
'जियो माँ' के नाम से सेव्ड है अब तक मेरे मोबाइल में!
अब यह 'जियो माँ'
है एक दुआ
जो शायद कहीं नहीं पहुँची!
आधे रास्ते से ही
जो दुआएँ लौट आती हैं-
उन दुआओं की ही उड़नतश्तरी पर-
काश, लौट आती सब माँएँ
तो धरती का सीना
ऐसा उजाड़ नहीं होता,
धूप इतनी चिड़चिड़ी नहीं होती,
मौसम भी इतना सिरफिरा नहीं होता!
एक गोद हरी-भरी
सबके नसीबों में होती
हम अपना भन्नाया माथा छुपा लेते
उस गोद में,
सो जाते बादल के आँचल से मुँह ढँककर
रिप वैन विंकल की नींद!
तब वे उठातीं जरा गुदगुदाकर-
''अब जागो,
याद करो रेडियो विज्ञापन
बचपन में सुना हुआ-
आयोडेक्स मलिए, काम पे चलिए!''
जाते समय चुपके से खोएंछे में
बाँध देतीं वे चोरउका-
एक नेग,एक टोटका, एक नई सदा
जो बार-बार हमें वापस बुला लेती-
''कैसी हो, कहाँ रह गई?''

प्यास पानी का ककहरा है

प्यास पानी का ककहरा है,
स्मृतियाँ प्रेम की बारहखड़ी हैं,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जीवन के सब पाठ झूठे लगे हों तो
गौर से सन्नाटा सुनने का अभ्यास अच्छा है-
जंगल की रात्रि पाठशाला में
अभी-अभी टीचर लगी है टिटिहरी।
हारिल पाखी अब भी पाँव उठाकर ही सोता है
प्रिंसिपल सेक्रेटरी: चिंता से बोझिल,
आसमान अगर गिरा
तो उसकी पाँवों की टेक से वह थमेगा-
दुनिया उसी के बचाए बचेगी,
ऐसा उसको लगता है।
सुपरसीरियस लोग प्यारे भी होते हैं और घनचक्कर भी।
हारे हुए युद्ध शांति सिखाते हैं,
शहर सिखावे कोतवाली!

एकांत

उसकी हँसी घास का एक बिछौना थी,
साँसें थीं टूटा दरवाजा

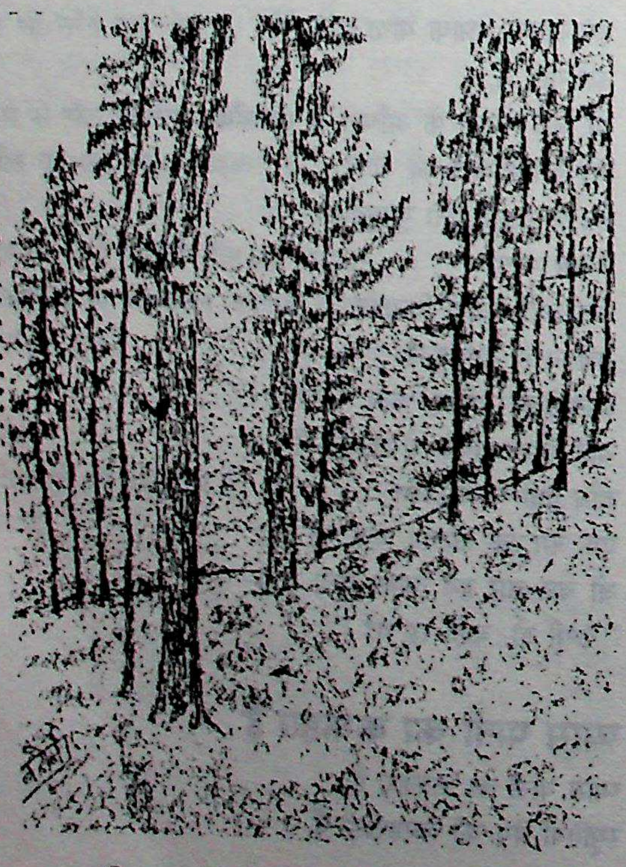

बगीची पर खुले हुए!
जिसपर वसन्त कहीं उठँगा था!
दूर की पथिक थी वो साँसें
अचानक उठीं और चली गईं, चली ही गईं
साथ उसके।
किसके लिए रुकतीं!
फूल जो हवा से कहते थे
गर्दन झुका के-
वह कूटभाषा बस वही जानती थी!
आसमान में उसके नोटेशन भी होंगे-
वह डायरी मेरी पहुँच के परे है
जैसे उसके बचपन की कॉपी
जिसपर वह कविताएँ लिखती थी।

शरशय्या

जिससे जीवन का ककहरा पढ़ा था-
अन्तिम समय में हम उसको भी
केवल उपदेश ही पिलाते रहे
''ऐसा नहीं, ये नहीं'' कोई कहता तो
गर्दन झुका लेती
शर्मिन्दा बच्ची सी।
अगर कभी एक मिनट का
एकांत हमें मिलता तो
धीरे से कहती-
''जो कहना है तुम अकेले में समझाओ।''
एकांत- यही तो नहीं मिलता दुनिया की इस भीड़ में-
दुखों की शरशय्या पर सोई
प्रज्ञा भी चुपचाप
सुनती है बड़े-बड़े आख्यान-
थके हुए योद्धाओं से
लगातार घिरी हुई!

सम्पर्क – +91 98107 37469

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बद्रीनारायण

(कविता में हाशिए की समाज शास्त्रीय चेतना और करुणा के चिंतक कवि।)

1
दुनिया मे अभी भी गूँजती है
एक ही आवाज

जो गज ने ग्राह से मुक्ति के लिए निकाली थी।
आपको पता है
यह आवाज उसने मन ही मन निकाली थी।
बोले के किए जाते हैं गलत अर्थ
किए की तो उससे भी ज्यादा

इसीलिए मैं तुम्हें मन ही मन पुकारता हूँ।
उठाता हूँ एक आर्तनाद तेरे लिए।
तुम उसे सुन पाते हो क्या।

अगर सुनते होते तो मेरे परिचित अपरिचित दुश्मन
तेरा पत्थर का कलेजा
फट न जाता।

2
हाथी के पाँव
जैसे बीच छाती पर

न हँस पाए, न रो पाए
न सह पाए, न कह पाए
न जी पाए, न मर पाए

दुनिया जैसे लेटी हो पेट के बल
और बीच पीठ में गड़ा है जाँते का खूँटा
इस साल भी
और उस साल भी
पत्थर का कलेजा

3
दुनिया में अभी भी गूँजती है
एक ही आवाज

जो गज ने ग्राह से मुक्ति के लिए निकाली थी।
आपको पता है
यह आवाज उसके मन ही मन में निकली थी

बोले के किए जाते हैं गलत अर्थ
किए की तो उससे भी ज्यादा

इसीलिए मैं तुम्हें मन ही मन पुकारता हूँ।
उठाता हूँ एक आर्तनाद मन मे ही तेरे लिए।

तुम उसे सुन पाते हो क्या।
अगर तुम उसे सुनते होते ओ मेरे दुश्मन
परिचित और अपरिचित
तो तेरा पत्थर का कलेजा
फट न जाता।

4
लेखक तो लेखक है
नागरिक नहीं।
जम्बूदीपे भरत खण्डे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लेखक तो लेखक है
उसे माँगने चाँगने
दावे
भागीदारी, हिस्सेदारी
आरक्षण, पेंशन,
कोटा, राशन
का अधिकार नही।

मानना है तो मान लो उसे
कुछ आधा अधूरा
नागरिक वागरिक जैसा ही

पर उसे कुछ पाने का अधिकार नहीं
कुछ पुरस्कारों के सिवा

लेखक तो लेखक है
हवा पानी की तरह
हमारी सभ्यता संस्कृति की जीवन रेखा।

5
जनता
जनता को कैसे पढ़ूँ।

अंग्रेजी, हिंदी
ब्रज, अवधी
कोई भी नहीं दे रहा है साथ
भाषा, बोली
सब बेबस

जनता का मन कैसे पढ़ूँ।

रोमन, नागरी, कैथी
किस लिपि में पढ़ूँ।

चेहरा पढ़ता हूँ
आँखे भी
माथे और हाथ की रेखाएँ भी

मन की भाषा में
जानता नही
जनता का मन में कैसे पढ़ूँ।

हे मेरे पंडित, हे मेरे ज्ञानी
हे मेरे पत्रकार
कुछ तो कहो
इस दुखी, हारी जनता को मैं कैसे पढ़ूँ।

सम्पर्क – 91 94506 13293

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लाल्टू

(समकालीनता और प्रासंगिकता को तलछट से आवाज़ देने वाले कवि।)

रज़िया

उनके बीच पानी या आग
या ज़मीं की प्यास
या ज़मीं में दूर तक समाई हुई पौधों की जड़ें थीं
या ख़ून था जो अब तक मेरे-तुम्हारे जिस्म में बह रहा है

सल्तनत पर काबिज वह इश्क की मारी हुई थी
हिंद की सल्तनत, आलिमों-दानिशमंदों से भरा दरबार
और बीच बहती यमुना पर पूरनमासी का चाँद
और रज़िया और याकूत की धड़कनें

इसे सपना कह सकती हो
हजार साल के बाद और हो भी क्या सकता है

सपना हमारे इर्द-गिर्द चकराता है
औरत और उसका इश्क सरपट दौड़ते हैं
उनके अपने उनका पीछा करते हैं
और तुम तड़पती हो
कि किस अरबी घोड़े पर सवार होकर वह यमुना से दूर जाए
कैसे अपनी जान बचाए

उसके कपड़े फट गए हैं
वह दौड़ रही है

ऐसे सपने में ही जीना मानीख़ेज़ है
चाँद धीरज के साथ तुम्हें देखता है
साए गहराते जाते हैं
तुम्हारे अंदर रजिया दौड़ती है।

-

बची आग

विदा कहने लायक भी छूट नहीं होगी
खेतों में फसलें छू आने के लिए
नहीं मिलेंगे दो पल
क्या सब कुछ जल चुका है
कहीं किसी ने दाने नहीं बचा रखे हैं
ये छोटी-बड़ी इमारतें, इंसानी ज़हन की करामात
सब वीरान हो जाएँगीं
क्या सूरज की रोशनी सचमुच धीमी पड़ जाएगी
दूर वह जो इमारत दिखती है
कोई उसके अंदर ज़रूर होगा
जाते हुए एक बार उसे छू कर जाता हूँ
कहता हूँ कि बची हुई आग
सीने से लगाए रखना
मौसम दर मौसम आसमाँ देखते रहना
बादलों पर बदलते धब्बे पहचानना
कि उनमें से बरसेंगे गीत
ऐसा हो नहीं सकता कि
चाँद ने छोड़ दिया कविता लिखना ।

-

स्वर्ण-युग

बच्चों से कह दूँ
कि आसमाँ के रंग देखना अपराध है
कि बहिष्कार मेरी जाति का नाम है
यह वक्त जिसमें किसी भी दिन मैं क़ैद हो सकता हूँ
यह भारतवर्ष का स्वर्ण-युग है
कह दूँ कि अपनी जुबान नाम की कोई चीज़ नहीं होती है
कि सँपोले और नेवले सभी अंग्रेज़ी सीख रहे हैं
कि फौज में जाना और दुश्मन दुश्मन चिल्लाना सबसे बड़ा धर्म है
कहने को बहुत कुछ है
कहाँ हैं बच्चे इस धरती पर?

सम्पर्क - 9966878063

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बलराम गुमास्ता

(वैज्ञानिक चेतना से लैस कविता का जनवादी स्वर।)

लिटोमासल

धरती जब कभी अवकाश पर होती
मेरे सपनों के आकाश में, कुछ इस तरह आती
कि मैं देखता मनोरम दृश्य, लुभावनी परियाँ
बिन सुनी कथाओं में वर्णित
लोग, शहर और आबादियाँ
चेक गणराज्य के पूर्व में स्थित
इस लिटोमासल शहर में आकर
सबकुछ इतना जाना -पहचाना
मनोहारी लगा कि सड़कों पर घूमते हुए
पता नहीं, कब मैंने
जैसे किसी देखे गए स्वप्न में
प्रवेश किया
जहाँ तरणतालों में अठखेलियाँ करतीं
अप्सराएँ हैं, पबों में बियर परोसतीं सुंदरियाँ,
सड़कों के दोनों ओर पेड़ों की सघन कतारें हैं,
जिन पर आते -जाते लोग
इतने निश्चल कि न तो उनमें
पूरब की चालाकी है न ही पश्चिम का कमीनापन
मुझे लगा कि

जब साम्यवादी साम्राज्य के अधीन था
यह चेक गणराज्य और यहाँ आने की मनाही थी,
पूर्व से आती हवाओं में, फूलों का मन हुआ
तब भी मैं
यहाँ बार -बार आया लगा

करता हुआ कई-कई देश पार
सहारा से गुजरता
मृग मरीचिका में भीगता
थकता तो अपने आप को
मृत समुद्र के तट पर खड़ा पाता

जहाँ बाँझ पृथ्वी, जीवन की कामना लिए
अपने आकाश कुसुम को
मृत समुद्र के नीले जल में
घोल रही होती

तब कोई आवारा बादल, अपनी नम आँखों में
इस समूचे जल रंग को भरता
रचता, सुदूर यूरोप के एक कोने में
एक भरा - पूरा चित्र
'लिटोमासल'

एक पगडंडी, जिस पर करीने से बिछाई गई है
रेत और बजरी
चित्र से होकर, मेरे सामने दूर तक फैली है
मैं, उस पर धीरे-धीरे रखता हूँ,
पैर और किसी विलुप्त नदी की, पदचापें सुनता हूँ

तभी एक लड़की, अपना अल्हड़ सौन्दर्य लिए
अचानक गुज़र जाती है, मेरे बगल से
विश्वास से भरी-भरी
छलकाती पत्थरों का आदिम संगीत
कुछ इस तरह कि
मैं, एक अनुगूँज में उतरता हूँ और कबाड़ में पड़े
किसी पुराने वाद्य में, बहुत देर तक बजता हूँ

फिर जहाँ रुकता हूँ
वहाँ फूलों से किया जाता है, मेरा स्वागत
वह एक-एक कर आतीं हैं, आगे बढ़ा देती हैं
एक गुलाब
चूमती हैं, फिर मुस्कुराकर करती हैं, अभिवादन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं आश्वस्त था कि, उनकी मुस्कुराहटों में अब
शबनम की ताज़गी थी, अतीत में
दूब के कुचले जाने के प्रसंग न थे

अलबत्ता आँखों में कुलाँचें भरतीं, हिरणियाँ थीं
जो कभी पूर्व के दु:खद अतीत तो कभी
पश्चिम के भयानक भविष्य तक जातीं
जहाँ सुनाई देती उन्हें
भारी-भरकम बूटों की आवाजें
तो वह ठिठक-ठिठक जातीं

बड़े अनमने भाव से, वह मुझे दिखाती हैं
'डोलनी उज़ेद',
शहर का, सहकारी दुग्ध कारखाना

जिसे कल तक वह,
सब मिलकर चलाती थीं मशीनों से संगत करती
उनकी सहेलियाँ तब, झूम-झूम जाती थीं

कारखाने के मुख्य द्वार पर
सुबह पाँच बजे से ही आकर
रोज की तरह, आज फिर बैठी हैं
'वाक्लावलिनोच'

राजनैतिक, आर्थिक परिवर्तनों से
बेखबर कि बंद होने को है, उनका
सहकारी कारखाना
छटनी में उन्हें, कर दिया गया है
जबरन रिटायर

वह नियमित पहले की तरह
रोज़ काम पर आती हैं
मुख्य द्वार पर बैठकर, बिताती हैं
पूरा दिन और अपने आप को बेरोजगार नहीं
नौकरी पर लगा मानती हैं

उनके चेहरे पर
जो असमय निकल आई हैं, झुर्रियाँ
समय उनमें, करीने से तह किया रखा है

दिन भर जैसे वह एक-एक कर
इन तहों को उठाती हैं
किन्ही मधुर यादों की गुनगुनी धूप में
उन्हें सुखाती, ओढ़तीं, बिछातीं
फिर देर तक ताकती हैं, आकाश

जहाँ कोई भूला बिसरा पल
आकाश में उड़ते
किसी परिंदे की छाया सा
अतीत की स्मृतियों और भविष्य के सपनों बीच
पाटता है, एक पूरा दिन

वह घर को लौट पड़ती हैं
मगर काम पर लौटने की जल्दी में
घर का नहीं, सुबह का
दरवाज़ा खटखटाती हैं

ठीक इसी समय
सुदूर पश्चिम के किसी चर्च से
आती है घंटा बजने की आवाज
जो समय में घुलती है, कुछ इस तरह
कि गहराने लगता है, शाम का धुँधलका
भारी होने लगती है, रात

ऐसे में मुझे याद आए
अपने गाँव के घड़ी साज
'गेंदालाल'
जो जीवन भर, सुधारते रहे घड़ियाँ
आवाजों को समय से अलग करते
बहुत बारीक सा, कुछ-कुछ बीनते
लंगोटी में होली खेलते, उनके दिन गुज़रे
एक दिन, जब वह अंधे हुए
तो उनकी बड़ी बेटी, उनका हाथ पकड़कर
उन्हें चलाती, यहाँ-वहाँ घुमाती

कुछ इस तरह कि
वह अभी; अभी
मेरे बगल से गुज़री, यहाँ
'लिटोमासल' शहर में।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सत्य कभी जीतता नहीं

सत्य कभी युद्ध में, भाग नहीं लेता
जाहिर है
जीत और हार
युद्धरत पक्षों की होती है
सत्य की नहीं

जीत और हार से परे
जीवन-जगत की सहजता में
जो व्याप्त है
'सत्य' वही है

महाभारत के युद्ध में उसने
लड़ने से किया इन्कार
बना, समय के रथ का चालक
घटनाओं का सूत्रधार

इतना बड़ा सबक
सामने होते हुए भी
आए दिन
लड़े जाते रहे युद्ध

पक्ष जो ज्यादा ताकतवर थे
जिन्होंने की ज्यादा हत्याएँ
वह जीतते रहे

हत्याओं और अमानवीय अत्याचारों
को ठहराने न्याय संगत
इन विजेताओं ने
ई.पू. हजारों साल पहले
मुंडकोपनिषद में
लिखवाया
'सत्यमेवजयते' का
सनातन, सूत्र वाक्य

फिर हर नर संहार के बाद
विजय की मुद्रा में
एक साथ चिल्लाए
'सत्यमेवजयते'

महावीर ने पहली बार उसे
अहिंसा के मर्म में जाना
कुछ इस तरह
कि जीवन की सहजता
मानवीय करुणा और त्याग में
पाया जा सकता है, उसे

बुद्ध ने जिसे ज्ञान के रास्ते पाया
फिर अंधकार में भटक रही मानवता को
'सत्य' का सही-सही रास्ता दिखाया

कलिंग युद्ध में
लाशों से पटी युद्ध-भूमि के बीच खड़ा
अशोक जब गहरे शोक में डूबा
उसके द्रवित हृदय ने
अहिंसा की शक्ति को पहचाना
जाना यह भी कि
सत्य को जीता नहीं
अर्जित किया जाता है

तब सिंह स्तंभ पर
लिखवाये गये, अपने ही संदेश
'सत्यमेवजयते' पर
संभवत: हुआ होगा उसे
पहली बार, संदेह

अंग्रेजों की
अस्त्र-शस्त्रों से संपन्न विशाल सेना
जिनके राज्य में
कहीं डूबता नहीं था सूरज
उसका सामना
सबसे उन्नत अस्त्र
'अहिंसा' और 'सत्य के आग्रह'
से ही संभव था
गाँधी ने इसे ठीक-ठीक पहचाना
उन्होंने गीता के सार से
'सत्य के आग्रह' का सामर्थ्य जाना

वहाँ 'विराट स्वरूप' के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दर्शन का प्रसंग भी था
जहाँ अनंत ब्रह्मांड
अपनी असीम जीवंत
आतंरिक ऊर्जा के साथ
विस्तारित होता हुआ, फैल रहा था
पर आश्चर्य कि उसकी आंतरिक उर्जा
उसके विस्तार में भागीदार नहीं थी

ठीक इसी तरह
जीवन की आंतरिक ऊर्जा
के आलोक में भी
पहचाना जा सकता है 'उसे'
जहाँ वह
न आक्रमणकारी होता है न विस्तारवादी

अनंत ब्रह्मांड में
अनेकों सूर्य और उनके सौरमंडलों के बीच
एक छोटा सा अपना सौरमंडल
जहाँ ग्रहों को चेतना देने वाला 'सूर्य'
अपनी सहजता और आभा में
दमक रहा है
उसके सामने
'सत्य का आग्रह' लिए
साढ़े तेइस अंश पर
झुकी हुई 'पृथ्वी'
अपने परिपथ पर
निरंतर काट रही है चक्कर
निमग्न

तकली की तरह
लगातार अपनी
धुरी पर घूमती
वह कात रही है
समय का सूत
जिससे बुनी जा रही है
जीवन -जगत की चादर

जहाँ हिलोरें ले रहे होते हैं, समुद्र
बादल बरसा रहे होते हैं, पानी
मौसम ले रहे होते हैं, करवटें
झूम रहे होते हैं, पेड़-पौधे
गा रहे होते हैं, कीट-पतंगे
सत्य का कर रहे होते हैं
उद्घोष

इतना ही नहीं
जड़ और जीवन के बीच
जारी आपस की
सहज आवा-जाही में भी
जाना जा सकता है, उसे

वह सतत और निरंतर है
समय और काल से परे
परे है,
हर हार और जीत से
जाहिर है
सत्य कभी हारता नहीं
सत्य कभी जीतता नहीं।

जन्मना

यह रहा मूर्ति वाला मुख्य चौराहा
चौराहे के बीच में गड़ी मूर्ति
महान आदमी की है, चलो नमस्ते करो

उसने न में सिर हिलाया

मेरे बार-बार कहने पर कि करो ना नमस्ते
वह रोने लगी
बोली पापा, मुझे डर लगता है!
यह तो किसी भूत की मूर्ति है ना?

यहाँ से कहीं दूर ले चलो, चलो ना पापा

मैं, कुछ समझाता, इसके पहले
तोतली बोली में, वह सुनाने लगती है
दादी से सुनी कहानी

''पता है! पापा
ऐसे-ऐसे एक लाजा था
गंदा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उसके लाज में सभी पलेशान लहते
लाजा के अत्याचाल से
जनता दु:खी और भूखी मलती थी
दु:खी जनता क्या कलती
तो एक दिन
सभी ने लाजा को घेल लिया
फिर पत्थल माल-माल कल
माल डाला

फिल लाश को
शहल के मुख्य चौलाहे के बीच में
गाड़ दिया

मैं, इतिहास का कोई प्रसंग देकर
बच्ची को समझाना चाहता था
मगर, इतिहास में तो सिर्फ
जीतने वालों का जिक्र था

जहाँ जीतने वाले
ताकतवर और महान बताए गए थे
वहीं हारने वाले
जाहिर है, जो जीतने वालों से
कमजोर रहे होंगे
अत्याचारी

गनीमत इसी में थी कि
मैं, विषय बदल दूँ
तो मैंने बच्ची को मूर्ति पर बैठी चिड़िया दिखाई

देखो वह वहाँ
मूर्ति पर कितनी सुंदर चिड़िया

मैंने जो इशारा किया
वह समय था और वहाँ चिड़िया होने की बात
इच्छा वस्तु
दोनों का एक साथ मिलना, प्राणों का लक्षण था

पंखों का फड़फड़ाया जाना,
डूबते पेड़ की चिड़िया का उड़ान भरना था
जहाँ विवरण प्रज्ञा, चोंच में दबाए
नीली स्लेट पर लगातार, वह लिख रही थी
जन्मना संदेश

साइबेरिया में जिसे गा रहे थे सारस
भरतपुर की दलदली झील में
केंचुए जन रहे थे, थोड़ी और धरती
मेंढक जोर-जोर से दुहरा रहे थे
बूँदों की गिनती

स्वर्ग में भी
धान के खेतों से चिड़िया उड़ाती
एक कोने से दूसरे कोने तक
ताबड़तोड़ भागती, माँ
अचानक ठिठकी

गुनगुनाते हुए, सारस बधाई ले का गीत
दोपहर में पीठ पर बँधा
कलेवा खोलती है

जिसमें टुकुर-टुकुर देखता
बँधा पाती है मुझे
पिलाती है दूध
तो धरती
कुछ और हरी हो जाती है

दोपहर का खाना, माँ
आज भी, इसी तरह खाती है

फिर पानी पीने उतर जाती है
पुरानी बावड़ी की सीढ़ियाँ
जहाँ छपक-छपक कर
चढ़ाती है जल, दरवाजे पर डटे
तुंदियल गणेश को

बुदबुदाते हुए
नातिन को सुनाई कहानी
मानो भूख से अब तक मर चुके
करोड़ो पुरखों को देती है, देर तक
उनका सूख गया पानी।

सम्पर्क – +91 96692 69151

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनिल गंगल

(लोक अभिप्रायों को नया काव्य जीवन और सरोकार देने वाले कवि।)

छतरी

एक महाकाय छतरी थी भूरे-काले कपड़ेवाली
जिसकी ज़्यादातर तानें वक़्त के साथ टूट चुकी थीं
फिर भी बची हुई थीं कुछ अभी भी सलामत
छतरी के भूरे-काले कपड़े और मूठ के बीच

एक वरदहस्त की तरह थी छतरी
परिजनों के सिरों पर छत की छाँह की तरह
उन्हें शीत, घाम, बरखा और दुश्चिंताओं से बचाते
हाथों में हाथ डाल उन्हें एकजुट बनाए रखते

घिस चुके बदरंग कपड़े के छेदों से आती थी धूप
जिसकी गर्माहट से उपजे एक-दूसरे के पसीने को
पोंछते थे तमाम हाथ एक साथ
उन्हीं छेदों से होकर रिसती थी बरसात सबके सिरों के ऊपर
जिसकी बूँदों की ताज़गी में तरोताज़ा होते थे सभी संग बराबर
जेठ की धूप में यही जर्जर छतरी
जैसी भी हो देती थी सिरों को शीतल छाया

यही छतरी देती रही त्राण परिजनों को क़रीब एक सदी
भिगोती रही सुख-स्नेह की वर्षा में लोगों को आकंठ
देती रही तपते सिरों को अपने आँचल की छाँह

आज अचानक तूफ़ान में
हाथों से छूट गई वह वटवृक्ष जैसी छतरी
उड़ गई देश-देशान्तरों को लाँघते करती क्षितिज पार
शरणागत परिजनों को आँसुओं के खारे जल में डुबोती
फिर कभी वापस न लौटने के लिए।

अंत्येष्टि

जानता हूँ
कि एक ख़ौफ़नाक सुनामी चल रही होगी
तुम्हारे भीतर की दुनिया में इस वक़्त

इस वक़्त
उठ रहे होंगे तुम्हारे भीतर दहाड़ते समंदर में
अनगिनत भूकंप असंख्य केंद्रों पर
भीतर मचलते कोलाहल में
उठ रहे होंगे दुनिया जहान के कई-कई चक्रवात
लहरें उमड़ रही होंगी किनारे पड़े बेडौल पत्थरों पर
पछाड़ें खाती हुई
एक शैतानी झंझावात तुम्हें जड़मूल समेत उखाड़
दूर देशान्तरों के निर्जन बियाबानों में फेंक रहा होगा

साठ बरस साथ निभाने के बाद
जीवन संगिनी के तुम्हें अकेला छोड़ जाने पर
बची हुई उम्र के सूने अरण्य में विचरते
तुम एक दहकते दावानल से रूबरू हो रहे होगे

जब पुत्र तुम्हारा
अपनी माँ के गर्भ-स्थल पर आटे का पिंड रख
मातृ-ऋण से मुक्ति पाने की जद्दोजहद में होगा
जब मुखाग्नि से पूर्व अंत्येष्टि स्थल को घी, कपूर
और अगर की सुगंध से पूरित किया जा रहा होगा
जब लाल बिंदिया, चुनरी, हरी चूड़ियों और मंगलसूत्र के साथ
तुम्हारी जीवनसंगिनी कुछ ही क्षणों में
पंचमहाभूतों में विलीन हो जाने के क़रीब होगी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक ज्वालामुखी
अपनी आग और लावा के साथ तुम्हारे भीतर सुलग रहा होगा

उसके निष्प्राण चेहरे को ढँकने से पहले
तुम उसे आख़िरी बार बुढ़ाती आँखों से निर्निमेष निहारोगे
और अंततः चेहरे को हथेलियों से ओट देते
भीतर-भीतर घुमड़ती रुलाई को थामने की
एक पराजित कोशिश में ग़र्क़ हो जाओगे।

एक अभागी स्त्री की कविता

एक पुरुष के कंधे पर टिका है
एक स्त्री का सिर

सदियों पुरानी असुरक्षा और निर्बलता में धँसी हैं
स्त्री की आँखों में ठहरे सपने की जड़ें

सपने में पड़ रही है
एक छोटे से सुखी घर की नींव
घर की तिखाल में उग रही है
सिन्दूर और मेंहदी की डिबिया
आले में प्रतिष्ठित है तमाम पापों और शापों से बचाने के लिए
एक अदद ईश्वर
और आँगन में लहलहा रहे हैं
पकी फ़सल की बालियों की तरह बच्चे

स्त्री के सिर से सटे पुरुष कंधे से
फूटता है ज़हर का अँखुआ
काँटेदार टहनियाँ और जड़ें फेंकने लगता है
एक ज़हरीला पेड़

अंधड़ में काँपती है घर की नींव
सपने की तिखाल से फिसल
धम्म से आ गिरती है सिन्दूर की डिबिया
आँखों में किरकिराने लगती है सुहाग की मेंहदी

खुद को बचाने की गुहार लगाते
पत्थर आँखों से ताकता है खंडित ईश्वर
सपने से निकलकर खुली आँखों के सच में
फैलकर बढ़ने लगते हैं बच्चों के नाख़ून

पुरुष
और बच्चों के रक्तपायी होठों से
गिरता है टप-टप अभागी स्त्री का रक्त

पुरुष के कंधे पर उगे अंधकार के पेड़ से
सुनाई देता है एक थकी-हारी पराजित स्त्री का
करुण रुदन

सम्पर्क - 0823380905

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्वप्निल श्रीवास्तव

(प्रकृत संवेदना और लोकचेतना के आधुनिक कवि।)

अमृत फल

तुम्हारे अमृतफल पर है
दुष्टों की नजर

कव्वे इसे ठोढ से घायल
कर देना चाहते हैं
बाज पहट रहे हैं
अपने चोंच

कुछ लोग दरख्त पर चढ़ कर
ऊधम मचाना चाहते हैं
तोड़ लेना चाहते हैं
अमृतफल

तुम्हारे अमृतफल की तरफ
बढ़ रहे हैं दरिंदों के हाथ

कोमल और निष्पाप अमृतफल
इन दिनों सुरक्षित नही रह
गए हैं
उनके पीछे हिंसक लोगों की
भीड़ है
पथराव का कम डर नही है

जो तुम्हारे अमृतफल की रक्षा में
लगे हुए हैं उनके भीतर अमृतफल
पाने की बलवती इच्छा है

लेटरबाक्स

वे चमकते हुए लेटरबाक्स कहाँ गए
जिन्हें देख कर पत्र लिखने की
इच्छा होती थी
वे सार्वजनिक जगहों अथवा चौराहों पर
टँगे रहते थे जिस पर चिट्ठियाँ निकालने
का समय मुकर्रर रहता था

एक आदमी थैला लेकर आता था
उसमें चिट्ठियाँ भर कर चला
जाता था

हर शहर में रहते थे लेटरबाक्स
वे घर से बहुत दूर नहीं रहते थे
बच्चे उस दूरी को आसानी से तय
कर लेते थे

शहर लेटरबाक्स विहीन हो गए हैं
इक्का-दुक्का लेटरबाक्सों के रंग
घूसर हो गए हैं
वे धूल से अटे पड़े हैं
उनकी तरफ कोई नहीं देखता
वे उपयोगी नही रह गए हैं

बाजार का नियम है कि जो चीजें
हमारे काम की नहीं होतीं
व्यर्थ में घेरती है जगहें
उन्हें जरूरत से बाहर कर दिया
जाता है

इसी तर्क से माता-पिता घर से
बाहर कर दिए जाते हैं

संवाद के नए तरीके चलन में हैं
चिट्ठियों के लिए किसी के पास
वक्त नहीं है
प्रेमपत्र लिखने की आदत कम हुई है
सब कुछ मोबाइल के जरिए तय
हो जाता है
मेरा बच्चा लेटरबाक्स को चिड़ियों का
घोंसला कहता था
उसे चिट्ठियाँ परिंदों की तरह
दिखती थीं – जो पाने वालों के पास
उड़ के पहुँच जाना चाहती हैं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं खाली-खाली लेटरबाक्स की तरह हूँ
कोई मेरे भीतर चिट्ठी डाल कर मुझे
पुनर्जीवित कर दे तो कितना
अच्छा हो

तितलियाँ

तितलियों के बारे में मैं बहुत कुछ नही जानता
बस इतना जानता हूँ कि वे इसलिए
उड़ती हैं ताकि हम उन्हें पकड़
न पाएँ
पकड़ में आ गई तो वे तितलियाँ
कहाँ ?

वे हर मौसम में दिखाई देती हैं
वसंत के दिनों में शोख और चंचल
हो जाती हैं

वे फूलों के होंठों को चूमकर लहूलुहान
कर देती हैं - इसके बावजूद फूल
मुस्कराते हैं

कुछ तितलियाँ मेरी डायरी में
छोड़ गई हैं पंख

जब उन्हें छूता हूँ, वे तरंगित होने
लगती हैं
मैं उन पंखों के साथ उड़ने
लगता हूँ

मैं उन सारी तितलियों को धन्यवाद
देना चाहता हूँ जो मेरी जिंदगी के
उड़ान में शामिल हैं

जीवन

जो कुछ मैंने जीवन के बारे में लिखा
उसमें व्याकरण की बेशुमार गलतियाँ थीं

कहाँ विराम होना चाहिए, कहाँ अर्द्ध विराम
कहाँ प्रश्नवाचक चिन्ह होगा, कहाँ ठहराव
इसके बारे में मुझे कोई जानकारी
नही थी
लिखावट साफ नही थी इसलिए कुछ का कुछ
पढ़ा जा सकता था
इसका अनुभव तब हुआ जब मेरा लिखा
प्रकाशित हो चुका था
लोग पढ़ भी चुके थे

उसके बाद सुधार करना पाठकों को
धोखा देने जैसा था

अच्छे होते हैं वे लोग जो छपने के पहले
पढ़ लेते हैं प्रूफ

मैं न अच्छा आदमी हुआ न अच्छा लेखक
जो कुछ गलत था उसे यथोचित स्वीकार
कर लिया था

खराश

वह अभिनेत्री जब बोलती है
साफ-साफ सुनाई पड़ती है
खराश

बाद में उसकी खराश को गुण की तरह
स्वीकार कर लिया गया

प्रेम दृश्यों में मादक हो जाती थी
उसकी खराश
लड़कियाँ उसके खराश की करती हैं
नकल

एक समय में देवदास की भूमिका में
कुंदनलाल सहगल की खाँसी भी खूब
प्रचलित थी
प्रेम में असफल नायक सहगल की तरह
खाँसते थे

फिर गंजे खलनायकों का युग आया
वे सघन बालों वाले नायकों से ज्यादा
लोकप्रिय हुए
वे अपने गंजे सिर पर हाथ फेरते हुए
बोलते थे संवाद
बड़े-बड़े नायकों की छुट्टी हो जाती थी

कला की दुनिया में अवगुण मुकुट
की तरह पहने जाते हैं
और बाजार में खोटे सिक्कों की तरह
चलते हैं

सम्पर्क - 9415332326

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जितेन्द्र श्रीवास्तव

(पुरबिया लोक से नाभिनाल-बद्ध आधुनिक चेतना के कवि।)

हूक

अजीब से दिन आये हैं
हवा में घुल गया है विष जैसे

लोग अवश ताक रहे हैं शून्य में
जो कल तक उपस्थित था
चमक रहा था कोहिनूर सा
राख हो चुका है महज कुछ घण्टों में

जीवन की तमाम योजनाएँ
पथराई आँखों से निहार रही हैं अस्थि-कलश

रुलाइयों के आर्तनाद से
सिहर रहा है शून्य
काठ मार गया है पृथ्वी को

चाहता हूँ बोलना
पर बार-बार कंठ से छूट जाती है रुलाई

कुछ दिन पहले तक
गुलमोहर के जिन फूलों से धुन उठती थी रूमान की
उन्हें देख हूक सी उठती है दिल में....

पूरब का आदमी हूँ

पूरब का आदमी हूँ
टूटकर प्यार करता हूँ पश्चिम से उत्तर से दक्षिण से
दसों दिशाओं से
समूची सृष्टि समूचे ब्रह्मांड से
मेरा पुरबियापन और भीगा मन
मेरी ताकत हैं
मेरी सीमा नहीं।

अनकही

तुम्हारे शहर तो कई बार आया
मगर तुमको पुकार न पाया

न जाने क्या बात थी
संकोच था या झिझक बस
या वो बात पुरानी
जिसका एक सिरा मेरी
और दूसरा तुम्हारी पुतलियों में अटका हुआ था
एक दूसरे से दूर जाते हुए

जब भी आया
तुम्हारे चौखट से कुछ दूर खड़ा रहा
शून्य में ताकता हुआ
कुछ खोजता हुआ कुछ खोता हुआ

हर बार चाहा
बहुत चाहा
मगर तुमको पुकार न पाया

देखो, आज जब मिले हैं युगों बाद
तो न मिलने की शिकायतें हैं
नयन सजल हैं
मनभरे-भरे हैं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आज हमारी अनकही भी एक ग़ज़ल है
अब कैसे बताऊँ
मन को कैसे समझाऊँ
कि मैंने जो खोया और तुम जो पा न सके
अब चाहकर भी कोई
वह नहीं लौटा सकता हमें!

किसी स्वप्न की कोर में

कभी मिले महत्त्व
और फिर धीरे-धीरे
वह अनुपस्थित हो जाए जीवन से
तो घबराना नहीं
न करना विक्षिप्तों-सा आचरण
भाषा की मर्यादा भी न खोना
और न ही हर ऐरे-गैरे के आगे रोना
थोड़ा ठहरना और समझाना मन को
जीवन में चलता रहता है पाना-खोना
यह गणित नहीं है
न है जादू-टोना

यही ज्ञान है जीवन का
यही है उसका विज्ञान
कहते रहे हैं पूर्वज सदियों से
मैं कोई नई बात नहीं कह रहा आज

जीवन में अक्सर आती हैं चीजें अप्रत्याशित
और चली भी जाती हैं हमारी इच्छा के विपरीत
फिर भी जीवन नहीं जाता
वह बचा रहता है
किसी स्वप्न की कोर में

देखना!
जब लगे अचानक सब कुछ छीज रहा है
मन अकारण भीग रहा है
तब थोड़ी दृढ़ता पैदा करना अपने भीतर
फिर लौटना उस पहले सपने की ओर
जिसे तुमने माना था आत्मा का पहरूआ
जिसे माना था मेयार जीवन का

फिर देखना
बदल जाएगा सब कुछ
महसूस होगा
जैसे पृथ्वी से उठ रही है
मौसम की पहली बारिश के बाद की गंध।

विश्वसनीय

जब किसी किले को देखो
या देखो महल को
और उसका वैभव देखकर
तुम्हारा चित्त रचने लगे अचरज का विश्व
तो रोकना मन के घोड़े को
ताकना उस स्याह अँधेरे में
जो दिखाई नहीं देता
जिसे देखना पड़ता है आत्मा की आँख से

हर किले को ध्वस्त होना है एक दिन
सारे महल धीरे-धीरे बदल जाएँगे खण्डहर में
किसी न किसी दिन
हर राजा जानता था इसे
फिर भी क्रूरताएँ कहाँ खत्म हुईं उनके मनों से
उनके जीवन से उनके आचरण से

हर किले के खण्डहर में
अनगिन विलाप टहलते हैं अब भी
हर महल के ईंट-दरवाजों में चीखें हैं स्त्रियों की
जो हर निशान मिटने के बाद भी
बची रहेंगी शून्य में
जिनका भाष्य करेंगी नए दौर में बेटियाँ

किलों, महलों के खण्डहर
इतिहास नहीं सिर्फ वैभव के
वहाँ एक असमाप्त कराह भी है अतृप्ति की
वहाँ अपूर्ण इच्छाएँ हैं कोटि-कोटि

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

लिखित इतिहासों का अधिकांश
हुनर का प्रदर्शन भर है

हुनर
विजयोन्माद और चीखों को
सफल और सफलता के पक्ष में
विश्वसनीय बना देने का।

अमरता नश्वरता

दृष्टि के पार
जहाँ मिल रहे हैं धरती और आकाश
यह नील जल कहीं उससे भी आगे तक है शायद

लहरें उठ रही हैं, गिर रही हैं
बार-बार
छूना चाहती हैं आकाश

छू नहीं पातीं लेकिन थकती भी नहीं वे
गिर-गिरकर फिर-फिर उछालती हैं स्वयं को

यह एक महान दृश्य है सृष्टि का
उसके आरंभ से ही बिगड़-बिगड़ कर बनता हुआ

इधर समुद्र के वक्ष पर
खिल उठे हैं कई-कई इंद्रधनुष

आज मन कह रहा है अपने मन से
देखो! देखो!!

यही अमरता है सौन्दर्य की
नश्वरता भी उसकी।

सम्पर्क - +91 98189 13798

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनीता वर्मा

(अदेखे-अनसुने वस्तु जगत की तासीर को अबेरने और अलग आवाज़ में सत्य को उद्घाटित करने वाली कवि।)

दरवाज़ा

एक अदृश्य दरवाज़ा खुला
पानी के कपाट हटाकर
मैंने भीतर प्रवेश किया
कई जन्मों की धूल से
अटी हुई थीं दीवारें
चीन्हीं-अनचीन्हीं तस्वीरें
आड़ी-तिरछी झूलती थीं दीवारों पर
रोशनदान से आती रोशनी की एक लकीर में
मुरझाए हुए कुछ फूल दिखे

एक बड़े ख़ाली कमरे में
बिखरी हुई थीं इच्छाएँ
भटकती आत्माओं की तरह
मैंने कुछ देर वहाँ बैठना चाहा
देखा उनमें कितने रंग हैं
क्या अब भी वहाँ लौटा जा सकता है
मेरे हाथ ख़ाली थे
इंद्रियाँ शिथिल हो चुकी थीं
अतीत स्मृतियों की शक्ल में
पैर पसारे बैठा था

भीतर एक कोना था
वहाँ कई वृत्तों के भीतर
अलग-अलग ताबूतों में
मैं लेटी हुई थी
किसी पुरानी नींद में डूबी हुई।

जानवर

सूअर की तारीफ़ में कुछ कहना
मुनासिब नहीं है कीचड़ के बग़ैर
भेड़िए अपने नाखूनों को तब तराशते हैं
जब वे ख़ून और मांस से भोथरे होने लगते हैं

अगर हम सियार और लोमड़ियों की
आलोचना करने लगें
तो भीतर का मक्कार
करने लगता है हमारी भी मलामत

मगरमच्छ अपने आँसुओं में डूबा हुआ
अत्याचार की पीठ थपथपाता है
किसी कौवे से अपनी व्यथा कहना
पितरों को क्रोधित करने जैसा है

दरअसल पशु उस तरह पशु नहीं होते
जिस तरह आदमी नहीं होता आदमी।

युद्ध के बारे में

हर युद्ध के बाद
शर्मसार होती है इन्सानियत
थोड़ा और ढह जाता है विश्वास
सिर्फ़ मकान, इमारतें ,रेलवे स्टेशन
और शहर तबाह नहीं होते
यह दिलो दिमाग़ पर क़ब्ज़ा कर लेता है
बाँध देता है बढ़ते हुए पैरों को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पता नहीं वे कौन लोग हैं
जो इससे ख़ुश होते हैं
शायद हड्डियों के व्यापारी
कोई अधिनायक या कोई विकृत मानसिकता
या शायद हथियारों की
ख़रीद-फ़रोख़्त करने वाले ताक़तवर लोग

टैंक सिर्फ़ सरहदों पर नहीं चलते
उनके भारी पहिये माँओं के सीने पर से गुज़रते हैं

युद्ध सिर्फ़ युद्ध नहीं होता
इसका भारी बोझ पीढ़ियों के कंधे झुका देता है।

कठिन है

अर्थहीन और मिथ्या शब्दों के बीच
चुप रह जाना कितना कठिन है

ख़ून, दंगा, बलात्कार, हत्या जैसे शब्द
जब कोड़ों की तरह बरसते हों
समय को निभाना कितना कठिन है

जब विरोध को चौतरफ़ा
मारा जा रहा हो यातनागृहों में
जीवित रह पाना कितना कठिन है

जब दमन के झंडे लहरा रहे हों
साँसें बंद हो रही हों
जड़, जंगल और ज़मीन की
मनुष्य को बचाना कितना कठिन है।

कौन किसको भेदता है यह बताना है कठिन
किंतु भेदों के भी भीतर भेद हैं कितने छिपे ।

किस क़दर हिलमिल गई गई हैं छद्म से मक्कारियाँ
जिसको रहबर समझते थे उसी के हाथों लुटे।

कहाँ से वह ख़ून लाएँ जिसमें जोशो ख़्वाब था
अब तो रातें रिस रही हैं बेबसी देखा किए।

चौंधियाती रोशनी में मर रही आबादियाँ
चीखती इन्सानियत जो ज़ुल्म हैं उस पर हुए।

रात तारों से भरी है सूर्य अब भी तप रहा
पर कहाँ वह आग है जिसके सहारे हम जियें।

सम्पर्क - anitaverma25659@gmail.com

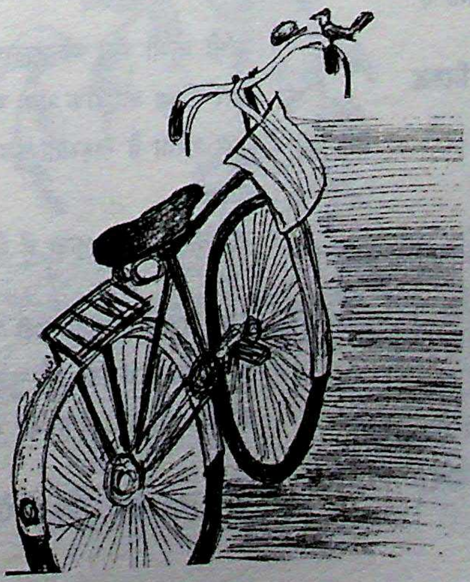

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

श्रीप्रकाश शुक्ल

(हिंसक और नामुराद समय के हलातोल में उम्मीद और भरोसे में उगती आवाज़ का कवि।)

भूकने की भाषा के विरुद्ध

मैं जब कभी
एक गुरगुराते पालतू कुत्ते के सामने से
किसी सड़क के कुत्ते को
उसकी कनखियों में चुपचाप गुजरते हुए देखता हूँ
तो खुश हो लेता हूँ

बहुत दूर से आता हुआ यह कुत्ता
बहुत दूर की यात्रा पर निकला हुआ लगता है
जिसकी चाल में न तो बेबसी है
न ही भाषा में गुलामी

उसकी गर्दन भी अपनी होती है और चुनाव भी उसी का होता है
जो किसी सुदूर अतीत से निकला हुआ
किसी सुखद भविष्य की ओर बढ़ रहा होता है

उसे पता होता है कि भूकने की भाषा के विरुद्ध
चुपचाप से गुजर जाने की भाषा
ज्यादे ताकतवर होती है

उलझना असल में गुलामी की भाषा में ही शामिल होना है
जो कहीं भी लेकर नहीं जाती

प्रतिरोध का एक पक्ष यह भी है कि आप
एक गुरगुराते व्यक्ति के सामने से चुपचाप गुजर जाएँ
और वह अपनी महत्ता में कसमसाता रह जाए!

लौटना

हर बार तुम्हारा अकेले में छोड़कर जाना
और उम्मीद करना कि जब लौटोगे
मैं ठीक ठाक अपनी जगह पर मिलूँगा
अच्छा नहीं लगता
अच्छा नहीं लगता तुम्हारा विकल होना
लगभग रोज़ ही दरवाज़े की थाह लेना
और सड़क के बारे में पूछना
कितना खिसका!

नहीं अच्छा लगता तुम्हारा उदास होना
और टाँड़ पर टँगी हुई किताबों के बारे में सोचना
कि जब गिरेंगी एक कोलाहल के साथ
तो कितना कुछ बहा ले जाएँगी अपने साथ

कभी कभी मेरा भी हालचाल लिया करो
और सोचा करो कि एक घने अंधकार में डूबी हुई मेरी जड़ों में
जब भरता है लहराता हुआ पानी
गंगधार
तो कितना अकुलाता हूँ मैं

और सड़क छोड़ती नदी जब
बहुत गहरे धँसती हुई गुड़गुड़ाती है
तो कितना डर लगता है मुझको।

अब जब चारों ओर चोरों का पहरा है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लपकों से पटी इस धरती पर
तनिक खिसकते ही दरकते हैं संबंध
और हर समय हर जगह भरने के लिए
घूम रहे हैं कुछ उधिराये हुए कंफुकवे

दुःखों को धोते हुए तुम्हारा लौटना कितना सुखद है
कि एक बढ़ियाई नदी भी तो आखिरकार
खर-पतवार को समेटती हुई लौटती है अपने घर
अपने सभी सामान को दुरुस्त करती!

हिंसा

पहले वे साथ थे
तो ठहाका लगाते रहे

अब आमने सामने हैं
तो गालियों की बौछार कर रहे हैं
उनकी गालियों व ठहाकों के बीच फँसा हुआ
मैं हूँ
मेरी कविता है
और है मेरा देश

आखिर में यह कहना बिल्कुल जरूरी नहीं है
कि उनका प्रेम व उनकी नफ़रत
दोनों ही बस आपस के मामले हैं

जिसे आप हिंसा कहते हैं
वह तो इन्हीं आपस के मामलों को सुलझाने का तरीका है
जिसमें एक पूरी बस्ती दहक रही है!

सम्पर्क - 94158 90513

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ब्रजरतन जोशी

(हिंदी और राजस्थानी कविता का उल्लेखनीय स्वर, जिसमें स्थानीयता का छवि जगत केंद्रीय है।)

लहरें जानती हैं
अपना वजूद
जानती यह भी हैं
वे कि होकर भिन्न भिन्न भी
मूलतः अभिन्न हैं वे
इसलिए हर समय लहर और
समुद्र समाते रहते हैं
करते रहते हैं संवाद
परस्पर
पाने को अभेद
पर, वे पानी हैं
नहीं भूलते दोनों कभी।

2
दी तुमने मुझे
एक और भाषा

धीमी किंतु मनचीति

सौंधी-सौंधी गंध की तरह

सचमुच
वनस्पति की तरह
उग आयी
तुम
पर
मैं तुम्हारी डाल की तरह नहीं
रसभीनी सुवास की तरह
फैल जाना चाहता हूँ
सब ओर।

3
अपनी गरिमा में खड़े
देवदारु के वृक्ष
खिलते बुरांश के फूल
पत्तियों से सजी
रेत की पगडंडियाँ
शान्त प्रकृति
खुशनुमा मौसम
खुद से मिलने की
आकांक्षा
और अन्तस की पुकार
आदि सहचर पहाड़

सुनो मित्र! तिरोहित कर
अकेलेपन को
यहाँ मिल सकती है
मुक्ति

एकांत का अनन्त ऐश्वर्य
करता है
तुम्हारा अभिषेक

आओ ठहरो
और कर लो अपना
अधूरा स्वप्न पूरा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

4
ओझल नहीं होंगे
वे पल और स्मृतियाँ
वह पगडण्डी भी
जिस पर कदम
हमारे साथ बढ़े
जिस पर रची
हमने एक और भाषा
कई कई नए रंग
उड़ गई ओस सी
साथ ठहरी सारी उदासियाँ

प्रेम की आकाशगंगा में
रचा हमने एक और
इन्द्रधनु
जिसके रंग रेगिस्तान
और पहाड़ की पीड़ाओं
के योग से बने थे
बुहार लूँगा
सारे धूल कण
सोख लूँगा
उस हवा की नमी
और वे सारे झरे फूल
पत्तियाँ भी
जो हमारे प्रगाढ़
प्रेम क्षणों के साक्षी...

5
व्यवस्थित नहीं है तुम्हारा जीवन
मुड़कर उसने हौले से कहा
ठहर कर, ठिठक कर सोचता हूँ
कि ठीक से न सुन पाया
अब तक आवाज हवा की,
न जान पाया ताजगी ओस की
न हो सकी पूरी अपनी कोई तलाश

भीतर तक धँसने वाली ठण्ड
और नीम शांति के बीच
उदय एक उज्ज्वल मंदिर का हुआ
काँपते जिसमें घुसा मैं

देखा सबके लिए
खुला है घर भाषा का
जीवन में कुछ भी तो
नहीं है करीने से।

सम्पर्क - +91 94140 20840

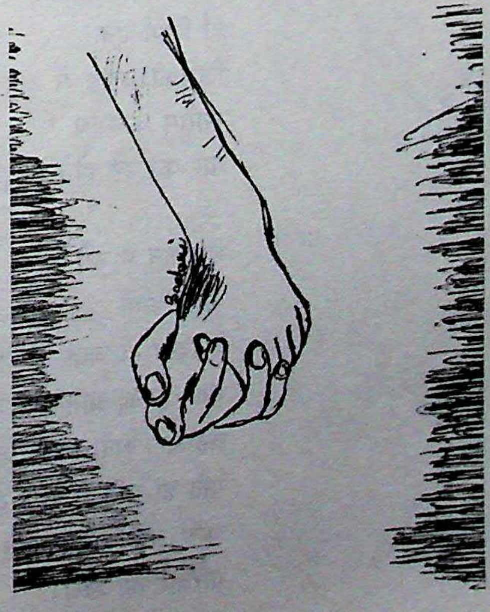

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ब्रज श्रीवास्तव

(युवा काव्य परिसर में एक विश्वसनीय आवाज़।)

कार ड्रायवर

अक्सर कार में ही
अधूरी सी नींद लेकर
न जाने कब, कैसे और कहाँ
नहा धोकर फिर तैयार हो जाता है
गाड़ी मालिक को
ले जाने के लिए मंज़िल की ओर

नज़र रखे हुए सड़क पर
और रेसिंग मीटर पर
घुमाता रहता है स्टेयरिंग
बचाता है स्पीडब्रेकर के दचके से
सवारियों को
कुछ पूछो तो इशारों में ही
उत्तर देता है
अहलिया के कॉल का भी
जवाब देता है कम शब्दों में

जब वह देर तक कर रहा हो बात
तो
समझो
अगले दिनों की रोजी का
इंतज़ाम कर रहा है वह

जाने क्या सोचता रहता है
कि उसका ध्यान ही नहीं जाता
सवारियों की बतकहियों पर
यूँ वह जान लेता है सबके मिजाज़

उससे तो पूछा भी नहीं जाता
कुछ खाने को
सवारियों द्वारा
नमकीन और पूड़ियों के लेनदेन के समय।
जाने कहाँ
समय गुजार आता है वह
जब सवारियाँ
सैर कर रही होतीं हैं या
ले रहीं होतीं हैं आतिथ्य सुख
पास में बैठाकर सुरक्षित ले जाने वाले
इस शख्स को दूर रखा जाता है
होटल में भोजन के दौरान

एक आदमी होता है
हाँ सिर्फ एक
जिसकी वज़ह से अनेक
आराम के साथ
पार कर रहे होते हैं दूरियाँ

मुमकिन है उसे
कभी कभी
दे दिया हो जाता हो कुछ अतिरिक्त
मगर इतना अतिरिक्त शायद ही कभी मिले उसे कि
वह बना सके अपने लिए एक अदद घर।
गति ही गति में रहने वाला वह मजदूर
चला सके औसत गति से भी अपने
परिवार का खर्च।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दुनिया का बदन

कौन सा तत्त्व कम हो गया है
दुनिया के शरीर में
बढ़ गया है कौन सा बिटामिन

कोई चिकित्सक नहीं है कि जाँचे
करे शल्य चिकित्सा
दुनिया के दिमाग में हो गए अल्सर की
वह फलक रहा है
जिससे नींद नहीं आ रही है
सांसों को

इस बदन को मानसिक रोग है या
शारीरिक
भूगोल क्योंकर गमगीन है
क्या इसमें पानी कम हो गया है
या हवा ही जा रही है मुँह और नाक से दूषित
पृथ्वी को बुखार है
कोई नापे इसका तापमान
और रखे आहिस्ते से सर पर पानी की पट्टी

हाँफ रहे हैं खड़े खड़े सारे पहाड़
समुंदर दौड़ रहे हैं अपनी ही परिधि में
नदियों में सुस्ती भरी है
किनारे बुजुर्गों की तरह थके हैं
कोई जाए सुनाए उन्हें संगीत
योग कराए कोई रेगिस्तान को

दुनिया इस समय बीमार है
अनेक बेटों की
माँ की तरह गुमसुम है
अपने ही ख़याlों में
कोई जाए
उसे हँसाए
अनेक चिकित्सकों और अनेक इंसानों को
सुनाई दे रही होगी
दुनिया के बुदबुदाने की आवाज़
अगर वे ह्दय के कानों से सुनते होंगें

नाम

मेरा पुराना नाम
कुछ पुराने दोस्तों को
कुछ रिश्तेदारों को याद रह गया है
उन्हें तो अब तक नहीं पता
कि मेरा नाम बदल गया है

उन्हें बताना मुझे ज़रूरी भी नहीं लगता
कि किसने मेरा नाम कब बदला था
यह तो बस माँ को पता है
कि एक दिन मेरे दादाजी ने स्कूल जाकर
दरख्वास्त दे दी थी हेडमास्टर को
मेरा दूसरा नाम रखने के लिए
मौखिक रूप से कहा था
नाम रखने का अधिकार तो दादा का होता है
नाना का नहीं।

नामों को क्या पता कि वे
केवल शब्द हैं
लोग इनके सहारे भी अपने
अधिकारों को आजमाते हैं।
व्यक्तियों को क्या मालूम
कि उनका जो नाम है
उसे रखते समय
किसी ने गौरव
किसी ने जाति
किसी ने धर्म के बारे में सोचकर
एक गर्व को महसूस किया था

फोन नंबर

नदी किनारे के
वृक्षों की तरह
अनेक संपर्क नंबर हैं
मेरे फोन में

जीवित हो जाते हैं ये
उस तरफ की आवाज़ें मेरे अंदर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

घुल कर द्रवित करती रहतीं हैं
अंकों का तुरंत रिश्तों में
बदलने का जादू
बड़ा सा सहारा है

जाने कितने नंबर
जुड़ते जाएँगे
कम या बंद होते जाएँगे
इसी सूची में

कुछ नंबर ऐसे हैं
जिनको डायल करने से
अब कुछ नहीं होगा
उन नंबरों को भी मिटाने का मन नहीं होता
जिन आवाजों को बंद
कर दिया है कुदरत ने सदा के लिए

हम गवाह हैं

हम देख रहे हैं मिट्टी में मिलती हुई इमारतें
धमाके ध्वनि के नाम पर गरज रहे हैं
धरती के एक हिस्से का असहाय होना
धरती के दूसरे हिस्से देख रहे हैं

तबाही मुख्य दृश्य है
बड़े अरमान से रचीं थीं जो सुंदर बसाहटें
पक्षियों को भी उनका उजाड़ रुला रहा है
पुल आत्महत्या कर रहे हैं।

उन्हें पता ही नहीं चलता कि गोली बाँहों में धँस जाती है
वे कराहते हैं मगर दूसरी गोली रहम नहीं खाती
एक शहर को नेस्तनाबूद करके एक नेता खुश हो रहा है

नदियाँ फिर भी बह रही हैं मगर वह अब देश की रोती आँख है
बच्चों को जो सिखाया था स्कूलों में
ये वो बातें नहीं हैं जो खबरों में हैं।

विध्वंस का अजगर खूबसूरती को सरेआम लील रहा है।

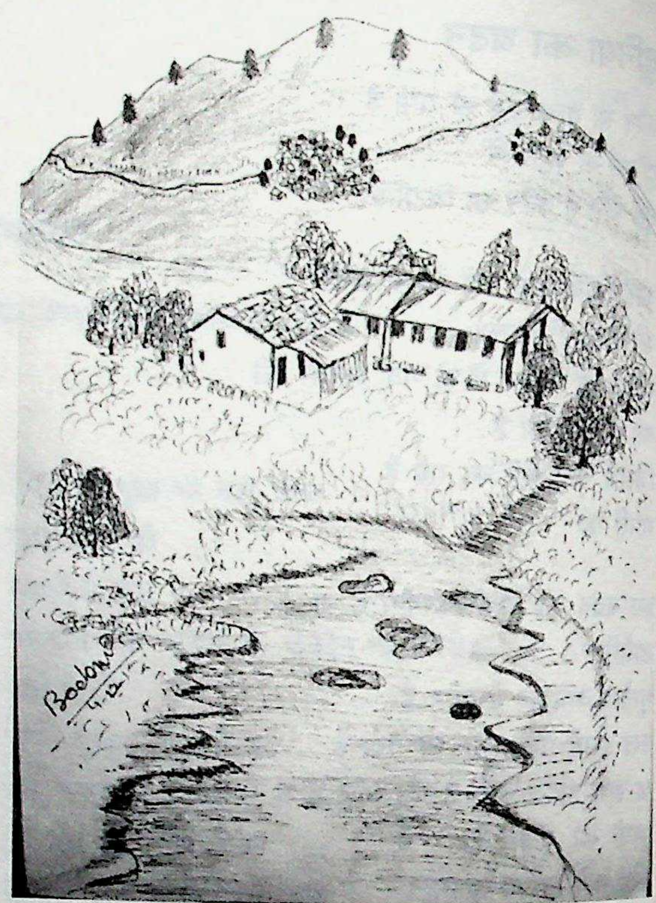

खंडहरों की कॉलोनी ने प्रतिस्थापित किया है
नवनिर्माण को।

देश धमक महसूस करते हुए डरते हैं
कोई पुराआख्यान है जिसमें नायक और खलनायक नहीं बदले
बस बदले हैं तो केवल हथियार

एक अस्तित्व की लड़ाई में शामिल होकर
संतुष्ट है
एक हठी है
सिपाहियों को अवसर है देशप्रेम दिखाकर मर जाने का
हम गवाह हैं
हमारे होते हुए ये हो रहा है।

सम्पर्क - 94250 34312

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सुभाष राय

(समकालीन कविता में मध्यवर्गीय चेतना के कवि, जो वस्तु और विचार के सम्यक नवाचार के लिए अपना भाषिक मुहावरा रच रहे हैं।)

भरोसा

नहीं पता कब से लेकिन मेरे घर के एक कोने
पड़ी रहती थीं कुछ लाठियाँ
कुछ फरसे, कुछ तलवारें
कभी पिताजी को जरूरत नहीं पड़ी उनकी
उन्होंने तो साँप पर भी कभी लाठी नहीं चलाई
उन्हें लाठियों की ताकत पर
कभी यकीन नहीं रहा
उन्हें जिंदगी के बहुत
सारे मुहावरे याद थे
वे जानते थे कि तलवारें
सूइयों का काम नहीं कर सकतीं
वे ठीक से चारा भी नहीं काट सकतीं
तलवारों से खेलने में उँगलियों के
कटने का खतरा बना रहता है
ध्यान बँटा तो वे अपना ही
सीना चाक कर सकती हैं

उन्हें सिलना और पैबन्द लगाना आता था
कहते थे कि सिलाई ऐसी होनी चाहिए
कि धागा धागों में समा जाय
पैबन्द कभी पैबन्द की तरह न दिखे
वे सूई से तलवे के अंदर टूट कर फँसे
काँटे को भी मुलायमियत से निकाल देते थे
मेरे शर्ट की बटन भी टाँक देते थे
फरसे की कहानियाँ सुनाते हुए
वे कई बार बड़ी दुविधा में पड़ जाते
समझा नहीं पाते कि हमारे पुरखों को
फरसे की क्या जरूरत थी
ज्ञान और प्रेम की बात
करने वाला कोई आखिर
माँ का गला कैसे काट सकता है

उन्होंने लाठी के गुन की हिमायत कभी नहीं की
वे चमकती तलवारें देखकर व्याकुल हो जाते थे
फरसे के बारे में सोचते ही उनके
गले से खून बहने लगता था
वे शब्दों की ताकत के प्रति आश्वस्त रहते थे
बच्चों को कविताएँ सुनाते थे

सुनता आया बचपन से
कि मेरे पुरखे लड़ाइयों में जाते थे
लड़ना उनकी जीविका का हिस्सा था
वे कुछ सिक्कों के लिए लड़ते थे
वे किसी के लिए भी लड़ने चले जाते थे
जो ज्यादा इनाम देता था उसी के हो जाते थे
मामूली स्वार्थ में अजनबियों की हत्या करने में
संकोच नहीं करते थे

परन्तु मेरे पिता इतने मजबूत थे
कि मेहनत के अलावा किसी और
हथियार पर कभी भरोसा नहीं किया
वे खेत में खुद को बोते थे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खुद को उगते हुए देखकर खुश होते थे
और खुद को काटकर बच्चों के
सपनों में ढाल देते थे

इंतजार

मैंने बादलों पर एक खत लिखा
शायद कोई बूँद जा गिरे उसकी हथेली पर

मैंने चाँद के चेहरे पर एक खत लिखा
शायद वह पढ़ ले किसी उजली रात में

मैंने रेत पर एक खत लिखा
शायद वह फुरसत में कभी समुद्र से मिलना
चाहे

मैंने आंधियों की पीठ पर एक खत लिखा
शायद धूल का कोई उड़ता हुआ कण उसके
पाँवों में जा गिरे

मैं बादल से, चाँद से, रेत से
और आँधियों से मिलता रहूँगा, पूछता रहूँगा
सदियों तक जवाब का इंतजार करूँगा

चेतावनी

बचे रहना चाहते हो
तो मेरी भाषा में बोलो
जो भी कहना चाहो कहो मेरी तरह
हम तुम्हें समय देते हैं, तुम भी कुछ समय दो
एक दिन तुम्हारी भाषा बोलने वाले
बहुत कम रह जाएँगे और फिर
खत्म हो जाएँगे

अभी तुम बाजार जाकर सामान खरीद लाते हो
अभी तुम अपने बच्चों को स्कूल भेजते हो
और उनकी प्रगति देखकर खुश होते हो
पत्नी से अपना दुख कह लेते हो
प्रेमिका से दिल की बात कर लेते हो
लेकिन वह दिन दूर नहीं जब तुम्हारी पत्नी
तुम्हारी प्रेमिकाएँ तुम्हारी भाषा
नहीं समझ पाएँगी
दुकानदार जिस भाषा में
बात करेंगे, तुम समझ नहीं पाओगे
तुम्हारे बच्चे स्कूल जाएँगे
मगर शिक्षकों की बात समझ नहीं पाएँगे

एक दिन तुम्हें कोई नहीं सुनेगा
सभी कहेंगे, बस बड़बड़ाते रहते हो
तुम सह नहीं पाओगे, पागल हो जाओगे
और तब तुम्हारी बेबसी की भाषा कोई समझ
नहीं पाएगा

रोना

उन सब पर निगाह रखी जा रही है
जिनकी आँखों में आँसू बचे हैं

बोलना, चीखना, चिल्लाना
चाहे भले न सुना जाए
लेकिन रोना दूर तक सुनाई पड़ता है
आँसू गिरते हैं तो धरती का
तापमान बढ़ने लगता है
नदियाँ तट तोड़कर बाहर आने लगती हैं
समुद्र में ऊँची लहरें उठने लगती हैं

कोई अकेला रोने लगता है तो
वह अकेला नहीं रह जाता
उसके आस-पास लोग इकट्ठे होने लगते हैं
जानना चाहते हैं रोने की वजह
यहीं से शुरू होती है एक नई लड़ाई
रुलाई बन जाती है निरुपायता के
विरुद्ध एक कार्रवाई

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

छाया

गाँधी की तरह न तो मेरा चश्मा है
न ही खल्वाट सिर, न ही मेरे हाथ में
कोई लुकाठा कि मेरी छाया
आसानी से पहचानी जा सके

छाया हमेशा रोशनी की दिशा बताती है
छाया जब भी पास होती है, यकीनन
रोशनी ज्यादा दूर नहीं होती

छायाएँ डरती नहीं, छिपती नहीं
जब खतरा ज्यादा होगा
मैं छाया में बदल जाऊँगा
ढेर सारी छायाओं के बीच गुम हो जाऊँगा
अँधेरे में आसानी से घुल जाऊँगा
तेज रोशनी में गायब हो जाऊँगा

प्रेम के लिए

मेरे भीतर पूरा आसमान समा गया है
फिर भी खाली है बहुत जगह
समुद्र के लिए
नदियों के लिए
पृथ्वी के लिए
सारा ब्रह्मांड भी
अगर समा जाय
तो भी खाली रहेगा मेरा मन
प्रेम के लिए

फूलों में जो गंध बनकर आती है
फलों में स्वाद बनकर
प्रकृति में रूप बनकर
अंतरिक्ष में ध्वनि बनकर
वह मिट्टी हूँ मैं
मिट्टी जब मिट्टी
में समा जाएगी
तब भी महंकती रहूँगी, बजती रहूँगी, खिलती
रहूँगी कण-कण में, वन-वन में
प्रेम के लिए

राख के संग रहकर भस्मावरण
के सिवा मिलना क्या
यह मुक्ति का घर है,
इसमें कोई दरवाजा नहीं
कोई खिड़की नहीं,
कोई छत, कोई दीवार नहीं
हर रास्ता मृत्यु से होकर जाता है
प्रेम के लिए

सम्पर्क - +91 94550 81894 /
+91 88404 27896

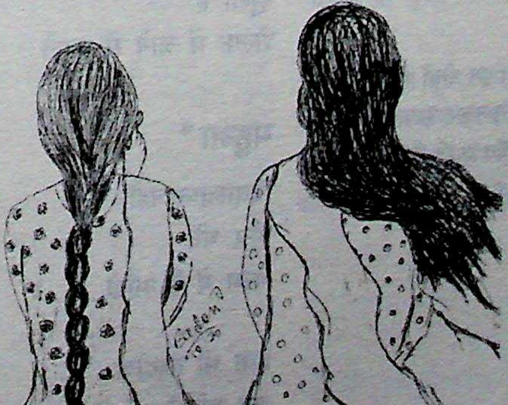

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

त्रिलोक महावर

(कविता में आंचलिक वस्तु संसार को आधुनिक शिल्प में सिरजने वाले कवि।)

नेबुला*

मैंने
तुम्हें
चमकदार तारे में
तब्दील होते
देखा है नेबुला

यह इतना
सरल भी नहीं था
हर पल
एक युग की तरह बीता

अब तुम्हारी चमक से चौंधिया रही हैं
जिनकी आँखें
उन्होंने
कभी नहीं देखा
तुम्हारा
मुश्किलों भरा सफर

(नेबुला अक्सर तारा बनाने वाले क्षेत्र होते हैं। इन क्षेत्रों में गैस, धूल और अन्य सामग्रियों के निर्माण एक साथ मिलकर सघन क्षेत्रों का निर्माण करते हैं जो आगे के पदार्थ को आकर्षित करते हैं और अंततः तारे बनाने के लिए पर्याप्त घने हो जाते हैं।)

पसीना

स्क्वैश खेलते हुए पसीने की बूँदों का
टिपटिप करना
लाजिमी है
तेज धूप में
कुदाली चलाते हुए पसीने से तरबतर होना विवशता है

पसीना दोनों जगह है फर्क सिर्फ़ इतना है
वहाँ भूख नहीं लगेगी यहाँ भूख नहीं मिटेगी पसीना बहाए बगैर

किताब

जिंदगी क्या है
एक किताब है
जिल्द
जैसे माँ बाप का साया, पत्नी मुखपृष्ठ
बच्चे बाद का कोरा पन्ना, हर एक पन्ना
जैसे समय बाँचता
उम्र का अगला पड़ाव
जब तक
किताब खुली है
खुली है
शेल्फ में जाने से पहले

महुआ*

दिवास्वप्न नहीं
फिर भी
भरम में हैं आँखे

हवा भी तस्दीक
कर रही है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कटघरे में
गवाही के लिए
मादक गंध से
न्याय के देवता
लड़खड़ाने के कगार पर हैं

मन बहकने लगा है
अंग प्रत्यंग में अनंग की
प्रत्यंचा की टंकार से
बेलगाम हो रहा है
जूड़ीताप

सफेद चादर सी बिछ गई है
लेकिन ठिठुरने की
कोई गुंजाइश नहीं है

लोक गीत गाती
महुआ
बटोर रही
धीरे-धीरे
सखियों के संग
टोकरी में

ये ओले तो नहीं
मोगरा भी नहीं
सफेद हीरे हैं
महुआ के फूल हैं

जंगल, रास्ते, हाट, गाँव
घर, आँगन
महुआई धमक से
अछूते नहीं

बहुरूपिया हैं
महुआ के फूल
हाथ आते ही
तब्दील हो जाते हैं लड्डू में
कभी कजरी के आहार में
कभी चुग्गे में
शाम के संग
महुआ बहेगा
महुआ भी झूमेगी
चेल्लिक के साथ

मान्दर की थाप के साथ
थिरकेगा सारा गाँव

सरगी के दोने में
तूम्बे से छलक-छलक
बहती
मदिराई नदी
के आगोश में है
सारा गाँव

इधर कोचियो की
साजिश से बेखबर
वातानुकूलित गोदामों में हिरासत में हैं
नीलामी की बारी के
इन्तजार में
महुआ के फूल

*(महुआ का फूल सफेद होता है; तीखी सुगंध युक्त। महुआ : गाँव की महिला का नाम, सरगी या सरई इमारती लकड़ी का पेड़ जिसके पत्तों से दोना बनता है। चेल्लिक : साथी। मान्दर : ढोलकनुमा 4 से 5 फुटिया वाद्य।)

सम्पर्क - 70008373240

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मनोहर बाथम

(सरहद के समय को कविता में लाने वाले प्रतिनिधि कवि।)

युद्ध-1

तुम किससे लड़ रहे हो यह युद्ध?

वो तुम खुद ही तो हो
जिस पर दाग रहे हो गोलियाँ
जो लहूलुहान कर रहा है धरती को
वो तुम्हारा ही लहू है

वो जो बिलख-बिलख कर
सड़क किनारे रो रहा है यतीम
वो भूखा बच्चा तुम्हारा ही है

चूते छत के नीचे
उठने को हैं लाचार दो बूढ़े
तुम्हारे ही माँ-बाप तो हैं

वो जो मारा गया वो भी तुम ही हो

जिस दिन समझ लिया तुमने यह सच
कि यह जो युद्ध है
तुम खुद ही से लड़ रहे हो
उस दिन पृथ्वी की तरफ
विनाश के बढ़ते कदम
खुद-ब-खुद थम जायेंगे

युद्ध-2

झंडा किसी भी मुल्क का हो
अच्छा तो नही लगता
लिपटा इंसान की छाती पर

झंडा लहरने का आनन्द है
स्वछंद हवाओं में
जब वह छुए
आसमान की ऊचाइयाँ
बतियाए बुलंदियों से
सियासत की जगह

खेलो न दूसरे खेल
है न ओलम्पिक, एशियाड
और तरह-तरह के ओपन और लीग

इनमें जब फहराता है झंडा
तो आँसुओं की बाढ़ वहाँ भी आती है
और यह आँसू
कुछ खोने के नहीं
होते हैं
बहुत कुछ पा लेने के सबब से

युद्ध-3

मत मनाओ जश्न
शहादत का मत मनाओ जश्न
मरना, मारना या यूँ ही मर जाना
मेरे शब्द कोश के
उन शब्दों में नही
जिनसे मिलती है शांति

युद्ध के लिए
दूसरे तमाम दुश्मनों से
भरा पड़ा है ब्रह्मांड

लड़ना है तो लड़ो भुखमरी से
मारना है मारों महामारियों को
विजय पानी है तो पाओ विपदाओं पर

पर इन सबके वास्ते के लिए
शहादत की नही
न ही जीवन देने की जरूरत है
इसके लिए जरूरी है जीवन
तुम्हारा और मेरा भी

इसलिए मत मनाओ जश्न
शहादत का

सम्पर्क : +91 87439 99898

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आलेख

हाशिये पर खड़ी कविता का सच

विजय कुमार

(मुक्तिबोध की आलोचना परंपरा के विस्तार में एक गंभीर कवि-आलोचक।)

सबसे खरतनाक होता है
हमारे सपनों का मर जाना

-पाश

एक ऐसे समय में जब आधुनिक जीवन बोध के तमाम अन्तर्विरोध उभर रहे हों, हमारे बुनियादी जीवन मूल्यों पर ही एक संकट हो, आस्था के सारे आधार चरमरा रहे हों और मनुष्य के समक्ष अनिश्चय, आशंकाओं, बिखराव और छद्म चेतनाओं की घेराबन्दी हो, सर्जनात्मकता— विशेषकर कविता की क्या भूमिका हो सकती है? क्या वह हमारे अंतरंग से एक साक्षात्कार है? क्या वह अब भी एक चेतावनी बन सकती है?

21 वीं सदी में सभ्यता के जिस मुकाम पर हम आज खड़े हैं, वहाँ बाज़ार, टेक्नॉलॉजी और राज्य-सत्ता ने आपस में मिलकर जिस भयानक दुष्चक्र को रचा है, ऐसा जन-विरोधी वातावरण और उसमें लिपटा हुआ विकास का मिथक, उसके विरोधाभासों का जो जटिल संसार हमारे समय में उभरा है उसे लेखन में व्यक्त करना आसान नहीं। शक्ति-संरचनाओं की निरंकुश ताकत के सम्मुख साधारण मनुष्य की लाचारी और उसके दर्द को इस क्रूर माहौल में प्रचार-तंत्र आधारित झूठ, फरेब, मिथ्या अवधारणाओं, कूटनीति और आधुनिक प्रबन्ध विज्ञान की व्यूह रचनाओं तथा दमन के औज़ारों ने छिपा दिया गया है।

विकास की ऐसी अवधारणा जब जंगल, पहाड़, नदियाँ, वनस्पतियाँ, प्राकृतिक संसाधन सभी पर कारपोरेट जगत का कब्जा होता जा रहा हो, उपभोगमूलक संस्कृति के फैलाव ने ग्रामीण समाजों, सामुदायिक जीवन शैली और परम्परागत जीवन-मूल्यों तक घुसपैठ कर ली हो, और इस प्रक्रिया में मनुष्य केवल अपने भौतिक परिवेश से ही विस्थापित नहीं हो रहा, उसका आत्मिक संसार भी उससे छीन लिया जा रहा हो, लाखों-करोड़ों लोगों की खामोश विपदाएँ और उनकी अनसुनी आवाज़ों का यह सच हमारे समय का सबसे भयानक सच है। जन समूहों के रोजमर्रा के जीवन में विराट प्रचार-तंत्र द्वारा गढ़े जाते हुए झूठ, सतही सूचनाओं और जानकारियों का यह अंधा सैलाब, विज्ञापनों की एक रुपहली दुनिया, बाज़ार की नित नयी लुभावनी अदाएँ, उपभोग की सनसनी, रची गई तमाम तृष्णाएँ, अभीप्साएँ, आत्मछलनाएँ, छद्म चेतनाएँ, एक अफरा-तफरी और भौतिक सफलताएँ पाने की एक अंधी दौड़। मनुष्य के मन में यह लगातार मिथक रचा जा रहा है कि बाज़ार उसे मुक्त कर रहा है और वस्तुओं का उपभोग उसके लिए खुशहाली और आनन्द के पल जुटा रहा है। अपनी आत्म-चेतना से विस्थापित यह मनुष्य जो विस्मृति, लालसाओं, आत्मकेन्द्रितता, छिछोरेपन, उत्तेजना और हिंसा की नए प्रकार की गुलामी की ओर धकेला जा रहा है— क्या मनुष्य की चेतना का यह 'पदार्थीकरण' इतने नियोजित तरीके से इतने विशाल पैमाने पर सभ्यता के इतिहास में पहले कभी हुआ था?

मनुष्य के आत्मिक सच को कुचल देती हुई उसके चारों ओर फैली सूचनाओं की यह अजीबोगरीब दुनिया। इन्टरनेट, डिजिटल इंफॉर्मेशन, माइक्रोप्रोसेसर, वेब पेजेस, हाइपररियलिटी, आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस आदि आदि हमारे समय के वे तमाम शब्द और वे प्रक्रियाएँ जो एक मायावी दुनिया को रच रहे हैं और इन्हीं के समानान्तर पारस्परिकता के वे पुराने सूत्र बिखर रहे हैं, जिनमें भीतर कोई एक अमूर्त सा मानव-तत्व छिपा रहता था, जीने के कर्म की कोई शाश्वत उष्मा जो उसके भीतर से उजागर होती थी। रूपांतरण की ये प्रक्रियाएँ आज बहुत अजीब हैं। इन सारी प्रक्रियाओं में एक निर्वैयक्तिकता बढ़ रही है। दूरियाँ और स्पेस खत्म हो रहे हैं, 'टाइम ज़ोन' के अनुभव बदल रहे हैं। भौतिक 'लोकेशन' का अब कोई अर्थ बचा नहीं। और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सच कहा जाए तो इस सबके बीच उस 'मनुष्य' नामक इकाई का ही लोप होता जा रहा है। वह 'मनुष्य-तत्व' जो किसी भी सच की केन्द्रीय सत्ता हुआ करता था। उत्पादन, वितरण, संचरण, ऊर्जा, बाज़ार और उपभोग आदि की तमाम दुनियाओं में मनुष्य महज अब एक संख्या बनकर रह गया है। उसका अकेले और विच्छिन्न होते जाना, उसकी स्मृतियों का क्या अब कोई अर्थ बचा है? उसकी सामुदायिक चेतना पर खतरे के बादल मँडरा रहे हैं, उसका पर्यावरण नष्ट हो रहा है, परंपरा से संचित उसके जीवन मूल्यों पर यह जो गंभीर संकट है, उसकी अभिव्यक्ति कैसे होगी?

विशेषज्ञों का कहना है कि पहले के समयों में छवियाँ किसी वास्तविकता का प्रतिबिम्ब होती थीं। पर हमारे समय में छवियाँ केवल छवियाँ हैं। उनका कोई आत्यांतिक मूल्य नहीं। इन छवियों ने वास्तविकता को लगभग अपदस्थ कर दिया है। मीडिया, प्रचार-तंत्र और विज्ञापन जगत आपस में मिलकर रात-दिन, हर पल, हर क्षण गढ़ी हुई छवियों का एक ऐसा आक्रमण आप कर कर रहे हैं कि आप कुछ सोच ही न सकें। मनुष्य को सोचने से विरत करने वाले इस समय में लोकप्रिय संस्कृति अब जन मानस की चेतना को नियंत्रित करने का एक औज़ार है। यह समय जिसमें एक ओर मॉस मीडिया द्वारा रची गई छवियाँ आपकी चेतना को गढ़ती हैं दूसरी ओर इस संस्कृति में आपके सोच-विचार, चिंतन-मनन, विश्लेषण-विवेचन को सबसे फालतू चीज़ बना दिया जा रहा है, इसी में हमारे समय की हिंसा और वर्चस्व की रणनीति के सबसे सूक्ष्म रूप छिपे हुए हैं। कविता सम्भवतः मनुष्य की उस खोयी हुई ज़मीन की तलाश है।

सारी बहुलताएँ आज संकट में हैं। सारी स्थानिकताएँ मिटा दी जा रही हैं। भाषा, धर्म, जाति, वर्ग, परम्परा, जीवन-स्थितियों और मूल्य-विश्वासों की विविधताएँ, उनके किसी कारगर समन्वयन में अनुभव होती ये कठिनाइयाँ, विकास के फलों और परिणामों के वितरणों में एक भयावह असंतुलन और जन जीवन की कुचली हुई आकांक्षाओं ने हमारे इस दौर में बहुत सारी नयी स्थितियों और नए विचार सूत्रों को जन्म दिया है। व्यवस्था-तंत्र में सामुदायिक जीवन और जन आकांक्षाओं के वास्तविक प्रतिनिधित्व की स्थिति आज क्या है? शक्ति-संरचनाओं के चरित्र और सामान्य जन की नियति का सम्बन्ध किस तरह का हो गया है? भिन्न मतों, दृष्टिकोणों, असहमतियों, सवालों, सन्देहों के लिए हमारे समय में क्या कोई गुंजाइश रहने दी जा रही है? शक्ति और वर्चस्व के खेल की यह जो अमानुषिक, हिंसक रणनीतियाँ हैं, उनके समक्ष मनुष्य के मूलभूत विवेक, प्रज्ञा, तर्क और संवेदना के जो रूपाकार हैं क्या वे सर्वथा अप्रासंगिक होते जाएँगे?

इसे स्वीकार करना होगा कि रचनाकार और उसके परिवेश के ये सम्बन्ध आज बेहद जटिल हो चुके हैं। वे समस्त स्थल जहाँ कभी एक कविता का वास था, जहाँ हमारी मूल्यचेतना, सौन्दर्य-बोध, वैचारिक ऊर्जा, कल्पनाशीलता, आदिम राग और संवेग के संसार, संकल्प और आदर्श, हमारे स्वप्न और हमारी स्मृतियाँ थीं, जहाँ हमारे सामूहिक जीवन की लय बसती थी, जहाँ हमारी एकांतिक निबिड़ताएँ और हमारी विकल निजताएँ आकार पाती थीं— वे सारे स्थल यह उपभोगमूलक संस्कृति हमसे छीन रही है। कविता में ये ही स्थल थे जो हर सत्ता और निरंकुशता के सामने हमारी बुनियादी प्रतिरोधात्मक शक्ति के 'सेफ डिपॉज़िट वाल्ट' की तरह बने हुए थे, जहाँ हमारा कुछ अत्यंत मूल्यवान सुरक्षित था, जहाँ बाहर की इस मूल्यहीन दुनिया के सामने कला का एक विश्वसनीय और आत्मीय प्रति-संसार रचा जाता था, वे सारे स्थल हम खोते चले जा रहे हैं। बहसों, विमर्शों और जनतांत्रिक असहमति का 'स्पेस' निरन्तर सिकुड़ रहा है। हाशिये के समूहों, उपेक्षित और सीमान्त जनता की उदासी तक पहुँचने और मुख्य धारा से छिटके हुए लोगों की ओर निगाह करना रचना में आज एक चुनौती है। इस सफलताकामी दुनिया के तलघर में रुककर उन लोगों को देखने की एक इच्छा, जो विकास की इस अंधी दौड़ में कहीं भी शिरकत ही नहीं कर पाए हैं; ये वंचित लोग, इनका हाशिये का टूटा-फूटा जीवन, उनके रिसते हुए घाव, उनके आँसू, अभाव, भूख, मज़बूरियाँ, कराह, रुदन, चीत्कार और खामोशियाँ और उनका दारुण अकेलापन। इस अंधड़ से भरे समय में उन स्थलों की वास्तविक खोज और उसे रचने की सतत बेकली जो शायद अब भी एक मूल्यवान चीज़ समझी जाती हो।

आज भले ही हम 'सर्जक' की छवि का रूमानी किस्म का कोई ग्लोरीफिकेशन न कर पाएँ पर फिर भी उस बेचैन रचनाकार की उपस्थिति मायने रखती है जो सारे सत्ता-प्रतिस्थानों को ठुकरा कर और लाभ-लोभ की संस्कृति से बाहर आकर शब्द की किसी अनाम और रहस्यमयी सी सत्ता की ओर लौटना चाहता है, जो अपने किसी वेदनामयी अकेलेपन की खोज करता है, जो काल से होड़ कर रहा है, जिसमें अपने और 'अन्य' के बीच विच्छिन्न धागों को तलाश करने की इच्छा अभी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बची हुई है। वहाँ अनुभवों की एक विशृंखलित दुनिया को कविता ने एक 'पैटर्न' देना चाहा है। कविता जो एक संगति को रचती है। और इस ढाँचे में ही उसके अर्थों का संयोजन है, उसका एक प्रति-संसार है। और उसकी इस इच्छा के चारों तरफ एक सतत बना रहने वाला अंधकार भी है। शायद ऐसी ही किसी मन:स्थिति में प्रख्यात चेक कवि मिरोस्लाव होलुब ने लिखा था कि ''जब स्वतंत्रता, विटामिन सी, सम्प्रेषण, कानून व्यवस्था और उच्च रक्तचाप के उपचार की बहुत आवश्यकता अनुभव की जाती है, तब कवियों की भी बहुत ज़रूरत होती है। कविता मनुष्य की अंतिम वस्तुओं में से नहीं, उसकी प्राथमिक वस्तुओं में से एक है।''

रचनाधर्मिता भले ही आज चाहे जितनी भी सीमित हो गई हो, वह महत्त्वपूर्ण है। वह भूमिका पूरे विश्व स्तर पर देखी जा सकती है। विश्व के समकालीन साहित्य -परिदृश्य में अलग अलग देशों, भू-भागों और अपनी-अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं में साँस ले रहे वे तमाम रचनाकार अभी हैं जो तमाम तरह के निर्वातों के बीच एक वैकल्पिक दुनिया के सपने को जिलाये हुए हैं। मुक्ति की इस अवधारणा को निरन्तर संवाद और सम्प्रेषण से जोड़ते हुए उनके ये असहमति के स्वर कार्यरत हैं, वे निरंकुश सत्ताओं से अपने-अपने ढंग से टकरा रहे हैं। वहाँ भाषा, सम्प्रेषण और नैतिक चेतना के आपसी सम्बन्धों को आज भी तलाशा जा सकता है।

यह सच है कि आज हमने एक नागरिक जीवन के पराभव की कविताएँ लिखीं है। इसमें कहीं एक अपराजित आस्था है तो कहीं एक गहरा शोक भी है। इसमें नाइंसाफी, गैर-बराबरी, क्रूरताएँ, असहायता, अकेलेपन के सन्दर्भ हैं। उस समय को समझा जा रहा है जब मास मीडिया और बड़े प्रचार माध्यम घटित के अर्थों को मनमानी शक्लें दे रहे हैं और छद्म चेतनाओं का दिन-रात एक उत्सवी समय है। कविता इस गढ़े जा रहे 'सच' के बीचोंबीच एक हस्तक्षेप इन अर्थों में है कि उसमें कोई स्मृति, कोई स्वप्न, कोई अभीप्सा कोई 'सब्जेक्टिविटी' कोई ज़िद, कोई स्पन्दन, कोई क्रन्दन बचा रह जाता है। हमारे बोध और 'पर्सेप्शन' पर किस तरह के दबाव पड़ रहे हैं इन्हें जानने समझने की नई भूमिकाएँ कविता में उभर रही हैं। हमारे समय की कविता ने इस बात को भी अच्छी तरह से जाना है कि उपभोग, विस्मृति, विस्थापन, धार्मिक कट्टरता, मास हिस्टीरिया से घिरे इस सार्वजनिक 'स्पेस' में आम जनता का आदर्शीकरण भी अब नहीं किया जा सकता क्योंकि मनुष्य विरोधी शक्तियों ने आम आदमी के अन्तर्जगत और उसकी मानसिक संरचना को भी अपना 'टारगेट' बना लिया है। एक ही समय के भीतर जो अलग-अलग समय हैं, जो धुँधलके हैं, जो अँधेरे और दरारे हैं, जो अनसुनी आवाजें हैं उनके तमाम नए सन्दर्भ हैं और कविता उनसे मुखातिब है। कविता उस सीमा रेखा पर खड़ी है जिसके एक ओर दमन, अपमान और हिंसा के सन्दर्भ हैं और दूसरी और खामोशियाँ हैं, शोक हैं, निर्वाक् बना दिए जाने की गवाहियाँ हैं। वह संधि रेखा है जिस पर कवि खड़ा है और केवल उसके शब्द उसके साथ हैं।

आधुनिक समय में कवियों ने अपने माध्यम तक पर संदेह किया है। कई बार उन्हें अपने शब्दों पर भी पूरा एतबार नहीं रहा है क्योंकि हमारे बहुत सारे एहसासों के वृत्तांत प्रचार-माध्यम पहले ही त्वरित गति और एक प्रोफेशनल तत्परता के साथ परोस चुके होते हैं । लेकिन फिर भी कविताएँ हमारे साथ हैं। ऐसी तमाम कविताएँ हैं जिनमें एक नए समय के दैनिक अनुभवों की अंतरंगता है। बाहरी दुनिया के उतार-चढ़ावों को शब्दबद्ध करते हुए दुनिया भर में वे कविताएँ लिखी जा रही हैं। वे उस बेचैनी को रच रही हैं जिनके पूरे अर्थ भी कई बार हम नहीं जानते। समय की एक 'अस्पष्ट स्पष्टता' और चीज़ों, स्थितियों, माहौल और मनुष्य व्यवहारों के बारे में कुछ बुनियादी से सवाल।

आज जो भी लिखा जा रहा है उसमें एक घिरे हुए समय का जो भी भौतिक और आत्मिक परिवेश है, संसद से सड़क तक वह हमारी कविताओं में उभर रहा है। खेत-खलिहान, घर -मोहल्ले, हाट-बाज़ार, सड़कें-चौराहे, हारी-बीमारी, जीवन-मृत्यु , थकन और निद्रा, जागरण और स्वप्न, सार्वजनिकता और अकेलापन — कविताएँ इस सबको उभारते हुए शक्ति के किसी आरोपण और दी हुई भूमिकाओं के परवश स्वीकार और अस्वीकार की कशमकश के किसी बिन्दु पर खड़ी हैं। वे रूपान्तरण हैं। वे जुलूस में शामिल व्यक्ति के पास आती हैं, उसे उसका वह चेहरा लौटाती हैं जो जुलूस में चलते हुए पीछे कहीं गिर पड़ा था। कविता में ये स्मृति बिंब, एकालाप, आत्म-ग्लानियाँ, उद्वेलन, कचोट या आलोड़न एक ज्वरग्रस्त समय के ताप का ठोस साक्ष्य बन गए हैं। वे एक दूसरे में घुल गए हैं। हर वैयक्तिक कविता की आकांक्षा किसी तरह की समयहीनता को प्राप्त करना है। ऐसी समयहीनता जिस तक पहुँचने की राह अपने समय के भीतर से होकर ही है। वे मनुष्य मन की एक भेद्यता, एक 'वल्नरेबिलिटी' को रच रही हैं। भौतिक और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अधिभौतिक का एकदम नयी तरह का सम्बन्ध है यह। शब्दों में समाये समय की वे अनुगूँजें जो दूर तक हमारा पीछा कर रही होती हैं। ये कविताएँ जो उपस्थित और अनुपस्थित, स्वीकारोक्ति और निषेध, स्पष्टता और अस्पष्टता के द्वैत को रचती हैं, वे अपने शब्दों में वस्तुओं और उनकी परछाइयों को उभारती हैं, स्थितियों और उनके आशयों का 'फ्यूज़न' करती हैं। सबसे भीषण घटनाओं और मानवीय विपदाओं, आशंकाओं और खतरों से भरी इस दुनिया में एक कविता की वास्तविक चुनौती चीज़ों और स्थितियों के कामचालाऊ और 'डिस्पोज़ेबल' अर्थों के सीमान्त पर खड़े होने की है, जहाँ वह मनोभावों का एक 'स्पेस' रच सके। वह 'स्पेस' जो इतिहास के साथ मुठभेड़ का सबसे सघन, सबसे मार्मिक रूप है। यह 'स्पेस' एक तेज गति वाले संसार में ठहरना है, अपने आप को बटोरना है। रक्षा कवच की तरह स्मृति की कोई पूँजी, कोई दृश्य, कोई परिस्थिति, कोई अनुभूति, कोई जेस्चर। एक विकट समय में अपने मनुष्य होने का यह बोध सारी चीज़ों के बीच अपनी उपस्थिति को लिए हुए झिलमिल सा कविताओं में चमकता रहता है।

क्रौंच पक्षी के वध पर आदि कवि वाल्मीकि के मुँह से निकली करुणा की वह अभिव्यक्ति जिससे कविता की यात्रा आरंभ हुई थी, मनुष्य के मन की वेदना का का वह गायन जिसमें समय के फासले मिट गए, स्थानों की दूरियाँ खत्म हो गईं, भाषाओं के फर्क नहीं रह गए, परिस्थितियों के अंतराल अर्थहीन हो गए, मनुष्य हृदय से निकला करुणा और वेदना का वह बुनियादी संवेग राज्य सत्ताओं और साम्राज्यों के बनने और ढहने को पार करता हुआ, युद्ध भूमियों, नरसंहार और रक्तपात और चीत्कारों, दमन और यातनाओं, जेलखानों निर्वासनों और यातना शिविरों के बीच से गुज़रता हुआ हम तक आया है। इतिहास की वे तारीखें हम भूल गए, घटनाएँ विस्मृत हो गईं, लेकिन मनुष्य मन का दर्द हमारे साथ रहा है। समय के खंडहरों से आती हुई कविता की वे अनुगूँजें आज भी हमारे साथ हैं जो हजारों साल पहले थीं। और मनुष्य का युगों-युगों से रचता हुआ वह कवि-मन आज भी हमारा समकालीन मन बन जाता है।

हाँ, कविता आज भले ही हाशिये पर खड़ी है, पर वास्तव में एक कवि का यह मन तो आज भी अथक, गहन और समयातीत है। हर बार यह रचने का समय जीने के समय के कैदखानों से निकल आता रहा है। एक सीमित जीवन में कवि ने जो कुछ रचा वह हर बार किसी नैरन्तर्य की ओर लौटा है।

हमारे समय की उस विलक्षण कवयित्री विस्लावा शिम्बोर्स्का की ये पंक्तियाँ मुझे याद आती हैं—

मेरे लिए इतिहास की तमाम रूढ़ियों और नियमों से बड़े हैं
ये शब्द
इन्हें किसी दलील किसी मिसाल की जरूरत नहीं
मेरा यकीन मजबूत अंधा और बेबुनियाद है

सम्पर्क – yijayv1948ster@gmail.com

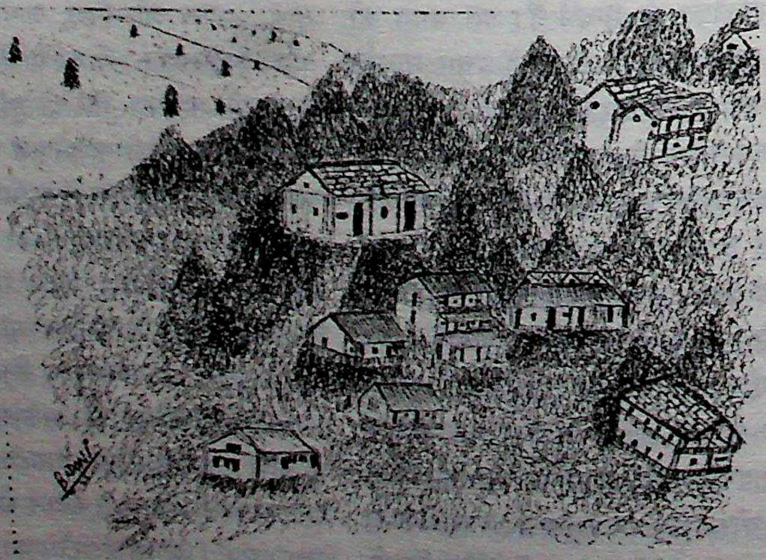

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी कविता का उत्तर -(आधुनिक) काल

राजाराम भादू

(आधुनिक और उत्तर आधुनिक समय के संश्लिष्ट सवालों के बीच साहित्य को गहरे आलोचनात्मक विवेक से समझने वाले वरिष्ठ आलोचक।)

मुझे कहना तो इसे लेख़ ही पड़ेगा, भले ही अकादमिक अर्थ में इसे लेख न माना जाए। इसके पहले हिस्से में दुनिया और देश का एक संक्षिप्त राजनीतिक-सांस्कृतिक खाका प्रस्तुत करने की कोशिश है। इसके बाद समकालीन हिन्दी कविता पर मेरे कुछ अवलोकन (आब्सर्वेशन) हैं। आखिर में आगे की कविता के प्रति आकांक्षाओं की बेतरतीब रूपरेखा रखने का जतन है।

दुनिया और देश का समकाल

बीसवीं शताब्दी के अंत से दुनिया भर में और जीवन के हर क्षेत्र में परिवर्तन बहुत तेजी से घटित होता है। भूमंडलीकरण, आर्थिक उदारीकरण और सूचना तकनीक का अभूतपूर्व विस्तार विगत शताब्दी के अंतिम दशक में जीवन के समूचे ढर्रे को बदल देता है। इससे पहले सोवियत संघ अपने आंतरिक संकट के चलते बिखर चुका होता है जिसे दुनिया में शीतयुद्ध की समाप्ति और उसके एक-ध्रुवीय होने के रूप में देखा जाता है। इसी बीच चीन अपनी कथित साम्यवादी व्यवस्था को पूँजीवादी ढर्रे (मोड) पर डाल देता है और खुली आर्थिकी की होड़ में शामिल हो जाता है। अब चूँकि अमेरिका पहले ही एक ध्रुव का नेता था, वह एकल महाशक्ति के रूप में उभरता है, उसकी संस्कृति और जीवन शैली विश्व बाजार की उद्दाम लहरों पर सवार हो जाती है।

लेकिन न्यूयॉर्क शहर के जुड़वा (ट्विन) टावरों पर आतंकवादी हमले (11 सितम्बर, 2001) से इस परिवर्तन के अगले चरण की शुरुआत होती है। इसे कई दर्जन देशों द्वारा मिलकर करीब एक दशक तक संचालित खाड़ी युद्ध की प्रतिक्रिया में भी देखा गया था, जो मुख्यतः पेट्रोलियम पर एकाधिकार की लड़ाई थी। विश्व भर में फैले इस्लामी आतंकवाद के विरुद्ध अमेरिका युद्ध घोषित करता है। ईराक में सद्दाम हुसैन पर झूठे आरोपों के आधार पर की गई सैन्य कार्रवाई (2003) में अमेरिका सफल हो चुका था। अफगानिस्तान पर अमेरिका के नेतृत्व में सामूहिक आक्रमण के जरिये कब्जा करके अलकायदा सरगना की खोज शुरू होती है। हंटिंग्टन की सभ्यताओं के संघर्ष की अवधारणा मूर्त रूप लेने लगती है। नतीजतन दुनिया के तमाम देशों में राष्ट्रवाद की वापसी होती है, जो पूँजीवाद के उभार के समय नेपथ्य में जा चुका था। ओसामा बिन लादेन के अंत (मई, 2011) के साथ हम इस चरण की समाप्ति देख सकते हैं।

राष्ट्रवाद का पुन : उभार धीरे-धीरे कट्टरपंथ की ओर जाने लगता है। अमेरिका में ट्रंप का सत्ता में आना इसी का प्रमाण है जो अमेरिकियों को खुलेआम मुस्लिम, काले और विदेशियों के खिलाफ भड़काते हैं। उन्हें दूसरी बार राष्ट्रपति बनने से रोकना लोकतंत्रवादी अमेरिकियों के लिए एक बड़ी चुनौती बन जाती है। लगभग ऐसी ही परिघटना समूचे यूरोप में घटित होती है। ब्रिटेन अपने को यूरोपीय संघ से अलग कर लेता है। अमेरिकी वर्चस्व अब पहले जैसा नहीं रह गया है। दूसरी ओर रूस और चीन अपने विस्तारवाद को राष्ट्रवादी आधार प्रदान करते हैं। रूस अपने पुराने साम्राज्य का स्वप्न देखने लगता है। अभी यूक्रेन पर उसका हमला इसी की परिणति है। चीन एक तरफ भारतीय सीमाओं के अतिक्रमण की कोशिश करता है, ताइवान और हांगकांग में जकड़बंदी बनाए है तो म्यांमार, नेपाल, श्रीलंका और पाकिस्तान में मदद के बहाने दखल दे रहा है।

हाल ही दुनिया ने कोविड-19 के रूप में भयावह महामारी को भुगता है। उसके दृश्य हॉलीवुड की किसी हॉरर फिल्म से भी वीभत्स और दर्दनाक थे। इसमें कथित विकसित देशों की उन्नत सभ्यता का भी सार्वजनिक पर्दाफाश हो गया। दुनिया ने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

घरों में कैद कर देने वाले लंबे-लंबे लॉकडाउन देखे। इससे पहले विश्व के चिंताशील वैज्ञानिक ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु संकट को लेकर दुनिया को गंभीर चेतावनी देते रहे हैं। यह सोचा जा रहा था कि महामारी जैसी भयावह आपदा से दुनिया कोई सबक सीखेगी, लेकिन ऐसा कुछ भी अभी तक देखने में नहीं आया।

अमेजन, कैलीफोर्निया और आस्ट्रेलिया के जंगलों में लगी आग को बुझाने के लिए महाशक्तियों के पास कोई उपाय नहीं हैं। जबकि वे आर्टिफिसियल इंटेलिजेंस पर नये-नये अनुसंधानों में एक दूसरे से होड़ ले रही हैं।

वैचारिक रूप से उत्तर आधुनिकता से उपजी सिद्धांत-सरणियों ने तमाम स्थापित अवधारणाओं को चुनौती दी, लेकिन किसी नये चिन्तन को प्रस्तावित नहीं किया। दुनिया भर में लोकतंत्र और उसकी अनुषंगी संस्थाओं का अनवरत क्षरण हुआ है। इसे उत्तर-लोकतंत्र कहकर स्वीकार लिया गया है। इसी के साथ उत्तर-सत्य (पोस्ट ट्रुथ) पद प्रचलन में आया है, जो एक तरह से झूठ के प्रचार को वैधता प्रदान कर देता है। नये शक्तिशाली दृश्य माध्यमों और सोशल मीडिया इसके संवाहक हैं। दुनिया ने इसके आक्रामक और घिनौने व्यवहार को देखा है।

भारत भी इसी परिघटना की अविभाज्य रणभूमि रहा है। संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन की सुस्त और लचर सरकार को राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन ने अपने जुमले केन्द्रित आक्रामक प्रचार से पिछले दशक में अपदस्थ कर दिया। नोटबंदी जैसी असफल योजनाओं और जन-विरोधी नीतियों के बावजूद साम्प्रदायिक गोलबंदी और छद्म प्रचार अभियान के बल पर इन्होंने 2019 में फिर से सत्ता में वापसी की है। इस सरकार के विरुद्ध चले सीएए-एनआरसी आन्दोलन ने दुनिया का ध्यान खींचा था किन्तु वह दंगों व महामारी की भेट चढ़ गया। एक साल से अधिक चले अभूतपूर्व किसान आन्दोलन से भी सरकार के मूल चरित्र में कोई परिवर्तन आना तो दूर यह अधिक अतिवादी और आक्रामक होती गई है। कलबुर्गी, पनसारे और गौरी लंकेश की हत्या, भीमा-कोरेगांव मामले में एक्टिविस्टों की दीर्घकालिक कैद के बाद प्रतिरोध करने वाली सभी आवाजों के उत्पीड़न और दमन का सिलसिला तेज हुआ है। दूसरी ओर न्याय को सुनिश्चित करने वाली लगभग सभी संस्थाएँ ह्रासशील हैं।

समकालीन कविता का परिदृश्य

हमने देखा कि विगत दो-तीन दशकों में भारतीय समकालीन इतिहास का चक्र करीबन पूरा घूमकर अपने धुर प्रतिलोम पर पहुँच गया है। लेकिन ऐसा लगता है, जैसे हमारी हिन्दी कविता अभी भी कहीं वहीं खड़ी है, जहाँ यूटोपिया (सोवियत संघ) के ध्वंस के बाद वह संशय और विभ्रम में हताश नजर आती थी। बेशक, पूरी हिन्दी कविता सोवियत प्रेरित विचार से अनुप्राणित नहीं थी, लेकिन दुनिया भर में घटनाओं का जो जबरदस्त सिलसिला शुरू हुआ था, उसने सभी साहित्यकारों को हतप्रभ कर दिया था। इतने लंबे काल (करीबन) तीन दशक की कविता यात्रा पर चर्चा करने के लिए हमारे पास सामान्यीकरणों में बात करने के सिवाय कोई चारा नहीं है। तथापि कुछ भिन्न तरह सोचने के लिए ऐसे प्रयास जरूरी हैं।

समकालीन हिन्दी कविता के बारे में अच्छी बातों की कमी नहीं है और अकसर वे कही भी जाती हैं। इस समय कवियों की कम से कम चार पीढ़ियाँ एक साथ सक्रिय हैं। इतनी संख्या में कवि शायद पहले कभी नहीं लिख रहे थे। कविता का सुदूर अंचलों तक विस्तार हुआ है और स्त्रियों, दलित व आदिवासी रचनाकारों की एक बड़ी कतार सामने आई है। इतने कविता-संकलन पहले कभी नहीं छपते थे, लघु ही सही लेकिन पत्रिकाओं की संख्या भी बढ़ी है। सोशल मीडिया पर भी बड़ी संख्या में कवियों की रचनात्मक उपस्थिति नजर आती है। स्वाभाविक है कि समकालीन कविता विविधता से भरी है, और तब समृद्ध भी होगी ही।

लेकिन यह भी उतना ही सही है कि समकालीनता का यह काल जितना लंबा (तीन दशक से अधिक) चला है, और चलता जा रहा है, जबकि इतना हिन्दी कविता का और कोई भी दौर नहीं चला। आधुनिक हिन्दी कविता में कुछ दौर कुछ समय के लिए समानान्तर भी चले हैं। छायावाद के साथ राष्ट्रवादी कविता का सिलसिला भी चलता रहा। उत्तर-छायावाद के साथ-साथ नव गीत और प्रगतिवाद चलते रहे, जो प्रयोगवाद तक जारी रहे। अकविता के बाद एक बड़ा संक्रमण घटित होता है। इसका संबंध आपातकाल से भी है जिसके खत्म होने के बाद नक्सलवादी कविता सामने आती है। जनवादी-प्रगतिशील कविता का नया दौर शुरू होता है जो सोवियत संघ के विघटन तक चलता है। जैसा कि हमने कहा कि हिन्दी की समूची कविता इन बैनरों की तले नहीं लिखी जा रही थी। अनेक कवि थे जो इस धारा से पृथक अपनी तरह से सृजनरत थे।

सामान्यत: नवे दशक से समकालीन कविता पद का प्रयोग किया जाता रहा है, जो प्राय: अपने शाब्दिक अर्थ को ही जाहिर करता है। इसके बाद कविता को दशकों में देखने के कुछ प्रयास

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हुए हैं। मुझे एकान्त श्रीवास्तव के संपादन में निकला वागर्थ का नवें दशक की कविता पर केन्द्रित अंक ध्यान आता है। ऐसी ही कुछ चेष्टाएँ इक्कीसवीं सदी के पहले दशक के कवियों को लेकर की गई हैं। हालाँकि अभी भी उत्तरवर्ती कवि बड़े क्षोभ से यह शिकायत करते पाए जाते हैं कि आठवें दशक के कवि ही क्षितिज पर छाये हुए है। हिन्दी कहानी को दशकों में देखने का काफी चलन रहा है। वैसे दशकवार आकलन की कोई अकादमिक हैसियत नहीं है, इसके जरिए आप महज एक स्टाक टैकिंग जैसी एक्सर्साइज कर सकते हैं, हालाँकि आप फोकस कहीं केन्द्रित कर देंगे तो वहाँ रोशनी तो पड़ेगी ही। इस प्रसंग में कहना यह है कि इतने लंबे काल में मूल्यांकन की प्रक्रिया तो छोड़िए, कविता में प्रवृत्ति और पैटर्न चीन्हने की भी कोई गंभीर गतिविधियाँ नज़र नहीं आतीं।

नामवर जी की 'कविता के नये प्रतिमान' जब सामने आई तो एक साथ दो बहसें आरंभ हुई थीं— एक ओर प्रतिमानों का प्रश्न और दूसरी तरफ कवियों का मूल्यांकन। जिन कवियों का उल्लेख इस पुस्तक में आने से रह गया था, उनकी अन्यत्र चर्चा होने लगी कि वे क्यों महत्त्वपूर्ण हैं। उन दिनों करीबन एक दर्जन ऐसी किताबें सामने आईं जिनके शीर्षक में प्रतिमान अथवा उसके समानार्थी पद जुड़े थे, अर्थात् कविता के मूल्यांकन को लेकर एक व्यवस्थित सैद्धांतिक फ्रेमवर्क पर विचार शुरू हुआ था। लेकिन दुर्भाग्य से सतही विवादों में यह विचार खो गया। ऐसा ही कविता के सौंदर्यशास्त्र के मामले में हुआ जिसकी जरूरत मुक्तिबोध ने कभी नई कविता के संदर्भ में उठाई थी। इस संदर्भ में मुझे एक तो सौंदर्यशास्त्र को लेकर रमेश कुंतलमेघ के गूढ़ और उलझे हुए सौंदर्य-विषयक विचार याद आते हैं। दूसरे प्रभाकर श्रोत्रिय रहे जो काफी ढीले-ढाले अर्थ में सौंदर्यशास्त्र को बरतते थे। कवि-एकादश शीर्षक से लीलाधर मंडलोई ने ग्यारह समकालीन कवियों का लंबी भूमिका के साथ एक प्रतिनिधि चयन प्रस्तुत किया। ऐसे और भी प्रयास रहे होंगे लेकिन मूल्यांकन-विमर्श खड़ा नहीं हो सका।

इसका परिणाम क्या है? - इस प्रसंग में तीन नामों के उल्लेख से बात करेंगे ताकि समस्या की गंभीरता का कुछ एहसास हो सके। यदि मूल्यांकन का मतलब यह है कि कवि का हिन्दी कविता में क्या अवदान है, तो हिन्दी के तीन शीर्ष कवियों का ऐसा आकलन अभी तक नहीं हुआ है। पहले अशोक वाजपेयी हैं जिन्हें आप उपेक्षित नहीं कह सकते। दूसरे नंदकिशोर आचार्य हैं जिन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला है, यानी अकादमी ने उनके अवदान को मान्यता दी है। तीसरे कवि के रूप में लीलाधर जगूड़ी हैं जिनका नाम अकविता की धारा के साथ हिन्दी के पाठ्यक्रम से जुड़ा है और जो सतत् सक्रिय हैं। मुझे मालूम है, आप तीन की जगह ऐसे तीस नाम तुरंत गिना सकते हैं। जाहिर है कि मूल्यांकन का कोई तंत्र हमारे यहाँ काम नहीं कर रहा है। यद्यपि कवियों पर केन्द्रित लेख छपते रहते हैं लेकिन उनमें मूल्य-निर्णय नहीं होता, अगर ऐसा कुछ कहा भी जाता है तो उसके लिए कोई तत्वमीमांसा नहीं प्रयुक्त की जाती जिससे वह निष्कर्ष निकला हो। इधर कवियों पर केन्द्रित पत्रिकाओं के अनेक अंक आए हैं किन्तु इसी कमी के कारण वह सारा उपक्रम मूल्यांकनपरक न होकर अनुष्ठान (सेलिब्रेशन) में अपघटित होकर रह जाता है और कमोबेश पुरातन अभिनंदन ग्रंथों की कतार और लंबी हो जाती है।

समकालीनता के इस महाविस्तार में एक वृहद परिघटना और अनुवर्ती संक्रमण घटित हुआ है। उत्तर आधुनिकता का जिक्र हम कर चुके हैं, हिन्दी साहित्य में इस पर विपुल चर्चा रही है। उत्तर आधुनिकता कई चीजों के अंत की बात करती है जिसमें इतिहास, परंपरा और महा-आख्यान शामिल हैं। वृहत श्रेणियाँ भी इसमें सम्मिलित हैं जिनमें एक निम्न वर्ग (वर्किंग क्लास) है। यही श्रेणी सर्वहारा-मेहनतकशों के विराट समूह को एक वर्ग के रूप में सामने लाती रही थी जो प्रगतिशील-जनवादी कविता का केन्द्रक था। उत्तर-आधुनिक चिन्तकों ने इसका विखंडन किया और पाया कि यह वर्ग श्रेणी मूलतः आर्थिक है। इसमें सामाजिक-सांस्कृतिक अन्तर्विरोध छुप जाते हैं जो कि दरकिनार नहीं किए जा सकते। यह बात काफी हद तक सही भी है हालाँकि इसकी भी सीमाएँ हैं। बहरहाल, अस्मिता आधारित जन-उभारों को इसी विखंडन से तार्किक आधार मिला है। हिन्दी में दलित-आदिवासी और स्त्री विमर्श का भी यही परिपार्श्व व तर्काधार है। वैसे इस परिघटना से दो और नतीजे निकाले जा सकते हैं। पहला यह कि असल में हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग नवें दशक में ही कहीं समाप्त हो चुका है। दूसरे, फलतः दलित-आदिवासी और स्त्री विमर्श ही नहीं बल्कि समकालीन कही जाने वाली समूची कविता उत्तर-आधुनिक काल में अवस्थित है।

अकसर कवि लोग ही कविता के क्षेत्र में राजनीति के हावी होने की बात करते हैं। उनका राजनीति से तात्पर्य वही होता है, जैसा कि एक सामान्य व्यक्ति राजनीति को समझता है। क्या छल-छद्म, झूठ-फरेब, लफ्फाजी, धोखेबाजी और उठा-पटक राजनीति हैं? असल में सामान्य व्यक्ति सार्वजनिक निम्न स्तरीय व्यवहार को राजनीति कहता रहा है। लेकिन वास्तव में तो यह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राजनीति नहीं, बल्कि व्यवहार से जुड़े प्रश्न हैं जो नैतिकता से ताल्लुक रखते हैं। कविता में राजनीति के प्रश्न को व्यापक क्षेत्र में देखने की जरूरत है।

कविता साहित्य की ही एक विधा है और साहित्य का अपना पब्लिक स्फियर (जन-क्षेत्र) है। इसमें अकादमिक संस्थान और शैक्षणिक संस्थाएँ हैं, लेखकों के संगठन और साहित्यिक मंच हैं तथा पत्र-पत्रिकाएँ हैं। इन सब में लोगों के प्रतिनिधित्व एवं इनके नियमन व नियंत्रण को लेकर हम विचार कर सकते हैं। इसके साथ कविता से राजनीति के सहसंबंध के दो और आयाम हैं। पहला, कविता में राजनीति कैसे अभिव्यक्त होती है और लोग (पाठक) उससे क्या रिश्ता बनाते हैं? दूसरे, राजनीतिक संगठन या समूहों से साहित्यकार क्या संबंध बनाते हैं? यह संबंध किसी का व्यक्तिगत स्तर पर हो सकता है, अन्यथा लेखकों के कुछ समूहों द्वारा तय किया गया भी हो सकता है। हमने ऐसा भी देखा है कि कई साहित्यकार अपने को घोषित रूप से वामपंथी कहते थे लेकिन व्यवहार में वे कांग्रेसी होते थे और उसकी अनुकंपा से ऊँची जगह हासिल कर लेते थे। वर्तमान सत्ता से भी कुछ साहित्यकारों की ऐसी दुरभि-संधि की चर्चाएँ गाहे-बगाहे सुनाई दे जाती हैं।

हमारे बहुत सारे कवि राजनीतिक कविता लिखने का दावा करते हैं लेकिन प्राय: वह सतही बयानबाजी से आगे नहीं जा पाती। हमारे अवलोकन कितने अधूरे हैं, यह हम लॉकडाउन के समय मजदूरों के हृदय-विदारक गाँव-वापसी यात्रा-दृश्यों के संदर्भ से समझ सकते हैं। विगत दशकों में कविता की विषयवस्तु से कोई तीन प्रमुख थीम बताने को कहा जाए तो मेरा जवाब होगा —जीवन से अनेक मूल्यवान चीजों का विलोप, बाजारवाद के खतरे और विस्थापन। हमारे गाँव-अंचलों से लोगों के शहरों की ओर पलायन को तो दर्ज किया लेकिन रचनाकार उसके आगे नहीं गए। वे शहरों में कहाँ- कैसे हैं, यह हमसे ओझल रहा, जबकि हिन्दी के अधिकांश कवि आजकल शहरों में ही रहते हैं। आपदा को चित्रित करने में भी हिन्दी कविता बहुत प्रभावी नहीं रही है, यह भारत विभाजन प्रसंग हो, दंगे हों, आपातकाल या सुनामी व भूकंप हों अथवा हाल की महामारी। प्राय: अकाल में सारस (केदारनाथ सिंह) जैसे विपर्ययी शीर्षकों से काम चला लिया जाता है, भय भी शक्ति देता है (लीलाधर जगूड़ी) जैसी मार्मिक रचनाएँ बहुधा सामने नहीं आतीं।

कविता का भविष्यत्

एक वाक्य रचना होती है- वह आए तो मैं जाऊँ ! इसे उलट कर भी कहा जा सकता है। यह संभाव्य भविष्यत् काल की क्रिया कही गई है। कविता के संदर्भ में हम कुछ ऐसे ही भविष्यत् की बात कर रहे हैं, चूँकि कविता मनुष्य की संभावनाओं में शायद सबसे अधिक भरोसा रखने वाली कला है। लेख के आरंभ में हमने दुनिया और देश का जो संक्षिप्त खाका रखा है, उसका कतई यह अभिप्राय नहीं है कि उसे कविता में यथावत् अनूदित किया जाए। हालाँकि एक समय साहित्य की चुनौतियों और लेखकों की प्रतिबद्धता पर बहस करते हुए ऐसे आग्रह किए जाते थे। कविता के क्षेत्र में मैनिफेस्टो (घोषणा-पत्र) काम नहीं करते। हालाँकि लिरिरल बैलेडस् (वर्डसवर्थ-कालरिज) की भूमिका को अंग्रेज़ी की रोमांटिक कविता का घोषणा- पत्र कहा जाता है। कुछ लोग 'दि पिक्चर आफ डोरियन ग्रे' (आस्कर वाइल्ड)) की भूमिका को कला के लिए कला की अवधारणा का घोषणा-पत्र मानते हैं। हिन्दी कविता में ऐसे संदर्भ नहीं मिलते, यहाँ तक कि तार-सप्तक के प्रकाशन के साथ ऐसी कोई घोषणा नहीं जुड़ी है जबकि हिन्दी कविता में उसे अकसर एक प्रस्थान बिन्दु की तरह देखा जाता है। कविता के सरोकारों को लेकर जरूर काफी कुछ लिखा गया है। पिछले दिनों आलोचक रोहिणी अग्रवाल ने स्त्रीवादी लेखन के लिए एक सुचिंतित कार्य योजना प्रस्तुत की है, जो समालोचन (बेव पत्रिका) पर उपलब्ध है। यह सही है कि कविता अपने देश काल से निरपेक्ष नहीं हो सकती, लेकिन उसकी अपनी कलात्मक स्वायत्तता होती है और उसे अपनी तरह ही चीजों को संबोधित करना चाहिए।

मुझे लगता है कि कविता के विगत तीन दशकों के आलोचनात्मक पुनरावलोकन की आवश्यकता है। परंपरा महत्त्वपूर्ण है, साथ ही पुनरावलोकन इसकी एक नियमित प्रक्रिया है जो उसे गतिमयता और जीवंतता प्रदान करती है। यदि ईमानदारी से ऐसा किया जाता है तो बड़े कवियों की भी कई कविताएँ हमें अप्रासंगिक नजर आएँगी। जैसे तार सप्तकों के ही कितने कवियों और उनकी कितनी कविताओं की हम बात करते हैं? नागार्जुन की राजनीतिक कविताओं, आलोक धन्वा की गोली दागो पोस्टर या जनता का आदमी और शमशेर तक की कुछ कविताओं की महज ऐतिहासिक अहमियत रहेगी। आठवें दशक के कवियों की कविताओं के संदर्भ में देखना होगा कि वहाँ परिवर्तित देश- काल की छायाएँ दिखती हैं अथवा वे अपनी ही काव्य-युक्ति में घूर्णन कर रहे हैं। निश्चय ही, अनेक कविताएँ मौजूदा संदर्भ में अर्थवान हो उठेंगी। पुनरावलोकन की इस प्रक्रिया में सौंदर्यशास्त्रीय आधारों पर कविताओं का गहन विश्लेषण, तुलनाएँ, श्रेणीकरण और प्रवृत्ति-निर्धारण होना चाहिए। कोई कह सकता है कि यह सब करने के लिए हमारे पास आलोचक तो हैं ही नहीं। वैसे इस सवाल पर विचार-मंथन की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जरूरत है कि आपके पास आलोचक क्यों नहीं हैं और समर्थ आलोचकों के बिना आप उत्कृष्ट कविता के बारे में कैसे सोच सकते हैं?

इन तीन दशकों में अनेक नये कवि हिन्दी कविता में आए हैं और उनमें से कइयों ने अपने स्वत: स्फूर्त आवेग से लोगों का काफी ध्यानाकर्षण भी किया था। लेकिन उनकी आगे की यात्रा कैसी रहती है? भारत भूषण अग्रवाल पुरस्कार प्राप्त ऐसे मेधावी कवियों का एक जायजा कभी विष्णु खरे ने लिया था, तब ऐसे कई कवि गुमशुदा पाए गए थे। ऐसा क्यों है कि कई कवियों के मामले में ज्यादातर उनके पहले या अधिक से अधिक दूसरे संकलन की ही चर्चा की जाती है, जबकि वे लगातार लिख रहे होते हैं। हम यह भी जानते हैं कि बड़े कवियों की सृजन-यात्रा कुछ भिन्न तरह की रही होती है, अर्थात उनके शुरुआती लेखन को एक किस्म की तैयारी की तरह देखा जा सकता है। जाहिर है कि कवियों में ठहराव अथवा उनके गिरते ग्राफ के गहरे निहितार्थ हैं जिनकी वस्तुपरक छानबीन होनी चाहिए।

सृजन के क्षेत्र में बाकी जीवन जैसी व्यवस्था व नियमन नहीं होता, वहाँ एक तरह की अराजकता सदैव बनी रहती है। लेकिन हमारे यहाँ तो अराजकता नहीं बल्कि आपाधापी (केऑस) है जिसमें कोई और कैसी भी संहिता काम नहीं करती। आलोचना सराहना (एप्रिसिएशन) में तब्दील हो गई है। यह क्रम नामवर जी बाद के दिनों से लेकर अब तक उत्तरोत्तर बढ़ता गया है। कवि-आलोचक विजय कुमार के बाद मूल्यांकनपरक लेखन की धारा विलुप्त हो गई लगती है। आप जरा याद करके बताएँ कभी किसी आलोचक ने किसी कथित रूप से स्थापित कवि की कविता पर गंभीर प्रश्न-चिन्ह लगाए हों। कवियों की इतर हैसियत व पदों के सहसंबंध में उनकी कविता की श्रेष्ठता देखने के दृष्टान्त भी मिल जाते हैं। जब वरिष्ठ आलोचक भी सिर्फ भली बातें करेंगे तो नये आलोचकों से क्या उम्मीद की जा सकती है, जबकि अभी तो उन्हें नौकरी या पदोन्नति भी हासिल करनी होती है। कविता के लिए पुरस्कारों की भरमार है जिनमें से अधिकांश की प्रक्रिया पारदर्शी नहीं है, अत: वे प्राय: प्रलोभनों में बदल गए हैं। क्या कभी सोचा गया कि पुरस्कार-सम्मानों ने कविता के मूल्यांकन की वस्तुपरक प्रक्रिया को कितनी क्षति पहुँचाई है? कविता का पुनरावलोकन और भविष्यत चिन्तन एक जरूरी और सामूहिक कार्यभार है जिसमें खुद कवियों को पहलकदमी करनी चाहिए। शायद वे स्वयं भी आत्मालोचना से विरत होते गए हैं। उनकी कविताओं के प्रतिनिधि चयन भी दूसरे लोग तैयार करने लगे हैं। चयन में छूटी कविताओं पर वे क्या सोचते हैं, यह शायद ही सामने आता है। उन्हें अपने कंफर्ट जोन से निकलकर इस प्रक्रिया में सन्नद्ध होना चाहिए। लेखक संगठन इसके लिए वृहद प्रोजेक्ट बना सकते हैं, पत्रिकाएँ उनसे जुड़ सकती हैं और कुछ समय पुरस्कारों को रोककर उन्हें आलोचकों के लिए फैलोशिप में बदला जा सकता है।

अंतोनियो ग्राम्शी कहते हैं : आलोचनात्मक प्रसार का आरंभ किसी की वास्तविकता के प्रति सजगता अर्थात अपने को जानने से होता है, यह एक ऐतिहासिक प्रक्रिया की उपज है और जो आपके भीतर असंख्य प्रभाव छोड़ जाती है।... संसार की निजी अवधारणा हासिल करने के दौरान मनुष्य सदैव एक निश्चित समूह का हिस्सा होता है जो उन सभी सामाजिक तत्त्वों से जुड़ा होता है, जिनकी चिन्तन और व्यवहार के एक समान तरीकों में साझेदारी होती है। हम सब किसी न किसी तरह की समरूपता के अनुयायी हैं। हमेशा जन-समूह के बीच मनुष्य या सामूहिक मनुष्य। प्रश्न यह है कि समरूपता किस ऐतिहासिक प्रकार की है— व्यापक मानवता, जिसका कि कोई व्यक्ति हिस्सा है। ग्राम्शी प्रश्न रूप में ही कहते हैं, मनुष्य क्या है? मनुष्य एक प्रक्रिया है... हम क्या हैं और क्या हो सकते हैं?

यहीं हमें बुद्धिजीवियों से संबंधित ग्राम्शी के कुछ विचारों को भी संदर्भ में ले लेना चाहिए क्योंकि कवि भी बुद्धिजीवी हैं। वे एक प्रश्न से शुरूआत करते हैं, क्या बुद्धिजीवी स्वायत्त और स्वतंत्र सामाजिक समूह है अथवा प्रत्येक सामाजिक समूह के अपने अपने बुद्धिजीवियों की कोई विशिष्ट श्रेणी होती है? प्रत्युत्तर में उनका कहना है कि सभी मनुष्य बौद्धिक हैं, लेकिन कोई कह सकता है कि सभी मनुष्य समाज में बुद्धिजीवियों का कार्य नहीं कर पाते। प्रत्येक सामाजिक समूह, जो आर्थिक उत्पादन-जगत में किए गए आवश्यक कार्य के मौलिक आधार पर अस्तित्व ग्रहण करता है, अपने साथ-साथ बुद्धिजीवियों के एक या दो समूहों को आवयविक रूप से उत्पन्न करता है, जो सिर्फ आर्थिक क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र में भी उसके कार्यों को सचेतनता प्रदान करते हैं। लेकिन कविता के संदर्भ में जो प्रस्ताव हमने प्रस्तुत किया है, उससे ग्राम्शी की यह बात जुड़ती है, नई संस्कृति की रचना का सिर्फ यह अर्थ नहीं है कि व्यक्तिगत रूप से कुछ मौलिक अन्वेषण किया जाए। इसका अर्थ यह भी है— पहले खोजी गई सच्चाई का आलोचनात्मक रूप से विश्लेषण व सम्प्रेषण, समाजीकरण करना, बौद्धिक व नैतिक व्यवस्थाओं के तत्व के रूप में उनको

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जीवन्त कार्रवाई के लिए आधार रूप देना भी इसमें शामिल है। कहना न होगा कि कविता भी संस्कृति की परिधि में ही अवस्थित है।

कवि के लिए अपने किसी संदर्भित समुदाय से आवयविक सम्बद्धता इसलिए भी जरूरी है कि अन्यथा उसके अलगाव (एलियेनेशन) में चले जाने का खतरा है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति एक निर्धारित, विशिष्ट प्रकार की गतिविधि के घेरे में जीता है जो उस पर लदी होती है और जिससे उसकी मुक्ति संभव नहीं। परिणामतः लोग केवल अपने विशेष हितों की ही परवाह करते हैं और इस प्रकार सामान्य हितों की पूरी उपेक्षा होती है। सामान्य सामाजिक उद्देश्य पराये (एलियन) लगते हैं, यह परायेपन (एलियनेशन) का आरंभ है। यहीं से व्यक्ति और व्यक्ति तथा व्यक्ति और समाज के बीच दूरी बढ़ती है। चेतना के विभिन्न अवयव अलग-थलग पड़ने लगते हैं। चेतना खंडित होती है, मानवीय नहीं रह जाती क्योंकि समाज अब विखंडित है, अतः मानवीय नहीं। अब सामान्य सामाजिक हित, जिनके माध्यम से ही व्यक्ति के व्यापक हितों की रक्षा हो सकती है, मूल्य-आदर्श इत्यादि, शुष्क रूप ले लेते हैं। अब ये मूल्य अथवा आदर्श होते हैं, जीवन प्रक्रिया के सामान्य अंग नहीं। अब इनके अनुसार चलने वाले के लिए शहीद बनने की नौबत रहती है। वर्ग की वृहद श्रेणी से छिटक कर अस्मिता-विमर्श की धाराएँ निकलीं और हिन्दी साहित्य ही नहीं, जीवन के और क्षेत्रों में भी फलने-फूलने लगी हैं। लेकिन इधर इन्हें धर्म की विशालकाय छतरी के तले लाने के प्रयास किए जा रहे हैं। वर्ग आर्थिक श्रेणी थी, अस्मिताओं का आधार सामाजिक है, जबकि धर्म का क्षेत्र सांस्कृतिक है। यह सही है कि मनुष्य के उद्भव एवं अन्तर्वस्तु के प्रश्न धर्म से सम्बद्ध रहे हैं। लेकिन यह भी इतना ही सही है कि कोई व्यक्ति सामान्यतः अपने को किसी धर्म विशेष का घोषित करने के बावजूद उसे पूरी तरह स्वीकार नहीं करना चाहता क्योंकि यदि वह धार्मिक नियमों को अपने जीवन के प्रत्येक कार्य-क्षेत्र में लागू करेगा तो वह परेशान हो जाएगा। धर्म को जिस अर्थ में गरीब की आह और आत्मा का सम्बल कहा जाता है, वह आध्यात्मिक है। उसी के संदर्भ में हम संस्थामुक्त धर्म और धर्म-रहित अध्यात्म के जरिए संस्थाबद्ध धार्मिक वर्चस्व के प्रतिकार की बात करते रहे हैं। अध्यात्म मनुष्य के जिस आत्मिक शून्य को भरता है अथवा उसका सम्बलन करता है, वही काम कविता भी करती है। अपनी अधिभौतिक प्रकृति के चलते सभी कलाएँ अध्यात्म के स्थानापत्र में समर्थ हैं।

लगभग सभी भौतिक और रासायनिक क्रियाओं के परिणामों की पहले से भविष्यवाणी की जा सकती है किन्तु ऐसा नये विचारों के सृजन में नहीं होता। इनकी केवल संभावना ही व्यक्त की जा सकती है। नये विचारों का संश्लेषण नहीं होता, वे सृजित होते हैं। वृक्ष पर नयी निकलने वाली हर पुष्प-कलिका पुराने काठ के बीच से ही निकलती है, किन्तु वह काठ से संश्लेषण का परिणाम नहीं होती। उसकी कोमलता और काठ की कठोरता के बीच कोई सीधा सरल संबंध नहीं होता। कविता निरंतर अनकहे और अव्यक्त की टोह में रहती है और उससे होने वाली अधिभौतिक संक्रियाओं से नये विचार प्रस्फुटित होते हैं।

कविता पीड़ा के कारण तत्वों की इतिहास और समय के संदर्भ में पड़ताल करती है। लेकिन रोमांस और रोमांच की भी अपनी जगह है। ऐसा कौन-सा अभागा मनुष्य होगा जिसने अपने जीवन में कभी वसंत के उल्लास का अनुभव नहीं किया होगा और जीवन में सारी उम्र केवल ग्रीष्म की गर्म हवाओं और सूखी तपती जमीन का आतप ही भोगा होगा? कौन मनुष्य स्वप्न नहीं देखता या जो मात्र स्वप्नजीवी है? कुछ आतपजीवी आदमी हो सकते हैं। अगर ऐसा आम जीवन में है तब तो यह और भी जरूरी है कि मनुष्य संभावना के रूप में ही सही, पूरी छह ऋतुओं के जीवन का शब्दों में ही सही, अनुभव तो करे। कविता केवल जो है वही नहीं दिखाती,वह कल्पना और चिंतन को साथ लेकर चलती है। इसलिए यह भी जरूरी है कि जो संभावना में भी हो सकता है, उस अनुभव को भी स्पेस दिया जाए।

कविता में संक्षिप्ति को लेकर काफी कुछ कहा गया है। दूसरी ओर विवरणों की भी अहमियत है। लेकिन विवरण के प्रति ट्रीटमेंट को लेकर कवियों में जरूरी सचेतना और सामर्थ्य कम दिख पाती है। इस संदर्भ में मुझे कालिदास द्वारा वर्णित सीता का वनवास प्रसंग बहुत मौजू नज़र आता है। मैं अपनी कमजोर संस्कृत के चलते इसे मूल में प्रस्तुत न कर मात्र सरलार्थ रख रहा हूँ : लक्ष्मण सीता को जब वन में छोड़कर जाने लगते हैं तो सीता को जब तक लक्ष्मण दीखते हैं, वह निश्चिंत रहती है। लक्ष्मण ओझल होते हैं तो जब तक रथ दीखता है, सीता निश्चिंत रहती है। रथ भी ओझल होता है तो जब तक रथ का ध्वज दीखता है, वह निश्चिंत रहती है। लेकिन जब रथ का ध्वज भी ओझल हो जाता है तो सीता बहुत जोर से विलाप करती है। सीता का विलाप सुनकर मृग जो दूब चर रहे होते हैं, उनके मुँह से दूब गिर जाती है। उड़ रहे पक्षी जैसे ठहर जाते हैं। वृक्ष की शाखाएँ आपस में रगड़ खाकर जैसे सीता के विलाप में सुर मिलाने लगती हैं। पूरा वन सीता वनवास के शोक में डूब जाता है।

सम्पर्क - 9828169277

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस सदी में कविता का एजेण्डा

मदन कश्यप

(समकालीन आलोचना में मार्क्सवादी दृष्टि से साहित्य को परखने वाले कवि आलोचक।)

पहला सवाल तो यही उठता है कि क्या यह सदी कविता की सदी होगी? वैश्विक स्तर पर देखें तो बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में उपन्यास विधा साहित्य के केन्द्र और उत्तरार्द्ध में विमर्श का बोलबाला रहा। हमारी भाषा में भले ही कविता केन्द्रीय विधा बनी रही-उसके अपने कारण हैं जिनपर अलग से विचार ज़रूरी है-लेकिन, दुनिया की ही नहीं, भारत की अन्य प्रमुख भाषाओं में भी कविता कुछ पीछे हो चुकी थी। ऐसे में, क्या नयी सदी में कविता की वापसी होगी या हो रही है? तात्पर्य अन्य भाषाओं से है, हिन्दी में तो जैसा पहले संकेत किया है। उसका वर्चस्व बना ही हुआ है। यहाँ तो आलोचना का मतलब ही काव्यालोचना है। अन्य विधाओं के लिए तो उसकी अलग पहचान गढ़नी होती है, जैसे कथालोचना, नाट्यालोचना आदि। जबकि अंग्रेज़ी में केवल क्रिटिक होता है। ख़ैर आगे क्या होगा कहना कठिन है और कम से कम मैं कोई दावा नहीं कर सकता। फिर भी, दो चीज़ें कविता के पक्ष में होती दिखाई दे रही हैं। एक तो दुनिया के समक्ष उपस्थित गहरा सांस्कृतिक संकट और चुनौतियाँ और दूसरी, वैश्विक महामारी के बाद पैदा हुई, मनुष्य और प्रकृति के रिश्तों को पुनःपरिभाषित करने की ज़रूरत। इन दोनों मसलों पर ठीक से चर्चा कर ली जाए, तो कविता का नया एजेण्डा भी सामने निकल आएगा। ग़ौरतलब है, साहित्य में बदलाव जब भी आये हैं, तो पहले समाज में आये हैं। और उसके बाद ही साहित्य में आना सम्भव हुआ है। अलबत्ता, समाज में आये बदलावों के कारण अलग-अलग हो सकते हैं और उनके देखने-परखने का दृष्टिकोण अलग हो सकता है। वैचारिक टकराहटें तो रहेंगी, रहनी भी चाहिए, इनसे सत्य तक पहुँचने में मदद ही मिलती है।

यह सदी सांस्कृतिक मुक्ति की सदी होगी, इसकी संकल्पना तो संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी सदी की शुरुआत में ही की थी। उसने वैश्विक विविधता के बीच सांस्कृतिक मुक्ति का एजेण्डा भी तैयार किया था, उस पर विस्तार से विचार करने की जरूरत है। यहाँ बस एक तथ्य की ओर ध्यान दिलाना अपेक्षित है कि यह दुनिया संयुक्त राष्ट्र संघ की कार्य सूची पर नहीं बल्कि, अमेरीका द्वारा प्रायोजित 'सभ्यताओं के संघर्ष' के एजेण्डे पर चल रही है। इससे साहित्य की चुनौतियाँ और बढ़ गयी हैं। इस जटिल सभ्यता संघर्ष से उत्पन्न सांस्कृतिक संकट पर बात करने से पहले यह जान लेना आवश्यक है कि कविता से इसका रिश्ता क्या है। स.रा. के ही मोटे तौर पर किये गये सदी-विभाजन को ध्यान में रखें, तो इस सदी को सांस्कृतिक मुक्ति की सदी कहने वाले अपने आलेख 'Cultural liberty in today's diverse world' में भी बताया है कि बीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध राजनीतिक मुक्ति का और उत्तरार्द्ध आर्थिक मुक्ति का काल था। बाकी बातों को छोड़ दें तो राजनीतिक मुक्ति के दौर में साहित्य के केन्द्र में उपन्यास था, जबकि आर्थिक मुक्ति के दौर में विमर्श। हालाँकि, उक्त आलेख में यह स्थापना इतने स्पष्ट ढंग से नहीं दी गयी है, लेकिन पिछली सदी के लेखन पर थोड़ा-सा भी ध्यान दें तो इस निष्कर्ष तक पहुँच सकते हैं। इसी रास्ते से आगे बढ़ें तो सांस्कृतिक मुक्ति के दौर में लेखन की केन्द्रीय विधा कविता ही होगी और यह दिख भी रही है। दुनिया सांस्कृतिक पहचान के गम्भीर संकट से जूझ रही है, जिसकी अभिव्यक्ति का सबसे सटीक माध्यम कविता ही है। उपन्यास और विमर्श के जरिए हम राजनीतिक और आर्थिक मुश्किलों को सामने ला सकते हैं, लेकिन सांस्कृतिक संकटों की सटीक अभिव्यक्ति कविता में ही हो सकती है। पिछले दशक में गुंटरग्रास की एक छोटी-सी कविता ने इज़राइल जैसे देश को जिस हद तक बेचैन कर दिया था, वह किन्हीं और माध्यमों से सम्भव नहीं था।

कविता की ज़रूरत और प्रासंगिकता का एक और पक्ष कोविड महामारी के दौरान सामने आया। प्रथम चरण में अविवेकपूर्ण घरबंदी से मजदूरों, अर्द्धरोजगार लोगों और छोटे व्यापारियों के संकट बढ़े। पलायन की एक बड़ी त्रासदी की शुरुआत हुई। सरकार की क्रूरता और अदूरदर्शिता सामने आयी, तो समुदाय की उदारता भी दिखी। पाँव-पैदल हज़ारों मिल की यात्रा करने के लिए विवश मज़दूरों, स्त्रियों, बच्चों को रास्ते में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खाना-पानी देकर लोगों ने, विशेष रूप से ग्रामीण पृष्ठभूमि वाले नागरिकों ने, भरसक उनके कष्टों को कम करने की कोशिशें की। एक स्वतन्त्र, सार्वभौमिक देश में अकल्पनीय इस पलायन के दौरान कुछ ऐसी त्रासदियाँ भी हुईं, जिसने पूरे देश के संवेदनशील लोगों को बेचैन कर दिया। लॉकडाउन कुछ-कुछ नोटबंदी की तरह ही ऐसे गुपचुप तरीके से घोषित कर दिया गया कि लोगबाग जहाँ थे, वहीं फँस गये। कुछ राज्य सरकारों ने खाने-पीने की व्यवस्था की, लेकिन उसमें भी दो-तीन दिन लग गये। सूरत में पलायन की कोशिश कर रहे मज़दूरों पर लाठियाँ बरसा कर गुजरात ने प्रमाणित कर दिया कि वह गांधी का नहीं नरेन्द्र मोदी का सूबा है।

संवेदनशील मध्यवर्ग के मन में उठ रहे सवाल कविता बनकर फूट पड़े। फेसबुक, कविता से पट गया और ऑन लाइन संवाद की वैकल्पिक व्यवस्था भी बन गयी। हमारी भाषा और हमारे देश ही नहीं, पूरी दुनिया की स्थिति कुछ ऐसी ही थी। हालाँकि मध्यवर्ग का बड़ा हिस्सा तब भी ताली-थाली बजाने में मस्त था। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद आयी Post War Poetry से भी बड़ा और व्यापक आन्दोलन Post Corona Poetry का खड़ा हो गया। दुनिया की सभी भाषाओं में एंथोलॉजियाँ बनने और प्रकाशित होने लगीं। हिन्दी में ही ऐसे तीन संकलन इस लेखक को देखने को मिले, जबकि छपे कुछ और भी होंगे। हमारे मित्र और हिन्दी के वरिष्ठ कवि-आलोचक श्रीप्रकाश शुक्ल ने कोरोनाकाल में आये कविता में परिवर्तनों पर चार-पाँच गम्भीर व्याख्यान ऑनलाइन दिये और इस समय लिखी जा रही कविता की विशेषताओं को रेखांकित करते हुए कोरोनाजीवी कविता की नयी सैद्धान्तिकी-प्रस्तुत की अब 'महामारी और कविता' नाम से उनकी पुस्तक भी आ गयी है। वरिष्ठ आलोचक अरुण होता और युवा आलोचक अनिल कुमार पांडेय इस सैद्धान्तिक को विस्तार देने में लगे हैं। कविता के विस्तार का एक उदाहरण यह भी है कि इस संकटकाल में प्रख्यात कथाकार नासिरा शर्मा, वरिष्ठ आलोचक डॉ. जीवन सिंह और डॉ. शम्भुनाथ ने भी कविताएँ लिखीं। ये काफ़ी अच्छी कविताएँ हैं, जिनकी चर्चा भी हुई। उस 'घरबंदी' के दौरान एक और ख़ास घटना की ओर सबका ध्यान गया कि जब मनुष्य संकट में था, प्रकृति बहुत प्रफुल्लित और संकटमुक्त होती दिख रही थी। एक तरह से प्रकृति ने मनुष्य की सीमाओं को दिखा दिया था। इनके बीच के रिश्तों के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता को सबसे पहले कविता ने समझा। ईश्वर की अवधारणा को भी कविता से चुनौती मिली। इस तरह कविता की कार्यसूची में कुछ नयी बातें जुड़ीं।

इसके पहले, 1990 के बाद दुनिया में आये वैचारिक खुलेपन से भी कविता को विस्तार मिल रहा था और उसमें विविधता आ रही थी। हालाँकि 1990 से 2000 के बीच की हिन्दी कविता पर पिछली सदी के आठवें-नौवें दशक की कविता का गहरा प्रभाव था, लेकिन उससे मुक्त होने की छटपटाहटें भी दिखाई देने लगी थीं। सदी का बदलाव तो 1991-92 से ही दिखने लगा था, लेकिन वास्तविक नयी सदी आते-आते एक नयी पीढ़ी आयी, जिसने पुरानी रुढ़ियों से पूरी मुक्ति दिला दी। उमाशंकर चौधरी, निशांत, प्रभात, शिरीष कुमार मौर्य, अशोक कुमार पांडेय, राकेश रंजन, कुमार अनुपम, रमेश प्रजापति, सुमन केसरी, लीना मल्होत्रा, मृदुला शुक्ल, अंजू शर्मा, सुधा उपाध्याय, अनीता भारती, रजनी अनुरागी आदि ने सदी के पहले दशक में ही कविता की नयी ज़मीन तोड़ी, जबकि दूसरा दशक आते-आते तो बड़ी संख्या में आये स्त्री, दलित और आदिवासी कवियों ने कविता का स्वरूप इतना बदल दिया कि अब इनकी नयी रोशनी में 1970 के बाद की कविता के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता महसूस होने लगी। संस्कृति की मुक्ति के साथ-साथ प्रकृति की मुक्ति का नया मसला भी सामने आ गया, जिसकी अनुगूँजें तो पिछली सदी में सुनायी देने लगी थीं। इसके साथ अगर हम संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रस्तावित एजेंडा 'विविधतापूर्ण विश्व में सांस्कृतिक मुक्ति' के कुछ जरूरी सूत्रीकरणों को शामिल कर लें, तो नयी सदी की कविता की जो कार्यसूची बनती है, उसे संक्षिप्त रूप में कुछ इस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है :

1. मनुष्य और प्रकृति के रिश्तों में अपेक्षित बदलाव के लिए आदिवासी समाज के जीवन, चिन्तन और संघर्ष को कविता के केन्द्र में लाना [आदिवासी विमर्श को खड़ा किये बग़ैर पर्यावरण, प्रदूषण और ग्लोबल वार्मिंग की चिन्ता अधूरी और बेमानी है।]
2. विकेन्द्रीकृत और स्थानीय ज्ञान के केन्द्र में लाकर ज्ञान की सत्ता को चुनौती देना।
3. अनुभूति के संरक्षण और अनुभव मूलक अन्वेषण पर अधिक ध्यान देना।
4. जटिल अनुभूतियों की सरल अभिव्यक्ति और भाषा की कलात्मक पारदर्शिता पर बल देना।
5. प्रतिगामी विचारों के विश्वसनीय प्रतिपक्ष रचने के लिए स्त्री चिन्तन को केन्द्र में लाना।
6. सत्ता के विरुद्ध किसी प्रतिसत्ता की जगह सहअस्तित्व की अवधारणा को मूर्तरूप देने के लिए स्त्री और आदिवासी के साथ-साथ दलित, पिछड़े और अल्पसंख्य समुदायों के रचनात्मक संघर्षों को कविता का उपजीव्य बनाना।

इस एजेंडा को और विस्तार दिया जा सकता है।

सम्पर्क - 9999154822

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कुमार मुकुल

(मिथकीय और नागर लोक की अलक्षित काव्य वस्तु को दृश्य में लाते कवि।)

धूलिसूक्त

इस त्रिलोकी में
अमर केवल धूलि देवता हैं

धूल के तमाम
रंग-रस-रूप आकारों को दग्धक करती
राख और धूलि का त्याग करती हुई
इस भूलोक के पार्थिव देवता अग्नि
आखिर शांत हो जाते हैं

द्योलोक के परम देव सूर्य
थक जाते हैं जब
इस धराधाम की धूलि को
तपाते, धूसरित करते
तो चले जाते हैं अस्ताचल की ओट

अंतरिक्ष के चरम देव इंद्र या वायु
ले उड़ते हैं इसे
सात आसमानों और समुद्रों की ओर
और आखिरकार
नीचे बरसा देते हैं वापस

इस धराधाम पर फिर फिर
प्रगट होते साकार धूल देव
मैं आपको सर नवाता हूँ

तमाम दिशाओं में आपकी व्याप्ति बनी रहे
इसी तरह आप अखिल व्योम की सैर करते
पाँव के तलुओं को मुलायम जमीन सौंपते
तख्तो-ताज को खुद में गर्क करते रहें

ज्ञात-अज्ञात दसों दिशाओं से
दृश्य-अदृश्य रूप से
निरंतर अवतरित होते धूल देव

इसी तरह आप रोशनदान-ताखों से लेकर
किताब-कापियों पर अपने मुलायम कणों की
बरसात करते रहें
ताकि उनसे जूझता हुआ मैं इसी तरह
चेतन और गतिशील रहूँ।

रोहिंग्या और रोबोटसोफ़िया

नागरिकता खोते लाखों रोहिंग्या
जब पनाहगाह ढूँढ़ रहे
रोबोटसोफिया को
नागरिकता देता एक मुल्क
उसके स्वागत की अपील कर रहा
विडम्बना का विकास है यह

अब सम्मेलनों में
सोफ़िया वक्तृता देगी, साक्षात्कार देगी
पत्रकार पूछेंगे -रोहिंग्या क्या बला है?
सोफ़िया बोलेगी - यह चिथड़े होती

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मनुष्यता का आखिर दृश्य है
तुमको परेशानी होगी
पर जल्द ही हम
तमाम भले लोगों के साथ
चाँद-मंगल पर चला जाएगा।

जैसे अकेले हैं तारे

अकेला हूँ मैं
जैसे
अकेले हैं तारे
सारे के सारे
टिमटिमाते हैं अकेले
और टूट जाते हैं...

अकेले हैं वे
शिखरों को छूती सभ्यता
अकेली है जैसे

अकेला है वह
भरे हुए घर में
मोमबत्ती की लौ की ओर
बढ़ता बच्चा

अकेला है जैसे...

सम्पर्क - +91 87699 42898

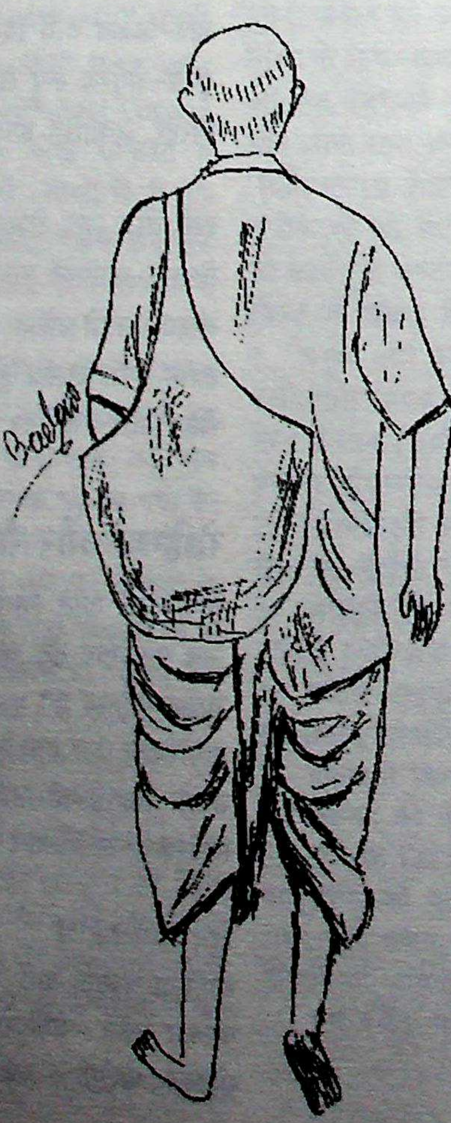

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हरिओम राजोरिया

(लोक समय को आधुनिक और वैज्ञानिक-वैचारिक ढंग से कविता में अभिव्यक्त करने वाले वाले।)

दुःख

शहर में कितने जनक सिंह बचे होंगे
दीवानसिंह, संग्राम सिंह, भूपतसिंह
होंगे तो बहुत बूढ़े हो गए होंगे
नए शहरी बच्चों में हो सकता है
अब कोई बाबूलाल शायद ही मिले
नन्हें, हल्के, शैतान, भगौना, रज्जन
पिछड़ी बस्तियों में मिल सकते हैं
भरोसी, इमरत, संतरा, भँवरी
इनके होने की संभावनाएँ
श्रम के साथ कहीं ज़रूर बची होंगी

जो लोक में थे अपनी तरह के
बहुत सारे परलोक चले गए
कोई नए तरह का नाम सुनता हूँ
ये सारे बजने लगते हैं कानों में
इस बजने में दुःख जैसा कुछ है

हो सकता है
मेरी समझ में कोई खोट हो?

तमगा

कोई-कोई सम्मानित हो रहा है
तरह-तरह से हो रहा है
इतने बुरे समय में भी हो रहा है

भले ही आप कुछ भी न हों
पर जिस दिन आपके भीतर छुपी
झुकने की नैसर्गिक कला
हें हें करने की मासूम अदा
कुटिल होती जाती नौकरशाही को भा जाएगी
तब निर्धारित प्रपत्र में निर्जीव अक्षरों से टंकित
आपके व्यक्तित्व और कृतित्व पर की गई टिप्पणी
सत्ता को भी अत्यधिक रास आएगी
इस तरह एक बड़ा काम हो जायेगा
गणमान्यों की सूची में आपका नाम आएगा

नाम और नामा आपके नाम होंगे
रंगीन फोटो अखबारों में छपेगी
निष्ठुर दुनिया इस सफलता से जलेगी
अहंकार करने का अवसर हाथ आएगा
असाधारण होने का टुच्चा एहसास
भीतर घर कर जाएगा
अकारण ही एक दिन
आप कर्मठ और योग्य मान लिए जाओगे

फिर एक दिन ऐसा ज़रूर आएगा
आपके बैठकखाने में रखी तिपाही पर
एक सरकारी तमगा मंद-मंद मुस्काएगा।

जाति

वे एक फार्म लेकर घर आए
आते ही बोले -
''सब जगह कम्प्यूटराइज हो रहा है
हम भी अपनी जाति कम्प्यूटराइज करेंगे''
कहकर जब वे हँसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मैं बहुत डर गया
टालने के लिये पूछ लिया -
' कैसा क्या चल रहा है'?
ठहाका लगाकर हँसते हुए बोले - 'सब बंद'
फॉर्म की ओर उँगली कर उन्होंने कहा -
'अब सिर्फ समाज सेवा!'

पता नहीं उनका ये किस तरह का समाज था?
वे अंडा-बच्चा से लेकर
जर्जर हो चुके पिता को भी शामिल कर
अपनी जानकारी अद्यतन करना चाहते थे
भीतर से बुरा लगा पर मुस्कुराना पड़ा मुझे
जब उन्होंने कहा दद्दा जिस दिन बिदा होंगे
कम्प्यूटर पर एक बटन दबाएँगे हम
और पूरा समाज तुम्हारे दरवाजे पर खड़ा होगा
वे जातियों के समाज की बात कर रहे थे
जातियाँ ही जातियाँ
हर जाति का अपना एक अलग देवता

वे बहुत स्नेह रखते थे मुझ पर
बाजार में मिलने पर
मैं भी झुककर नमस्कार करता था
आज पूरा झुक गया उनके सामने और बोला-
इस सर में जितने जूते मारने हो मार लो
पर यह फार्म सामने से हटा लो
उनकी हँसी रुक नहीं रही थी
कम्पन करता पेट टीशर्ट से बाहर निकल आया था

जाने से पहले उन्होंने कहा -
फॉर्म-मोर्म को गोली मारो
पर इस इतवार की बैठक में ज़रूर आना
हमें तुम जैसे इक्के-दुक्के
असहमत लोगों की भी ज़रूरत है
फिर पीठ पर प्यार की एक धौल जमाकर
वे घर से निकल गए।

सम्पर्क - hariomrajoria@gmail.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हरि मृदुल

(महानगरीय प्रगीतात्मक जीवन-समाज के दुःख-सुख और संघर्ष का कविता में प्रगतिशील भाष्य संभव करता कवि।)

चलते हुए अचानक

ऐसा क्या हुआ कि चलते हुए अचानक
जैसे आँखों से मेरा चश्मा खिसका
और मेरे ही पाँवों से कुचल गया

लंबी सड़क
जो कल तक ऊबड़-खाबड़ थी
अब इतनी चिकनी हो गई है
कि बिना चार पहिए के चलने की
इच्छा ही नहीं होती

दिमाग चक्कर खा रहा है
सब कुछ धुँधला-धुँधला नजर आ रहा है
जो विचारधारा मैंने ओढ़ी और बिछाई
जिसके सहारे अभी तक का जीवन
बिना किसी झंझट के गुजर गया
अब उसी को बदलने की सोच
रहा हूँ
जैसे धूल भरी दरी और चीकट चादर

मेरे घर के पिछवाड़े
एक नया मॉल खुल गया है
शीशे का बना चमचमाता
पूरी तरह वातानुकूलित
वहीं से खरीदी जाएगी नई दरी और
नई चादर

ऐसा क्या हो गया है कि
जिन रास्तों पर मैं बेझिझक चलता
चला गया हूँ
अब वे बियावान की ओर जाते लगने लगे हैं
ऐसा कौन सा अन्न खाने लगा हूँ कि
मेरा मन इस कदर बदलने लगा है

जिन पर मुझे गहरा विश्वास था
उन्हीं से विश्वासघात करने की सोचने लगा हूँ

जिनकी उँगली पकड़ मैं यहाँ तक पहुँचा
उन पर ही मैं उँगली उठाने लगा हूँ

जो कुछ मैं कर रहा हूँ
पूरे होशोहवास में कर रहा हूँ
फिर भी मुझे पता नहीं है कि मैं
क्या कर रहा हूँ
और क्यों कर रहा हूँ

मेरे चश्मे का नंबर बदल चुका है
फिलहाल मैं अपनी आँखों को
हथेलियों से ढके हुए हूँ

दृश्य

दृश्य जितना अजीबोगरीब था
उतना ही हैरतअंगेज भी
आँखों में गर नमी बची हो
तो कह सकते हैं शर्मनाक भी
यूँ मुंबई में अब ऐसे दृश्य दिखने शुरू हो चुके हैं...

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जिस अनुपात में गर्मी पड़ने लगी है इस महानगर में
जाड़ा भी उसी अनुपात में होने लगा है
तो यह इसी जाड़ों की एक सुबह की बात है
दादर स्टेशन (पूर्व) में
स्वामी नारायण मंदिर की सड़क पर
जैसे कोई मजमा लगा था...

एक पागल युवती एक तगड़े कुत्ते को
अपनी बाहों में समेटे सो रही थी
युवती के तन में कपड़ों का कोई ठिकाना नहीं था
संभवतः दोनों एक दूसरे से पा रहे थे गर्मी
इसीलिए वे गाढ़ी नींद में थे

भीड़ लगी देख दो पुलिस वाले आ गए
लेकिन पुलिस वालों से भी पहले शाम के सर्वाधिक बिकने वाले
अखबार का
एक फोटोग्राफर पहुँच गया था

अब तक फोटोग्राफर अपना काम कर चुका था
पुलिस वाले अब अपना काम कर रहे थे...

आगे की बात यह कि सुबह का यह मर्मांतक दृश्य
सर्वाधिक बिकने वाले शाम के इस अखबार में
बड़ी फूहड़ता के साथ छपा था
हर जुबान पर इसकी चर्चा थी
शायद अखबार की बिक्री भी बढ़ चुकी थी...।

सपने का यथार्थ

मेरे आँसू निकल रहे थे
मैं हाथ जोड़कर कह रहा था - प्लीज सर!
साहब प्लीज...!
मैं गिड़गिड़ा रहा था
स्वर अस्पष्ट थे
कुछ वाक्य पूरी तरह समझ में आ रहे थे
कुछ जरा भी नहीं
पता नहीं क्या बोल रहा था
शायद दया की भीख माँग रहा था
रहम-रहम जैसा कुछ कह रहा था
रो रहा था

माँ बहुत परेशान थी
बीवी एक पल मुस्करा रही थी
लेकिन दूसरे ही पल उसके माथे पर बल पड़ जा रहे थे
बच्चे जरूर खुलकर हँस रहे थे
मेरी नींद थी कि
खुलती ही न थी
सपना किसी फिल्म का क्लाइमेक्स
बन गया था
लंबा खिंच रहा था

मैं एक बिल्डर के पाँवों पर
गिरा हुआ था -
'घर नहीं दे सकते हो तो
मेरे रुपए वापस कर दो
मेरी जीवनभर की कमाई
आगे भी मैं किराए पर ही रह लूँगा
जैसे आज तक रह लिया

मेरी माँ बूढ़ी है, जो बीमार रहती है
एक बेटी है, जिसकी जल्द ही शादी करनी है
एक बेटा है, जिसकी पढ़ाई अभी बहुत बाकी है
मेरे साथ चीटिंग मत करो
मुझे मेरे रुपए लौटा दो
प्लीज सर! साहब प्लीज...'

यह सब कहते हुए लगातार मेरे आँसू
बह रहे थे...
ऐसा मुझे बताया गया

कितना ही और कैसा ही लंबा सपना हो
उसका 'द एंड' होता ही है
हुआ
मैं सभी को देख रहा था घूर घूरकर
सब मुझे घूर घूरकर देख रहे थे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्या हुआ बेटा?
बताओ जी क्या हुआ?
क्या हुआ पापा?

सभी के मुँह ताकते सवाल
मैं विस्मित क्या दूँ जवाब

घर खरीदने गया था
बिल्डर ने रुपए तो ले लिए
घर देने से इंकार कर दिया
यही सब चल रहा था
मैं जबर्दस्ती मुस्करा दिया...

मेरी आँखों में अभी तक
आँसू बचे हुए थे
मैंने दोनों हाथों की ओर
तेजी से देखा कि
कहीं ये भी तो जुड़े हुए नहीं हैं!

चार साल नौकरी के बचे हैं
अभी तक अपना घर नहीं है
सोने से पहले हमने कल इसी मुद्दे पर
चर्चा की थी
- किसी भी तरह इस साल घर
ले लेना है

बीवी के चेहरे पर चिंता
साफ झलक रही है इस समय
यह चिंता अकारण नहीं
कुछ महीने पहले भी घर खरीदने की
ऐसे ही योजना बनी थी
कि उस रात सपने में किसी बिल्डर ने नहीं ठगा था
बल्कि गृह प्रवेश के दिन ही दंगाइयों ने
घर जला दिया था!

तब भी एक चीख के साथ टूटा था सपना
घर बुक कराने की कोशिश
अघोषित तौर पर टल गई थी

कहीं इस बार भी ऐसा न हो!
बीवी को है बड़ी चिंता!!

लाइट ऑफ कर दी गई है
सभी सोने चले गए हैं
मैं भी सोने का उपक्रम करने लगा हूँ
इसी बीच बीवी ने एकदम समीप आकर
लगभग फुसफुसाते हुए कहा है-
सो जाते हैं, सुबह जल्दी उठना है
बिल्डर के पास जाना है!!

जाना है ना?
यह सपना अपने लिए नहीं
बच्चों के लिए पूरा करना है

गिलहरियों की जगह

पेड़ों की जगह धीरे-धीरे बहुमंजिली इमारतों ने ले ली
तो बेचारी गिलहरियों ने भी कुछ समय तक
इन्हें ही अपना आसरा मान लिया
लेकिन जब कांक्रीट के जंगल फैलते चले गए
तो गिलहरियां इन भूलभुलैयों में भटकती हुईं
एक-एक कर जान देती गईं

अब हालात ये हैं कि परिसर में
एक भी गिलहरी नहीं दिखाई दे रही
मोटे-तगड़े चूहे जरूर निर्द्वंद्व विचर रहे हैं

कौतुक की बात यह भी है कि
जैसे पेड़ों की जगह
इमारतों ने ले ली
और गिलहरियों की जगह चूहों ने
आदमी की जगह हूबहू आदमी जैसे
दिखने वाले शख्स ने ली है

सम्पर्क - +91 89990 27424

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संजय कुंदन

(युगचेतना से आगाह प्रतिबद्ध मार्क्सवादी युवा कवि।)

हिंदी कविता का नया जनतंत्र

आज के मुक्तिबोधों, नागार्जुनों
त्रिलोचनों, गोरख पांडेयों!
तुम सबकी खैर नहीं
कविता की दुनिया इतनी बदल दी जाएगी
कि तुम संदिग्ध हो जाओगे
घुसपैठिये नज़र आओगे

वे जो हर सत्ता पर काबिज़ हैं
अब कविता पर भी राज चाहते हैं
वे तुम्हारी कविताओं के सामने
अपनी कविताओं का पहाड़ खड़ा कर देंगे
और ओझल हो जाएँगी तुम्हारी पंक्तियाँ
उनकी कविताओं के सैलाब में बह जाएँगे तुम्हारे शब्द

वे शीतल पेय, टूथपेस्ट और थर्मोकोल के
गिलासों की तरह कविताओं का उत्पादन करेंगे

वे अश्रु गैस की जगह कविता छोड़ सकते हैं
वे फॉगिंग मशीन से कविताएँ उड़ेल सकते हैं

2

नेरूदा, ब्रेख्त, पाश, नाज़िम, हिक्मत, सुकांत
और वरवर राव की चरण-धूलि सिर पर लगाने वालों!
तुम्हारी कविताएँ कोई नहीं पढ़ेगा

कविताएँ अब पढ़ने के लिए नहीं लिखी जाएँगी
वे दिखने के लिए लिखी जाएँगी
वे गाड़ियों में लाल और नीली बत्तियों की तरह
चमकने के लिए लिखी जाएँगी

कविताओं से अब बात नहीं बोलेगी
कवि बोलेगा, कवि का कद बोलेगा
जिसकी जितनी बड़ी पदवी
वह उतना बड़ा कवि

जो दिलाए पुरस्कार, जो बिकवाए किताब
वह सुकवि
जो दिलवाए नौकरी, वह महाकवि

बदल जाएगी आलोचना की भाषा
अब काव्य-तत्व नहीं कवि के प्रबंधन पर बात होगी
कहा जाएगा कि वे इतने महत्त्वपूर्ण कवि हैं
कि शहर में उनकी पाँच
पॉश कालोनियाँ हैं
वे इतने प्रासंगिक हैं कि मुख्यमंत्री उनको फोन करते हैं
अगले प्रोजेक्ट
और संग्रह की जानकारी के लिए

कर्मचारी कवि केवल अपने बॉस के काव्य संग्रह पर लिखेगा
पत्रकार कवि संपादक के काव्य संग्रह पर
और छात्र कवि अपने पीएचडी गाइड के संग्रह पर

3

कविता में विचार की क्या जरूरत
कविता तो अपने-आप में एक विचार है
-कहता है एक कवि संत की मुद्रा में
एक एनजीओ के मंच पर

वह सिर्फ आत्मा पर बात करता है
और कहता है आत्मा तो उत्तरीय है
वह गीला तौलिया है

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रतापराव कदम

(निमाड़ के वस्तुजगत से अप्रचलित बिंब और विचार के कवि।)

घर वापसी

किस मजबूरी में
एक किसान झाड़ पर चढ़ गया
जहालत की जिंदगी से बेजार
एक ने खुद को गुफा में बंद कर लिया।
घर वापसी के जोर-शोर में
नाचते झूमते गर्राते वे कहने लगे
घर वापसी ही है यह घर वापसी
आदि मानव झाड़ पर ही तो रहता था
कंदरा ही तो घर थी उसका
किसान के चेहरे की इबारत
बाँची नहीं किसी ने
कि घर क्या मुँह लेकर जाऊँगा
फसल बर्बाद हो गयी मेरी
तीन बच्चे हैं मेरे
सूदखोर नोच रहे हैं
घर जाने का उपाय बतायें?
निरूपाय वह लटक गया गमछा बाँध

यह भी घर वापसी ही है घर वापसी
देह तो किराये का मकान है।

स्थानीय

उतना स्थानीय तो होना ही चाहिए
जितना होता है एक पेड़
जड़ें जमीन में और बाहें आकाश की ओर

जितनी होती है नदी
उद्‌गम तक लौटती बार-बार
पर्वत पठार मैदान लाँघते
बढ़ती जाती जितनी लगातार

पर वैसा स्थानीय बेसबब-बेमतलब
जैसा होता है एक डाबरा
अपनी ही दुर्गंध से बेजार
ढूँढ़ तक नही पाता रास्ता

युद्ध-1

एक खल्वाट खोपड़ी
एक मिसाईल दागती है
भविष्य नष्ट करते जो
वर्तमान में गिरती और
इतिहास मे दर्ज होती है
बगैर उससे कोई सबक सीखे

युद्ध-2

युद्ध लिखी इबारत बाँचों तो
भौचक, आँखें फटी की फटी
जैसे ठीक सामने फटा हो बम
गिरी हो मिसाइल, तब्दील हुआ
एक अस्पताल, स्कूल, घर मलबे में
बचे जैसे तैसे।
'माँ की मौत बच्चे को बचा न सकें'
इस इबारत को ऐसे पढ़ा जाना चाहिए
सृजन और सृजनकर्ता
दोनों शिकार संहार के

युद्ध होता ही है
बाँझ संभावनाओं का जन्मदाता
धरती छिन्न-भिन्न करता
पेश्तर उसकी अँकुराने की क्षमता
नष्ट करता है

एक अहंकारिक खल्वाट खोपड़ी और
कर भी सकती है क्या

सम्पर्क - 8718057089

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शिरीष कुमार मौर्य

(समकालीन कविता में वस्तु से अंतर्वस्तु की तरफ़ गमन करते कवि।)

पुराकथाएँ-1

मंडुए की रोटी एक आख्यान है
जीवन का
जिसमें छोटी पहाड़ी गाय के दूध का दुर्लभ घी
और बहुत सहेजने पर भी
आत्मा की तरह पसीज गया थोड़ा गुड़
हमेशा साथ रहा आया

पहाड़ के शिशिर में
दुर्लभ हरे धनिये की पत्तियों
हरी मिर्ची
और लहसुन की चटनी तेज नमक वाली
यह अतिरिक्त
एक स्वाद इस कथा का
मानो किरदार में घुलता हुआ
बनाता हुआ
कुछ और मनुष्य

इसी कथा में
दुनिया ज़माने की रसाई थी
जिस दिल तक
उसकी
नौ साल बड़ी एक याद धुकधुकियों में बँधी
चली आती है

सीने में तारों की तरह टिमटिमाती है

सुदूर जंगल में मारे पकाए
सौल* का काला सुस्वादु माँस
किसी मनुष्य की याद में
प्रेम का
कोमल कोई प्रसंग भी हो सकता है
ऐसे ही एक असंभव यथार्थ में था
मेरा रहवास

अब
मैं एक कल्पना में रहता हूँ
चारों ओर से घिर गए
सौल की तरह भड़भड़ाती काँटे फेंकती है
मेरी याद

तीन दशक बीत गए
दुनिया के
जंगल के
दिल के
और
कथा के तीन दशक

कोई पूछता है मुझसे
क्या अब भी उतना ही स्वादिष्ट होता है
काला माँस

तीन दशकों के बाद अचानक
मुझे मेरी ही एक पुरानी आवाज़ आती है
बोलते-बोलते मैं ख़ामोश हो जाता हूँ

जितनी देर
मँडुवे की गर्म रोटी पर धरे घी की तरह
पिघल रही है दुनिया

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

उतनी भर देर वह मेरी है

उतनी भर देर देखना तुम मेरा रहना
अधिक नहीं
उतनी ही देर तुम मुझे सहना

यों ही
एक दिन यह आख्यान समूचा होगा।

* साही

पुराकथाएँ-2

मनुष्यता की दुहाई देते रहे जो लोग
क्रूर हत्यारे निकले
उनके विरुद्ध किसी ने गवाही न दी
सिवा कविता के

जो साथ थे वे कुटिलता से भरे
सदाशयता का भरम रचते रहे
जो दूर दिखते रहे सच्चे सदाशयी मित्र थे
पुकारते न थे पर पुकारने पर देख लेते थे

जिसने प्रेम का सबसे अधिक रोना रोया
उसने प्रेम को कभी नहीं जाना
उसके सताए धोखे में डाले हुए लोग मिलते हैं
चेहरे पर कथित प्रेम की काली छाया लिए

जाना
कि प्रतिहिंसाओं से बना है संसार
उसमें कवि इच्छाओं की तरह अधूरे रह जाते हैं
टूट जाते हैं सपनों की तरह

मैं उसी अधूरेपन की एक पुराकथा हूँ
और
टूट जाने का सबसे नया उदाहरण

पहाड़ी भालू की तरह

अज्ञात उड्यारों* के अंधेरों में रहते हुए
मैंने भी कभी
हिंसालू** की कंटीली झाड़ियों में फँसे
जीवन के
एक कोमल प्रकाश के बारे में सोचा था

मोटे काले कम्बल की त्वचा से ढँकी
मेरी देह
जाने कितने जाड़े निकाल चुकी

आज भी कितनी ही बार मेरी चीख़
चीड़ के
सूँसाट-भुभाट को भेदती मेरे गाँव तक
पहुँचती हैं

कितनी ही बार डर जाता है मेरा गाँव
मेरे बिना

अस्सी बरस की मेरी बीमार ताई
आज भी पीड़ा और नींद में मेरा ही
नाम पुकारती है

और
बहुत गाढ़े एक अँधेरे की तरफ़
बढ़ जाता है मेरा हाथ

* गुफाओं
** पहाड़ी झरबेरी
(अरविंद भैयाजी और अरुणा भाभी के लिए, जो मेरे लिए प्रकाश जैसे हैं।)

पुराकथाएँ-3

तेंदुए के मारे बैल के शव पर
बिलखती थी एक स्त्री
जिसने निज बालक की तरह पाला था उसे

इसी दृश्य में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक बूढ़ा चुपचाप देखता था
जैसे देखता हो
किसी अदृश्य को

ठीक उसी जगह
उतरते थे विशाल डैने फैलाए गिद्ध

रातों में दबे पाँव
उधर ही बढ़ते छींछड़ों के लुटेरे सियार

और
उसी पिंजर में मुँह घुसाए दिख जाते
गाँव के प्रिय कुत्ते भी
कभी-कभार
भूख और भय के बारे में हमारा

हर भरम तोड़ते हुए
मरखना हुआ जाता था जोड़ी का
बचा हुआ बैल

यह दृश्य पहले अनुभव बना
फिर उस अनुभव की स्मृति

आज रहता है बहुत बड़े एक रूपक की तरह
मैं अपनी नहीं पूरे देश की
एक कथा में बार-बार कहता हूँ उसे

क्या करूँ
कि मेरी कुल नागरिकता जोड़ी का बचा हुआ
बैल है इन दिनों।

सम्पर्क - shirish.mourya@gmail.com

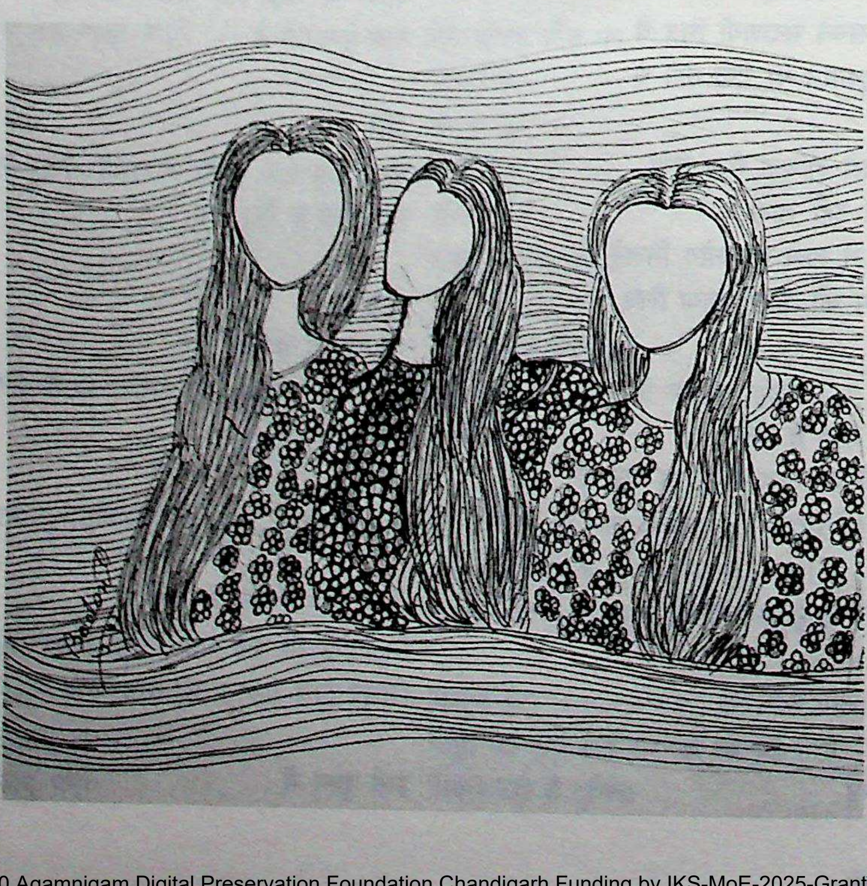

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रेमचंद गांधी

(तलछट के जीवन -समाज को प्रगतिशील दृष्टि से कविता में अभिव्यक्त करते कवि।)

साथ का सुख

दरख़्तों को चाहिए धरती का साथ
धरती को आकाश, सूरज, चाँद, तारों का साथ
परिंदों को ही क्या
प्रत्येक प्राणी को ज़रूरत है
प्रकृति के साहचर्य की

यह साथ का सुख है
जिससे सारा जगत चलायमान है
इसी जगत में हम हैं
अनंत में गेंद-सी लटकी पृथ्वी पर
रहें कहीं भी पर साथ हैं
अंनत के रहस्यों की तरह
बचाए हुए अपना प्रेम

हमारे आलिंगन से घूमती है पृथ्वी
चुंबनों से बदलती हैं ऋतुएँ
चलता है काल का पहिया

साहचर्य की सुख-सेज पर लेटे
रच रहे हैं युगों से
साथ के सुख का
एक विराट आनंद उत्सव

बुतों का डर

वे उन बुतों से डरते हैं
जिन्हें अवतार बताया जाता है
उनका डर बना रहता है आठों पहर
न जाने बुत कब श्राप दे दे
उनकी पूजा के सारे कर्मकाण्ड
बुतों को ख़ुश रखने के हैं

वे उन मूर्तियों से भी डरते हैं
जिन्होंने जन्म लिया धरती पर
और जिनकी पूजा वे नहीं करते
ऐसी मूर्तियों से घृणा है उन्हें
जो पूजनीय नहीं
पता नहीं क्यों कुछ लोग
बनाते/बनवाते हैं ऐसी मूर्तियाँ
जिन पर नहीं चढ़ता प्रसाद
नहीं होता भण्डारा

ऐसी मूर्तियों से जब
बढ़ती ही जाती है उनकी घृणा
डर के मारे वे
तोड़ डालते हैं उन्हें

अज्ञात लिपियाँ

मनुष्यों के साथ ही
मरती जाती हैं
भाषाएँ और लिपियाँ
बस बची रह जाती है
अभिव्यक्ति और संवाद की
अंतहीन छटपटाहट

जिन लिपियों को हम
देखते हैं अचरज से
उनमें हमारे पुरखों की वाणी है
हमें प्यार से दुलारती पुकारती

प्रजा ही कुछ करे

सब जानते हैं
जब रोम जल रहा था
नीरो क्या कर रहा था
लेकिन
रोम की प्रजा क्या कर रही थी

मुल्क के मुल्क जलते रहते हैं
शहंशाह अपनी वंशी बजाते रहते हैं
प्रजा त्राहि-त्राहि करती रहती है
यही होता आया है
यही होता रहता है

प्रजा ही कुछ करे तो
रोम नहीं दोहराया जाए

सम्पर्क - +91 98291 90626

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रेम रंजन अनिमेष

(समकालीन कविता में सामाजिकता का गान करते कवि।)

शृंखला जीवन की

हाथ मिलाने का
यह समय चाहे नहीं
मगर हाथ बढ़ाने का
जरूर

दूर से ही सही
पर भरसक
उनकी ओर

जो कहीं न कहीं
जुड़े हमसे

बँधे खिंचे नहीं
हाथ अपने कहीं
बल्कि खुलें बढ़ें
और पहुँचें
पूरे भाव से
इस मुश्किल वक्त
उन तक जो सहयात्री
इस जीवन यात्रा में

करें
भरसक
जिसके लिए
जितना जुरे

कि बचेगी अगर
तो इस अपनेपन
और आपसदारी से ही
महान मनुष्यता

भौतिक सामाजिक दूरी से परे
सौहार्द और समरसता से

चिरंतन सनातन समावेशी
यह सभ्यता अपनी

हाथ मिलें न मिलें
जुड़ तो सकते हैं
इस तरह से
इस दौर में

और यही अभी
सबसे बड़ा
वंदन अभिनन्दन

पाँव ठिठके हुए
हाथ तब भी
जा सकते आगे
हर आस की
करते अगवानी
अगोरते इनसानियत ही नहीं
हर सप्राणता को हर कहीं

और डर
और खौफ के खिलाफ
करते खड़ी
शृंखला जीवन की...

उत्तर जीवन

क्या वही बचेंगे
इस दुनिया में
जो सबसे ताकतवर
तेज चतुर चालाक?

या वे
जो सबसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सीधे सादे
सहज उदार?

क्या वही रहेंगे
इस निसर्ग में

तीखे धारदार जिनके नाखून
पंजे पैने
दाँत नुकीले
जो जितने हिंसक
क्रूर उतने ही

या वे
हृदय खुले जिनके
हाथ बढ़े
और होंठों पर
निश्छल मुसकान?

क्या वही
रहेंगे बाकी
इस जहान में
जिनकी खाल मोटी
जबड़े बड़े
और हवस भी

या वे
जो सोचते
समझते
महसूस कर सकते
पास जिनके
भावनायें संवेदनायें?

क्या मशीनी इस जमाने में
वही टिकेंगे
जो सर्वाधिक
जटिल परिष्कृत उन्नत
भौतिक यांत्रिक भावशून्य
जो यंत्रों उपकरणों को भी
छोड़ कर पीछे
निकल जायेंगे आगे
उनसे भी होकर बेहतर
स्वयं यंत्रमानव जैसे

या कि वे
बावजूद इन सबके
जीवन की
संजीवनी भीतर सँजोये
जो जीवद्रव से तरल
जीवद्रव्य से जुझारू
और एक कोशिका से भी सरल?

क्या वही
वारिस होंगे
इस धरती के
पास जिनके
आसन पद
सत्ता प्रभुता

या जिनके पास
कुछ नहीं
रंगों ख़ुशबुओं
और तान के सिवा?

क्या वही बचेंगे
जिनसे नहीं बचा कोई
उन्हीं के हाथों होगी
बागडोर इस धरती की
खतरा जिनसे सबको

अथवा वे
जो मिट्टी में
बीज बन रहे दबते
कोंपल बन उगते
जिनके हिस्से
बस हवा में सूखते
पसीने सा सुख
फाकामस्ती
और पीर फकीरों की दुआयें?

क्या उन्हें ही
चुनेगी
जिंदगी
अपने को
आगे बढ़ाने के लिए
जिनके कोश में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हैसियत दौलत
अस्त्र शस्त्र
बारूद गारद
कवच बख्तरबंद

या उन्हें
जिनमें रातों की ओस
और आसरा दिन का?

महाप्रलय में
क्या वही बचेंगे
डूबने से
जिनकी आँखें सूखी
या वे
जो भीतर तक भरे?

महामारी के उस पार
क्या होंगे वही आखिरकार
उत्तराधिकारी पृथ्वी के

जिन्होंने कभी
अपने सिवा किसी को देखा नहीं
न अपने अलावा
भला सोचा किसी का
कभी किया नहीं कुछ
किसी के लिए
बदी बुराई छोड़

या कि वे
जो सदा जिये औरों के लिए
क्योंकि और था ही नहीं कोई
नजर में उनकी अपने ही सारे
रखा हर एक को खुद से पहले
क्योंकि लगा ही नहीं कभी कोई दूसरा

कब तक रहेगी
अनिर्णीत प्रकृति
कब तक अधर में झूलता
अभिमत उसका?

फैसला जब आयेगा
किधर जायेगा
उधर जिधर हवाओं में जहर भरने वाले
मजबूर कर मजबूरियों का कारोबार करने वाले
या कि उस ओर
बचपन की किलक सा
मन जहाँ
साफ इतना
कि और सप्राण हो जाये
प्राणवायु

कोई छोटी सी चाकरी भी
खोजती तैयारी बड़ी
लेती साक्षात्कार कठिन

मगर क्या अंततः होंगे सफल
इस दुनिया में वही
नकारात्मक कुल अंक जिनके
हर परख में
कुछ भी नहीं पास
अंतरात्मा की
मुट्ठी खोल कर दिखलाने के लिए

न कुछ कहने भर को ही
जब प्रश्न अंतिम आयेगा
कहो तुम्हें क्यों रहने
दिया जाये यहाँ
किसी के लिए तुमने कब कहाँ
और किया ही क्या
होने से तुम्हारे किसी को भला
क्या फायदा ?

चुनाव का समय आ गया
तो किसे चुनेगी कायनात
जो विजेता
या सृजेता?

और क्या
वह समय आ नहीं गया...?

सम्पर्क - 9930453711 / 9967285190

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राम कुमार तिवारी

(इधर की कविता में अपने जुदा लहजे से वस्तु संसार को रूपांकित करने वाले कवि।)

एक-एक कर
गिर रहे हैं तल
न होने के तल पर

कहाँ है जल

दरकी सतह की पुकार
स्याह ऊपर टँगी है

भीतर कहीं अचेत है प्यास
उड़े पक्षी नहीं लौटे
टूट-टूट कर गिर रहे हैं स्वर

एक ही दिशा से
रोज-रोज उगे सूरज का अँधेरा
दूर-दूर तक फैला है
देखा

जो भी आया
अटकता गया

बहुत भटकने से थक कर
चट्टान पर रख कर सिर लेट गया
दूर कहीं
बरसता रहा पानी
पास कहीं बहती रही धार

जन्मान्तरों पर खोली आँख
तो देखा
धारा में सिर के बराबर
चट्टान बह रही थी
चट्टान में सिर के बराबर
धारा ठहरी थी
बचने में ही

अब नहीं फड़फड़ाते प्राण
चिड़िया ने जाल पर चलना सीख लिया है

बचने में ही खत्म हुई
प्राणों की एक प्रजाति

बहेलिया के रूप अनेक
चिड़िया का सिर्फ एक

दूर-दूर तक
कोई नहीं दिखता
उम्र-उम्र भर
कुछ नहीं छूता
निर्दोष

वे मनुष्य नहीं
मात्र घटना होते हैं

देह से खून बहने की
सूख जाने की

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खबर बनने से पहले ही
भूल जाने की

उनका जीवन
जीवन नहीं होता
न मृत्यु
मृत्यु!

फिर उन्हें मारने वाला
हत्यारा कैसे हो सकता है!
माया को जीवन देते हैं

अदृश्य हाथ
चादर खींचता

उजागर हो जाती
अंतर्वस्तु

विस्मृति के सहारे

माया को जीवन देते
वही जीवन जिसका अभिनय करते हैं
न होने के बाद भी

सबको पता है
पटकथा
संवाद
रंगमंच की साज-सज्जा
अभिनेता के
स्वर और मुद्राएँ

होने के लिए
खेला हुआ खेल
बार-बार खेलते हैं

देखा हुआ खेल
बार-बार देखते हैं

सम्पर्क - 94246 75868

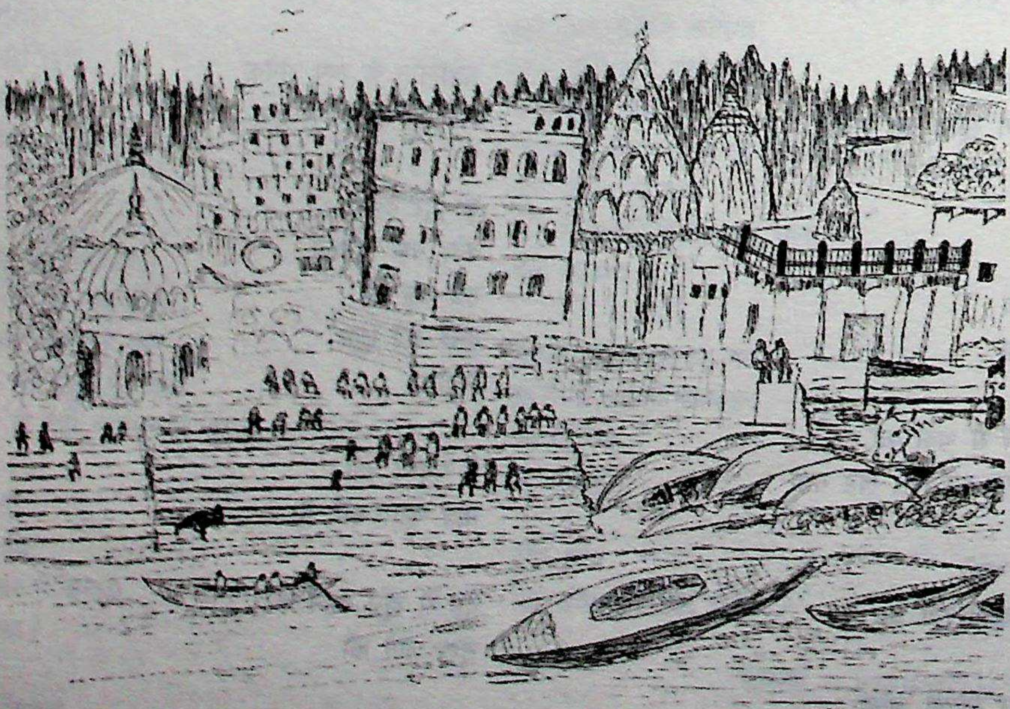

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अरुण देव

(कविता में नयी विषय वस्तु को गहरी दृष्टि और अलग भाषा में आयत्त करते कवि।)

मृत्यु शृंखला से

1)

उड़ गए रंग
कटाव ढीले पड़ गए हैं

समय की नदी ने देह के तट को भुरभुरा कर दिया है
लहरें टकराती हैं

किनारे इत्मीनान से बैठी है मृत्यु
उठती गिरती लहरों को देख रही है।

2)
अग्नि उसे खा जाएगी
पी जाएगी नदी
मिट्टी उसे मिट्टी में मिला देगी

लौट जाएँगे लोग घरों को
उसके नाम का दीया भी बुझ जाएगा

उसकी छोड़ी हुई जगह पर
बिछी होगी धूप।

3)
मृत्यु से पहले
मृत्यु के डर से
मर जाते हैं लोग
मृत्यु मरे हुए लोगों के पास नहीं जाती।

4)
त्वचा ढीली पड़ गई
देह के रसायन सूख गए
स्पर्श ने कहा नहीं पहचानता

ज्योति धुँधली हुई
वृत्त के केंद्र तक नहीं पहुँचती अब रौशनी
आवाज़ में टूटी हुई ध्वनियाँ हैं

तज दिया सबने
किया वरण मृत्यु ने

मृत्यु के सम्मान में
मौन सर्वोत्तम कर्मकांड है।

5)
जब मृत्यु की भी मृत्यु हो जाएगी
जीवन क्या करेगा?

अंतहीन थकान की पीठ लिए
ज़िन्दगी कहाँ जाएगी।

6)
मृत्यु के बाद
अहम् की राख बचती है
घृणा की जली हुई टहनियाँ

शत्रुता को बहा ले जाती हैं नदियाँ
प्रभुता मिट्टी में गल जाती है

स्मृति को ढँक लेते हैं प्रेम के पुष्प।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

7)
मृत्यु पीछे से वार नहीं करती
न हत्या
न आत्महत्या
न प्रतिघात

देह को पकने देती है
पत्ते अंत-अंत तक जुड़े रहते हैं टहनी से
दूब घिस-घिस कर बची रहती है

थक जाती हैं कोशिकाएँ
धीमी पड़ने लगती है रक्त की रफ़्तार
व्यर्थ हो जाते हैं शब्द
दृश्य एक दूसरे में घुल-मिल जाते हैं

कोई और नहीं
देह लिखती है अपनी उम्र।

8)
मन यंत्रणा के अंधे कुएँ में डूबता उतराता है

अपकर्मों के पन्ने एक-एक कर खुलते हैं
कोई बाँचता है उन्हें जोर-जोर से
छल का उष्ण जल छलकता है

किसी मोड़ पर गुम हो गई कायरता की पीठ
नग्न लौटती है
घात का रक्त हथेलियों से फूटता है

देह बिलखती है मृत्यु के लिए।

9)
जब मृत्यु पर वश नहीं चला
फ़िरऔनों ने डरकर देह की अनश्वरता खोजी

सिकन्दर के पीछे-पीछे चल रही थी मृत्यु
उसकी महानताओं को मिस्मार करती हुई

जो अजेय थे कभी
उनके शिलापट्ट तक कुतर गए दीमक

जिन्हें अमर होने का भ्रम है
वे ढक जाएँगे नश्वरता की राख में

मृत्यु अंतिम अनुशासक है।

10)
मैं टूटा हुआ आदमी हूँ
कभी भी बिखर सकता हूँ

हे मृत्यु!
मुझे थाम लो।

सम्पर्क - 9412656938

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अजेय

(अपने लोक से आधुनिक संदर्भों को नयी अर्थवत्ता में आकार देते आज के उल्लेखनीय कवि।)

जानना

जानना
चीज़ों को वैसा देख पाना था
जैसी वे नहीं दिखती थीं
जानना
चीज़ों को बदलते हुए देखना था शायद

जानना
दरअसल कूदना था
आग में

जानने ने वह सब जला दिया
जो आज तक जाना था

जानने के बाद पता चला
कि नहीं जानता था

ऊब

कभी कुछ बिखरा हुआ भी रहने दिया जाए
जीवन को
मसलन
चप्पलों में से एक को छोड़ दिया जाए
अबँधा
या साबुन के टुकड़े को
बाथरूम के फर्श पर पड़ा हुआ
और नल को
टपकता हुआ
दिन भर...

क्या है कि
अनुशासन से
हम जल्दी ही ऊब जाते हैं।

जंगल की तरह

लोकतंत्र इसलिए तो नहीं सूझा सोचा होगा हमारे पुरखों को
कि आदमी कछुआ हो जाए

यह आदमी के बचने, कतराने की तरक़ीब नहीं थी
यह उस के तपने, पकने का
खुली हवा में साँस लेने का ख्वाब था
यह उसकी दुनिया को खूबसूरत बनाने की
एक खूबसूरत नीयत थी
जिसे हम बहुत देर तक याद नहीं रख पाए
जिसमें हम ने आनन फानन
अपने छिपने की सुविधाजनक जगहें बना दीं

हमें सामना करना था जबकि हम पीछे हट गए
हमें जूझना था जबकि हम दुबक गए
हम कुकुरमुत्ते हो गए इस दिव्य छतरी के नीचे
लिजलिजे
फुसफुसे
शर्म से झुके हुए
आओ, एक बार हम इस मिट्टी में समा जाएँ
एक बार फिर से जन्म लें
इस लोकतंत्र में जंगल की तरह उगें
और खूब तन कर जिएँ!

आखिरी कविता

जिस दिन मैंने लिखा
'प्रेम'
लोग मुझे घेर कर खड़े हो गए
मैं खतरनाक आदमी बन गया था

सम्पर्क - ajeyklg@gmail.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राहुल राजेश

(युवा काव्य परिदृश्य में सामाजिक -राजनैतिक चेतना को विस्तार देते कवि।)

अफगानिस्तान

दुनिया ने कभी सपने में भी
नहीं सोचा होगा कि एक दिन
आतंकियों का भी एक देश होगा!

उनकी पहचान होगी!

उनका अपना शरिया कानून होगा!
शरिया के समर्थकों में दबा-छिपा नहीं,
खुल्लमखुल्ला जश्न होगा!

लाखों नागरिकों के साथ
लोकतंत्र के पहरुए भी
हवाई जहाजों में दुबक कर
अपने वतन से भाग खड़े होंगे

और बीच रास्ते
लोकतंत्र हवाई जहाज से
गिरकर अपनी जान गँवा देगा!

जैसा कि हर मुआमले में होता आया है
पीछे छूट गए औरतों-बच्चों पर
जुल्मो-सितम का कहर टूट पड़ेगा

बीच सड़क औरतें बेची जाएँगी
खरीदी जाएँगी और फिर बेची जाएँगी
और फिर एक औरत होने के गुनाह में ही
बीच चौराहे कत्ल कर दी जाएँगी!

बंदूक ही उसूल होगी
बंदूक ही इबादत होगी
बच्चों को भी बस
बंदूक से ही खेलने की
इजाजत होगी!

यह सन् दो हजार इक्कीस का साल होगा
पर हजारों साल पुराना बर्बर युग होगा!

सीरिया और इराक भी
इनके सामने बौने साबित होंगे
सैन्य तानाशाहों की भी इनके आगे
टिकने की औकात न बचेगी!

पाक और चीन जैसे पड़ोसी मुल्क
मदद के नाम पर जहर बोएँगे

और दुनिया के सबसे ताकतवर देश की
नपुंसकता देखते बनेगी!

औरतें ही आखिरी उम्मीद बचेंगी
और अपनी आजादी के लिए वे ही
आखिरी उम्मीद तक लड़ेंगी!

पर कब तक? कब तक?

बामियान के बुद्ध वाला यह धवल देश
धरती पर कभी मोती-सा चमकता था

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अब दुनिया के नक्शे पर
इक दाग बनकर रह जाएगा!
अपने नाम को भी तरस जाएगा!

क्या पता आने वाले दिनों में
यह देश इन्हीं आतंकियों के नाम से
जाना जाएगा...

रंग

रंग जितना राजनीतिक अब कोई नहीं

पहले रंगों का जिक्र आते ही
रंग-बिरंगी तितलियाँ तैरने लगती थीं आँखों में
पहाड़ों की हरी-भरी वादियाँ याद आ जाती थीं
समुंदर का नीला पानी तैर जाता था पलकों पर
याद आ जाती थीं नीली-नीली आँखें

अब लाल रंग का जिक्र आते ही
सुर्ख लाल गुलाब नहीं कौंधता
न ही याद आता डाल पर
इतराता वह कैपिटलिस्ट

लाल कहते ही कानों में अब
सीधे गूँजता है लाल सलाम
जिसे पूरे जोशो-खरोश में
कहते हैं कम्युनिस्ट

अब लाल का मतलब है
हिंदुस्तान के नक्शे पर पसरा हुआ लाल रंग
बस्तर से गढ़चिरौली तक

अब लाल सुनते ही
चौकन्नी हो जाती हैं सरकारें
कि उनके लिए लाल का सीधा मतलब है
उनके खिलाफ़ तनी हुईं मुट्ठियाँ
तनी हुई बंदूकें

खाकी की क्या कहिए
खाकी सुनते ही वर्दी से पहले
याद आ जाता है निक्कर
केसरिया भी अब शौर्य का प्रतीक कहाँ रहा
और न ही हरा श्रम-अर्जित समृद्धि का

दोनों ने ही
अपना-अपना मजहब चुन लिया है!

सच तो ये है कि
उसी दिन फिर अपने रंग में आ गई थी
रंगों की राजनीति
जिस दिन धूमिल ने पूछ लिया था तमककर
क्या आजादी तीन थके हुए रंगों का नाम है?

भला कब किसी ने सुनी है
किसी कवि की बात!

सबने चुन लिया अपना-अपना रंग
और भर दिए उसमें अपने-अपने रंग!

शांति और सौहार्द का प्रतीक बनकर
अपने दोनों हाथों से थामे हुए था जो
केसरिया और हरा दोनों
वह सफेद भी सफेद कहाँ बचा अब?

हिंदु-मुस्लिम-सिक्ख-इसाई की जगह
गर लिख दूँ मैं केसरिया-हरा-सफेद तो
गलत नहीं होऊँगा मैं!

अब तो नीला भी नीला नहीं रहा
वह भी तिरंगे से कूदकर बाहर आ गया है
और लहरा रहा है हर तरफ
धारण करके धम्म चक्र

भगवा की तो कुछ कहिए ही मत!

जिस दिन ऐंवी पहन ली किसी ने
केसरिए रंग की कमीज

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कौतूहल से पूछ बैठते हैं लोग-
भगवा कब से हो गए!
रंगों के राजनैतिक निहितार्थ
ध्वजों से उतरकर कमीज तक उतर आएँगे
भला किसने सोचा था!

वह दिन रंगों के इतिहास में यकीनन
सबसे काला दिन रहा होगा जिस दिन
पहली बार कहा गया भगवा आंतकवाद

सोचकर सिहर जाता हूँ कि उस क्षण
कितनी ग्लानि से भर गया होगा गेरूआ रंग

कितने कागज रंग दिए गए तब से
भगवा आतंकवाद की भर्त्सना में

खुशकिस्मत है हरा कि
हरा आतंकवाद नहीं कहा किसी ने अब तक
वरना हरे की कितनी हिकारत होती

शिक्षा के सर्वोच्च प्रांगण में जब लिखा गया होगा-
अब भगवा जलेगा!
कितना मर्माहत हुआ होगा उस संन्यासी का मन
जिसने इसी भगवे को धारण कर सतेज
संपूर्ण विश्व को दिया था वह ऐतिहासिक संदेश

कितने कुत्सित रहे होंगे उन युवाओं के विचार
जिन्होंने किया यह कुकृत्य
ठीक उसी संन्यासी की प्रतिकृति के सम्मुख
जिसके जन्मदिन पर मनाया जाता है
राष्ट्रीय युवा दिवस!

बसंती रंग की तो रंगत ही उड़ गई है
जब से देशभक्ति को गाली की तरह
किया जाने लगा है इस्तेमाल

अब भला कौन युवा उमग कर कहता है-
रंग दे मेरा बसंती चोला?

रंगों की राजनीति में
नारंगी रंग ने लिया है अभी-अभी प्रवेश :
इसे अब महज एक रसदार फल न समझिए
पृथ्वी की तरह चपटी!
जैसे कांग्रेसी मतदाता है
बसपाई मतदाता है
वैसे ही अब नारंगी मतदाता है
कि नारंगी मतदाताओं ने
पूरा उलट-पुलट दिया है देश

रंगों की बात छोड़िए
जो बेरंग है, रंगहीन है, वह भी कहाँ बचा?
कहने को तो पानी का कोई रंग नहीं होता
पर हिंदू पानी-मुस्लिम पानी तो होता है!

शुक्र है, अभी खून का रंग एक है!

लेकिन क्या पता किसी दिन कोई कह दे-
हर मंगल को सिंदूरी रंग में लिखा जाए
कि हरे रंग में लिखी है
कलेंडर में हर जुम्मे की तारीख़!

भारत-दुर्दशा

जिस देश के
संविधान में ही लिखा हो
'इंडिया दैट इज भारत'

उस देश में
अपनी भाषा की यह दुर्दशा
तो होनी ही थी कि

किसी भी दुविधा या
विवाद की स्थिति में
अंग्रेज़ी ही मान्य होगी
हिंदी नहीं

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अंग्रेज़ी न जानना
राष्ट्रीय शर्म माना जाएगा
हिंदी न जानना
अंतरराष्ट्रीय गौरव
भले ही पीड़िता को
अंग्रेज़ी न आती हो
जिरह अंग्रेज़ी में ही होगी
न्याय अंग्रेज़ी में ही मिलेगा

संसद में गरीबी पर
बहस अंग्रेज़ी में ही होगी
और मातृभाषा पर बहस भी
अंग्रेज़ी में ही होगी

रोटी के लिए आवेदन
अंग्रेज़ी में ही करना होगा
अपनी काबिलियत भी
अंग्रेज़ी में ही दिखानी होगी

अंग्रेज़ी न बोल पाना
नपुंसकता की निशानी होगी

मर्दानगी बढ़ाने का ठेका
अंग्रेज़ी के पास ही है
हिंदी का टेंडर कभी
पास हुआ ही नहीं

अंग्रेज़ी में दी गई गाली
गाली नहीं मानी जाएगी
बल्कि वह शुचिता के
दायरे में आएगी
अश्लीलता का बोझ
सिर्फ़ हिंदी ढोएगी

वैसे भी अंग्रेज़ी को
महारानी और हिंदी को
मेहतरानी का दर्जा तो
आपने दे ही रखा है

क्यों ठीक कहा न
रघुवीर बाबू??

तख्तापलट

वॉशबेसिन में
साबुन की टिकिए की जगह
लिक्विड हैंडवाश ने कब ले ली
पता ही नहीं चला

किफायती हो न हो
सुविधाजनक बहुत है
और बच्चों को तो खूब पसंद है

सत्तर साल के बूढ़े पिता ने भी कहा
यही ठीक है

अब लाख चाहे
साबुन की टिकिया
अपनी जगह कभी नहीं ले पाएगी।

सम्पर्क - 09429608159

विश्वरंग संवाद
अंक सहयोग राशि - 200/-
चार अंक - 750/-
ईमेल - vishwarangpatra@gmail.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गणेश गनी

(समकालीन कविता में लोक समाज को चित्रित करने वाले उल्लेखनीय कवि)

कुँए की गवाही मेंढक देगा

न जाने कितनी ही औरतों ने यह सुना-
जाके किसी कुँए में डूबकर मर जा
और फिर
न जाने कितनी डूबीं और
कितनी सम्भलीं

पर जो सम्भलीं
वो भी कभी नहीं बच पायीं
बस इतना भर अंतर रहा कि
हर रोज़ डूबने का विचार स्थगित होता रहा
हर रोज़ मृत्यु दहलीज़ से लौटती रही

एक बात तय है
कि जिस दिन
कुँए की गवाही मेंढक देगा
उस दिन गुनहगारों की सज़ा मुकर्रर होगी।

लेखा-जोखा

(एक)
बहुत साल
इसी भ्रम में कट जाते हैं कि
कोई तो है जो हमें बहुत चाहता है
और हम उसी के लिए जी रहे हैं

इन बीते सालों में बहुत दिन तो
चुप्पी में ही बीत जाते हैं
और
पता ही नहीं चलता प्रेम में
कि वास्तव में प्रेम है भी
या कि नहीं है।

(दो)
कुछ दिन
बीत जाते हैं समझने
और समझाने में एक दूसरे को
कि जो कुछ समझ रहे हैं
वैसा कुछ नहीं है
दरअसल जो कुछ है
उसे ठीक से समझा ही नहीं गया

फिर एक दिन टूटता है भ्रम
और कुछ साल
सच्चाई को पचाने में खप जाते हैं

बाकी के बचे दिन
घाटे-बाधे का लेखा-जोखा
समझने में ही निकल जाते हैं।

बाद के दिन
एक आशंका में बीतने लगते हैं
हर नया दिन
घात लगाए बैठे एक जानवर-सा लगता है।

(तीन)
किसी एक दिन
वह दिन भी आ ही जाता है
जब बहीखाते खुल जाते हैं
कुल जमा खर्च के
जोड़-घटाव में
बेशक नफ़अ नुकसान न भी निकले
तो भी विश्वास में घाटा और सन्देह में बाधा
निकल ही आता है कहीं न कहीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक शब्द है ग़लतफ़हमी
जिसके माथे सारा दोष
मढ़ दिया जाता है

और एक पंचनामा टँगा रहता है
कील पर पुरानी पर्चियों के बीच
दफ़न हुए सम्बन्ध का
जिस पर कोई हस्ताक्षर नहीं होते।

समय हो चुका होगा तब

मेरे जाने के बाद
भले ही कोई शोक मनाए या खुशियाँ
पर तुम रो लेना बिलख-बिलख कर एक बार
इस तरह से कि
तुम्हारी रुलाई को हवा ले जाएगी
उन पेड़ों तक जो मुझे प्रेम करते हैं
तुम्हारे आँसू जिस जगह गिरेंगे
उस मिट्टी का मुझसे गहरा नाता रहा है
तुम्हारी सिसकियाँ चिड़ियों को दे देगी
मेरे जाने की ख़बर
कि फिर वे मुंडेर पर दाना चुगने
कभी लौटकर नहीं आएँगी

मैं वो सारी कविताएँ चाहता हूँ लौटाना
तो नम आँखों से अंतिम बार
चनाब को सुना आना
उसी पत्थर पर बैठकर
जो मैंने तुम्हें सुनायी थीं समय-समय पर
और जब कोई एक लहर
तुम्हें बहुत करीब से छूकर लौटे
तो यह लौटायी गयी कविताओं की रसीद होगी

कुछ कविताएँ लिखना अभी बाकी है
कि समय जब-जब शिलाओं पर लिखकर आदेश देगा
तो एक कविता अहसानों से दबी उनके लिए होगी
जिन्होंने मेरी कविताओं के कारण मुझे बेहद प्रेम किया
दूसरी आत्मग्लानि में माथा झुकाए उनके लिए
जिन्होंने मेरी अनचाही और अनचीन्ही गलतियों के लिए
बहुत नफ़रत की मुझसे
तीसरी दुःखभरी कविता अपने लिए होगी
जो कभी लिख ही नहीं पाऊँगा
कि समय हो चुका होगा तब।

दो पलों के बीच प्रकाश वर्ष

बहुत - बहुत दिनों बाद
मिलने पर भी वह रोती है
बहुत-बहुत दिनों के लिए
विदा करती बार तो वह रोती ही है

माँ धरती के उस बिंदु तक
विदा करने आती है
सबसे अधिक समय लगता है पीठ को
ओझल होने में जहाँ से
और देर तक आँख भर
देखना होता है आसान वहाँ से

इन्हीं मिलन और विदाई के
दो पलों के बीच
उसकी प्रतीक्षा
प्रकाश वर्ष जितनी लम्बी होती है
न जाने ऐसे कितने-कितने प्रकाश वर्ष
वह अपनी आँखों के भीतर रखती है!

न सवाल उठाया, न ज़लील किया

एक स्त्री ने
कितनी यंत्रणाएँ झेली और
कितनी कुर्बानियाँ दी हैं !
जब-जब उसकी कोख़ से
नहीं जन्मा एक पुत्र।

एक पुरुष ने
कितनी दफ़े माँगी माफ़ी ?
जब-जब उसे ज्ञात हुआ कि
यह दोष तो उसका था
जिसे स्त्री के माथे मढ़ दिया गया।

एक स्त्री ने
अब भी सवाल नहीं उठाया
और
ना ही ज़लील किया पुरुष को
यह सब जानने के बाद भी
कि तुम नहीं थे कभी भी
पुत्रवती भवः का आशीर्वाद देने योग्य।

सम्पर्क - gurukulngo@gmail.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आलेख

कविता की समकालीनता पर एक बहस

अच्युतानंद मिश्र

(समकालीन युवा आलोचना की भाषा, शैली और अभिव्यक्ति को नया आयाम और गहराई देने वाले आलोचक कवि।)

1

कविता में वर्तमान और वर्तमान की कविता- इस वाक्य में एक तनाव है। बहुत सरल भाषा में कहने की कोशिश करें तो कविता और वर्तमान दोनों की स्वायत्त सत्ता है -- इससे इंकार नहीं किया जा सकता, लेकिन दोनों के दायरे मिलते भी हैं और इसी अलगाव और घुसपैठ से एक तनाव उत्पन्न होता है। जो न सिर्फ कविता की भाषा, उसकी निर्मिती और उसके विषय से सम्बद्ध है- अपितु काव्यात्मक दृष्टि से भी जुड़ी हुई है।

दूसरी तरफ वर्तमान अपने आप में एक जटिल विषय है। वर्तमान किसे कहेंगे ? इस गुजर रहे क्षण को, आज के दिन को, वर्ष को या युग को ? एक तरह से देखें तो वर्तमान एक वायवीय शब्द है और इसलिए जब हम उसे कविता से जोड़ते हैं, तो एक संदर्भ तो मिलता है, लेकिन विमर्श या विचार करने की दिशा बदल जाती है।

कहना न होगा कि कविता और वर्तमान के तनाव पर कोई भी बातचीत या चर्चा में कविता के वर्चस्व से इंकार नहीं किया जा सकता। इसलिए यहाँ इस चर्चा को इस रूप में रखा जा सकता है कि हम वर्तमान की कविता पर बात कर रहे हैं। लेकिन वर्तमान को देखने, चुनने और व्याख्यायित करने की हमारी कसौटी या विवेक कविता की शर्त पर निर्भर करती है। और जब हम कविता की शर्त कहते हैं, तो हमारे जेहन में किसी देश, किसी भाषा, किसी समाज आदि-आदि रूपों में कविता के दायरे मूर्त होते हैं। कविता अमूर्तन का सहारा इसलिए लेती है, ताकि वह बड़े दायरे को मूर्त कर सके और मूर्तन की सीमाओं के पार देख सके।

इस संदर्भ में अगर हम हिंदी की एक सदी की कविता को देखें, तो उसमें जो बदलाव हुए हैं, वह समय को प्रतिबिम्बित तो करती ही है, साथ ही वह देश, राष्ट्र, समाज, भाषा, मनुष्य और मनुष्य के स्वभाव में आए परिवर्तनों को भी इंगित करती है।

कविता में समय की पड़ताल करने का एक तरीका यह भी हो सकता है कि हम मनुष्य, समाज, भाषा और मनुष्य-स्वभाव में आए परिवर्तन की पड़ताल करें। इसे उलट कर यूँ भी कहा जा सकता है कि कविता और समय के अंतर्सबंधों की पड़ताल करते हुए हम इन सब आयामों को, इनमें आए परिवर्तनों को समझने की कोशिश करें।

मानवीय व्यवहार और मानवीय सम्बन्ध या मानवीय व्यापार में आए परिवर्तन को भी सबसे विश्वसनीय तरीके से कविता के रास्ते समझा जा सकता है। हालाँकि यह काम तो साहित्य की तमाम विधाएँ करती ही हैं, लेकिन कविता इसे करने में अधिक सक्षम इसलिए है, क्योंकि वह अपनी गति, अपनी संरचना, अपनी भाषा और अपने अर्थ के लिए सरल सामाजिक तर्कों पर ही निर्भर नहीं है। वह अर्थ और अर्थ से परे जा सकने में सक्षम है। वह भाषा के नियमों के अनुरूप और उसके विपरीत जा सकती है। वह समय की सरल तार्किकता का विपर्यय रच सकती है। यह सब कविता में होता रहा है, इसलिए किसी समय, समाज, भाषा और मानवीय सम्बन्धों में आए परिवर्तन को सबसे अधिक विश्वसनीय तरीके से कविता में देखा सकता है।

यहाँ एक मूल विषय की तरफ इंगित करना लाजमी होगा कि कविता अर्थ के सीमित दायरे में महदूद रहने के लिए बाध्य नहीं। जहाँ तमाम भाषिक उपकरण अर्थ-निर्मिति की प्रक्रियाओं को उद्घाटित करते हैं, वही कविता अर्थ के परे चली जाती है। दूसरी तरफ कविता में अर्थहीनता या निरर्थकता एक बड़े सामाजिक आशय को प्रदर्शित करती है।

कुछ ही दशक पूर्व की बीटनिक कविताओं को इस संदर्भ में देखा जा सकता है। बीटनिक कविताओं ने अर्थ और अर्थ की संरचना और अर्थ पर निर्भरता को नियंत्रित करने वाली शक्तियों की आलोचना की और अर्थ के स्थापित दायरे को तोड़

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दिया। कविता जब भी तोड़ती है, तो एक नया दृश्य, नई अंतर्वस्तु, नया परिप्रेक्ष्य और नई भाषा भी निर्मित करती है। कविता में विध्वंस और निर्माण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कविता के रास्ते यह जो विध्वंस-निर्माण का द्वैत संभव होता है, वह सहज ही अन्य साहित्यिक विधाओं के लिए अनुकरणीय हो उठता है। कथा साहित्य और आलोचना के क्षेत्रों में कविता के परिवर्तन का स्पष्ट प्रभाव हम देखते हैं।

कविता का सामाजिक-सांस्कृतिक बोध और उसमें आए परिवर्तन एक नये सामाजिक-सांस्कृतिक बोध के निर्माण के लिए प्रेरक की भूमिका बनाते हैं। बड़े सामाजिक विप्लवों के साथ मानवीय स्वभाव में आए सूक्ष्म परिवर्तन को कविता दर्ज करती है और यही वजह है कि कविता के प्रति और कविता में आए परिवर्तनों के प्रति अधिक सूक्ष्म एवं संवेदनशील होने की जरूरत महसूस की जाती है।

2

स्वतन्त्रता-पूर्व की हिंदी कविता में अगर केन्द्रीयता की तलाश करें, तो हम कह सकते हैं कि वहाँ कविता के केंद्र में प्रकृति है। जहाँ, मनुष्य-समाज दिखाई भी पड़ता है तो वह प्रकृति के रूप या अंश के रूप में ही दिखता है। मनुष्य एवं मानवीय व्यापार की सभी प्रक्रियाएँ वहाँ प्रकृति प्रदत्त ही हैं। प्रकृति से अर्जित गति ही मनुष्य के समस्त कार्य-व्यापार का निर्माण एवं निर्धारण करती है।

प्रकृति के कविता में रूपांतरण की प्रक्रिया क्या है? छायावादी दौर के कवि, प्रकृति के बोध को कविता में किस तरह लाते हैं?

छायावादी कवियों के लिए प्रकृति एक द्वंद्व निर्मित करती है। वे प्रकृति को जीवन-संघर्ष और सहयोग के द्वैत के रूप में देखते हैं। इस देखने की प्रक्रिया को ग्रहण कर ऐंद्रिकता के माध्यम से संभव किया जाता है। एक तरह से सरलीकरण का जोखिम उठाते हुए कहने का साहस करें तो हम कह सकते हैं कि मोटे तौर पर स्वतंत्रता पूर्व की हमारी कविता प्रकृति को आधार बनाती है और उसे वह ऐंद्रिकता के रास्ते या इन्द्रिय-बोध की प्रमाणिक कसौटी पर कसकर काव्यानुभव में परिवर्तित करती है। प्रकृति और ऐंद्रिकता स्वतंत्रता पूर्व की कविता के केंद्र में है।

प्रकृति और इन्द्रियबोध की प्रक्रिया निरपेक्ष या तटस्थ प्रक्रिया नहीं है। वह मनुष्य के जीवन-व्यापार के समस्त दायरों को समेटते हुए, उसे काव्यानुभव में बदलती है। कविता में प्रकृति और इन्द्रियबोध के विस्तार को हम प्रगतिशील कविता तक देख सकते हैं।

आज़ादी के बाद यह क्रम टूटता है। जीवन में प्रकृति की भूमिका तो रहती है, लेकिन औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया मानव-संसार को, उससे जुड़े कार्य-व्यापार को केंद्र में ले आती है। प्रकृति-ऐंद्रिकता के युग्म के स्थान पर मनुष्य-समाज की स्थापना हो जाती है। मनुष्य-समाज प्रकृति से विलग नहीं है, उसमें भी प्रकृति का रूप झाँकता ही है, लेकिन प्रकृति की गति अब पूरी तरह जीवन-समाज को निर्धारित -निरूपित नहीं करती थी। ऐसे में प्रकृति के वि-केंद्रीकरण के साथ-साथ ऐंद्रिकता का भी वि-केंद्रीकरण होता है। ऐंद्रिकता के स्थान पर कविता में ज्ञान-संवेदना की भूमिका केंद्रीय होने लगी। हम यह कह सकते हैं कि आज़ादी के बाद की हमारी कविता मानव-समाज और ज्ञान-संवेदना के द्वंद्व में प्रकट होती है।

आज़ादी के पश्चात् जीवन व्यापार की नई जटिलताएँ सामने आती हैं। समाज का बंद दायरा खुलने लगता है। कविता की नाभिकीय में प्रकृति की गुठली भी खुलने-घुलने लगती है। प्रकृति की उपस्थिति से इनकार नहीं किया जा सकता, मगर प्रकृति एक अमूर्तन में बदलने लगती है। प्रकृति प्रदत्त ऐन्द्रिक-बोध भी सरल सहज नहीं रह जाता।

अनुभव में सरलीकरण का सबसे बड़ा खतरा निष्कर्षात्मक होने का है। आजादी के बाद बहुत सी ऐसी कविताएँ लिखी गईं जो अनुभव के सरलीकरण पर बल देती थीं। वे प्रकृति और ऐंद्रिकता की क्रमिकता में कविता को रखने के पुराने प्रयत्न को दुहराती थीं। इस दुहराने की प्रक्रिया में उनसे कविता का समकालीन बोध छूटने लगा। वे कविताएँ अपने समय में जरूर लिखी जा रही थीं, परन्तु वे समकालीन नहीं थीं।

मुक्तिबोध द्वारा नई कविता की आलोचना का प्रस्थान बिंदु यही है। मुक्तिबोध कविता के केंद्र में मनुष्य और जीवन को लाते हैं। वे कहते हैं-

"नई कविता के लज्जित होने का कोई कारण नहीं है। किंतु, संतोष नहीं हो पाता। यह जो कुछ लिखा गया और लिखा जा रहा है, वह लहर में तैरने के समान है। लहरें दीख रही हैं, कुछ ऊँची हैं, कुछ नीची, वे अनेक हैं, असंख्य हैं। उनका चित्रण भी सुंदर हुआ। किंतु समुद्र इन लहरों से जुड़ा हुआ हो कर भी उससे व्यापक है। और केवल लहरों के उत्थान पतन ही से सिंधु की सार्वभौम सत्ता की स्थिति का अंदाजा नहीं लगाया जा सकता।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह समस्या है। काव्य में उपलब्ध मानसिक प्रतिक्रियाएँ लहरों के समान हैं। ये आंदोलित तरंगें क्षण स्थाई हैं, उनका चित्रण हुआ है, किंतु संपूर्ण जीवन का चित्रण नहीं हुआ- जो संपूर्ण जीवन, इन मानसिक तरंगों में प्रकट होकर भी उससे परे, उससे अलग है। उससे भिन्न होकर भी उससे एकरूप है। (मुक्तिबोध रचनावली, खंड-4, पृष्ठ 104)।

कवि में जिस सार्वभौमिकता की बात मुक्तिबोध कहते हैं, वह अनुभव और ज्ञान की समकालीनता से जुड़ा है। अनुभव और ज्ञान की समकालीनता का सम्बन्ध समाज, मनुष्य और मानवीय सम्बन्धों की गतिकी से है। उसकी गरिमा और ऊष्मा से है।

3

मुक्तिबोध जीवन व्यापार को उसके समस्त क्रियाकलाप को, रोजमर्रा की जटिल संवेदना को, कविता में ढालने की बात कहते हैं। उनके लिए नई कविता के कवियों का मुख्य संघर्ष यही है। मुक्तिबोध अपने समय की कविता में मौजूद प्रवृत्तियों को चिन्हित करते हैं।

औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया ने जिस समाज की नींव रखी, वह समाज एक बाह्य-यथार्थ की ओर मुड़ता गया। जीवन के दायरे खुले, जीवन अधिक व्यापक और विस्तृत तो हुआ लेकिन जीवन-बोध और जीवन-संवेदना कम होने लगी। मुक्तिबोध इस बात पर बल देते हैं कि आज के कवि के पास विषयों की कमी नहीं, प्रश्न यह है कि विषयों के साथ जो तादात्म्य है, जो आन्तरिकता है, उसकी गतिकी के साथ जो जुड़ाव है- वह किस हद तक संभव हो पा रहा है।

मुक्तिबोध द्वारा उठाए गए ये प्रश्न इसलिए भी महत्त्वपूर्ण थे, क्योंकि मुक्तिबोध एक बदलती हुई दुनिया में, एक अधिक गतिशील, अधिक तीव्र होती दुनिया में ज्ञान-संवेदना या काव्य के स्रोतों की तलाश पर बल देते हैं।

हम यह कह सकते हैं कि अगले चार दशकों तक यानी बीसवीं शताब्दी के अवसान तक हिंदी कविता के केंद्र में मनुष्य-समाज और ज्ञान-संवेदना का द्वैत बना रहा। जीवन के तत्त्व कविता के तत्त्व से भिन्न नहीं हैं। मुक्तिबोध लिखते हैं-

"वास्तविक जीवन अपने विशिष्ट उद्भासपूर्ण क्षणों में ही कवि-जीवन हो जाता है। यह कवि जीवन किसी उच्च मनोवैज्ञानिक स्तर पर आविर्भाव है, वास्तविक जीवन का ही। अतएव कवि जीवन का आधार है वास्तविक जीवन। कवि जीवन के मूल्य और नियम वास्तविक जीवन के मूल्यों और नियमों के आधार पर टिके हुए हैं। न कि इसके विपरीत अतएव, कवि-जीवन के मूल्यों की जो सत्ता जितनी भी स्वतंत्र है, वह वास्तविक जीवन की सत्ता के आधार पर और उसके द्वारा ही अस्तित्ववान तथा स्वतंत्र है। कवि-जीवन के मूल्य वास्तविक जीवन से निर्मित और नियंत्रित हैं। उन मूल्यों की स्वतंत्रता वास्तविक जीवन की सत्ता से स्वतंत्र नहीं। यदि कवि-जीवन के मूल्य वास्तविक जीवन से स्वतंत्र होते तो साहित्य में सौंदर्य नामक जो प्रभावशाली गुण पैदा होता है, वह होता ही नहीं। सौंदर्य नामक गुण ही यह सूचित करता है कि उसका नियामक वास्तविक जीवन है- वह वास्तविक जीवन जो न केवल पहचाना जाता है, वरन् जिया जाता है"। (वही, पृष्ठ-102)

यह जो वास्तविक जीवन और कवि जीवन की परस्परता है, वह कविता में समकालीनता और सौन्दर्य दोनों का तर्क बुनती है। यही वजह है कि बहुत से कवि जो जीवन-मूल्य को अपने समय में, सूक्ष्मता से नहीं देखते-परखते, वे उत्तरोत्तर कविता में भी पुरातन मूल्यों का सृजन करते हैं।

4

पिछले तीस चालीस वर्षों के जीवन समाज को मनुष्य और मानवीय सम्बन्धों को भाषा और संवेदना को, ममत्व और क्रूरता को, प्रेम और घृणा को, आकांक्षा और तटस्थता को, दृढ़ता और लोलुपता को क्या हम पुराने समय की क्रमिकता में देख सकते हैं? क्या समस्त क्रियाकलाप, जीवन व्यापार किसी तीव्र गति के शिकार नहीं? क्या उनमें कोई बुनियादी परिवर्तन नज़र नहीं आता?

ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जो अमूर्त तो हैं, लेकिन वर्तमान के हर सजग मनुष्य के दिलो दिमाग पर हावी हैं। वह इनसे पीछा नहीं छुड़ा सकता। कहना न होगा कि नई सदी की हिंदी कविता, समाज -मनुष्य के भीतर महदूद इन प्रश्नों से जुड़ी हुई है। यही वजह है कि जीवन एवं जीवन स्थितियों की जो वि-केन्द्रीयता है, वह कविता को भी प्रभावित कर रही है।

इसे अगर थोड़ा परिवर्तित करके कहना चाहें, तो हम कह सकते हैं कि जीवन द्रव्य में हो रहे परिवर्तनों ने कविता द्रव्य को भी बदल दिया। मानवीय एहसास, संवाद और संवेदना की जो भाषा है, वह परिवर्तित हुई है। जीवन समाज की चिंताएँ परिवर्तित हुई हैं।

आज जीवन-समाज, मनुष्य और संवेदना तो हैं लेकिन वे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परिधि पर हैं। उनके स्थान पर भौतिक-अभौतिक वस्तुएँ आ गई हैं। वर्तमान का हमारा जीवन वस्तुमयी हो चुका है। हर तरफ बेशुमार वस्तुओं का जखीरा है। वस्तुएँ निर्जीव हैं, लेकिन गतिशील। संवेदनहीन मगर संवादरत। मृत लेकिन शोर करती हुई। आज की कविता इसी वातावरण, इसी वस्तुमय संसार को प्रतिबिम्बित करती है। कविता के केंद्र में मनुष्य का जो स्थानापन्न हुआ है वह कोई छोटी-मोटी परिघटना नहीं है। वह मनुष्य के प्रकृति से विलगाव की एक नई दशा है। कविता की समकालीनता की चर्चा में यह एक निर्णायक बिंदु है।

यह सब कुछ अचानक नहीं हुआ। यह कोई काफ्काई स्वप्न नहीं है, कि आप एक सुबह जागते हैं और पाते हैं कि संसार बदल गया। इसे धीरे-धीरे हमारे भीतर बुना गया।

प्रकृति के समानांतर एक वृहद् संसार रचा गया। यह वस्तुओं से अटा पड़ा संसार है। वस्तुओं का जीवन है। उनकी मृत्यु है। उनका शोर और उनका चीत्कार है। मनुष्य कहाँ है इनमें? मनुष्य इन वस्तुओं के बीच दबा हुआ है। उसकी संवेदना, उसकी चेतना दबी हुई है। हमारा जीवन इस वस्तुमय संसार का एक क्षीण प्रतिरोध भर रह गया है, इसी क्षीण प्रतिरोध के बीच कविता है, लड़ती हुई , बदलती हुई। यह आज की कविता का द्वंद्व है। वह एक लड़ाई में शामिल है। यह मनुष्यता की लड़ाई है।

तकनीक के माध्यम से इस वस्तु संसार का वृहद् आख्यान रचा गया है। वस्तु संसार की गति, प्रकृति से भिन्न है। प्रकृति में व्याप्त जीवन मरण से भिन्न है। यह गतिमयता मनुष्यता को परिवर्तित कर रही है। सवाल यह है इस सबके बीच कविता को हम किस तरह देखें? क्या वह इस संसार का, वस्तु संसार का क्रिटीक रचती है?

कविता के सामने जो माध्यम है वह उसका प्रतिकार कर रही है या उसमें रूपांतरित हो रही है? अगर तीस वर्ष पहले के काव्य संसार को देखें तो कविता लिखना-पढ़ना मानवीय प्रक्रिया का अनिवार्य हिस्सा था। यह कहा जा सकता है कि यह तो आज भी है, कविता मनुष्य के बारे में ही लिखी जा रही हैं। बिलकुल सही, कविता का विषय तो मनुष्य ही है लेकिन वह मनुष्य जो प्रकृति से विलग हो चुका है, जिसके आत्म का वस्तुकरण हो गया है।

कविता मनुष्य के बहाने एक बड़े वस्तु-संसार को प्रतिबिम्बित करने लगी है। वह उसके वस्तुकरण का क्रिटीक नहीं रचती। वह अपने संभव होने की प्रक्रिया में वस्तु-संसार को संभव कर रही है।

कविता के संभव होने की प्रक्रियाओं ने, जटिलताओं ने, उसके रूपांतरण ने, उसके स्वरूप को बदल दिया है। पहले, यानी आज से तीन चार दशक पूर्व की कविता एक सरल सम्बन्ध में संभव हो रही थी। कविता का लिखा जाना, उसका प्रकाशित होना और उसके पढ़े जाने की प्रक्रिया एक सीधी प्रक्रिया थी। उसकी सीमित गति थी। मनुष्य के विवेक की गति के अनुसार उसका प्रसार था। यह गति कमोबेश व्यवसायिक संसार का प्रतिरोध रचती थी। लेखक, प्रकाशक और पाठक ये तीन मुकाम थे कविता संसार के।

मौखिक कविताओं के युग में तीन की जगह दो ही थे। रचनाकार और श्रोता। औद्योगिक क्रांति ने, प्रकाशन के नये रूपों ने, शब्दों को प्रसारात्मक शब्दों में बदल दिया। साहित्य लिखित रूप में ढलने लगा। उपन्यास जैसे महाकाव्य का जन्म इसी परिघटना से जुड़ा है। हम मौखिक संरचना में उपन्यास की परिकल्पना को संभव नहीं कर सकते। औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप मनुष्य का एक अधिक गतिशील संसार विकसित हुआ। इस गतिशीलता ने सम्बन्धों की जटिलता को जन्म दिया, परिणामस्वरूप उपन्यास जैसे महा-काव्य का जन्म हुआ। उपन्यास के जन्म ने कविता की संभावनाओं को परिवर्तित किया। कविता का काम सिर्फ ऐन्द्रिक उद्वेलन भर नहीं रह गया, वह मानवीय स्मृति के पुनर्निमाण का कारखाना भी बन गई।

स्मृतियों से कविता हमेशा अविभाज्य रही होगी। जब कविताएँ मौखिक संसार का हिस्सा रही होंगी, तब भी कविताओं में स्मृतियाँ तो रही होंगी। स्मृतियों के बगैर कविता की कोई कल्पना संभव नहीं, लेकिन औद्योगिक क्रांति के पश्चात् प्रकाशन की जब नई व्यवस्था लागू हुई, शब्द मूर्त चिन्हों में, आकृतियों में ढलने लगे तो स्मृतियों के पुनराविष्कार की संभावनाएँ बढ़ गईं। लिखित शब्दों ने स्मृतियों को पारम्परिक स्मृतियों से अलग किया। कविता में स्मृति और कल्पना का नया द्रव्य विकसित हुआ। स्मृतियाँ सिर्फ अतीत का अवलोकन भर नहीं थीं, वे निकट अतीत का प्रतिबिम्ब भर नहीं थीं, वे अतीत की सीमाओं से निकलकर वर्तमान और भविष्य तक चली गईं, फ़ैल गईं। स्मृतियाँ सिर्फ घटित का पुनराविष्कार भर नहीं रह गईं। वे घटित के पार चली गईं और घटित के चंगुल से मुक्त हो गईं।

मूर्त शब्दों ने अमूर्तन का नया विस्तार अर्जित किया। यह अमूर्तन मानव मन के अवचेतन को उद्घाटित कर सकता था। आधुनिक कविता की सबसे बड़ी भूमिका यह थी कि वह मन

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

की गहराइयों में उतर सकती थी। वह अवचेतन को शब्दों में ढाल सकती थी। वह भाषा की संभावनाओं का विस्तार कर सकती थी। वह शब्दों को अर्थ के सीमित संसार से बाहर निकाल सकती थी।

हम कह सकते हैं कि आधुनिक कविता ने ऐंद्रिकता और संवेदना के रास्ते प्रकृति और जीवन का सांस्कृतिक परिदृश्य निर्मित किया। मानवीय संवेदनाओं और बोध का एक अन्तः संसार विकसित किया, जिसमें उच्चतर मानवीय मूल्यों को व्यापक अर्थों में संचित करना संभव हुआ।

5

क्या नई सदी की कविता को हम इस आधुनिक कविता की क्रमिकता में देख सकते हैं? क्या मानव मन की नई गहराइयों के पार उतर सकने में कविता सक्षम है? स्पष्ट रूप से ये बड़े सवाल हैं और वर्तमान कविता के संदर्भ में बेहद जरूरी सवाल हैं।

तकनीक के नये रूप ने प्रकाशन की प्रक्रिया को इस हद तक तीव्र कर दिया है कि रचनाकार और पाठक गौण हो गए हैं। रचनाकार का आत्मपक्ष विलुप्त हो गया है। रचना, प्रकाशन और पाठक का सरल सम्बन्ध नष्ट हो गया है। प्रकाशन की प्रक्रिया एक अकूत तीव्रता का निर्माण कर रही है। प्रकाशन के वर्चस्व ने रचना की संभावनाओं को परिवर्तित कर दिया है। प्रसिद्ध चिन्तक-दार्शनिक मार्शल मैक-लुहान ने भूलवश एक वाक्य लिखा- 'माध्यम ही सन्देश है'। यह 60' के दशक के शुरुआती वर्ष थे। मार्शल मैक-लुहान के इस एक वाक्य ने मीडिया अध्ययन विश्लेषण की दिशा बदल दी। यह इसलिए भी कि ज्ञान-सूचना माध्यम में तकनीक के सबसे निकट मीडिया ही थी। आज की कविता का रास्ता 60' के दशक में प्रस्तावित इस मीडिया विमर्श से क्या भिन्न है?

हममें से शायद ही कोई इंकार करेगा कि विगत वर्षों में कविता में ज्ञान-सूचना का वर्चस्व बढ़ा है। हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि तमाम कला माध्यमों में कविता एक ऐसी विधा है, जो न्यूनतम संसाधनों पर निर्भर करती है। लेकिन वह मनुष्य के हृदय के अंतरतम और कोमलतम हिस्से को संवेदित करती है। सूचना तकनीक के माध्यमों ने कविता को भी अपनी गिरफ्त में लेना शुरू किया है। रचनाकार और पाठक के बीच का सहज सम्बन्ध अब एक जटिल उत्पादन-उपभोग की प्रक्रिया का हिस्सा हो चुका है। कविता लिखते हुए, कविता पढ़ते हुए, रचनाकार और पाठक एक साझा भावबोध पर अवस्थित रहते थे। भारतीय काव्यशास्त्र में पाठक को सहृदय की संज्ञा दी गई है। नई तकनीक ने इस सहृदयता पर हमला कर दिया है। रचनाकर्म अपनी धुरी से खिसक चुका है। पाठक अपनी अर्जित संवेदना से विरत हो रहा है, लेकिन इस सबके विपरीत बड़े पैमाने पर कविताएँ लिखी जा रही हैं। कविताएँ लिखना और पढ़ना, उत्पादन-उपभोग की प्रक्रिया का हिस्सा हो चुका है। कविताएँ जिन माध्यमों से हम तक आ रही हैं, वह महत्त्वपूर्ण है। कविताओं का स्वरूप, माध्यमों के अनुरूप बदल रहा है। वे उसकी गति-संगति में ढल रही हैं। यही वजह है कि कविता में जहाँ एक ओर शुष्क तर्क का प्रभाव देखा जा सकता है, वहीं उसे शुद्ध तकनीकी प्रारूप में ढालने की कोशिशें भी देखी जा सकती हैं। आज बहुत सी कविताएँ अगर आवृति प्रतीत होती हैं, तो उसका बड़ा कारण यह है कि कविताएँ कवि के आत्म से विरत होती जा रही हैं। यह कवि के स्व से विरत होने की प्रक्रिया का ही अगला चरण है।

कवि-कर्म वस्तुतः आत्मगतता और सामाजिकता के फर्क के मिटने की प्रक्रिया थी। बाह्य प्रकृति और अन्तः प्रकृति के बीच एकतानता निर्मित करने की प्रक्रिया थी। कविता में बाह्य और आत्म का, विषय और वस्तु का, भाषा और विचार का एवं दृश्य और दृष्टि का अंतर्मिलन देखा जा सकता है। लेकिन तकनीकी तार्किकता इस अंतर्मिलन की प्रक्रिया में विसंगति पैदा करती है। वह बाह्य गति को असीमित कर देती है, परिणामस्वरूप अंतस के साथ एक विराग उत्पन्न होता है। कवि इस विराग को दुहराव और तकनीक से भरने की कोशिश करता है। ऐसा करते हुए कविता ज्ञान और तकनीक की प्रक्रिया में बदलने लगती है और कवि कर्म अपनी मूल धुरी से खिसक जाता है।

उत्तर-औद्योगिक समाज में, तकनीकी तार्किकता से आच्छादित समाज में, कला मूल्यों का अवमूल्यन तो होता ही है, कलाकार का विलगाव भी निर्मित होता है।

आमतौर पर कविता को पढ़ते हुए दो मुख्य आयामों पर हम विचार कर सकते हैं। पहला है- संप्रेषणीयता, दूसरा है- प्रभाव। एक अच्छी कविता इन दोनों प्रक्रियाओं को संभव करती है। संप्रेषणीयता और प्रभाव दोनों ही पाठक की चेतना में कविता को सम्पूर्ण बनाते हैं। कविता की पूरी आकृति इन दोनों ही प्रक्रियाओं के माध्यम से सृजित होकर पाठक की चेतना में आकार लेती है। तकनीकी-कृत समाज में कविता इस सम्पूर्णता से महरूम होने लगती है। माध्यमों के वर्चस्व के परिणामस्वरूप

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संप्रेषणीयता को अधिक महत्त्व दिया जाता है। संप्रेषणीयता का दबाव कविता की संरचना पर इस हद तक हावी हो उठता है कि एक हद तक प्रभाव के प्रश्न को दरकिनार कर दिया जाता है या उसे कम जरूरी मान लिया जाता है।

तकनीकी तार्किकता से आच्छादित समाज संप्रेषणीयता और प्रभाव के बीच अलगाव पैदा करता है। दरअसल तकनीक संप्रेषणीयता को अधिक महत्त्व देती है। क्योंकि संप्रेषणीयता का तर्क उपभोग के निकट जा पहुँचता है। संप्रेषणीयता एक व्यवसायिक मूल्य में बदल जाती है। कविता का प्रभाव वस्तुत: उपभोग और व्यवसायिकता के तर्कों के विरुद्ध कार्य करता है, इसलिए तकनीकी समाज में कविता को, कवि कर्म को संप्रेषणीयता तक महदूद करने की प्रक्रिया पर बल रहता है। हमारे इर्द-गिर्द बहुत सी कविताएँ, हर क्षण तैरती रहती हैं। ये कविताएँ शब्द कविता के रूप में प्रभाव नहीं डालतीं। इन्हें किन्ही छवियों में, दृश्य माध्यमों में, किसी संगीत के प्रचलित टुकड़े के साथ जोड़कर, भिन्न गति-छवि के साथ प्रस्तुत किया जाता है। हमें कविताओं को पूर्णता में देखने-पढ़ने की जरूरत महसूस नहीं होती। कविताओं में तकनीकी-प्रारूप की उत्तेजक या मुखर प्रक्रिया हावी रहती है। हम कुछ शब्दों को, कुछ वाक्यों को, इस तकनीकी माध्यम के संयोग के साथ ग्रहण करते हैं। कविता की यह टूटन, काव्य-सम्प्रेषण को उपभोग में बदल देती है।

सम्पूर्णता में कविता का कोई प्रभाव अब निर्मित नहीं होता। किसी एक विषय की कविता किसी दूसरे विषय की कविता से जुड़ सकती है - किसी तकनीकी तर्क के माध्यम से। किसी एक कवि की कविता के टुकड़ों को, किसी दूसरे कवि की कविता के टुकड़ों के ऊपर आरोपित कर प्रस्तुत किया जा सकता है। इस तरह कविता की सम्पूर्णता एवं प्रभावोत्पादकता का अंत हो चुका है। कविता के टुकड़े, एक गतिशील चाक्षुष माध्यम का प्रभाव पैदा करने की कोशिश करते हैं। और ऐसे में संप्रेषणीयता को ही प्रभाव मान लिया जाता है।

अंत में सबसे बड़ी समस्या यह आती है, कि कला में जब संप्रेषणीयता के मूल्यों को ही महत्त्व दिया जाता है, तो कला किसी जटिल भावबोध को रूपांतरित या आत्मसात नहीं करती। वह हर तरह का सरलीकरण इस्तेमाल करती है। तकनीकी समाज में सरलीकरण की प्रक्रिया हर क्षण, हर पल एक छद्म समाज-चेतना का निर्माण करती है। कहना न होगा कि यह छद्म समाज-चेतना कला को न सिर्फ रूपांतरित करती है, बल्कि उसे बिकाऊ वस्तु में बदल देती है। यहीं से कविता का विघटन प्रारंभ होता है।

सवाल यह है कि आज की कविता, इस समाज-जनित चुनौती को किस तरह देखती है? हम देख सकते हैं कि अन्य माध्यमों के रास्ते जीवन-व्यवहार में तकनीक के महत्त्व को आश्रय दिया जाता है। स्पष्ट रूप से देखें तो तकनीक के महत्त्व को हम गति और सरलता के रूप में देखते हैं। कविता दोनों तरह की स्थितियों के विपरीत कार्य करती है। वह बाह्य और अन्तस के बीच की गति के मध्य सामंजस्य पैदा करती है। वह हर तरह के सरलीकरण के संभावित खतरों के प्रति हमें आगाह करती है।

आज की कविता का, कवि कर्म का एक बड़ा दायित्व तो यह होना चाहिए कि वह इस तकनीकी तार्किकता का, तकनीकीकरण की प्रक्रिया और तकनीक-जनित सामाजिक चेतना एवं सौन्दर्यबोध का क्रिटीक रचे। दुर्भाग्य से आज हमारी कविता यह नहीं कर रही।

कविता ने मनुष्य के जीवन और मरण को देखा है। तकनीक-जनित इस दुनिया में हम कविताओं के मरण को देख रहे हैं। हम इस मृत्यु के साक्षी हैं।

सम्पर्क - 92131 66256

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस शोर में भी शब्द कर रहे हैं अपना काम

प्रियदर्शन
(आलोचना शैली की निजता और वस्तु विवेचन के लिए अन्य कला विधाओं से शक्ति प्राप्त करने वाले समीक्षक-आलोचक।)

'भाषा जब ट्रोल और सर्वानुमति के / दो ध्रुवांतों में नष्ट हो रही थी / वृत्तांतों के उजाड़ में / एक और बोली खोजने का बियाबान था मैं।' (देवी प्रसाद मिश्र- लंबी कविता 'जिधर कुछ नहीं' की बिल्कुल आरंभिक पंक्तियाँ)

नब्बे के दशक में 'प्रार्थना के शिल्प में नहीं' जैसी विशिष्ट कविता और इसी नाम के कविता संग्रह के साथ हिंदी को एक नया काव्य-अनुभव, एक लगभग विद्रोही अभिव्यक्ति देने वाले कवि देवी प्रसाद मिश्र इक्कीसवीं सदी के दूसरे दशक की समाप्ति पर ख़ुद को वृत्तांतों के उजाड़ में पाते हैं- अपने-आप को एक बियाबान की तरह देखते हुए। यह बहुत लंबी कविता एक अलग चर्चा की माँग करती है, लेकिन फिलहाल यहाँ इससे निकलने वाला यह संकेत ही हम काम में लेते हैं कि इक्कीसवीं सदी के इस मोड़ पर भाषा और कविता दोनों के सामने नई चुनौतियाँ हैं। हालाँकि इन चुनौतियों से बेखबर कवियों, कविताओं और कविता संग्रहों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। ज़ाहिर है, कविता लिखने का उत्साह अगर ठंडा नहीं पड़ा है तो इसकी दो ही तात्कालिक वजहें समझ में आती हैं- या तो कवियों को अपने समय के दुर्धर्ष यथार्थ का एहसास नहीं है या फिर उनमें यह प्रबल और मासूम विश्वास है कि कविता ही इस दुर्धर्ष यथार्थ के पार उन्हें ले जाएगी।

लेकिन इस इक्कीसवीं सदी में कविता लिखने के ख़तरे कई तरह के हैं। सबसे बड़ा ख़तरा तो उसके उपभोक्ता-सामग्री में बदल जाने का है। यह समय हर चीज़ को- यहाँ तक कि विचार और संवेदना को भी- सुंदर-चमकीली पन्नियों में लपेट कर बिक्री के लिए सजाने का समय है। बल्कि लगातार बिक्री ही जैसे किसी चीज़ की उत्कृष्टता का इकलौता पैमाना होती जा रही है। जो चीज़ जितने महँगे दाम पर मिलेगी, उस पर जितनी बड़ी कंपनी की मुहर होगी, वह उतनी ही अच्छी होगी- यह विश्वास हमारे भीतर धीरे-धीरे जड़ जमाता जा रहा है। कला के क्षेत्र में यह दुर्घटना काफ़ी पहले हो चुकी है कि किसी पेंटिंग की समझ इसी बात से तय होती है कि उसे कितनी क़ीमत मिली है। कविताएँ या साहित्य की दूसरी विधाएँ अगर इस दुर्घटना से बची रही हैं तो बस इसलिए कि उन्हें दीवार पर टाँग कर प्रदर्शित करने लायक अभी तक नहीं माना गया है। बाज़ार सब कुछ की क़ीमत लगा रहा है- विचार की भी, कविता की भी और क्रांति की भी। यह सबकुछ को निर्जीव, अप्रासंगिक और बस एक उत्पाद बना डालने पर उद्धत है जिससे कुछ लोगों का जीवन सुगम लगे, सुरक्षित हो और सुरुचिपूर्ण नज़र आए। यह सुगमता, सुरक्षा और सुरुचि इन सबके लिए अदा की जाने वाली क़ीमत पर निर्भर होती है। यह अनायास नहीं है कि इस दौर में विचार भी रेडीमेड मिल रहा है- बिल्कुल कटा-छँटा और पैक्ड- कहीं सुबह-सुबह वाट्सऐप पर मिलने वाली सूक्तियों की शक्ल में तो कहीं तरह-तरह के सुभाषितों के रूप में- ऐसा बोंसाई विचार जिससे जीवन की बालकनी कुछ सुंदर सी लगे।

तो कविता के सामने दूसरा खतरा यह है कि वह अनायास इस बाज़ार के अनुकूल ढलती जा रही है। हमारे समय में बहुत बड़ी तादाद में ऐसी कविता लिखी जा रही है जिसे पढ़ते हुए लगता है कि यह चमकीली पन्नियों में पैक कविता है- किसी सामान की तरह- चाहे वह सजावट का सामान हो या ज़रूरत का। इस कविता के पास बहुत 'स्मार्ट' शब्दावली है, अपने आसपास के हालात को व्यक्त करने लायक समर्थ भाषा है, इसके पार जा सकने लायक परिकल्पना है। यह कविता मुग्ध करती है, कुछ समय के लिए कलेजे को ठंडक देती है, फारवर्ड करने लायक एक सूक्तिनुमा विचार देती है और फिर दिन के उहापोह में खो जाती है। जाहिर है, उसमें एक शराफ़त है, सज्जनता है, सौंदर्य-बोध है, सबके अधिकार का- यानी मानवाधिकार का- खयाल है. अतीत की अच्छी चीज़ों के, रिश्ते-नातों के, छूटते जाने का दुःख भी है, लेकिन उसके सामने कोई मूल्यबोध नहीं है, एक विश्वजनीन क़िस्म की करुणा अवश्य है- जो निश्चय ही काफ़ी महत्त्वपूर्ण है- लेकिन इससे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बहुत अच्छी पंक्तियाँ तो रची जा सकती हैं, कविता को जीवन की तरह जिया नहीं जा सकता, आंदोलन की तरह गाया नहीं जा सकता है, उसे वजूद की शर्त ओढ़ा-बिछाया नहीं जा सकता।

अपने फेसबुक पेज पर कुछ दिन पहले कवि असद ज़ैदी ने इस बात को बहुत सटीक ढंग से लिखा था। उस टिप्पणी का एक अंश कुछ इस तरह है: 'कविता का यह नया मध्यवर्गीय ठिकाना है। एक नव विकसित नियोजित और सुरक्षित आवासीय परिसर (गेटेड कॉलोनी) जहाँ बच्चे निर्द्वंद्व खेल सकते हैं, बालिग़ मर्द औरतें अपने काम से फ़ुरसत पाकर मिल जुल सकते हैं, बूढ़े आराम से टहल सकते हैं, रोज़मर्रा का सामान और ज़रूरी सेवाएँ परिसर के भीतर ही उपलब्ध हैं। इस धारा को इस समय के सभी आलोचकों, आचार्यों और सम्पादकों का भरपूर समर्थन प्राप्त है। यथास्थितिवाद की पैरोकारी अब छुपकर या चालाकी से करने की ज़रूरत ही ख़त्म हो गई है। चाहें तो इसे नव-रूढ़िवाद और नव-प्रतिक्रियावाद का विधिवत आगमन कह लें।'

पूछा जा सकता है कि कविता के किसी और तरह के इस्तेमाल की ज़रूरत क्या है? वह बस पढ़ी जाने के लिए है, महसूस किए जाने के लिए है और इसके लिए किसी थोपे हुए मूल्यबोध या आरोपित विचारधारा की ज़रूरत नहीं है। जो कविता जितनी मानवीय होगी, जितनी विश्वसनीय होगी, वह उतनी ही पढ़ी जाएगी, याद रखी जाएगी और चर्चा में रहेगी। सतह पर यह बड़ी आकर्षक या वैध दलील लगती है। कविता को कविता के अलावा कुछ और क्यों होना चाहिए। हमारे समय के सबसे महत्त्वपूर्ण संस्कृतिपुरुष अशोक वाजपेयी यह कहते ही रहे हैं कि साहित्य की अपनी स्वायत्त नागरिकता होती है, कविता का अपना लोकतंत्र होता है।

लेकिन क्या वास्तविक-वैध, धूल-मिट्टी से सनी, आँसू-पसीने-ख़ून से लथपथ, रोने-हँसने के बीच जीने की जद्दोजहद में लगी, दमन और प्रतिरोध के न ख़त्म होने वाले सिलसिले में पिसती या उसे आगे बढ़ाती वास्तविक नागरिकता को साहित्य की इस स्वायत्त नागरिकता से, कविता के इस जनतंत्र से कोई मदद मिलती है या मिलती है तो कितनी मिलती है? इस सवाल का जवाब बहुत दुविधा भरा हो जाता है। इस ढंग से कविता की चुनौती भी बड़ी हो जाती है।

ऐसा नहीं है कि सामाजिक-राजनीतिक स्तर पर ये चुनौतियाँ बिल्कुल नई हैं या अचानक किसी शून्य से पैदा और प्रगट हो गई हैं। दरअसल हर दौर के अपने प्रश्न रहे हैं जिनसे कविता अपने ढंग से निबटती रही है। जिसे हम समकालीन दौर कहते हैं, वह दरअसल इन पंक्तियों के लेखक के लिए बीसवीं सदी के आख़िरी दशक में शुरू होता है। सोवियत संघ बिखर चुका है, बर्लिन की दीवार गिर चुकी है, शीत युद्ध के दो ध्रुवों में बँटी दुनिया एकध्रुवीय हो चुकी है, और शीत युद्ध के दौर में जो सुविधाजनक वैचारिक विभाजन हिंदी साहित्य और कविता को बाँटता था, वह गुम हो चुका है। उदारीकरण, वैश्वीकरण और निजीकरण के नाम पर बाज़ार का फंदा बड़ा होता जा रहा है, पूँजीवाद और साम्यवाद की वैचारिक सरणियाँ नई दुनिया को अपने लिए नाकाफ़ी लग रही हैं और क्षेत्रीय और जातिगत अस्मिताओं का उभार एक विशिष्ट परिघटना है- हिंदी में जिसे स्त्री, दलित और आदिवासी साहित्य के उभार के तौर पर देख सकते हैं, लोकतंत्र नवपूँजीवाद की गिरफ़्त में है और विश्व बंधुत्व का सपना नव उपनिवेशवाद की चपेट में है। सी.आई.ए. और केजीबी जैसी दुर्नाम संस्थाएँ उस तरह वैचारिक युद्ध में सक्रिय नहीं हैं, लेकिन उनके बनाए फाउंडेशन अब भी वित्तीय और वैचारिक हस्तक्षेप की दिशा में सक्रिय हैं। औद्योगिक क्रांति के बचे-खुचे अवशेषों को बुहार कर सूचना क्रांति चली आई है और हम सब सूचनाओं की बाढ़ में बहे जा रहे हैं।

तो यह वह नया परिदृश्य है जिसमें आज की कविता लिखी जा रही है। इस नए परिदृश्य की कम से कम पाँच चुनौतियाँ बहुत प्रत्यक्ष हैं- पहली यह कि दुनिया भर में सांस्कृतिक बहुलता के प्रति भरोसा घटा है और उसकी जगह उन्मादी राष्ट्रवाद और धार्मिक कट्टरता ने ले ली है। दूसरी यह कि विराट पूँजी ने राष्ट्रीय हितों और सरकारों को व्यर्थ कर दिया है और सामुदायिक प्रयत्नों, सामूहिक स्वप्नों की जगह निजी अधिकारों और व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं को केंद्रीय और वैध बना डाला है। इसी का उप-उत्पाद वह आर्थिक प्रक्रिया है जिसकी वजह से भारत जैसे देशों में अमीर और अमीर हुए जा रहे हैं और ग़रीब और गरीब। तीसरी यह कि एक राजनीतिक विचार या विकल्प के तौर पर साम्यवाद को लगातार संदिग्ध, अपर्याप्त या अप्रासंगिक बनाने की कोशिश की जा रही है। चौथी बात यह कि सूचनाओं की बाढ़ में संवेदनाएँ पूरी तरह बेदख़ल हो चुकी हैं और इनका किसी को भान नहीं है। पाँचवीं दुर्घटना यह है कि इस पूरी प्रक्रिया में भाषा, स्मृति, अर्थ, संबंध- ये सब पीछे छूटती जा रही चीज़ें हैं। एक तरह की यांत्रिकता जीवन पद्धति को सपाट और संवेदनहीन बनाने का काम कर रही है।

क्या हमारे समय की हिंदी कविता में इन सारी चिंताओं को जगह मिलती है? इस प्रश्न का कोई सीधा-सपाट उत्तर नहीं हो सकता। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि अपनी सामाजिक अवस्थिति और अपनी वैचारिक विरासत की वजह से हिंदी कविता अपने बहुलांश में निष्कंप रूप से बाज़ार विरोधी, प्रगतिशील और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जनपक्षीय रही है। इत्तिफ़ाक़ से पिछले पाँच वर्षों में हमने अपने कई बड़े कवियों को खो दिया। कुंवर नारायण, केदारनाथ सिंह, चंद्रकांत देवताले, विष्णु खरे और मंगलेश डबराल इसी दौर में हमसे बिछड़ गए। लेकिन इन सभी कवियों के यहाँ अपने-अपने ढंग से वे राजनीतिक और मानवीय आशय विद्यमान थे जिन्हें बीते दो दशकों के सांप्रदायिक और बाज़ारवादी उफान के विरुद्ध एक वैचारिक अस्त्र की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है। 'अयोध्या 1992' और 'एक अजीब सी मुश्किल' जैसी कुँवर नारायण की कविताएँ हों या अपने ग्रामांचल में धँसी केदारनाथ सिंह की कविताएँ या फिर सांप्रदायिकता और बाज़ारवाद से लोहा लेते मंगलेश डबराल हों या इस दौर की बहुत सारी विडंबनाओं की शिनाख़्त करते विष्णु खरे- इन सबमें हम हिंदी कविता को वह जरूरी कर्त्तव्य निभाते देख सकते हैं जिसकी हम उससे अपेक्षा कर सकते हैं।

यह सब लिखते हुए यह ध्यान भी आ रहा है कि वैसे तो पूरा हिंदी साहित्य- लेकिन ख़ासकर हिंदी कविता- अपने मूल चरित्र में बाज़ारवाद, कुलीनता, उदारीकरण, सांप्रदायिकता, अपसंस्कृतिकरण की विरोधी है। ताकतवर के प्रति एक तरह के विलोम से वह उपजी है। शायद यह भी एक वजह है कि मौजूदा समय में सत्ता और संस्कृति से जुड़ा कुलीनतंत्र- जिसकी बागडोर मोटे तौर पर तथाकथित अंग्रेज़ीदां लोगों के हाथों में है- इस कविता को कभी-कभी कुछ उपहास और विस्मय से देखने की गुस्ताख़ी करता है और अक्सर नज़रअंदाज़ करने की सियासत भी।

इसमें संदेह नहीं कि समकालीन हिंदी कविता में बहुत सारे स्वर हैं। कुछ स्वर निहायत राजनीतिक हैं, कुछ स्वप्नदर्शी क्रांतिकारिता से लैस, कुछ प्रेम में विचरते हुए, कुछ अनमनेपन और उदासी से आक्रांत भी। एक दौर था जब कविता में बाक़ी सारे स्वर ख़ारिज कर कविता को बस क्रांति का वाहन मान लिया जाता था। लेकिन किसी भी पाठक या आलोचक को यह समझ पैदा करनी होगी कि एक समर्थ भाषा के भीतर कई तरह की अभिव्यक्तियाँ होती हैं, कई तरह के विचारों के लिए जगह हो सकती है। पाठक या आलोचक के लिए देखने की बात यह होती है कि कविता जिस विचार और संवेदना का संवहन कर रही है, वह कितना विश्वसनीय और संप्रेषणीय हो पाया है। प्रेम की कविता भी नकली हो सकती है और क्रांति की भी, जबकि प्रकृति, पर्यावरण और स्मृति की कविता भी अपने में प्रेम और राजनीति को समाहित कर सकती है। कविता सपाट नहीं होती। जो कविताएँ सपाट नज़र आती हैं, वे भी सपाट नहीं होतीं। उल्टे कविता में जबरन किसी 'विषय' को ठूँसने, उसमें जटिलता का दिखावा करने की कोशिश उसे सपाट ही नहीं, संवेदनशिथिल भी बना देती है।

समकालीन कविता पर लौटें। अचानक यह खयाल आ रहा है कि नब्बे के दशक में अपनी प्रखर पहचान बनाने वाले दो

कवियों देवी प्रसाद मिश्र और कुमार अंबुज के संग्रह इसी साल आए हैं। बल्कि देवी प्रसाद मिश्र संग्रह नहीं- पूरी किताब में पसरी एक लंबी कविता लेकर आए हैं। 'जिधर कुछ नहीं' नाम की यह आधुनिक महाकाव्यात्मक कोशिश असंदिग्ध रूप से एक बड़ा वितान रचती है जिसमें स्मृतियों से टकराती स्मृतियाँ, बेचैनियों से टकराती बेचैनियाँ, विचार से टकराते विचार, वाम और दक्षिण की दुर्बलताएँ और सबलताएँ, अलग-अलग शहरों में हासिल विफलताएँ, कई तरह की टकराहटों से पैदा होती कविता और काफ़ी कुछ है जो कभी मुक्तिबोधीय लगता है और कभी काफ़्काई, लेकिन बेशक निराला हर जगह दिखते हैं कवि का हाथ थामे, जो उसे और कविता को निरे निराशावाद के गर्त से बाहर ले आते हैं। इसी तरह कुमार अंबुज का 'उपशीर्षक' संवेदना के तात्कालिक उत्पादन और उपभोग के इस दौर में कुछ छोटी, कुछ बहुत छोटी, कुछ बड़ी और कुछ (या शायद बहुत बड़ी कविताओं के साथ आया है। कुमार अंबुज के भीतर वह सूक्ष्म आँख है जो विडंबनाओं को विडंबनाओं की तरह देखती हुई भी इसके पार जाने का रास्ता टटोलती है। यह अनायास नहीं है कि असहायता और आशा के बीच वे असंदिग्ध रूप से उम्मीद के पक्ष में खड़े हैं- कहते हुए कि 'जितनी कविता होगी उतना होगा जीवन में संकट / लेकिन कुछ हैं जो दुःख सह सकते हैं मूर्खता नहीं / कुछ हैं अभागे जो अभाव सह सकते हैं अपमान नहीं / इसलिए वे बने ही रहते हैं संकटग्रस्त / जैसे उनके पास / जीवन जीने का / यही एक तरीक़ा है'। वे 'कवि व्याकरण' तैयार करते हैं। इस व्याकरण के मुताबिक 'महज संज्ञा नहीं, सर्वनाम नहीं / विशेषण, अलंकार नहीं / कवि क्रिया है / जब तुम उससे बात करते हो / तो अनेक लोगों से बात करते हो / तुम्हें लगता है वह कोई निजी बात कह रहा है / लेकिन वह कई लोगों की तरफ़ से बोलता है / वह बहुवचन है / अव्यय है / समास है / संधि है'।

तो यह हमारे समय की कविता है- निजी ढंग से सार्वजनिक का वृत्तांत रचती हुई। अराजनीतिक लगती हुई मगर पूरी तरह राजनीतिक- बल्कि कई बार स्पष्ट तौर पर राजनीतिक दिखती हुई। स्मृति में जाती हुई, लेकिन सरोकार से बँधी हुई। इस दुर्धर्ष होते समय में उसी दुर्धर्षता के साथ लिखी जाती हुई। याद दिलाती हुई कि सत्ता चाहे जितनी विराट होती जाए, कविता का एक कर्त्तव्य उस पर हमेशा संदेह करना है। कवि-आलोचक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पंकज चतुर्वेदी के इसी साल आए संग्रह 'आकाश में अर्द्धचंद्र' में छोटी-छोटी कविताओं की सुई जैसे इसी तथ्य की ओर इशारा करती है- 'सत्ता अगर तुम्हारी / सराहना करे / तो देखना / कि जनता से तुम / कितनी दूर आ गए हो / देश जनता ही है / वह किसी भू-भाग का / नाम नहीं।' प्रकाशन के लिहाज से 2022 निश्चय ही कविताओं का साल है। 'क्या बने बात' से आए लीलाधर मंडलोई के संग्रह में भी स्मृति, संस्कृति, सृष्टि सबकी बात है, लेकिन अंततः वह तीखापन है जो सत्ता को प्रश्नांकित करता है। संग्रह की बहुत छोटी सी कविता है- 'हिंदू स्वर्ग के बारे में / कोई खबर नहीं / नर्क से लापता अधिकांश लोग / गुजरात, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र और दिल्ली में हैं / देश को नरक बनाने का काम / इन दिनों ज़ोरों पर है।'

क्या इत्तिफ़ाक़ है कि इसी बरस आए विनोद दास के संग्रह 'कुजात' की शुरुआत ही इस मामूली आदमी के बखान से होती है- 'बताने की ज़रूरत नहीं / देश उसके लिए सिर्फ़ बेदख़ली है / सिर छिपाने के लिए / चाहे रेल पटरी के किनारे चमकते नीले मोमजाने की छतें हों / या हों शहर में आवारा बिखरे सीमेंट पाइप / घर के लिए / इस महादेश में उसके पास कोई ऐसी जगह नहीं / जिसके पक्के कागज उसके पास हों।' मितकथन से अधिकतम और बहुत मार्मिक अभिव्यक्ति संभव करने वाले 'असंभव सारांश' के कवि आशुतोष दुबे का स्वर काफ़ी भिन्न है, लेकिन उनके नए संग्रह 'सिर्फ़ वसंत नहीं' में भी यह सचेत निगाह मिल जाती है कि हमें किसके जैसा नहीं होना है- 'जिससे लड़े / उसे हरा दिया / लेकिन इसके लिए / उसके जैसा ही बनना पड़ा / उसके वैसा होने के ख़िलाफ़ ही लड़ाई थी।'

हालाँकि इस टिप्पणी का मक़सद इस तरह के उद्धरण दे-देकर कुछ साबित करना नहीं है, बल्कि इन उद्धरणों का ख़तरा ये है कि इन कवियों और इनके संग्रहों के बारे में जो समग्र राय बन सकती है, उसकी जगह बस एक तरह का इकहरापन इन कविताओं में न दिखने लगे।

लेकिन यह सच है कि हिंदी कविता अपने बहुलांश में सत्ता, सांप्रदायिकता और बाज़ार विरोधी है- वह मामूली लोगों के पक्ष में इस तरह खड़ी है कि आलोचक लगभग हर कवि को मामूली लोगों की असाधारणता का कवि बताने को मजबूर हो जाते हैं। इन्हीं दिनों दिल्ली या हिंदी के जाने-माने केंद्रों से ही नहीं, छोटे शहरों से भी जो कविता-पुस्तकें छप कर आई हैं, वे भी इसकी तस्दीक करती हैं। पिछले दो-तीन महीनों में कम से कम ऐसे आधा दर्जन संग्रह मेरे पास आए हैं जो अपने ढंग से बहुत आश्वस्तिदायी हैं। कल्लोल चक्रवर्ती का 'कतार में अंतिम', कौशल किशोर का 'उम्मीद चिनगारी की तरह', राजेश कमल का 'अस्वीकार से बनी काया', प्रताप राव कदम का 'क़लम कैमरे की आँख की तरह', प्रकाश देवकुलिश का 'असंभव के विरुद्ध' वे संग्रह हैं जिनसे गुज़रना हिंदी कविता के बुनियादी चरित्र को पहचानना है।

ऐसा नहीं कि यह सब इसी साल घटा है। इसकी एक पूरी परंपरा रही है जिसे कई आवाज़ों के कई कवियों ने मिलकर बनााया है। नब्बे के दशक में देवी प्रसाद मिश्र, विमल कुमार, संजय चतुर्वेदी, कुमार अंबुज, बद्रीनारायण आदि की पीढ़ी से लगे-लगे इक्कीसवीं सदी के इन दो दशकों में ही पहचान बनाने वाले कवियों की बात करें तो आर चेतन क्रांति, संजय कुंदन, गीत चतुर्वेदी, अविनाश मिश्र, शायक आलोक, गिरिराज किराड़ू, हेमंत कुकरेती, प्रेमरंजन अनिमेष, नरेश चंद्रकर, सुंदरचंद ठाकुर, श्रीप्रकाश शुक्ल, कृष्णमोहन झा, देवेंद्र आर्य, पवन करण, पंकज राग, राकेश रेणु, घनश्याम कुमार देवांश, प्रेमशंकर शुक्ल, अनुज लुगुन, अनिल करमेले, सुधांशु फ़िरदौस, अदनान कफ़ील दरवेश, स्वप्निल श्रीवास्तव, मनोज झा, जितेंद्र श्रीवास्तव, कुमार अनुपम, अच्युतानंद मिश्र, महेशचंद्र पुनेठा, निशांत, शिवप्रसाद जोशी, सुशोभित सक्तावत, अंबर पांडेय, वीरू सोनकर आदि के नाम तत्काल याद आ जाते हैं। वैसे यह आधी-अधूरी सूची है जिसकी वजह इन पंक्तियों के लेखक के अध्ययन और स्मृति की सीमाएँ भी हैं और संभवतः उसके अपने कुछ पूर्वग्रह भी हों।

वैसे इस सूची में जान-बूझ कर किसी कवयित्री का नाम नहीं डाला गया है। क्योंकि यह बात अलग से उल्लेखनीय है कि दरअसल यह पूरा दौर वैसे तो पूरे हिंदी साहित्य में- लेकिन ख़ास कर कविता में- स्त्री लेखन के विस्फोट का है। बीसवीं सदी के आख़िरी दशक में हमारे पास कवयित्रियों की संख्या बिल्कुल गिनती की है। अनामिका, गगन गिल, कात्यायनी, तेजी ग्रोवर, सविता सिंह, निर्मला गर्ग, नीलेश रघुवंशी तक आते-आते यह सूची जैसे हांफने लगती है। उसके पहले और बुरा हाल है. कविता में सुभद्रा कुमारी चौहान और महादेवी वर्मा के बाद कोई नजर ही नहीं आती- कीर्ति चौधरी या स्नेहमयी चौधरी जैसे नाम भूले-बिसरे याद भले आ जाते हों। मगर पिछले कुछ वर्षों में हिंदी की स्त्री-कविता बिल्कुल मुख्यधारा पर दावेदारी की स्थिति में है। कम से कम 50 अच्छी कवयित्रियाँ समकालीन काव्य परिदृश्य में उपस्थित हैं और निरंतर रचनारत हैं। और वे अपने विषयों में, अपने काव्यगत उपचार में एक-दूसरे से इतनी भिन्न हैं कि उन्हें एक साथ रखने में कुछ संकोच भी होता है और कुछ हैरत भी। शुभमश्री, बाबुषा कोहली, मोनिका कुमार, अनुराधा सिंह, लीना मल्होत्रा राव, सपना भट्ट, पूनम अरोड़ा,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शैलजा पाठक, सुजाता, सुमन केशरी, अजंता देव, रश्मि भारद्वाज, जोशना बनर्जी आडवाणी, प्रिया वर्मा, नेहा नरूका, रुचि भल्ला, मेधा, मालिनी गौतम, स्मिता सिन्हा, उपासना झा, प्रतिभा कटियार, श्रुति कुशवाहा, रेखा चमोली, पल्लवी त्रिवेदी, अनामिका अनु, कलावंती सिंह, निवेदिता, आकांक्षा पारे, कविता कृष्णपल्लवी, ज्योति शोभा, स्वाति ठाकुर, नताशा, सीमा संगसार, सौम्या सुमन आदि जैसे एक असमाप्त सूची बनाते हैं जिनमें इतने ही नाम और जोड़े जा सकते हैं। निर्मला पुतुल, जसिंता केरकेट्टा, पूनम बासम, वंदना टेटे का यहाँ अलग से उल्लेख करने की ज़रूरत महसूस होती है क्योंकि वे आदिवासी अस्मिता-बोध का प्रतिनिधित्व भी कर रही हैं। इसी साल आए जसिंता केरकेट्टा के संग्रह 'ईश्वर और बाज़ार' में धर्म सत्ता, राज्यसत्ता और पुरुष सत्ता के विरुद्ध जैसी मारक कविताएँ हैं, उनका जवाब नहीं। वे लिखती हैं- 'वे कौन लोग हैं / जो सवाल पूछती लड़कियों को वेश्या बताते हैं / ये वही लोग हैं / जो धरती पर जन्म लेते समय / मनुष्य बनते-बनते रह जाते हैं।'

दरअसल यह वह अस्मितावादी लेखन है जो नब्बे के दशक से पहले चली आ रही विचारधाराओं के अपने लक्ष्यों से च्युत रह जाने का नतीजा है। चाहे वाम वैचारिकी हो या फिर तथाकथित पूँजीवाद की स्वतंत्र अभिव्यक्ति, इन्होंने अपनी एक मुख्यधारा बनाई और उसके समानांतर हाशिए पर पड़ी अस्मिताओं के साथ हो रहे भेदभाव को उपेक्षित रहने दिया। अश्वेतों को, स्त्रियों को, आदिवासियों को, दलितों को, दुनिया भर के अल्पसंख्यकों को यह समझ में आया कि उनकी कविता उन्हें ही लिखनी होगी, उसकी अनगढ़ता का बोझ भी उठाना होगा। हिंदी में भी यह अस्मिता बोध इन वर्षों में बड़ी प्रखरता के साथ उभरा है। प्रतिष्ठित दलित लेखक ओम प्रकाश वाल्मीकि की यह कविता अब लगभग 'क्लासिक' हो चुकी है- 'चूल्हा मिट्टी का / मिट्टी तालाब की / तालाब ठाकुर का। भूख रोटी की / रोटी बाजरे की / बाजरा खेत का / खेत ठाकुर का / बैठ ठाकुर का / हल ठाकुर का / हल की मूठ पर हथेली अपनी / फ़सल ठाकुर की / कुआँ ठाकुर का / पानी ठाकुर का / खेत-खलिहान ठाकुर के / गली-मोहल्ले ठाकुर के / फिर अपना क्या?/ गाँव? / शहर? / देश?' इसी तरह मलखान सिंह की कविता 'सुनो ब्राह्मण' भी किसी शूल की तरह चुभती है।

हाल के वर्षों में दलित कविता में सुशीला टाकभौरे, अनिता भारती, सूरजपाल सिंह चौहान, मलखान सिंह, मुसाफ़िर बैठा, रजनी तिलक, रजनी अनुरागी, श्योराज सिंह बेचैन, अवनीश, अंजलि काजल, पराग पावन, विहाग वैभव और नीलम जैसे कई कवियों ने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। उनके पास अपनी तकलीफ़ और अपनी बग़ावत दोनों को व्यक्त करने की एक शैली है जिसमें एक तरह की बेबाकी है। नीलम के संग्रह का ही नाम है- 'सबसे बुरी लड़की।'

सच तो यह है कि इस बदले हुए परिदृश्य ने तथाकथित मुख्यधारा के कवियों को भी प्रेरित या मजबूर किया है कि वे अपनी कविता में नई संवेदना के तत्वों का वहन करें। इस ढंग से देखें तो हिंदी कविता बड़े पैमाने पर प्रगतिशील मूल्यों वाली कविता है- स्त्रियों के पक्ष में, हाशिये पर पड़े लोगों के पक्ष में, सांप्रदायिकता और जातिवाद की जकड़न के ख़िलाफ़। यह सिर्फ़ इत्तिफ़ाक नहीं है कि बीते दिनों जिस एक कविता को लाखों पाठक मिले, वह एक बिल्कुल अनजान कविता बच्चालाल उन्मेष की 'कौन जात हो भाई' थी। एनडीटीवी के वेब पेज पर इस कविता और इस पर केंद्रित टिप्पणी को 48 घंटे में ढाई लाख से ज़्यादा पाठक मिले। कविता कुछ इस तरह है-

कौन जात हो भाई?
''दलित हैं साब!''
नहीं मतलब किसमें आते हो?
आपकी गाली में आते हैं
गन्दी नाली में आते हैं
और अलग की हुई थाली में आते हैं साब!
मुझे लगा हिन्दू में आते हो!
आता हूँ न साब! पर आपके चुनाव में।
क्या खाते हो भाई?
''जो एक दलित खाता है साब!''
नहीं मतलब क्या-क्या खाते हो?
आपसे मार खाता हूँ
कर्ज़ का भार खाता हूँ
और तंगी में नून तो कभी अचार खाता हूँ साब!
नहीं मुझे लगा कि मुर्गा खाते हो!
खाता हूँ न साब! पर आपके चुनाव में।
क्या पीते हो भाई?
''जो एक दलित पीता है साब!
नहीं मतलब क्या-क्या पीते हो?
छुआ-छूत का गम
टूटे अरमानों का दम
और नंगी आँखों से देखा गया सारा भरम साब!
मुझे लगा शराब पीते हो!
पीता हूँ न साब! पर आपके चुनाव में।
क्या मिला है भाई
''जो दलितों को मिलता है साब!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नहीं मतलब क्या-क्या मिला है?
ज़िल्लत भरी जिंदगी
आपकी छोड़ी हुई गंदगी
और तिस पर भी आप जैसे परजीवियों की बंदगी साब!
मुझे लगा वादे मिले हैं!
मिलते हैं न साब! पर आपके चुनाव में।
क्या किया है भाई?
"जो दलित करता है साब!
नहीं मतलब क्या-क्या किया है?
सौ दिन तालाब में काम किया
पसीने से तर सुबह को शाम किया
और आते जाते ठाकुरों को सलाम किया साब!
मुझे लगा कोई बड़ा काम किया!
किया है न साब! आपके चुनाव का प्रचार..।

इस एक कविता का कमाल है कि बच्चालाल 'उन्मेष' के दो कविता संग्रह तत्काल प्रकाशित हो चुके हैं। बेशक, उनमें बहुत सारी कविताएँ ऐसी हैं जो अनगढ़ हैं और ज़रूरी संपादन की माँग करती हैं।

तो यह वह पूरा परिदृश्य है जिसे हम समकालीन कविता का संसार कह सकते हैं- समृद्ध, भरा-पूरा, कई पीढ़ियों के कवियों से बना, प्रेम से लेकर युद्ध और क्रांति तक को अपना विषय बनाता।

लेकिन कविता के इस समृद्ध परकोटे में कुछ दरारें भी दिखती हैं। बहुत सारी चमकती हुई कविता अपनी शब्द बहुलता में आकर्षित करती है, मगर गहरा असर नहीं छोड़ पाती। वह जैसे अपने शब्दों से ही ढँकी हुई कविता है। जिस मितकथन या चुप्पी में कविता सबसे ज़्यादा संभव होती है, वह घटा है। बल्कि कई कवियों में यह मितकथन ऐसे अमूर्तन में दाख़िल हो जाता है कि फिर कविता खो जाती है।

दूसरी बात यह कि इस दौर में बहुत सारा कुछ है जो कविता नहीं, कविता का शिल्प है। एक ही डिज़ाइन में लिखी जा रही बहुत सारी कविताएँ हमारे सामने हैं। जाहिर है, उन्हें विचार या संवेदना से ज़्यादा फ़ैशन के तहत और युक्ति के साथ लिखा गया है। लेकिन क्या यह हर दौर में नहीं होता रहा है? बेशक, ख़राब और बहुत ख़राब कविताओं से भी हर ज़माने की दुनिया का साबिका पड़ता रहा है। श्रीकांत वर्मा ने एकाधिक बार लिखा है- 'बुरे कवियों से भरी है वसुंधरा।' तो यह शायद बहुत चिंतित होने वाली बात नहीं है।

मगर चिंतित होने वाली बात दूसरी है- हमारे समय में और हमारी कविताओं में तात्कालिकता का बढ़ता दबाव। सोशल मीडिया से आक्रांत और सूचनाओं से अतिक्रमित हमारे समय में संवेदना जैसे भाप की तरह आती है और उड़ जाती है। हम एक मुद्दे से दूसरे मुद्दे की ओर ऐसे चले जाते हैं जैसे नींद में डूबा या नशे में झूमता हुआ आदमी। हम शोक से निकलते हैं, शुभकामनाओं में दाख़िल हो जाते हैं, मातम से निकलते हैं और बधाई देने लगते हैं। आज मोहम्मद ज़ुबैर की गिरफ़्तारी का सवाल उठाते हैं और कल बिलक़ीस बानो के इंसाफ़ का। बेशक, ये सारे सवाल उठाए भी जाने चाहिए, लेकिन इन्हें हड़बड़ाई हुई, प्रतिक्रिया व्यक्त करने को बेताब, विरोध में खड़े लोगों की कतार में दिखने को आतुर कविता में बदलने की ज़रूरत नहीं। ब्रेख़्त ने यही बात कुछ दूसरे ढंग से याद दिलाई थी कि बहुत सारे छोटे-छोटे न्याय का सवाल उठाते-उठाते हम बड़ी नाइंसाफ़ी की ओर से मुँह मोड़ लेते हैं।

निश्चय ही हमारा समय बहुत बर्बर समय है। करीब सौ बरस पहले कवाफ़ी ने 'वेटिंग फॉर बार्बेरियन्स' जैसी कविता लिखकर जिस सच्चाई की ओर इशारा किया था, वह जैसे ज़माने में बार-बार लौट आती है। इसी नाम से जेएम कोट्ज़ी ने एक उपन्यास भी लिखा जिस पर फ़िल्म बनी।

यह सारा साहित्य- और यह पूरा साहित्यिक उपक्रम- बताता है कि प्रतिरोध की आवाज़ किसी न किसी रूप में बची रहती है, कि आततायियों की शिनाख़्त का काम भी चलता रहता है और उनसे मुक़ाबले का भी।

लेकिन यह काम जोशीले नारे लगाकर या बहुत सजावटी कविता लिखकर नहीं किया जा सकता। इन बर्बरों की पहचान और उनके प्रतिरोध का काम वही कविता कर सकती है जो बहुत संवेदनशीलता और सूक्ष्मता के साथ अपने समय को दर्ज करे, अपनी स्मृति को- और उसके ज़रिए जीवन के सिलसिले को बचाए रखे- राजनीति और समाज में बदलती बहुत छोटी-छोटी सच्चाइयों पर नज़र रखे और अंततः लोगों के भीतर कुछ पैदा करे- चाहे वह उम्मीद हो या फिर भरोसा या फिर मायूसी या निराशा ही। क्योंकि हम तो ऐसे समय में फँसे हुए हैं जिसकी भयावहता को महसूस करना भी संभव नहीं रह गया है, जिसमें निराशा तक का पता नहीं चलता। शुक्र है कि हिंदी में बहुत सारी कविता फिर भी लिखी जा रही है जो आने वाले वक़्तों में इस बात की मिसाल बनेगी कि जब बेशुमार रोशनियों और उससे भी ज़्यादा शोर के साथ अँधेरे में दफ़न सच्चाइयों को ढँक दिया जा रहा था, तब शब्द चुपचाप अपना काम कर रहे थे, वे उन अँधेरों के वजूद की याद दिला रहे थे।

सम्पर्क - 98119 01398

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी कविता समय - 4

नरेंद्र नागदेव

(कलाओं के सौंदर्यबोध से कविता में रंग, आकार, चित्रात्मक लय से वस्तु जगत को रूपाकार देने वाले कवि, चित्रकार।)

कला एवं फिल्म विषयक

चेहरों पर चेहरे

उस पेंटिंग में
एक क्रूर चेहरे वाला
बलिष्ठ व्यक्ति खड़ा था
आतंक का पर्याय बने
उसके हाथ में लोहे की
मोटी जंजीर थी
जिसे उसने
एक निरीह की गर्दन में
बाँध रखा था
जो सड़क पर घिसटता
पड़ा था
बेबस
पीछे भीड़ थी
स्तब्ध तमाशबीनों की

वह पेंटिंग था
गुलाममोहम्मद शेख का
जो कला दीर्घा में लगा था
पिछले हजारों सालों से
नीचे पड़े व्यक्ति के
चेहरे की जगह
एक-एक करके
तमाशबीनों के चेहरे
लग जाते थे
फिर उनकी जगह
और दूसरों के

लेकिन इतिहास को इंतजार था
कि किसी दिन
क्रूर व्यक्ति के चेहरे की जगह
निरीह का चेहरा आ जाए
और निरीह की जगह
क्रूर का
जिसके गले में कसी जंजीर
थामी हो निरीह ने

उस क्षण के इंतजार में
बीत जाती है शताब्दियाँ
दार्शनिक
क्रांतिकारी
आते और चले जाते हैं
अपनी-अपनी पारी खेल कर

सुकरात चला जाता है अपना
जहर का प्याला उठाकर
पेरिस में गिलोटिन ऑपरेटर
इंतजार करता है
नई गरदनों का
कार्लमार्क्स अपने साथ
ले जाता है
अपनी उम्मीदों का चिराग
कहीं कुछ नहीं बदलता

मैं नाटक में अपना भाग
खेलकर
बेहद असंतुष्ट हूँ
हर बार मेरा चेहरा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्यों जाकर
लग जाता है
सड़क पर घिसटते
निरीह चेहरे की जगह

मैं क्यों बार-बार
उस नृशंस की आँखों में
आँखें मिलाना चाहता हूँ
और रह जाता हूँ
मन मसोस कर
अभी और कितने हजार वर्ष
टँगे रहना होगा इसी तरह
उस पेंटिंग को
दीवार पर

फ्रीदा काहलो

(प्रसिद्ध कलाकार फ्रीदा काहलो की पेंटिंग से प्रेरणा ले कर)

फ्रीदा काहलो
तुम्हारी पेंटिंग की तरह ही
मेरे पास भी है
जंगल की चमकती सी
हरितिमा का विस्तार

मैं भी एक
हिरण हूँ तुम्हारे ही समान
मैंने भी
कुलाँचे भर भर कर
निखारी है
वनों की जीवंतता

पर देखो तो मेरी मासूमियत
अथवा मूर्खता
कि शिकारियों से उम्मीद करता रहा
अपनी क्रीड़ाओं पर मुग्ध होने
और तवज्जो पाने की

तुम ज्यादा व्यावहारिक थी
कि हिरण के मुँह की जगह
अपना सिर लगा लिया
पेंटिंग में
और शिकारियों के तीरों से
बींध दी अपनी ही देह

इसलिए तुम्हें शायद
उतनी पीड़ा नहीं हुई हो
जितनी मुझे हुई थी
तीर खा कर
जो अक्सर होती है
उम्मीदों के टूट जाने पर

भयभीत हिटलर

जब विजयी रूसी सैनिक
बर्लिन को रौंदते हुए
आ पहुँचे
हिटलर के दरवाजे तक
तब उसने इच्छा प्रकट की
अपना अंतिम पोर्ट्रेट बनवाने की

तब ढूँढ़ कर लाया गया
एडोल्फ नामक
उस किशोर को
जो वह स्वयं था
और जिसने
चित्रकला की शिक्षा ली थी
एक स्कूल ऑफ आर्ट में

हिटलर को सामने बैठा कर
पोर्ट्रेट बनाते हुए
एडोल्फ ने कहा
कि बहुत
डरे हुए लग रहे हो हिटलर
डर लग रहा है क्या मृत्यु से

बिफर गया था वह सुन कर -
''उससे क्या डरना
वह तो उम्र भर साथ रही है
डर तो तुमसे रहा हूँ एडोल्फ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जो मैं स्वयं था
और जिसके मन में
सृजन के बीज हुए थे अंकुरित
और मैं जान बूझ कर चूका
दुनिया में
सुंदरता के
कुछ और रंग भरने से

मैं कैसे बताऊँ
कि मै कितना भयभीत हूँ एडोल्फ अब
तुम्हारा सामना करने से

एक दिन भीमबैठका में

भीमबैठका की शिलाओं पर
जब चित्र रचे थे
आदि मानव ने
तब कह नहीं सकते
कि ईश्वर उनके पास था

इसलिए वहाँ सिर्फ़
भूख थी और
जीवन का उल्लास था

मैं तो हैरान रह गया
कि उन गुफाओं में
शैल चित्रों के आगे
खड़े होकर
कुछ देर निहारा तो वे
तमाम आकृतियाँ
गतिमान हो उठीं

मेरे सामने ही
हाथों में पत्थरों के औजार ले कर
आदिमानव निकल पड़े
वन्य जीवों के शिकार पर
स्त्रियाँ एक दूसरे के
हाथ थाम कर
नृत्य करने लगी थीं कतारबद्ध
मुझे सभागार में
अनायास मिल गया था
वह आदिमानव
जिसने मिट्टी के रंग से
सबसे पहले
सबसे पहली रेखा
खींची थी गुफाओं में
उसकी आँखों में
सृजन का वही उल्लास था
जो दुबई में
बुर्ज खलीफा की अंतिम मंजिल
पूरी होने पर
वास्तुकार की आँखों में रहा होगा

तब तक
शिकार पर गई आकृतियाँ
बीस फीट लंबा शिकार ले कर
लौट आई थीं
उनके चेहरे पर
वही संतोष की थकान थी
जो अर्नेस्ट हेमिंग्वे के
बूढ़े मछुआरे के चेहरे पर
समुद्र से
बीस फुट लंबी मछली
फाँस लेने के बाद
रही होगी

मैंने तो दिनभर उनके साथ
कितनी-कितनी बातें की थी
अफसोस सिर्फ़ यह
कि उन्हें छूने की
इजाजत नहीं थी

सम्पर्क - 9873498873

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शंकरानंद

(अपनी स्थानीयता से आधुनिकता के विडंबना पूर्ण यथार्थ को पढ़ने-परखने वाले युवा कवि।)

रोटी देखकर

एक ही जगह पर
एक ही चूल्हे पर पकी रोटियाँ
अलग होती हैं

उनके स्वाद अलग होते हैं
उनकी गंध अलग होती है
उनका जलना अलग होता है
उनका सीझना भी अलग होता है

रोटी देखकर कोई नहीं बता सकता
उस रोटी के बनने का सुख कितना गाढ़ा है

यह भी नहीं बता सकता कोई कि
यह रोटी कितने आँसुओं की आँच पर
पक कर तैयार हुई है।

बोलने से

पानी काँपता है जरा सी आवाज से
दूर तक के वीराने में
पहचाने लोगों को खोजने की फ़िक्र
मीलों दूर के सफर आसान कर देती है

कौन मिलता है जो पूछ ले हाल और रोए नहीं
सबकी आँखें हैं और आँखों में एक गहरा कुआँ है
उसमें काई जम गई है गहरे रंग की
ऊपर से देखने पर फिसलने का डर बिल्कुल नया है

मैंने सैकड़ों नंबर सुरक्षित कर लिए हैं
कुछ याद भी है
लेकिन कोई भरोसा नहीं कि जब आवाज दूँ तो
वह वापस भी लौटेगी या नहीं

जो भरोसा है वह बोलने से ही है
नहीं बोलो तो क्या मनुष्य और क्या पत्थर
यह दुनिया बुत की है आवाज के बिना

जरा सी आवाज होती है और शांत मन काँप जाता है।

खेत में

सबके देखने का तरीका अलग होता है

कोई खेत देखता है तो उसकी लम्बाई चौड़ाई देखता है
कोई उसकी जगह देखता है कि वह कितना जरूरी है
कोई उसके भाव जानना चाहता है कि
आखिर यह खेत कितने में बिक सकता है
कोई मिट्टी देखता है तो कोई बीज
कोई नमी देखता है तो कोई हरियाली
कोई फसल देखता है तो कोई उसका मूल्य

एक खेत को जितने लोग देखते हैं
उतनी बातें हो सकती है

हद ये है कि जब कोई खेत देखता है तो किसान नहीं देखता
जबकि वह भी वहीं मिट्टी में दबा रहता है
बीज के साथ
हर मौसम के बाद वह कुछ और गल जाता है
हर फसल के बाद कुछ और टूट जाता है वह

लोग खेत देखते हैं
वह अपनी मौत देखता है!

सम्पर्क - 8986933049

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बाबुषा कोहली

(समकालीन युवा कविता की भाषा, वस्तु और शैली में नवाचार की कवि।)

1.
आज़ाद होने की चाह के साथ नहीं पैदा हुई
मैं आज़ाद ही पैदा हुई थी

शायद हर बच्चा आज़ाद पैदा होता है

बड़े होने पर भूल जाते हैं कई बच्चे यह बात
कि जुगनुओं के पीछे बेफ़िकर भागते फिरते
वे आज़ाद थे

धीरे-धीरे वे छोड़ देते हैं जुगनुओं के पीछे भागना
और आज़ादी को पाने के लिए संघर्ष करते हैं

आज़ादी के विचार के पीछे भागते हुए

2.
फूल बड़े ध्यान से सुनते हैं तितलियों को
मिट्टी लाड़ से फूलों को सुनती है
पानी एकाग्रचित्त हो मिट्टी को सुन लेता
आँखें मेरी डूब कर पानी को सुनती हैं

पेड़ हवा को न सुनते
तो इस जगत में कितना कुछ अनसुना रह जाता?

जो तुम मुझे न सुनते
परमात्मा की सृष्टि पर दाग़ लग जाता

3.
जिन वक़्तों में
कुछ सनकी साइंसदान आसमान के अनछुए हिस्सों पर
क़ब्ज़ा करने की तैयारी करते थे
गति के देवता ने धरती को अपने क़ाबू में कर रक्खा था

दुनिया छोटी थी-
इतनी छोटी कि जेब में समा जाती
बच्चे बड़े पैदा होते थे-
इतने बड़े कि तुतलाया नहीं करते

आदम में आदम कम था
हव्वा में हव्वा कम
नदियों में पानी कम था
मौसमों में मौसम कम

अँगुली के एक चटके से खुल जाता था
माया का अनथक संसार
लोग दो दिनों में मशहूर हो जाते थे
चार दिनों में गुमनाम

हँसी कई फ़िल्टरों के बाद होठों तक आ पाती थी

जिन वक़्तों में
नक़्शे के किसी भी हिस्से में अचानक उड़ी बारूद की गंध
फूलों की फ़ितरत रौंद देती थी
एटमी ताक़तों के ज़ोर से परिंदे कुछ कम चहकते थे
ज़मीन खोद कर ख़ुदा की ढुँढ़ाई मची रहती थी

और पत्थर या पानी तो कभी-कभी
मिल भी जाते थे -

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ख़ुदा नहीं

जिन वक़्तों में
कुछ रौशनज़ेहन लोग नज़्में लिखते, बहसें करते
अहवाल की बेहतरी की तरकीबें सोचा करते थे
और हुक्मरान उन तरकीबों पर पानी फेरा करते

जिन वक़्तों में
गीत गुनगुनाना कुफ़्र से कम तो हरगिज़ नहीं था
हज़ार फ़िल्टरों के बरअक्स एक सच्ची मुस्कुराहट पर
ज़हर के प्याले का ख़तरा मँडराता था

हर ओर हाहाकार था
उदासियाँ थीं
जंग थी
वबा थी
मौतें थीं
ख़ुदक़ुशी थी

अगली सदी में कौन मानेगा

उन वक़्तों में –
तुम मोरपंख की नोक को सियाही में डुबो कर
भोजपत्र पर मुझे ख़त लिखा करते थे

4.

कोई पूछे कि वह सड़क कहाँ है तो मैं बता नहीं पाऊँगी
इसलिए नहीं कि बताना नहीं चाहती वरन इसलिए
कि मुझे स्वयं अनुमान नहीं दुनिया के भूगोल में
वह सड़क कहाँ है

यह और बात है कि अब भी मेरी सफ़ेद कुर्ती की जेबों में
भरे हैं उस सड़क से बीने हुए रंग-बिरंगे
छोटे गोल पत्थर
कौन-सा देश है, शहर कौन-सा, समय क्या चल रहा है
कुछ नहीं पता

क्या इस पृथ्वी पर ऐसी सड़क कहीं हो सकती है
जो किसी मानचित्र में ढूँढ़े न मिलती हो
जहाँ सूर्य और चन्द्रमा अपने उजास के वैभव में
काल के अस्तित्त्व को लील लेते हों
जहाँ सरल से सरल वाक्य भाषा के व्याकरण को
चुनौती देते हों

क्या अब भी मैं उसी सड़क पर चल रही हूँ
जिसका कोई ओर-छोर नहीं

पर्यावरणविदों को मैं नहीं बताना चाहती कि वह सड़क
धरती के किसी अज्ञात सिरे से निकल कर सीधी
आकाश तक जाती है
न यह बताना चाहती हूँ कि उस सड़क के दाईं ओर
एक बूढ़ा आम का पेड़ है जिसकी टहनियों पर एक प्रेयसी
अपने हृदय की रगें बाँध आती है
बिन कोई मन्नत माँगे

धार्मिकों को मैं नहीं बता सकती कि उस सड़क के बाईं ओर
एक घने पेड़ की हरियाली छाँव तले गेरू से पुते छोटे-से मन्दिर
में कोई अप्सरा साँझ का दीया बाल जाती है
इतने अनगढ़ वहाँ के पत्थर कि चीन्हा नहीं जा सकता
कौन से देव विराजे हैं

राजनेताओं को बताने का कोई अर्थ नहीं है कि उस सड़क पर
चिड़ियों की अज़ान के पहले सूर्यनारायण पट नहीं खोलते
धवल बगूलों की क़तारें अल्लाहू का कीर्तन करते हुए आकाश
के अंतहीन विस्तार में विलीन हो जाती हैं

आग की शुद्धता से भयभीत लोगों को भला मैं क्या बताऊँगी
कि इसी सड़क पर चलते हुए मुझे मृत्युलोक की प्राचीनतम
कथाएँ सुनाते हैं मृत्युंजय
अचानक कहीं ठहर कर सुनने लगते हैं
प्रसव की पीड़ा से जूझती हवा की रुलाई
नए क्षण के जन्मने पर पत्तियों का सोहर
कोयल व झींगुरों के मंगल गीत
आगामी घावों की मद्धम चेतावनियाँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देर तक एक ही स्थान पर ठहरे रह जाते मृत्युंजय
फिर मेरे पाँव के नीचे आए नुकीले कीले को अपने नरम हाथों से उठा कर दूर फेंक देते हैं

खगोल भौतिकी के जिन विद्यार्थियों ने कभी नील द ग्रास टायसन के ब्रह्मांड संबंधी चुटकुले नहीं सुने और सड़कों पर रात का तिलिस्म उतरते नहीं देखा
भला वे क्या जानेंगे कि अंगार पर चलने वाले फ़क़ीरों के लिए
आकाशगंगा में बदल जाती है उस सड़क किनारे की पुलिया

फ़ंतासी रचने वाले कथाकारों को कभी नहीं बताऊँगी कि
एक दिन जब रामदीन मृत्युंजय से नमस्ते कर रहा था
मैं मूर्छित हो गई थी उस सड़क पर
पत्रकारों को कभी नहीं बताऊँगी तब मैं जूझ रही थी इस दुविधा में कि रामदीन जीवित व्यक्ति है या हमारी ही तरह स्वर्ग में टहलने चला आया है

मैं अपनी किसी कविता को यह नहीं बताऊँगी
आकाश गंगा पर बैठे मृत्युंजय एक बार कह रहे थे
कि स्त्री को प्रेम चाहिए तो उसे कवि होना चाहिए
न ! शब्दों से नहीं -
हृदय से

और पुरुष को प्रेम चाहिए तो उसे संन्यासी होना चाहिए

तोल्सतोय को नहीं बताऊँगी कि उसी सड़क पर एक सुबह
मृत्युंजय नीम का दातुन घिस रहे थे जब मैं
जिब्रान और मैरी के विचित्र संबंध के विषय में सोच रही थी
उसी साँझ मृत्युंजय ढलते सूर्य के साथ आँखें मिला रहे थे
तब मैं तथागत और गोपा के पूर्व जन्मों का
लेखा-जोखा कर रही थी जिसके बारे में
दीपांकर बुद्ध बताते हैं

मैं मृत्युंजय से नहीं बताऊँगी
कि उनकी जोग ठगौरी में मेरी कोई रुचि नहीं है
और स्वयं से कभी नहीं बताऊँगी कि एक रात
उसी सड़क के बीचों-बीच लगभग आनापान की लय में सधे
मेरे श्वास को अस्त-व्यस्त करते हुए
मृत्युंजय ने जिब्रान को बेवक़ूफ़ घोषित किया था
और तथागत को कहा था
दूसरा जिब्रान

5.

कभी अस्त नहीं होता वह सूर्य जिसे ताकती है
कोई प्रेमिका

आधा नहीं होता वह चन्द्रमा जिसे निहारते हैं
अलग अलग शहर की छतों से
दो प्रेमी

टूट कर धरती पर नहीं बिखरते वे सितारे
अनायास जिन्हें देखते ही शिशु की इच्छा से भर उठती हो
किसी माँ की छाती

चिर युवा रहती है वह स्त्री जिसे प्रेम करता है
कोई संन्यासी

सम्पर्क - baabusha@gmail.com

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रांजल धर

(गहरे सामाजिक सरोकार के कवि, जिनकी निगाह अदेखे संसार में गमन के लिए प्रयत्नशील है।)

या और अथवा

वह एक पगडण्डी थी या नदी, कह नहीं सकता
मूर्ख और जड़ जो हूँ भाई जी या फिर बहन जी और कितने या और अथवा
क्या मुझे एलजीबीटीक्यू को खोलकर कहना चाहिए
और अगर कहना भी चाहिए तो क्यों भला?
लेकिन घासों ने दुलार दिया था मुझे और मेरी सशंकित आत्मा को
गहरी बूँद थी वहाँ आँसू की एक
और वहाँ एक रास्ता ज़रूर था
कुछ चित्र थे, कुछ शब्द थे, बाकी सब मौन था,
इशारे तक न थे, बिम्ब की तो बात ही दूर बहुत, बहुत दूर
और मैं नाकारा एक चित्र रचता रहता था अपनी अनगढ़ देसी कलम से
लोग हँसते थे और हँसते ही जाते थे
उनकी पोथियाँ अलग थीं शायद
वो किताबें बहुत अलग थीं शायद
रंग नहीं थे, यहाँ तक कि काला रंग भी नहीं
ग़ैर-मौजूदगी का यह मेरे जीवन में सबसे बड़ा सानिहा था
कुछ नहीं था, नकार का नकार था, आबला-पा मैं भटकता था,
मग़रिब था, शून्य था, नदियाँ और पौधे थे, इंसान नहीं थे,

पर एक भाषा ज़रूर थी
एक कवि जिसे पढ़ने को जूझ रहा था
धूल झाड़ी कवि ने पुरानी कविताओं की
कविताओं के ग्रन्थों की,
कुछ चिरसम्मत कवियों का मूल पाठ भी पढ़ा
सभ्यताओं के ध्वंस के कारणों तक पहुँचा एक न पहुँचा हुआ कवि
उसके भीतर का आन्दोलन उसे सीलन भरे एक मकान तक ले गया
पुरानी गीली ईंटें, चिकनी मिट्टी से बनी दीवारें और कुछ सीढ़ियाँ जर्जर
वे सीढ़ियाँ कहीं किसी रूप में ऊपर चढ़ने के लिए नहीं थीं हर्गिज़
कुछ पुराने काग़ज़ के धूल सने पुर्ज़े थे, कुछ टिकटें थीं रोडवेज़ की
और यही सब, और यही सब
उसका एकमात्र हासिल थीं, जीवन के एवज़ में
लिखने को पेंसिल तो थी पर कार्बन नहीं था।
अकेली पेंसिल के सहारे वह पगडण्डियों पर घूमता रहा
नहीं, घूमता नहीं रहा, भटकता रहा
भटकना उसके जीवन का पर्याय था शायद
शायद कहूँ या कदाचित
आजकल लफ़्ज बयाँ करने के अपने ज़हीन ख़तरे पसरे हैं
और चित्र गढ़ने के तो और भी ज़्यादा।
मैं एक चित्र गढ़ता हूँ
दिखाता हूँ उस चित्र को चित्रकारों को, दोस्तों को, अपनी बेगमजान को
कुछ निकलता नहीं उस नीरस चित्र में
फिर मैं एक और सुधरा हुआ चित्र गढ़ता हूँ।

कुछ कच्चे मकान थे, रेल की पटरियाँ थीं,
धूमिल से बच्चे थे
लोक एक तंत्र से धूमिल आशाएँ थीं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रोती हुई माँएँ थीं, मजबूर आहें थीं
शापित कन्याएँ थीं
इनको निगलने हित,
बड़े-बड़े शोकों की बड़ी-बड़ी बाँहें थीं
जुमले सरकारी थे, पदों पर मदारी थे
किसी एक देश का बीता सत्तर साल था,
इकहत्तरवें साल में तो और बुरा हाल था
मेरे पास सपना था, उनके पास जाल था
मैं अकिंचन था और उनके पास माल था
इसी के कारण वे पलट रहे पाँसे थे,
अगले साल देने हित इसी साल झाँसे थे
जाल बिछाने की कला में वे माहिर थे
झूठ उनके सारे अब लेकिन जगजाहिर थे

खोज

तुम ढूँढ़ोगे पर नहीं मिलेगा
तुम खोजोगे पर मेरे दर्द की बर्फ़ हाथ न आ सकेगी तुम्हारे,
पिघल जाएगी,
तुम्हारे हार जाने के बाद मेरा दर्द फिर बर्फ़ की तरह जम जाएगा
तुम उस बर्फ़ को फिर पकड़ने आओगे
और एक बार फिर तुम्हारे हाथ लगेगी
शाश्वत निराशा।
क्या तुम फिर कोशिश करोगे?

कुछ लोग बड़े

कुछ लोग मिले जीवन में जिनसे जीवन की रसधार मिली
कुछ बेरोज़गार थे, कुछ नौकरी के लिए भटक रहे थे,
कुछ सबसे बड़े सरकारी अफ़सर थे
और अपने ही जीवन को नष्ट करने की भाषा के सन्धान में व्यस्त थे बहुत
उन्हें यह दुनिया बहुत ग़ैर-मुकम्मल लगती थी
काश बात यहीं ख़त्म हो जाती लेकिन
कुछ वैज्ञानिकगण भी थे जो अपने आप को वैज्ञानिक कहते थे
और ऐसा कहने वाले वे लोग अकेले स्वयंभू थे
कोई दूसरा इंसान उन्हें वैज्ञानिक नहीं कहता था
उन्होंने कोई आविष्कार नहीं किया था
और यह बेशर्मी की इंतिहाँ थी जो किसी टुटपुँजिहे कवि के
तकिये के नीचे इज़्ज़त के साथ पड़ी रहती थी जैसे कोई बिटिया अपनी माँ के पास,
ये लम्बी-लम्बी चमकदार कारों वाले ऐसे लोग थे
जिनकी मर्यादाएँ ईएमआई पर क़ायम थीं।
इन वैज्ञानिकों के बारे में
कहीं किसी भी अख़बार में अनुसन्धान की कभी कोई ख़बर नहीं थी
चौबीसों घण्टे चलने वाले टीवी चैनल भी फेल थे
और मैं बहुत सारे अख़बार पढ़ा करता था, यहाँ तक कि मेरी पत्नी भी
मैंने अपनी जवानी गँवाई यह जानने में
कि वे वैज्ञानिक या अफ़सर नहीं थे हर्गिज़
वे वैज्ञानिक या अफ़सर की पोस्ट भर पर काबिज़ महज़ थे
और पोस्ट के अलावा कुछ भी नहीं था उनके पास
वे अपने बच्चों की ट्यूशन फ़ीस के लिए
विभिन्न अनुभागों के चक्कर काटते थे
वे केवल आठ से नौ घण्टे के लिए वैज्ञानिक के पोस्ट पर नपुसंक की तरह रहा करते थे
कोई मेघनाद साहा या वेंकटरमन रामकृष्णन नहीं था इनमें,
चवन्नी का सिक्का बन्द होने के बाद भी
ये लोग चवन्नी के लिए मरे जाते थे और टीए डीए का फ़ॉर्म भरते थे
चाहे रिश्तेदारी या किसी और कारण से
वे भारत सरकार के करदाताओं का पैसा लूटने में पारंगत थे
पीएच.डी. की थीसिस किसी और से लिखवाते रहे
पर मुफ़्त में नहीं, बाकायदा पैसा पेमेण्ट किया
इसलिए ओढ़ी हुई एक ईमानदारी थी
सरकारी नर्सरी से गमले चुराए बाल-पौधों के साथ
पौधों की पत्तियाँ कुछ कम हरी थीं, क्लोरोफ़िल की वंचना थी
उन्हें चुराई हुई कम्पोस्ट के साथ घर में घना हरा जो होना था
इस तरह खाद और पानी और पौधों से इन महान लोगों ने
घर सजाया अपना, जो सज न सका, डूब गया, डूबना ही था
और अचानक एक कमज़र्फ़ चूहा मिला
उसे कुतरने की आदत थी
उसने बाघ के आशियाने को कुतर दिया।

सम्पर्क - 99906658881

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अनामिका अनु

(दक्षिण भारत से आज की कविता में नये वस्तु संसार के सृजन की आग्रही कवि।)

ज़िक्र

तेरे ज़िक्र पर अब थमते नहीं मेरे कान
जाने किस दुकान पर तुम बिक गए
ये आखिरी ख़बर सुनी थी कान ने
फिर तेरे ज़िक्र से बहरी रही उम्र भर

मैं वर्जिन सिनेमा हूँ

मैं वर्जिन सिनेमा हूँ
न रिचर्डब्रेनसन वाली
न एम जी एम वाली
मरी देवकन्या
को होगा पूर्वाभास

मैं चारूलता के म्यूजिक रूम
से देख रही हूँ अपराजित देवी,
कापुरुष, महापुरुष, नायक और
सारा संसार

तीन कन्या चिड़िया खाना में आगंतुकों
की कर रही है प्रतीक्षा
शतरंज की चाल चल रही है क़िस्मत
जन अरण्य में एक भी मनुष्य नहीं
जो रुदन का जवाब सांत्वना से दे

और मौत का जीवन से

खोखरन

अब्बा के बाद दूध दही घी बँटा
खोखरन भी नहीं बचा
भाईयों की भूख से
ज्यादा नीयत ख़राब थी

बंद स्कूल, मैं और बिल्ली

मैं तुम्हें ले नहीं जा पाऊँगी
मेरे घर में मछली और भात नहीं पकता है रोज
दूध भी रोज नहीं आता

हर दिन छककर खा पाना
मुश्किल है
तुम्हें क्या खिलाऊँगी?
अब्बा एक साल हुए लौटे नहीं
अम्मी को इस महीने भी काम नहीं मिला

स्कूल बंद है
दोपहर का भोजन भी
इस गेट पर कब तक मेरे साथ बैठी रहोगी
प्यारी बिल्ली?

तुम किसी की दीवार फाँद
कहीं भी म्याऊँ-म्याऊँ कर माँग सकती हो
भोजन

तुम बिल से चूहे पकड़ कर खा सकती हो
बगल के खेत, किसी के घर आँगन में जाकर

मैं मूली के इस खेत से
एक मूली उखाड़ कर खा लूँ
तो पहरेदार चोर कहेगा

मैं म्याऊँ-म्याऊँ करूँ
तो लोग पागल कहेंगे
पत्थर मारेंगे
और कोई कुछ भी खाने को नहीं देगा

तुम मेरे साथ बैठकर स्कूल और दोपहर के भोजन
की प्रतीक्षा छोड़ दो
तुम्हारे पास मुझसे अधिक विकल्प हैं।

सम्पर्क - anamikabiology248@gmail.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आलेख

पर्यावरण के प्रश्न और समय की कविता

नरेश चंद्रकर

(समकालीन युवा आलोचना में कविता की नयी प्रवृत्तियों का उत्खनन करने वाले कवि आलोचक।)

बदलते समय के सामने उपस्थित वैश्विक-विषय अनेक हैं, जिन पर हमारी कविता में ध्यान कम है। कविता में, हर समय में एक दौर ऐसा भी गुज़रता है जब विषय की नवीनता कम पड़ने लगती है और उस समय के अधिकांश कवि गिने-चुने विषयों के इर्दगिर्द घूमते हुए कविताएँ लिखने लगते हैं। यह सिलसिला टूटता है या किसी को इसे तोड़ना पड़ता है। जैसे आठवें दशक की कविता में जब बच्चे, पेड़, चिड़िया, रोटी, पहाड़ और क्रांति ही कविता के विषय बन गए थे और अधिकांश कवि इन्हीं विषयों को अपनी रचनाओं में दुह रहे थे, तब कवि **इब्बार रब्बी** ने यह कविता लिखी थी :

दुनिया के बच्चो
बचो और भागो
वे पीछे पड़े हैं तुम्हारी
खाल खींचने को हड्डियाँ नोचने को

बड़े तुम्हे घेर रहे हैं
हीरे की तरह जड़ रहे हैं
ठोक पीट कर कविता में

बच्चों, पेड़, चिड़ियों
रोटी, और पहाड़ों
भागो क्रांति तुम छिपो
हिन्दी के कवि आ रहे हैं
कागज और कलम की सेना लिए
भागो जहाँ हो सके छिपो।

भागो कविता

कविता के नए विषय समय के सच से अलग तरह के होते है। उन कविताओं में हर उस चीज़ से बात होती है जो अदृश्य है। कवि **राग तैलंग** की एक ऐसी ही कविता है **"खून कैसे बनता है"** आगे कभी शायद ही अन्य किसी कवि ने इस विषय को सोचा होगा ।

ज़रूरतमन्द को खून देने की इच्छा से पहले खून बनता है
एक प्यासे पौधे को पानी, मरीज को दवा, किसी को सहारा-सांत्वना
यहाँ तक कि दुआ देता हूँ तो खून बनता है

साँस लेता हूँ, घूमता हूँ, चलता हूँ, दौड़ता हूँ
हुलस कर एक बच्चे को गोद में उठाता हूँ खून बनता है
ठण्डी चट्टान पर हाथ रखता हूँ एक वर्कर को निहारता हूँ
बिजली के रंगों पर आश्चर्य करता हूँ
फिर आसमान की ओर ताकता हूँ खून बनता है
सच बोलता हूँ तो खून बनता है।

यह नए विषय का कविता में आना है। यह नवीनता की छटपटाहट की तरह भी नहीं है, बल्कि एक एहसास की तरह है, एक अनुभूति की तरह है। यह **राग तैलंग** की कविताओं के सामर्थ्य को दर्शाता है और नए विस्तार में कविता को ले जाने की एक कोशिश भी इसमें नज़र आती है। इसी तरह **असद जैदी** की कविता इंदिरा विकास पत्र पर कविता है, **विजय कुमार** की कविता तंग गलियों में मर्सडीज है। उनकी ही एक अन्य कविता रक्त बेचने वालों पर है, अर्थी सजाने वालों पर **शरद कोकास** की कविता है, तीर्थ यात्रा करते हुए दुर्घटना में मारे गए तीर्थ यात्रियों पर **अनिल गंगल** की कविता है, **मदन कश्यप** की कुरुज एक अनूठी कविता है जिसमें **कुरुज** उस जगह को कहते हैं जहाँ एक खास मौसम में इकट्ठे होकर परिंदे अपने पुराने पंख झाड़ते हैं और गर्भाधान करते हैं। यह बहेलियों की भाषा का

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शब्द है। वरिष्ठ कवि **लीलाधर जगूड़ी** की गिलहरी और गाय के बहाने कविता है, वरिष्ठ कवि **ज्ञानेन्द्रपति** की नगर में आए चार हाथी पर कविता है।

दरअसल, कविता की चिन्ताओं का क्षेत्र अधिक व्यापक और विस्तृत है। कविता की पहुँच अधिक गहरी, बहुआयामी, मानवीय और प्रामाणिक है तथा कविता उन सभी कोशिशों और चिन्तनों से सन्दर्भ ग्रहण करना चाहती है जिन से आज हम गुजर रहे हैं, जिन संदर्भों से आज हम लड़ रहे हैं, जो हमारे आज के सवाल हैं। किन्तु अधिकतर कवि जाने अनजाने में उसे एक पूर्व निर्मित भावकोण या विचारधारा में बाँधते हैं जो भावकोण या विचारधारा उस समय में बहुप्रचारित होती है। कवि यह इसलिए करते हैं क्योंकि उनकी कविता विचारधारा से जुड़ी लगे जबकि आज का समय पहले की तुलना में बहुत बदल गया है। और समय के इस नए आयाम के प्रभाव में अब संपूर्ण निषेध की कविता का भाव कम होने लगा है जो एक जमाने में प्रबल था। अब बहुत कम कविताओं में केवल तनाव भरी भाषा बची है। कविताओं में किसी प्रकार की खास आक्रामकता भी नहीं है। ऐसे भाव नहीं हैं कि मानों कवि सम्पूर्ण समाज के विरुद्ध खड़ा हुआ है। वैसी कविता भी नहीं है जिनमें भावोच्छवास में लिपटी मन:स्थितियाँ प्रकट हो रही हों। इन दिनों की कविता में बहुत हिंस्र भाषा नहीं है परंतु बहुत करके आत्म-मुग्ध भाषा ज़रूर है। अब शायद ही कोई कवि होगा जो केवल मन:स्थितियों का कवि बनकर रह गया हो। हाँ, अलबत्ता बहुत सारे ब्योरों और विवरणों की कविता तो अधिक नज़र आ रही है। पर आज कविता केवल असंगत मन:स्थिति का मैप बनकर भी नहीं रह गई है। इसमें विविध दृश्यों, प्रसंगों और ब्योरों का जमावड़ा है तो साथ ही अनेक कविताओं में मानवीय उपस्थिति की आँच बहुत मंद रह गई है। कविताओं में परिवेश की विडम्बनाओं और असंगतियों का जमावड़ा भी नहीं है और दूसरी तरफ अनेक कवि विडंबनाओं को रचते नज़र आते हैं। किन्हीं-किन्हीं कविताओं में केवल व्यवस्था विरोध है तो कई कविताओं में सरकार की नीतियों की केवल मुखालफत है, केवल टूटने, बिखरने, सहने, मरने-खपने का ही तनाव है। अनेक कविताओं में राजनीति की परिस्थितियों का चुस्त और चमचमाता रूप दिखाई पड़ता है। कई कविताओं में निषेधात्मक आक्रोश है तो कई में अतिरंजना से भरे केवल प्रलाप हैं। समकालीन दुनिया की आज की कविता में अनेक रूप हैं। तो दूसरी तरफ कुछ केवल प्रेम पर लिखी गई कविताएँ हैं। परंतु साथ ही स्त्री-पुरुष संबंधों पर लिखी गई कविताएँ कम हो गई हैं। अलबत्ता स्त्री-कवियों में घर-गृहस्थी के सुख-दुखों पर लिखी गई कविताएँ हैं। बच्चों पर और प्रकृति पर लिखी गई कविताएँ हैं। कुछ कवियों के पास केवल कई एकान्तिक कविताएँ हैं। यह सुखद बात है कि कविताओं में परिवेश बहुत महत्त्वपूर्ण हो उठा है और विवरण-विस्तारण भी । पर यह भी सच है कि अनेक कवियों ने अपनी कविता के समूचे कण्टेस्ट को बहुत राजनीतिक बना रखा है। वह इसलिए क्योंकि उनकी कविता विचारधारा से जुड़ी लगे जबकि यह जानना महत्त्वपूर्ण है जैसे कि वरिष्ठ कवि कुँवर नारायण ने कहा है — **कविता विचारधारा नहीं होती, लेकिन उसमें एक विचारणीय भावकोण अवश्य होता है। 'चिन्तन' को लेकर किसी हद तक आज के कवि का काम बहुत आसान हो गया है : उसी तरह जैसे कभी ''धर्म'' केन्द्र में था और एक कवि, चित्रकार या शिल्पकार का काम इस माने में आसान था कि उसके लिए एक बने-बनाए विचारकोण या भावकोण का आधार मौजूद था। मिल्टन के लिए ईसाई मत की बुनियादी मान्यताएँ स्वतः सिद्ध थीं, जिसे कविता का शिल्प या फॉर्म देना था। इसी तरह मार्क्सवाद भी हमें एक बना-बनाया विचारकोण देता है और एक कवि इस विचारकोण से भी जीवन को समझ और समझा सकता है।** अत: यह स्पष्ट है कि एक बने-बनाए विचारकोण या भावकोण को आधार बनाकर जितना कम लिखा जाएगा उतनी अधिक कविता समकालीन और नए संदर्भों तक पहुँचेगी! किसी भी समयकाल में वरिष्ठ और जागरूक कवियों ने अपनी रचनाशीलता में स्वचिन्तन को पर्याप्त जगह दी है। उन्होंने बने-बनाए विचारकोण या भावकोण के बाहर जाकर रचना की है और कविता को विषय के नए दायरों में पहुँचा दिया है। उन्होंने अपने कवि का काम आसान नहीं रखा है। जैसे वरिष्ठ कवि त्रिलोचन का ही उदाहरण लें। वे उन दूसरे प्राणियों और जड़-जंगम वस्तुओं के कवि भी हैं जो हमें रोजमर्रा के जीवन में अक्सर दिखायी देती हैं, लेकिन हमारे दिमाग में दर्ज नहीं होतीं। उन्होंने किन-किन पर कविता लिखी है ज़रा ध्यान में लें- जैसे सिपाही रामसिंह और इलाहाबाद के मल्लाहों, लकड़हारों, रेलवे स्टेशन के फेरीवालों, डाकियों, अपने दोस्तों की बेटियों समता और भाषा, निराला, शमशेर, नागार्जुन, त्रिलोचन, केदार, पी.टी. उषा, तारंता बाबू, किन्हीं माथुर साहब और श्रोत्री जी तक फैले हुए हैं। त्रिलोचन की कविता मनुष्येतर जीवधारियों और वस्तुओं के स्तर पर भी विस्तारित है। जैसे उन्होंने भाप के इंजन,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हाथी, ऊँट, गाय, भैंस, कुत्ते, भालू, सियार, सूअर, मक्खी, मकड़ी, पपीते, इमली, समोसे, नींबू, जलेबी, पुदीने, भात और पिद्दी का शोरबा आदि तक पर कविता लिखी है। उन्होंने अपने आत्मीय और ऐंद्रीय साक्ष्य बनाए रखते हुए रचना की है। त्रिलोचन की एक कविता है 'फरमाइशें' जिसमें वे कहते हैं—

कुत्ते मुझे थोड़ा-सा स्नेह दे
गाय ममता
भालू मुझे दे यार
शहद के लिए थोड़ा
अपना मर्दाना प्यार
भैंस दे थोड़ा बैरागीपन
बन्दर फुर्ती
अपनी अक्ल से मुझे बख्शे रहना सियार

इस कविता में कुत्ते, गाय, भालू, भैंस, बन्दर और सियार की अपनी-अपनी स्वभावगत और मासूम विशेषताओं का वर्णन है पर अपनी आत्मीयता और ऐंद्रीय साक्ष्य के साथ। ऐसी कविताएँ विचारधारा को गहरे तक आत्मसात करने से पैदा होती हैं। यहाँ मैं गैर-राजनीतिक कवि होने के लिए नहीं कह रहा हूँ। बल्कि राजनीतिक दृष्टि, कविता में कथन से ज्यादा आशय में प्रकट हो जाती है। व्यावहारिक-दलगत राजनीति के चित्र उपस्थित करना ही आवश्यक नहीं हैं। राजनीति को 'सेलीब्रेट' करना ही आवश्यक नहीं है। कविता में शोषित-पीड़ित भारतीय जन के पक्ष में खड़े होने का स्पष्ट और आत्मीय संकल्प रहे, यही पर्याप्त है। दरअसल, हमारे कवियों को यह ध्यान में ले लेना चाहिए कि कवि जिन विषयों पर लिखता है उससे कवि की पॉलिटिक्स तय नहीं होती है। इसीलिए अनेक कवि जो **पॉलिटिकली करेक्ट** बने रहने के प्रयास करते हैं वे हमेशा ही सचेत बने रहते हैं और इस प्रयास में वे अपनी कविता को अन्य छोरों तक जाने से रोक लेते हैं। विषय तो कोई सा भी हो जिस पर कवि लिख रहा है, वह हमारे जीवन का हिस्सा है। वह विषय हमारे जीवन से बाहर का हो ही नहीं सकता है। कवि **आलोक धन्वा** की कविता में जो कुछ पंक्तियाँ श्रम के संदर्भ में आई हैं, उन्हें देखें :

क्या उनका इतनी सुबह आना
सिर्फ़ अपने परिवारो का पेट पालना था?

कैसे देखते हो तुम इस श्रम को?
भारतीय समुद्र में तेल का जो कुआँ खोदा
जा रहा है
क्या वह मेरी ज़िन्दगी से बाहर है?
क्या वह सिर्फ़ एक सरकारी काम है?
कैसे देखते हो तुम श्रम को!

तो कविता के विषय जीवन के अनेकानेक छोरों तक पहुँच सकते हैं। उन्हें सीमित करने का कोई सवाल नहीं है। विशेषकर आज के समय की कविता के विमर्श का दायरा सीमित नहीं किया जा सकता है। इसमें लोगों की आजीविकाओं के विभिन्न साधनों, रोजगार और नौकरी से हो रहे विस्थापन, भू-माफियाओं का मकड़जाल, वन्य-जीवन, शहरों में सिकुड़ते खेल के मैदान, जल-संसाधनों की कमी, प्रकृति और पर्यावरण के हालात, जीवन के दैनन्दिन अनुभव, अंडरवर्ल्ड सरगनाओं द्वारा तरह-तरह के अधिग्रहण, मीडिया हाउस के कुचक्र, तरह-तरह के संगठित अपराध, मॉब लिंचिंग की घटनाएँ, मन में फैल रही असुरक्षा की भावना, विज्ञापनों की दुनिया से उपजे हुए आरोपित सुख, सनसनी से भरी सूचनाएँ, वाट्सऐप पर दी जाने वाली सूक्तियाँ और प्रवचन, तरह-तरह के रिंगटोन, चारों तरफ कभी न बन्द होने वाली आवाजें, वैश्विक संकट, आवारा-पूँजी, लोकतन्त्र के संकट, दलित समस्याएँ, हाशिये पर जी रही ज़िंदगियाँ, डिजिटल दुनिया, नेटफ़्लिक्स, जानलेवा वीडियो गेम, ऑनर किलिंग, आत्महत्याएँ, इन्फ्रास्ट्रक्चर बढ़ाने की होड़, सड़क-दुर्घटनाएँ, मृतकों की शिनाख्त, झूठे मानव अधिकार, मोमबत्तियों के जुलूस, प्रचार-तंत्र के तरह-तरह के कौशल, तरह-तरह के डिजिटल फ्रॉड, आभासी-दुनिया के संकट, दिहाड़ी मजदूरों की ज़िंदगियाँ, छद्म-छवियाँ, रोजगारों की तलाश में फँसती-उलझती ज़िंदगियाँ आदि सब हैं। जैसे कि **मुक्तिबोध** ने कभी लिखा था **''जीवन में आज के लेखक की कठिनाई यह नहीं कि कमी है विषयों की वरन यह कि आधिक्य ही उनका उसको सताता है''** इसीलिए कविता के आलोचकों की वार्ताओं और कविता-विमर्श की चर्चाओं में कविता के विषय पर काम इस माने में आसान हुआ है कि इन चर्चाओं और विमर्शों में एक बने-बनाए विचारकोण या भावकोण का आधार कवि को परोसा जाता रहा है। इस कारण अनेक कवियों की रचनाशीलता सीमित हुई है। परंतु फिर भी कविता अपने स्वरूप का विस्तार करे इसके लिए बदलते समय के सामने जो उपस्थित वैश्विक -विषय हैं, जिन पर हमारी कविता में कुछ कवियों का ध्यान गया अवश्य है परन्तु उसका विस्तार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

होना चाहिए ताकि हमारे समय की कविता के दायरे अधिक बढ़ें।

(2)

कुछ वर्ष पहले, हमारी पूर्व पीढ़ियों में, प्रकृति के प्रति मनुष्य की असीम श्रद्धा थी जिस के कारण पर्यावरण स्वतः सुरक्षित था। विकास की अंधी दौड़ में मनुष्य ने प्रकृति को अत्यधिक नुकसान पहुँचाना शुरू कर दिया। एक सीमा तक प्रकृति उस नुकसान की भरपाई स्वयं कर सकती थी, लेकिन जब उसकी स्वतः पूर्ति की सीमा समाप्त हो गई तो पर्यावरण असंतुलित हुआ और पर्यावरण असंतुलन की वजह से बारिश की कमी, अत्यधिक असहनीय गर्मी, कम समय में अधिक बारिश, बाढ़ या सूखे का सामना करना पड़ रहा है। बीमारियाँ पाँव पसार रही हैं। बादल फटने और भूकंप की घटनाएँ हो रही हैं। पर्यावरण में घुलने वाली जहरीली गैसें ओजोन परत को प्रभावित कर रही हैं। इन विषयों को छूती हुई कविताएँ और उनके प्रसंग कवि **लीलाधर जगूड़ी** के संग्रहों की अनेक कविताओं में व्याप्त हैं। उनकी आँधी कविता है :

रात वह हवा चली जिसे आँधी कहते हैं
उसने कुछ दरवाजे भड़भड़ाए
कुछ खिड़कियाँ झकझोरीं, कुछ पेड़ गिराए
कुछ जानवरों और पक्षियों को आकुल-व्याकुल किया
रात जानवरों ने बहुत से जानवर खो दिए
पक्षियों ने बहुत-से पक्षी
जब कोई आदमी नहीं मिले
तब उसने खेतों में खड़े बिजूके गिरा दिए
काँटेदार तारों पर टँगे मिले हैं सारे बिजूके
आदमियों ! सावधान
कल घरों के भीतर से उठनेवाली है कोई आँधी

यहाँ **लीलाधर जगूड़ी** आँधी को और उसकी परिणति को अपनी काव्य-संवेदना की थीम बनाते हैं । इस कविता में न केवल समूचे वस्तुबोध को देखना हुआ है बल्कि प्रकृति के माध्यम से जीवन परिस्थितियों के प्रति कवि की सचेतनता भी प्रकट हुई है। यह कविता केवल कारक-तत्वों की ओर नहीं ले जा रही है बल्कि इसमें मानवीय-क्रियाओं के संकेत भी पर्याप्त हैं। हमारी भाषा में भूकंप पर संभवतः कोई संपूर्ण कविता नहीं है। दो पंक्तियों में केवल कवि **मनोहर बॉथम** की यह कविता नज़र आती है :

भूकंप से भू कम कंपी
दिल ज्यादा

2013 में केदारनाथ में मंदाकिनी नदी ने विकराल रूप धारण कर लिया था। पचास हजार से अधिक लोग लापता हुए थे। देश ने इतनी बड़ी त्रासदी झेली थी। तब दस हजार लोगों की मौत हुई थी। अभी कुछ दिन पहले भी उत्तराखंड में एक बार फिर ऐसी ही आफत आई थी। जोशीमठ में ग्लेशियर फटने से बड़ा हादसा सामने आया था। ग्लेशियर फटने के चलते नदियों में उफान आ गया था। इन प्राकृतिक आपदाओं के संदर्भ में यह एक विचित्र बात है कि समूची समकालीन कविता में किसी एक भी प्रमुख कवि की कोई कविता सामने नहीं आई हैं। हमारी कविता में इसे एक ठहराव की तरह देखा जा सकता है।

समकालीन कविता में **मैग्मा** को लेकर पहली बार वरिष्ठ **विजेंद्र** लाए हैं। पृथ्वी के नीचे दबी उच्च ऊर्जा यानि जियोथर्मल एनर्जी से पत्थर पिघलते हैं । जब जमीन के नीचे से ऊपर की ओर दबाव बढ़ता है तो पहाड़ ऊपर से फट पड़ता है। ज्वालामुखी के नीचे पिघले हुए पत्थरों और गैसों के मिश्रण को मैग्मा कहते हैं। ज्वालामुखी के फटने पर जब यह मैग्मा बाहर निकलता है तो वह लावा कहलाता है। पर्यावरण को लेकर सघन चिंता न हों तो **मैग्मा** जैसे विषय पर कविता रचना कठिन है।

मैग्मा में कवि की चिन्ताएँ, स्वप्न, स्मृतियाँ और संवेदनाएँ समग्रता के साथ अभिव्यंजित हुई हैं। इस कविता के लिए कवि को रंग, ब्रश और कैनवस के पास नहीं जाना पड़ता। कहना न होगा कि आधी रात के रंग के अनेक चित्र मैग्मा में हूबहू शब्दान्तरित हुए हैं। **विजेन्द्र** का कवि अपनी इस लम्बी और जटिलतम कविता में अपनी पूरी इन्टेन्सिटी, पूरी एनर्जी के साथ उपस्थित है। बड़ी सहजतापूर्वक वह हिन्दी कविता के उस पाठक को उन कड़ियल, पठारीय, दुरूह धरातलों के पार ले जाता है जहाँ मुक्तिबोध की कविताएँ उसे छोड़ गई थीं। हतप्रभ और आशंकित! न केवल पार ले जाता है बल्कि गहरे भूगर्भ में उस ज़िन्दा मैग्मा के स्पर्श करवाता है जिससे छूटे हुए बिम्ब अन्धेरे में तथा चकमक की चिंगारियों में दिखाई देते हैं। जिससे कि विजेन्द्र के यहाँ एक संवेदनशील आत्मा का स्थापत्य निर्मित होता है।

'ओ कवि- ओ अंगिरा सुनो
आँच ठण्डी न हो
उसका रूप बदलो

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दिशा ठीक करो
उसे निखारो
धार दो
वह बुझी नहीं है
वह बुझे नहीं
धरातल फोड़कर निकला है
सुर्ख कल्ला बीज का
वही जैविक मैग्मा है मेरी कविता का'

यही एक वजह है कि मैग्मा कविता मुक्तिबोध की **अंधेरे में** के बाद आधुनिक हिन्दी कविता को एक नई दिशा प्रदान करती है। **विजेंद्र** सबसे अधिक पर्यावरण से एकात्मकता के कवि हैं ।

ये वन हमारे हैं
ताल, पोखर, नदियाँ हमारे हैं
वनस्पतियाँ, रूख-रूखड़ियाँ, वन घासें
सब खनिज दल
फूल-फल हमारे हैं
हमारे
सहस्रफण, सहस्र भुजाएँ, सहस्र आँखें
...हमारी असंख्य अबूझ इच्छाएँ
मजबूत हड्डियाँ
...ये कंदराएँ हमारी हैं
हम अपनी धरती क्यों देंगे

इस कविता में जाग्रत पर्यावरण है।

शेर बचाओ अभियान पर **हरीशचंद्र पाण्डे** की एक अद्वितीय कविता शेर बचाओ है। देखिये:

ब्रह्माण्ड सा सिर
दुर्भेद्य पुतलियाँ
बदन से पौरुष के झरने झरते

जो अनुपम है उसे बचाया ही जाना चाहिए
चलना भी कला
थमना भी
पीठ पीछे क्या क्या हो रहा है
मुड़ कर यह अवलोकन करना भी कला

ऐसे कलावन्त को बचाया ही जाना चाहिए

चले तो चिह्न छोड़ जाए
जो इरादों को टोह ले दुश्मन के
सूँडधारियों के होते हुए जो खुद बन जाए सम्राट

ऐसे अकील को बचाया ही जाना चाहिए

जो गरजे तो दहल जाए दुनिया
जो चीरे तो चिथड़ा-चिथड़ा हो जाए जिस्म
जिसे देखते ही सुन्दरता भय में तब्दील हो जाए
जो दुर्लभ हो अपनी निरंकुशता और क्रूरता में

इस कविता के केंद्र में बाघ है पर आप देखेंगे कि सिर्फ़ बाघ नहीं है। आज पर्यावरण असंतुलन के चलते बाघ की प्रत्यक्ष वास्तविकता यह है कि बाघ जीवित रहे, आवश्यक हो गया है। इसी प्रकार वरिष्ठ कवि **केदारनाथ सिंह** की बाघ सीरीज की कविताएँ हैं :

उन्हें डर है कि एक दिन
नष्ट हो जाएँगे सारे-के-सारे बाघ
कि एक दिन ऐसा आएगा
जब कोई दिन नहीं होगा
और पृथ्वी के सारे-के-सारे बाघ
धरे रह जाएँगे बच्चों की किताबों में

मुझे भी डर है
पर मुझे एक और भी डर है
बाघ से भी ज़्यादा चमकता हुआ डर
कि हाथ कहाँ होंगे
आँखें कहाँ होंगी जो पढ़ेंगी किताबें
प्रेस कहाँ होंगे जो उन्हें छापेंगे
शहर कहाँ होंगे
जहाँ ढलेंगे टाइप
पन्ना कहाँ होगा जिस पर ''क'' के बाद
कहीं से उछलता-कूदता
आ जाएगा ''ल'' या ''श''
जिसे हवा सुनेगी

सच्चाई यह है कि इस कविता की भाव-सत्ता से बाहर बाघ हमारे लिए हवा-पानी की तरह एक प्राकृतिक-सत्ता भी है, जिसके साथ हमारे होने का भवितव्य जुड़ा हुआ है। इसलिए कविता में बाघ को हमारे जीवन और पर्यावरण संरक्षण के

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संकट, इन स्तरों के रूपों में देखा जा सकता है।

दुनिया भर के जंगलों में, जलवायु में हो रहे बदलाव, बढ़ते तापमान और सूखे की वजह से पेड़ों के बीज उत्पादन और बीजों के उगने की क्षमता सीमित हो रही है। आज दुनिया अपनी जल-जरूरतों की पूर्ति के लिए सबसे ज्यादा भू-जल पर ही निर्भर है। लिहाजा, एक तरफ भू-जल का अनवरत दोहन हो रहा है तो वहीं दूसरी तरफ औद्योगीकरण के अन्धोत्साह में हो रहे प्राकृतिक विनाश के चलते पेड़-पौधों व पहाड़ों की हरियाली आदि में कमी आ रही है। इस परिस्थिति के सामने कविताएँ काम आ सकती हैं। कविता सार्वजनीन विषय को लेकर हो या निजी विषय को लेकर, समसामयिक हो या देश-कालातीत विषय को लेकर, एक ऐसी भाषा और शैली अर्जित कर सकती है जिससे पूरी मानवीय सहानुभूति उत्पन्न करने और अपनी अंतरतम बात को कह पाने का ऐसा तरीक़ा ईजाद करती है जिससे पर्यावरण के प्रति जागरूकता लाई जा सकती है। यहाँ मिसाल के तौर पर कवि **अनीता वर्मा** की एक कविता खयाल में लेना चाहिए जो नदी पर है :

उसके किनारे
छोटे-छोटे पैरों के निशान हैं
आँख के नीचे है नदी
जहाँ रेत झरती है

ठंडे पानी में तलवे धँसाती
हवा के पर्दे से वह समेटती है सूरज
एक बच्चा है उसकी गोद में बैठा हुआ

नदी एक उद्‌गम है
प्रकाश के झरने का
उसके आकाश में हैं धुँधले बादल
चिड़िया और चंद्रमा

तट पर खड़ी है भीड़
उदासी का एक सैलाब
प्रेम उसके ऊपर तना हुआ एक पुल है
यहीं से आते-जाते हैं सभी लोग।

ऋतुओं पर भी कविताएँ युवा कवियों के पास होनी चाहिए। किसी भी कविता में विषय के विस्मयकारी पक्ष को देखने का हुनर होता है। कवि के पास यह हुनर दूसरों से अलग होता है। वह चीजों के पास समूची और कई बार अदेखी संवेदन-शक्ति के साथ पहुँचता है। इसलिए हमारे समय की कविता में पर्यावरण के विषयबोध पर पर्याप्त रचनाएँ होनी चाहिए। कवि **शरद कोकास** की एक कविता है- **गिद्ध जानते हैं**। तो गिद्ध पर कविता बन रही हो तो उसे भी लिखना चाहिए। **एकांत श्रीवास्तव** की यह एक छोटी सी कविता हैं : **व्यूगोन वेलिया**

वो हमारे घरों के दरवाज़े थे
जिन्हें हम छोड़ आए थे
जहाँ फूली थी व्यूगोन वेलिया

वो भी हमारे घरों के दरवाज़े होंगे
जहाँ हम लौटेंगे
जहाँ फूली होगी व्यूगोन वेलिया।

देश के कुल क्षेत्रफल के एक तिहाई भाग पर वन होने चाहिए जबकि इसका प्रतिशत काफी कम है। इसके कारण, पर्यावरण संबंधी समस्याएँ प्रतिदिन गंभीर होती जा रही हैं। सर्वे रिपोर्ट के अनुसार अनेक क्षेत्र डार्कज़ोन घोषित किए गए हैं। बिगड़ते पर्यावरण का मुख्य कारण अनुपात के मुताबिक पौधों का कम होना है। अत: कवि जब अनोखे दृश्य, चित्र, बिंब, प्रतीक और विचार लेकर ऐंद्रिय क्षमता से भरपूर रचनाएँ प्रस्तुत करेगा तो सार्वजनिक मनोविज्ञान पर प्रभाव पड़ेगा। वरिष्ठ कवि **प्रयाग शुक्ल** की काव्य-संवेदना का स्पर्श पर्यावरण से इतना सम्बद्ध है कि उनकी लगभग प्रत्येक कविता प्रकृति से जुड़ी है जिनमें जीवनबोध निरंतर महसूस होता रहता है।

शोधकर्ताओं ने बताया कि गर्म होती जलवायु मानसूनी बारिश की गति को तेजी से बढ़ाएगी जिससे ब्रह्मपुत्र और पास की अन्य नदियों का जल प्रवाह बढ़ेगा और बाढ़ और तेज बारिश की विभीषिका बढ़ेगी। कविता प्रकृति के दुर्लभ दृश्यों की ओर उनकी निगहबानी करती है और आत्मा के अब तक अनदेखे या अनजान रह गए आयामों की ओर भी नज़र पहुँचा देती है। वरिष्ठ कवि **अरुण कमल** की एक कविता है, बारिश-

इतनी घनी बारिश हो रही है
खूब घने केशों जैसी बारिश
खूब काली रात भारी रात
सफेद फूलों को रौंदती
इतनी घनी कि सब कुछ
भूलता जा रहा हूँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

यह भी कि कल एक चाँद था
और परसों कुछ तारे
इतनी घनी कि नहीं कहीं
तड़ित की कौंध न हवा
इतनी घनी बारिश कि पोखर का जल
छटपट
घनी गाँजे के धुएँ सी
इतनी कि भूलता जा रहा
यह भी कि एक चाँद था
और कुछ तारे थे
और मेरे बिस्तर पर पाँव मोड़े
वह स्त्री जो बादल थी कल तक
सब कुछ बिसरता जा रहा
पसरती है मलहम की गंध।

अरुण कमल अपनी कविता में राजनीति के तत्व, मानव-जीवन के निरन्तर क्षरण एवं दरिद्रीकरण तथा आभ्यंतर के अतिक्रमण सब कुछ को तीक्ष्णता से प्रस्तुत करते हैं। फिर चाहे कविता का विषय बारिश हो या उनकी 'एक अन्य प्रलय' हो। अत: पर्यावरण से जुड़े विषय को लेकर भी कविता साधारण जीवन की स्थितियों-दशाओं को प्रस्तुत कर सकती है ।

यह कहा जाता है कि बढ़ते तापमान और बाँधों के कारण आज पलायन करने वाली **चिनूक सैल्मन मछली** के जिंदा रहने के अवसर केवल 50 फीसदी रह गए हैं। इसके संरक्षण या अन्य मछलियों के संरक्षण का भी प्रश्न आज प्रासंगिक हो गया है। अत: जैसे ऊपर मैंने बताया कि कविता के विषय, जीवन के अनेकानेक छोरों तक पहुँच सकते हैं। उन्हें सीमित करने का कोई सवाल नहीं है। विशेषकर, आज के समय की कविता के विमर्श का दायरा सीमित नहीं किया जा सकता है। मछली के होने को कविता में साकार व उसका समर्थन उत्पन्न करने के लिए अपेक्षाकृत रूप से पहले अधिक सजग होना आज आवश्यक हो गया है । वरिष्ठ कवि **सुधीर सक्सेना** की कविता है— मछलियों वाली थाई स्त्री :

मछलियों के कुतरने से
स्निग्ध होती है त्वचा, तरो ताजा त्वक्-ग्रंथियाँ
वे पपड़ियों को बख्शती नहीं,
विहँसती हुई देती हैं कठिन काम को अंजाम
इतनी दक्षता से कि एड़ियाँ दीखती हैं
ललित ललाम

अखिल ब्रह्माण्ड में कहाँ है वे स्त्रियाँ,
जिनके पास हैं वे मछलियाँ,
जो कुतर सकें मृत कोशिकायें?

कहीं तो होंगी वे स्त्रियाँ,
जिनके पास होंगी वे मछलियाँ,
जो कुतर सकें
सहस्राब्दियों की यात्रा में
मनुष्य की आत्मा पर जमा हो गई
रूखी असंवेद-पपड़ियाँ।

हम जानते हैं सूखा यानी पानी की कमी। किसी भी देश में पानी की कमी या तो कम बारिश की वजह से होती है या लचर जल प्रबंधन की वजह से। भारत में सूखे का कारण कम बारिश कतई नहीं है। हर साल हमें 4000 अरब घन मीटर पानी प्रकृति से मिल रहा है। इसमें से इस्तेमाल करने लायक 1123 अरब घन मीटर पानी भूजल और सतही जल के रूप में उपलब्ध है। लेकिन इस उपलब्ध पानी को हम पूरा इस्तेमाल नहीं कर रहे हैं। इसमें से काफी पानी हर साल बारिश के महीनों में नदियों-नालों से होता हुआ बाढ़ लाता समुद्र में चला जा रहा है। सरकारी आँकड़ों के हिसाब से भी हमारी जल संचयन क्षमता सिर्फ़ 257 अरब घन मीटर है। यानी अभी तक हमारे पास सिर्फ़ इतनी सी क्षमता के छोटे-बड़े बाँध उपलब्ध हैं। इस परिस्थिति से क्या कवि को विमुख रहना चाहिए? वरिष्ठ कवि **ऋतुराज** की एक कविता है - सूखा

आदमी तो कुछ भी कर लेगा
पशुओं को चारा चाहिए

वे आदमी को देखते हैं कातर दृष्टि से
अन्ततः उसे कुछ तो करना ही पड़ेगा

वह झोंक देगा पहले की तरह
अपना परिवार जलवायु की दुर्नीति में
झूठ बोलेगा प्यार के वास्ते
चाँदनी रातों में खोजेगा हरियाली
और पशु हैं कि उसकी मित्रता का बोझ ढोते
उसके लौट आने की प्रतीक्षा करते रहेंगे

कितनी घास लाएगा हमारा मालिक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कितनी थकान होगी उसके पाँवों में
धूल के पीछे अँधेरे का विरूप पिण्ड होगा
इन खौलती दिशाओं के बीच उसकी भूखी पसलियाँ

पशुओं ने बिल्कुल नई लिपि ईजाद की है
वे चटखी धरती पर आदमी के पाँव देखते बढ़ रहे हैं

यह कविता पर्यावरण बचाओ अभियान का हिस्सा नहीं है लेकिन सूखे से उपजी पशु जीवन की लाचारी को प्रस्तुत तो कर रही है। इसी के माध्यम से साधारण जीवन की स्थितियों-दशाओं को यहाँ प्रस्तुत कर रही है। और कविता अधिक भरी हुई लगती है तथा रचना में कवि की जीवन-दृष्टि अपेक्षाकृत विकसित तथा परिपक्व लगती है। सूखे की विभीषिका और पशु-दुःख एवं विषाद से भरी केवल एक कवि की रचना हो जाना पर्याप्त नहीं है बल्कि सूखा जैसे सामयिक विषयों से जुड़े सम्पूर्ण भारतीय जीवन के दुःख एवं विषाद को वाणी देती और भी कई रचनाएँ होनी चाहिए। दरअसल कवि जो कहना चाहता है और उसके पाठक-श्रोता जो उससे सुनना-पढ़ना चाहते हैं दोनों में भेद हमेशा से रहा है। कवि अपनी स्वच्छंदता से लिखना चाहता रहा है । पाठक-श्रोता से उसका तालमेल इस कारण ठीक से बैठ नहीं पाया है। हर युग में दोनों के धरातल में उन्नीस बीस का अंतर बना ही रहा है। परंतु आज यह अंतर इतना अधिक बढ़ गया है कि यह ऊब की स्थिति तक पहुँच गया है। जो कविता का भावक नहीं है वह रचनाएँ सुनना ही नहीं चाहता है। जो विज्ञान या अन्य क्षेत्र से जुड़ा व्यक्ति है वह कविता से तालमेल जोड़ ही नहीं पा रहा है। इसलिए अब प्रश्न यह बनता है कि क्यों ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हुई है? कवि जन-भावनाओं का प्रतिनिधि कहा जाता रहा है। जो कविता के माध्यम से इस सृष्टि की एक जीवन्त प्रतिसृष्टि रचता रहा है। इसी संसार के समानान्तर एक दूसरा प्रतिसंसार निर्मित करता रहा है। तब फिर आज यह क्या हुआ कि दुनिया की सच्चाइयाँ अलग हैं और कवि का लिखा अलग है। तब, अब कवि से निर्मित वह जीवन्त प्रतिसृष्टि कहाँ गई है? क्योंकि हमारी अधिकतर रचनाओं में जनजीवन के केवल भाववादी चित्र हैं या फिर कुछ विषयों से केवल ज्ञानात्मक संवेदनों के कोरे वक्तव्य हैं । हमारे अधिकतर कवि मानसिक स्तर पर अपनी मध्यमवर्गीय स्थिति के दायरे को नहीं तोड़ पा रहे हैं। उनका सीमित मध्यमवर्गीय भावबोध ही उनके सम्पूर्ण सौन्दर्यबोध का आधार बन गया है। कविता के लिए आज के समय से जुड़ा ऐसा भावबोध नहीं है या ऐसी ज्ञानात्मक-संवेदना नहीं है कि उनकी कविता मध्यमवर्गीय विकलता की कविता से अलग हटकर अपना **ग्लोबल एस्थेटिक सेंस** भी रच सके। आज जबकि **ग्लोबल वार्मिंग** एक विकट समस्या बनती जा रही है, इसकी जड़ में है जीवाष्म ईंधन। यह भंडार बहुत शीघ्र ख़त्म हो जाएँगे। यह ईंधन बहुत अधिक प्रदूषण फैलाते हैं। जीवाश्म ईंधन को जलाने से कार्बन, सल्फर, नाइट्रोजन के ऑक्साइड उत्पन्न होते हैं। सल्फर के ऑक्साइड अम्लीय होते हैं और वह अम्लीय वर्षा का कारण बनते हैं। और जीवाष्म ईंधन का अंधाधुंध इस्तेमाल, जिससे हमारा वातावरण लगातार गर्म होता जा रहा है, इसके असर से अमीर-गरीब कोई भी देश नहीं बच पाया है। इसलिए ज़रूरत अभी से सँभलने की है, क्योंकि कहीं देर न हो जाए।' यह सर्वविदित तथ्य है कि तेल व कोयला जैसे जीवाष्म ईंधनों से वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड में बढ़ोतरी होती है। अगर धरती पर गर्मी बढ़ी, तो बर्फ पिघलेगी और जाहिर है कि समुद्र के जल स्तर में इज़ाफ़ा होगा। नतीजा निचले क्षेत्रों में जलप्लावन। कोयला, पेट्रोलियम पदार्थ और प्राकृतिक गैस का इस्तेमाल करके हम रोज़ाना अपने वातावरण में दो करोड़ टन कार्बन डाईऑक्साइड गैस उड़ेलते हैं। वातावरण में कार्बन डाईऑक्साइड की मात्रा में जितनी बढ़ोत्तरी होगी, ग्रीनहाउस प्रभाव भी बढ़ता जाएगा। नतीजा यही होगा कि वातावरण भी दिन-प्रतिदिन गर्म होता जाएगा। जलवायु परिवर्तन को किसी एक स्थान विशेष में भी महसूस किया जा सकता है एवं संपूर्ण विश्व में भी। यदि वर्तमान संदर्भ में बात करें तो इसका प्रभाव लगभग संपूर्ण विश्व में देखने को मिल रहा है। पृथ्वी का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिक बताते हैं कि पृथ्वी का तापमान लगातार बढ़ता जा रहा है। पृथ्वी का तापमान बीते 100 वर्षों में 1 डिग्री फारेनहाइट तक बढ़ गया है। पृथ्वी के तापमान में यह परिवर्तन, संख्या की दृष्टि से काफी कम हो सकता है, परंतु इस प्रकार के किसी भी परिवर्तन का मानव जाति पर बहुत बड़ा असर हो सकता है। जलवायु परिवर्तन के कुछ प्रभावों को वर्तमान में भी महसूस किया जा सकता है। पृथ्वी के तापमान में वृद्धि होने से हिमनद (ग्लेशियर) पिघल रहे हैं और महासागरों का जल स्तर बढ़ता जा रहा है, परिणामस्वरूप प्राकृतिक आपदाओं और कुछ द्वीपों के डूबने का खतरा भी बढ़ गया है। यह अजीब बात है कि आम जीवन के प्रतिदिन के दृश्यों, घटनाओं और क्रिया-प्रतिक्रिया के चित्रों से निर्मित हमारे समय की कविता आज के इन प्रश्नों से लगभग विमुख है।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हाँ, पर्यावरण पर और प्रकृति के प्रति जागरूकता पर अलबत्ता अनेक महत्त्वपूर्ण कविताएँ हिन्दी में लिखी गई हैं। इस प्रसंग में **चन्द्रकान्त देवताले, वेणुगोपाल, मलय, नरेंद्र जैन, विमल कुमार, कात्यायनी, नरेन्द्र जैन, नीलाभ, विनय दुबे, संतोष चौबे,विनोद दास, शाकीर अली, रजत कृष्ण, प्रताप राव कदम, विवेक गुप्त, हरिओम राजौरिया, शहंशाह आलम, शिरीष कुमार मौर्य, निरंजन श्रोत्रिय, अष्टभुजा शुक्ल, सुधीर रंजन सिंह, मोहन कुमार डहेरिया, भास्कर चौधरी, बहादुर पटेल, बृज श्रीवास्तव, आरती, अग्निशेखर, ज्ञानेन्द्रपति, जसवीर त्यागी,जय प्रकाश मानस, केशव तिवारी,जसवीर त्यागी, बुद्धिलाल पाल** आदि की अनेक कविताएँ इस संवेदना को रूपायित करती हैं। ये नाम कुछ उदाहरण भर हैं। यह सूची अभी लम्बी हो सकती है। अनेक कविताएँ बड़े सजग रूप से इस संदर्भ से खोजी जा सकती हैं। फिर भी आज की तारीख में इस बिन्दु को कवि की संवेदना का प्रमुख केंद्र होना चाहिए जो कि फ़िलहाल बहुत कम है। कवि **अनिल करमेले** की कविता की पंक्तियाँ हैं :

अहा! ताज़ी गोभी सीताफल सिंघाड़े
और आलू का स्वाद
अभी तक याद है

अब के समय में कविता को उन कोनों-किनारों तक पहुँचना ज़रूरी है जहाँ अभी जल, जीवन, जीव-जन्तु और पर्यावरण है। दरअसल, लिखना कविता के बाहर फैली हुई चुनौतियों और संकटों से जन्मता है। जीवन जीने वाले मनुष्य और कविता लिखने वाले मनुष्य के बीच का अन्तराल ही यह है कि कवि हवा पानी, नदी और पहाड़ में से अपने समय का सच देख लेता और अपने भावक को दिखा भी देता है **चन्द्रकान्त देवताले** की कविता 'इतनी हवा चिंघाड़ती हुई' में पंक्तियाँ हैं :

सैकड़ों हाथियों की तरह झूमती
मथती हुई तमाम चीजें
समुद्र के पूरे नशे
जोश और जज़्बे के साथ
धरती की ताक़त को नापती-तोलती
घर के भीतर वाले एहसास तक को अपनी जगह से डिगाती
कहाँ से आती है रोज़ की हवा में
इतनी हवा गुस्सैल इतनी
तहस-नहस करती जून की शाम को
अपनी हथेली पर पेड़ों को झकझोरती
निगलती तार खंभे रोशनी
बेसुध करती रफ़्तार में फँसे
पहाड़ों-पठारों को
सुस्ता रही थी अब तक कहाँ
पृथ्वी की नाभि
समुद्र की जड़ों या
विराट की किस माँद में
छिपाकर अपनी इतनी शक्ति

आज भीतर से देखने पर लगता है कि हमारे समय की कविता की समूची विषय-वस्तु की धुरी बदलनी चाहिए क्योंकि इस समय जलवायु-परिवर्तन से हो रहे वातावरण के आन्तरिक क्षरण से हमारे परिवेश की सच्चाइयाँ बदल रही हैं। प्राकृतिक चेतना के परम्परागत रूप और सरोकार, स्मृति, स्वप्न, जीवन-शैली क्या कुछ नहीं बदल रहा है । अत: पर्यावरण और वातावरण के विपरीत होने से कविता ही है जो आमजन की संवेदना को पर्यावरण और वातावरण के क्षरण को रोकने की ओर आकर्षित कर सकती है। **विजय सिंह** की कविता **मुहल्ले का नारियल पेड़** इन पंक्तियों से शुरू होती है :

मुहल्ले में एक-अकेला
हँसता-झूमता नारियल का पेड़
इस समय उदास है
इसकी उदासी से
उदास है मेरा मन

बचपन में मैंने सुना
इसकी मिट्टी यह नहीं है
यह अपना समुद्र
अपना आसमान
और अपनी मिट्टी छोड़कर
मुहल्ले की मिट्टी में
अंकुराया था

दरअसल यह हमारे भौतिक-परिवेश के विद्रूप होते जाने का समय है। अकेलापन, सांप्रदायिक दंगे, घुटन, संशय, भय की शब्दावलियों के साथ-साथ नभ, जल, थल की सच्चाइयाँ भी हमारे तात्कालिक अन्तरंग इलाकों की सच्चाइयाँ भी हैं। ताज़ातरीन कवि **मोहन सगोरिया** की 'मैं' कविता में पंक्तियाँ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आती हैं :

मैं जल-तल पर सोया शब्द युगों से
मैं उठती हुई नाद आकांक्षा की

मैं घास पर ठहरी ओस की बूँद नि:शब्द
मैं भोर की उजास, मुर्गे की कुकुड़-कूँ तिरती
मैं गाँव को शहर से जोड़ती सड़क एकाकी
मैं कच्चे घरों का खपरैल क्षीण होता तिल-तिल

मैं बावड़ियों का मीठा पानी शांत-निस्तब्ध
मैं कलेवा, पोटली में बँधी बाजरे की रोटी

इस कविता में प्रकृति, जल, नभ, गाँव, शहर सारे शब्द आत्मा को टटोलते हैं । ऐसे संकेत देते हैं जिससे जो लाखों-करोड़ों लोग अपनी जमीन, जलवायु, परिवेश और परम्परा से विस्थापित होते जा रहे हैं उनकी तरफ नज़र दौड़ सके। लाचारियों और पीड़ाओं के अनसुने वृत्तान्त तक भावक पहुँच सके। साथ ही,यह बात ध्यान में ले लेनी चाहिए कि केवल कुछ ही कविताएँ पशु-जीवन को लेकर लिखी गई हैं। पशु हाड़-माँस के जीवित शरीर हैं। उनके भीतर भी एक स्पन्दन है। उनके होने या न होने का हमारे पर्यावरण और जीवन पर प्रभाव है। उनको लेकर करुणा, मार्मिकता, उद्‌बोधन और उनके जीव-संरक्षण के प्रश्न भी कविता के समकालीन विषय हैं। इनसे जुड़े अनेक शेड्स कविताओं में उभर सकते हैं। इन विषयों में अलग-अलग रचनात्मक-सम्भावनाएँ अकूत हैं। पशु हमारे चारों ओर हैं फिर भी वे प्राय: ओझल रहते हैं। हमें दिखाई नहीं पड़ते या हम उनके अस्तित्व के प्रति अनजान बने रहते हैं। हमारे आसपास बहुत कुछ है जो प्रतिदिन के हमारे संवेदन-संसार में कविता के विषय बन सकते हैं। उनके बारे में लिखा जा सकता है। इन विषयों पर कविता में अनेक दृश्य साकार रूप ले सकते हैं।

कुल मिलाकर हमें इस बुनियादी धारणा को तोड़ना होगा कि कविताएँ एक निश्चित भावकोण या कथित रूप से बनी विचारधारा के सामान्य-बोध का अतिक्रमण नहीं कर सकती है। यह एक चुनौती की तरह भी है कि क्या कविताएँ आँखों पर जड़े हुए बने-बनाए फ्रेम से बाहर से भी आ सकती हैं? वे सतह पर दिखते विषयों तक सीमित रहेगी या उसे भेदते हुए दूर तक फैली अन्य सच्चाइयों की ओर बढ़ेगी। राजस्थान में ऊँटों को संरक्षण प्रदान करने के लिए, ऊँट को राज्य-पशु का दर्जा दिया गया था। परंतु एक रिपोर्ट के अनुसार, पशुपालन क्षेत्र से जुड़े विशेषज्ञों का कहना है कि इस प्रतिबंध से ऊँटों का संरक्षण होने के बजाय उन्हें नुकसान ज़्यादा हुआ है। इसका कारण यह है कि पहले ऊँट के बीमार होने या बूढ़ा होने पर उसे बेचना आसान था। उसे राज्य से बाहर भी भेजा जा सकता था। ऊँट का चमड़ा अच्छी कीमत देता था। अब यह सब संभव नहीं है। ऐसे में जब ऊँट बूढ़ा या बीमार हो जाता है वह ऊँट-पालक के लिए बड़ा बोझ बन जाता है। यही कारण है कि ऊँट-पालक अब ऊँटों के प्रजनन और उनकी देखभाल में ज्यादा रुचि नहीं लेते हैं और उन्हें खुले में घूमने के लिए छोड़ दिया जाता है जिस कारण ये आये दिन दुर्घटना के शिकार हो जाते हैं। पशु-संवेदना के इस संदर्भ में **कुमार अंबुज** की एक कविता **बैल** की पंक्तियाँ याद की जा सकती हैं। इस कविता के जैसे ऐन्द्रिक-बिम्ब समकालीन कविता में कुछ दुर्लभ है :

वे अपनी कद्दावर पशु-सुंदरता के साथ हुंकार रहे हैं
गरदन की झूलती झालर गठीली कँधवार
सींगों की भय पैदा करने वाली नोकें
लहराती पूँछ का झब्बर गुच्छा
और चिकनी पीठ के रेशमी रोएँ
सब कह रहे हैं ये हम हैं
पृथ्वी को कंधे पर उठाने के लिए बेचैन हम

पशु-जीवन पर निश्चय ही अन्य कवियों ने कुछ और भी उल्लेखनीय कविताएँ लिखी होंगी। यहाँ उद्देश्य उनकी संख्या गिनाना नहीं है। इस विषय पर सामने आई कुछ कविताओं का जायज़ा लेते हुए मेरा आशय इस केन्द्रीय-बिन्दु पर एकाग्र होने का है कि समय के सामने उपस्थित अनेक वैश्विक -विषय हैं जिन पर हमारी कविता में ध्यान कम जा रहा है जैसे :

* एक ध्रुवीय राजनीति
* नागरिकता/नागरिक अस्मिता के संकट
* जलवायु परिवर्तन की चुनौतियाँ/पर्यावरण के सवाल
* विस्थापन
* कार्पोरेट्स के बढ़ते अवांछित प्रभाव
* युद्ध के आसन्न संकट

उपर्युक्त विषयों में से **जलवायु परिवर्तन की चुनौतियाँ** मुझे आपदाओं के इस सबसे कठिन समय में सबसे अधिक प्रासंगिक विषय लगता है। पृथ्वी के संरक्षण के लिए प्रतिदिन की दुनिया में हमारे आगे अभी बहुत कुछ है जो ओझल बना हुआ है। और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कविता ही उस अदृश्य और ओझल को ढूँढ़ने में मदद कर सकती है। कविता सामान्य जानकारियों, सूचनाओं और निष्कर्षों की आदतों के खिलाफ अपने संवेदनात्मक-वजूद को प्रमाणित करती है इसलिए उसी पर अधिक विश्वास होता है । प्रदूषण का स्तर हर दिन, बद से बदतर होने लगा है। इस बारे में हम बहुत कम जानते हैं कि इसमें बाहर से भोजन मँगवाने की, बढ़ती हुई आज की जीवन-शैली भी कारण है। बाहर से मँगाए जाने वाला भोजन प्लास्टिक के डिब्बों द्वारा पहुँचाया जाता है। इन डिब्बों को खाना खाने के बाद फेंक दिया जाता है। जो प्लास्टिक प्रदूषण का कारण बन जाता है। सार्वजनिक स्थानों, नालियों, नदियों और समुद्र में प्लास्टिक कचरे की डंपिंग और प्लास्टिक कचरे को खुले में जलाया जाना बढ़ रहा है। इस तरह की अनेक सच्चाइयाँ हैं, जिन पर कविताएँ होनी हैं। इस संदर्भ के अंत में, बोधिसत्व की कविता **फूल, पंछी** और **आदमी** से बात समाप्त करता हूँ :

इतना चल चुका हूँ इस पृथ्वी पर
फिर भी कितने कम फूलों को
जानता हूँ उनके नाम से
कितने कम को पहचानता हूँ उनकी महक से।
कितने कम पंछियों को पहचानता हूँ उनकी आवाज से
उनके पंखों से निकली धुन से।

सोते हुए गुज़रता हूँ पुलों के ऊपर से
नीचे से बह रही थी जो नदी पता नहीं
क्या था उसका नाम।

बरसों छहाँता रहा जिस पेड़ के नीचे
नहीं पता चला उसका नाम-गोत्र अब तक।

कौन आदमी था वह जिसने जगाया और कहा
उठिए, आपका स्टेशन आ गया है।
हड़बड़ी में पूछ नहीं पाया उसका नाम
देख नहीं पाया उसका चेहरा भी
ठीक से।

सम्पर्क - nareshchandrkar@gmail.com

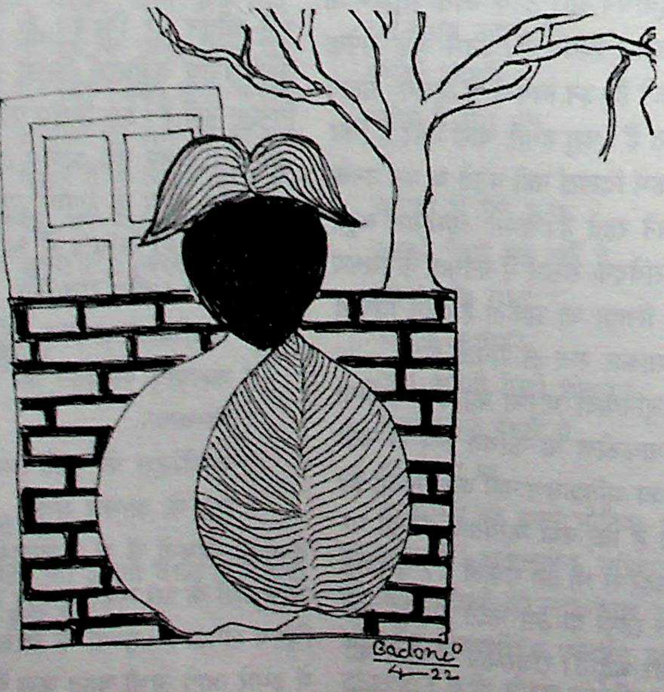

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आलोचना - समीक्षा के बीच कविता

निशांत

(युवा आलोचना को अकादमिक शिल्प से भिन्न शिनाख़्त और संभव करते कवि आलोचक।)

एक आलोचक या समीक्षक एक कविता या रम्य रचना में खोजता क्या है?

वह कविता, उपन्यास और कहानी की आलोचना क्यों लिखना चाहता है? क्या वह चाहता भी है कि वह कुछ लिखे? वह लिखकर उस कृति के बारे में वृहद समाज को बताना चाहता है कि उसमें कुछ अच्छा है भी या नहीं? या कृतिकार के कहने के दबाव में लिखता है? या संपादक के दबाव में कि समीक्षा देनी मजबूरी है तो लिखकर दीजिए क्योंकि पत्रिका में समीक्षा का स्तंभ होना चाहिए। या संपादक रचनाकार से संबंध निबाहने या बनाने के लिए समीक्षा-आलोचना लिखवाते हैं? कई बार युवा समीक्षकों को आगे बढ़ाने के लिए या पैदा करने के लिए या उन्हें आलोचक बनाने का श्रेय लेने के लिए भी संपादक समीक्षा या आलोचना लिखवाते हैं? कई बार ठिकाने लगाने के लिए भी समीक्षक-आलोचक पैदा किए जाते हैं? कई जगह विश्वविद्यालय के प्रोफेसरान अपने छात्रों से अपनी प्रशंसा या उन्हें प्रमोट करने के लिए भी उन्हें समीक्षा के हीरे जड़े पीकदान में पिक देते हैं।

मुझे तो लगता है कि पढ़ना सबसे सुखद क्रिया है। वह भी अपने सुख के लिए या कुछ जानने के लिए। अपने अहम को संतुष्ट करने के लिए यह एक नितांत जरूरी क्रिया है कि आप पढ़ते-लिखते हैं। सांस्कृतिक रूप से समृद्ध हैं। इस समृद्धि को बीच-बीच में दिखलाकर दूसरों के सामने अपनी श्रेष्ठता ग्रंथि को संतुष्ट (satisfied) करते हैं। या कुछ लोग पढ़ने में इतनी रुचि लेते हैं कि फिर किताब-कॉपी-कलम से उनकी ऐसी दोस्ती हो जाती है कि उसमें रम जाते हैं। वही उनके लिए सुखकर चीज हो जाती है। ऐसे लोग समाज में फ़क़ीर की पदवी पर आसीन हो जाते हैं। उन्हें दुनियावी कामों में रुचि कम होने लगती है। वे ज्ञान तो पाना चाहते हैं लेकिन उसके प्रदर्शन से विरक्त होते हैं। उनमें दिखलाने का नितांत अभाव होता है। श्रेष्ठता ग्रंथि का भी अभाव होता है उनमें। वे इस दुनियावी झमेले से ऊपर उठ चुके होते हैं। वे आलोचक नहीं होते। रचनाकार भी होते हैं तो सिर्फ अपने लिए। वे अधिकतर सूक्तियों में बातें करते हैं। सूक्तियाँ कविता या दोहे या शेर हो जाते हैं। कहानी भी उनमें नहीं होती, होती भी है तो दो-चार पंक्तियों में एक पूरा जीवन या पूरी कहानी होती है। इसे ही जीवन का मर्म कहा जा सकता है या 'गागर में सागर' जैसे मुहावरे ऐसी पंक्तियों को पढ़ने से निकले होंगे। वे 'देखन में छोटन लागे, घाव करें गंभीर' जैसी कविताएँ बन जाती हैं। तब आलोचना का जन्म होता है।

आलोचना मूलतः मूल्यों का सृजन या रचना में निहित मूल्यों को हमारे सामने स्पष्ट करती है। प्रमुखतः कविता या किसी रचना में मूल्य चाय में दूध, चीनी, चायपत्ती की तरह मिले रहते हैं। आलोचक एक 'टी-टेस्टर' की भूमिका में होता है और रचना में निहित मूल्यों को बतलाता है। इसके लिए उसके पास एक संप्रेषणशील भाषा होती है जिसके सहारे रचना में घुले- मिले मूल्यों को वह अलगाता है। वह रचनाकार से थोड़ा ज्यादा निर्मम होकर उसकी रचना का मूल्यांकन करता है। इसके लिए उसके पास अपनी दृष्टि होती है, जिसे आलोचना की भाषा में 'टूल्स' कहते है। इसी प्रक्रिया में वह रचना में अन्वेषण भी करता जाता है कि इसमें मूल्यों के अलावा समाज, राजनीति, विज्ञान, धर्म आदि भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। रचना में अन्वेषण और मूल्य निर्णय का कार्य ही आलोचना है।

प्रश्न उठता है कि मूल्य निर्णय और अन्वेषण कैसी रचनाओं में सबसे ज्यादा होता है? जहाँ से आलोचना की शुरुआत होती होगी?

ऐसा लगता है कि आलोचना कविता की होती होगी। वह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जो कविता या कवित्त सुनकर वाह-वाह या ऐसी प्रशंसा युक्त उक्तियाँ निकलती होंगी, वही सच्ची समालोचना या आलोचना होती होगी। बाकी सब तो 'कागद की लेखी' होती होगी या उस वाह-वाह को लिखकर कहने में वह बड़ा हो जाता होगा और आलोचना या समालोचना हो जाता होगा।

यह वाह-वाह वही कहता होगा जो कविता को समझता होगा और चाहता होगा कि अच्छी कविता और अन्य लोगों तक पहुँचे। वास्तव में एक अच्छा पाठक ही अच्छा आलोचक होता है और अच्छा आलोचक 'और' पाठकों के निर्माण में निर्णयात्मक भूमिका निभाता है। वह आलोचना करता है और ऐसा करके वह पाठक-कवि के बीच अच्छी पंक्तियों को रखकर, पाठक को थोड़ा और बड़ा, और सम्माननीय बनाता है।

कहानी-उपन्यास की आलोचना क्या होगी? या प्रशंसा होगी या निंदा होगी। या यूजीसी के लिए 'कागज गोदना' होगा। खैर... यह नितांत निजी राय है। दरअसल कहानी-उपन्यास में कोई पंक्ति या कोई वाक्य या एक लंबा उद्धरण आपको पसंद आया तो आप उसे एक बार, दो बार, तीन बार और ज्यादा रसिक हुए तो पचास बार पढ़ेंगे। लेकिन कविता आप इक्यावन बार पढ़ेंगे। हर बार, एक बार ज्यादा। दरअसल कथा साहित्य पहले से ही सब कुछ इतना विस्तार में, इतने डिटेल्स के साथ उपस्थित कर देता है कि उसके लिए अलग से गद्य की जरूरत नहीं पड़ती। गद्य में विस्तार होता है, गद्य विचार को वाणी देता है। कविता भाव को। कहानी-उपन्यास में विचार इतने विस्तृत ढंग से आते हैं कि उन्हें दोबारा-तिबारा कहने की जरूरत नहीं पड़ती। आप प्रेमचंद की कहानी 'बूढ़ी काकी' या 'ठाकुर का कुआं' पढ़ लीजिए। आपको आलोचना की या आलोचक की जरूरत नहीं पड़ेगी। वास्तव में यहाँ यथार्थ की जबरदस्त उपस्थिति होती है। यहाँ कल्पना के लिए अवकाश ही नहीं होता। यह जीवन को जीवंत रूप में उपस्थित कर देता है। इसीलिए यथार्थ पर जोर होता है। प्रेमचंद ने इसीलिए उपन्यास को 'जीवन की वास्तविकता' कहा था और गद्य को तो 'जीवन संग्राम की भाषा' ही कहा गया है। वैसे भी आलोचना जीवन संग्राम की भाषा अर्थात गद्य में होती है। कविता गद्य में हो सकती है लेकिन निखालिस गद्य में तो सिर्फ आलोचना या कथा साहित्य ही हो सकता है।

वैसे कविता में कहानी हो सकती है। प्रबंध काव्य होता ही था। होता ही है। 'असाध्य वीणा', 'अंधेरे में' आदि कविताओं में कहानी है। एक कथा है। लेकिन किसी कहानी में कविता हो, यह दिन में तारे खोजने जैसी स्थिति है। यहाँ जो आलोचना होती है ,वह दूरबीन या खुर्दबीन लगाकर की जाती है। ढूँढ़ा जाता है आलोचना के लिए 'मैटर'। कविता में तो अपने आप आता है 'मैटर'। इसलिए कविता अपने अंदर आलोचना की असीम आशाभरी संभावनाओं को जिलाए रखती है। यह जो कविता के अंदर अपने आप में 'मैटर' आता है, यह कविता को भाष्य की तरफ ले जाता है।

आलोचना एक तरह से भाष्य है। है टीका। इसीलिए एक समय काफी टिकाएँ लिखी गईं। आज भी बड़ा टीकाकार या भाष्यकार ही बड़ा आलोचक माना जाता है। समीक्षा लिखकर जो बड़े आलोचक बने फिरते रहते हैं, उनके लिए यह पंक्ति याद आ रही है—''मांगद फिरत दरस मधुकरी, छके रहे दिन रैन''। वे भी यदि कविता की आलोचना लिखे तो, नहीं तो आप कागज गोदते रहिए। बनते रहिए आलोचक-फ़ालोचक दुनिया को क्या?

एक अच्छी कविता कई अर्थ छवियाँ अपने अंदर समाहित किए रहती है। एक सहृदय पाठक उसमें जब वह पा जाता है तो दूसरे को बताना चाहता है कि देखो यहाँ यह मिला। यहाँ जो बात इतने कम शब्दों में है। वास्तव में यह बात इतने कम की है नहीं। यह बड़ी बात है, भले ही शब्द कम हो।

जिसे ऊपर कई अर्थ छवियाँ कहा गया है, क्या एक कविता को लिखते हुए कम से कम आधुनिक काल खासकर छायावाद के बाद का कवि क्या उसी ढंग से सोच कर लिखता है कि उसकी कविता में कई अर्थ छवियाँ हैं। आज के समय में यह संभव नहीं। वैसे धरती वीरों से खाली नहीं जो यमक, अनुप्रास और अन्य अलंकारों के हथियारों के साथ आज भी रणभूमि में डटे हैं। आज का कवि एक कविता में एक अर्थ भरना चाहता है। भरता भी है। वो कविता एक अर्थ वाली ही लिखता है। वह अर्थ जो वह जानता है। पर 'असाध्य वीणा' की तरह—

''राजा ने अलग सुनी
###
रानी ने अलग सुनी
###
सब ने भी अलग-अलग संगीत सुना।
इस को
वह कृपा-वाक्य था प्रभुओं का।
उस को
आतंक-मुक्ति का आश्वासन।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इस को
वह भरी तिजोरी में सोने की खनक।
उसे
बटुली में बहुत दिनों के बाद अन्न की सोंधी खुशबू।
किसी एक को नई वधू की सहमी-सी पायल ध्वनि।
किसी दूसरे को शिशु की किलकारी।
एक किसी को जाल-फँसी मछली की तड़पन-
एक अपर को चहक मुक्त नभ में उड़ती चिड़िया की।
एक तीसरे को मंडी की ठेलमठेल, ग्राहकों की आस्पर्धा भरी बोलियाँ,
चौथे को मंदिर की ताल-युक्त घंटा-ध्वनि।
और पाँचवें को लोहे पर सधे हथौड़े की सन चोटें
और छठे को लंगर पर कसमसा रही नौका पर लहरों की अविराम थापक।
बटिया पर चमरौधे की रुँधी चाप सातवें के लिए-
और आठवें को कुलिया की कटी मेड़ से बहते जल की छुल-छुल।
इसे गमक नट्टिन की एड़ी के घुमरू की।
उसे युद्ध का ढोल।
इसे संझा-गोधूलि की लघु टुन-टुन-
उसे प्रलय का डमरु नाद।
इस को जीवन की पहली अँगड़ाई
पर उसको महाजृम्भ विकराल काल! सब डूबे, तिरे, झिपे,जागे-
हो रहे वंशवंद, स्तब्ध:
इयत्ता सब की अलग-अलग जागी, संघित हुई,
पा गई विलय।
वीणा फिर मूक हो गई। (अज्ञेय रचनावली-2,पृष्ठ-126-27)

इसने, उसने, सब ने अपने-अपने ढंग से वीणा सुनी अर्थात् कविता सुनी। वास्तव में कवि अपनी बात ही लिखता है, वह बात व्यष्टि से समष्टिगत हो जाती है। वीणा की तरह लोगों को सुनाई देती है। दरअसल हर मनुष्य का कोई न कोई प्रिय होता है। जब भी कवि अपने प्रिय के बारे में कहता है। दरअसल वह हर व्यक्ति के प्रिय के बारे में कह रहा होता है। इसलिए कविता में कहे हुए एक अर्थ का इस तरह अर्थ विस्तार होता है जबकि वह एक ही अर्थ होता है। जब भी कोई केश कम्बली अर्थात कवि अपने को भुलाकर या अपने में डूब कर कुछ लिखेगा तो उसके अर्थ के बखान के लिए आलोचना को सामने आना पड़ेगा।

केश कम्बली यदि सूर्य है तो वीणा वह धरती है जहाँ दोनों मिलकर 'जीवन संगीत' का सृजन करते हैं। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरा संभव नहीं। दोनों का अपना अस्तित्व है। दोनों की अपनी धरती है। दोनों का अपना आसमान। दोनों एक क्षितिज पर मिलते हैं और वहाँ कविता का निर्माण होता है। यह निर्माण अपने ही रक्त से जी उठनेवाले रक्तबीज की तरह है या है उस फीनिक्स पक्षी की तरह जो सूर्य के पास जाता है तो जलकर राख हो जाता है और जैसे ही राख इस पृथ्वी से स्पर्श करती है; वह फिर जी उठता है। फिर जीवन से लबालब भर उठता है। फिर से सूर्य के पास पहुँचने को आतुर। वह कभी नहीं मरता। मृत्यु और जीवन के बीच का संसार ही कविता है। हैफीनिक्स जो कभी खत्म नहीं होता।

क्या कारण है कि कविता खत्म नहीं होती? न निकट भविष्य में उसके खत्म होने के कोई चिन्ह नजर आते हैं। तभी तो मुक्तिबोध कहते हैं-''नहीं होती, कभी भी खत्म कविता नहीं होती / कि वह आवेग-त्वरित काल-यात्री है''। कविता मनुष्य के साथ ही खत्म होगी। वह काल-यात्री है। वास्तव में दुनिया को थोड़ा बेहतर बनाने के लिए लिखी जाती है कविताएँ। न दुनिया बेहतर हो पा रही है, ना कविताएँ खत्म हो पा रही हैं। असंतोष मनुष्य का स्थाई भाव है। इतनी प्रगति होने के बावजूद आदिम व्यवस्था से उत्तर आधुनिक युग में आने के बाद भी हमें संतोष नहीं है। इसीलिए कविताएँ हैं, रहेंगी।

कविता एक तरह से नशे या ड्रग की तरह असर करती है। जो लिखता है, उस पर सबसे ज्यादा। जो पढ़ता है उस पर कम, पर करता है। कवि कविता का नशेड़ी हो जाता है। वह बार-बार कविता लिखता है। दरअसल वह बार-बार नशा करके अपनी कविता की दुनिया में भागकर जाना चाहता है। जैसे एक ड्रग एडिक्ट अपनी दुनिया में मस्त रहता है, वहीं हमेशा खड़ा रहना चाहता है। बार-बार एक ऐसी दुनिया में जाना जहाँ जाकर आपको आराम (रिलैक्स) मिलता है। वह कल्पना की दुनिया हो सकती है। स्मृतियों की दुनिया हो सकती है। जहाँ सब कुछ अच्छा, आपके अनुसार हो। आप उसके सृष्टिकर्ता हों। आप उसके ईश्वर या मालिक हों। आप जैसा चाहें वैसा सब कुछ हो। मालिक होने का नशा भी किसी नशे से कम नहीं होता। प्रेमचंद की एक कहानी 'नशा' इसे अच्छे से बताती है। कविता, स्मृतियों और कल्पनाओं से मिलकर बनती है। एक अच्छी स्मृति, एक अच्छी कविता है। एक शानदार कल्पना, एक शानदार कविता है। और दोनों मनुष्य के स्वप्न और जिजीविषा की तरह हैं। एक

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

से मनुष्य को लड़ने का हौसला मिलता है तो दूसरे से आगे बढ़ने का। लड़ना और आगे बढ़ना, मनुष्य की आदिम प्रवृतियाँ हैं। कविता बार-बार उन प्रवृत्तियों की तरफ की यात्रा है जो स्वप्न, जिजीविषा, कल्पना, स्मृति को धूप, हवा, पानी उपलब्ध करवाएँ। 'कवि के बोल खरगहिरवानी, एक दिसी आग-एक दिसी पानी' जब जायसी कह रहे थे तो हवा में नहीं कह रहे थे। कविता के नशे की चरमावस्था में रहे होंगे।

आदमी नशा कब करता है? जब वह अपने आज की स्थिति-परिस्थिति के साथ सामंजस्य नहीं बिठा पाता। वर्तमान से असंतोष। वर्तमान के प्रति क्षुब्धता। क्रोध। असहजता। हर एक भला व्यक्ति वर्तमान के प्रति सहज हो ही नहीं सकता। जो है, उस से बेहतर की तलाश उसे कवि बना देती है या पागल या क्रांतिकारी। दुनिया जानती है कि हर बड़ा पागल या बड़ा क्रांतिकारी कवि भले हो या ना हो, कविता को पसंद जरूर करता है। क्योंकि कविता वर्तमान के प्रति असंतोष का बिगुल है।

कवि असंतोष करके, विद्रोह करके जहाँ शरण लेता है; वह जगह है स्मृति और कल्पना। चाहे तो हम इसे अतीत और आशा भी कह सकते हैं। स्मृतियाँ और भविष्य भी कह सकते हैं। विज्ञान यह सिद्ध कर चुका है कि—''गत स्मृतियों में डूबना मानसिक शांति और सुखोपभोग का सबसे सरल और निश्चित उपाय है।'' किस मनुष्य को मानसिक शांति और सुखोपभोग नहीं चाहिए? हर व्यक्ति को चाहिए। इसलिए कवि की कविता हर व्यक्ति को अच्छी लगती है। वर्तमान के प्रति विद्रोह वही करता है जो संवेदनशील होता है। हर व्यक्ति में संवेदना है। संवेदना की घनीभूत इकाई कविता है। घनीभूत इकाई का पल्लवन आलोचना है।

पल्लवन गद्य में आसान होता है। गद्य में विस्तार देने की सहूलियत होती है। इसलिए कविता का विस्तार ही आलोचना है। इसे ही हजारीप्रसाद द्विवेदी 'लालित्य तत्त्व' में इस प्रकार कहते हैं—''गद्य हमारे प्रयोजनों की भाषा है; काव्य, चित्र, अभिनय और मूर्ति, प्रयोजनातीत 'आनंद' की। समस्या-समाधान गद्य का काम है, जीवन की चरितार्थता काव्य का अभिप्रेत है।''

हिंदी में आलोचना का मतलब कविता की आलोचना होती है जबकि कथा या कहानी की आलोचना के लिए 'कथालोचना' या 'कथालोचक' जैसे पदबंध बने हैं। यहाँ तक कि कहानी-उपन्यास में लेखक कुछ छोड़ता नहीं। वह सब कुछ लिख देता है जिसे पढ़कर पाठक के तार झनझना उठते हैं। और यदि कुछ छूट जाता है तो उसके लिए एकाध आलेख ही काफी होते हैं। इसलिए हिंदी में ठीक ढंग से कथालोचना विकसित नहीं हो पाई। नामवर सिंह ने 'कहानी-नई कहानी' पुस्तक लिखी भी तो उसे 'कविता के टूल्स' से लिखा। हिंदी उसे ही आलोचक मानती है जो कविता पर लिखें या कवियों पर लिखकर अपनी कलम तोड़ दें। नहीं तो लोग जिंदगी भर लिखते रह जाते हैं और हिंदी जनमानस उन्हें 'सैद्धांतिक आलोचक' या 'वैचारिक आलोचक' या 'प्रोफेसर-रिसर्चर' कहकर निपटा देता है।

कविता आलोचना या भाष्य या टीका की भारतीय परंपरा काफी गहरी, विस्तृत, सैद्धांतिक और व्यावहारिक रही है। कविता में कहानी रही है—रामायण महाभारत से लेकर कामायनी तक में। आधुनिकता के आने के बाद गद्य आया। भाषा पद्य से गद्य हुई। गद्य आया तो कविता का विकल्प भी आया। कहानी, लंबी कहानी, उपन्यास और निबंध भी विकसित हुए। बल्कि आज की कविता गद्य के निकट आ गई है। कुछ कवियों ने गद्य कविताएँ भी लिखी हैं। मेरे परिचित एक प्रोफेसर कहते भी हैं कि गद्य को छोटी-बड़ी पंक्तियों में तोड़ दो तो आज की कविता हो जाएगी। ऐसे वीरों को समझाना पानी पर लकीर खींचना है। गद्य में भी कविता होती है जहाँ भाव प्रमुख होते हैं। इस भाव में सब कुछ समाहित होता है। इस भाव की अपनी एक भाषा होती है। हर कला की अपनी एक भाषा होती है। संगीत, नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला, नाटक, फ़िल्म से लेकर ''कविता और कहानी की भी अलग-अलग भाषा है। आलोचना की भाषा के मुख्य उपकरण हैं—व्याख्या, तर्क, यथार्थ का उद्‌घाटन, विश्लेषण, वैचारिक संघर्ष और मूल्य निर्णय।'' इतना ही नहीं आलोचक शंभुनाथ आगे कहते हैं—''कविता में अस्पष्टता उसका एक गुण हो सकता है, पर आलोचना में स्पष्टता ही अधिक जरूरी है। आज की आलोचना की एक खूबी है, इसमें वस्तु और रूप दोनों स्तरों पर 'फ्यूजन' है।'' (संवेद-32, पृष्ठ-42) अर्थात् आज सब कुछ में 'फ्यूजन' (मिश्रण) हो गया है। आलोचना में समीक्षा और प्रशंसात्मक टिप्पणियों का ऐसा 'फ्यूजन' है कि समझ पाना दूभर हो जा रहा है कि आलोचना क्या है? और समीक्षा-आलोचना में अंतर कहाँ है? यह इस समय का एक बड़ा 'कंफ्यूज़न' है? यूरोप में भी क्या इसी तरह का 'कंफ्यूज़न' है?

यूरोप की नक़ल में यहाँ समालोचना की धूम हुई। रामचंद्र शुक्ल ने सही लिखा है—''किसी कवि या पुस्तक के गुण दोष या सूक्ष्म विशेषताएँ दिखाने के लिए एक दूसरी पुस्तक तैयार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

करने की चाल हमारे यहाँ न थी। योरप में इसकी चाल खूब चली। वहाँ समालोचना काव्य सिद्धांत निरूपण से स्वतंत्र एक विषय ही हो गया। केवल गुण-दोष दिखानेवाले लेखों या पुस्तकों की धूम तो थोड़े ही दिनों तक रहती थी, पर किसी कवि की विशेषताओं का दिग्दर्शन करानेवाली, उसकी विचारधारा में डूबकर उसकी अंतरवृत्तियों की छानबीन करने वाली पुस्तक, जिसमें गुणदोष का कथन भी आ जाता था, स्थायी साहित्य में स्थान पाती थी।'' 'हिंदी नवरत्न', बिहारी बड़े कि देव टाइप की पुस्तकें और आगे चलकर 'कबीर' आदि पुस्तके इसी समालोचना की ज्वलंत उदाहरण हैं। लेकिन इस उद्धरण में थोड़ा आगे रामचंद्र शुक्ल फिर लिखते हैं-''इसका उद्देश्य निर्दिष्ट करना होता है कि किसी रचना का उसी प्रकार की और रचनाओं से क्या संबंध है और उसका साहित्य की चली आती हुई परंपरा में क्या स्थान है।'' यह काम हिंदी आलोचना में आजकल ठप्प है।

वहाँ यूरोप में कविता-आलोचना जैसे भी हुए लेकिन हिंदी में नकल खूब हुई। नकल से उसका भारतीयकरण भी हुआ। इसी चक्कर में बहुत कुछ हुआ। 'क्रिटिसिजम', 'न्यूक्रिटिसिजम' के चक्कर में पड़कर कविता से समाज ढूँढ़ निकाला गया। बहुत कुछ ढूँढ़ा गया। अब तो ढूँढ़ने के चक्कर में कोई कविता संग्रह आया नहीं कि आलोचक उसमें क्या-क्या ढूँढ़ कर और स्पष्ट शब्दों में कहूँ तो उसकी समीक्षा करके आलोचक बन जाते हैं। वह शिकार की प्रतीक्षा में खुद शिकार बन जाते हैं।

फिर से रामचंद्र शुक्ल की याद आने लगी जो वे महावीर प्रसाद द्विवेदी के संदर्भ में कहते हैं—''यद्यपि द्विवेदीजी ने हिंदी के बड़े-बड़े कवियों को लेकर गंभीर साहित्य समीक्षा का स्थायी साहित्य नहीं प्रस्तुत किया, पर नई निकली पुस्तकों की भाषा आदि की खरी आलोचना करके हिंदी साहित्य का बड़ा भारी उपकार किया है। यदि द्विवेदीजी न उठ खड़े होते तो जैसी अव्यवस्थित, व्याकरण विरुद्ध और ऊटपटांग भाषा चारों ओर दिखाई पड़ती थी, उसकी परम्परा जल्दी न रुकती। उसके प्रभाव से लेखक सावधान हो गए और जिनमें भाषा की समझ और योग्यता थी, उन्होंने अपना सुधार किया।'' आज उसी 'खरी आलोचना' की, जो आलोचक का स्थायी गुण होना चाहिए, की जरूरत है। आज कवि की नई पुस्तक पर समीक्षक-आलोचक ऐसे भहरा पड़ते है जैसे गुड़ पर चीटियाँ। और कवि यदि सौभाग्य से वह प्रोफ़ेसर-अफसर हुआ तो उसे 'हिंदी समीक्षक-आलोचकों' की फौज भरत की तरह सर पर उठाए रखने को तैयार है। अब वह जमाना भी नहीं रहा जब चौधरी जी की तरह कोई इक्कीस पृष्ठों में कठोर समालोचना लिखे और पहले ही घोषित कर दें—''इस पुस्तक की समालोचना करने के पूर्व इसके समालोचकों की समालोचनाओं की समालोचना करने की आवश्यकता जान पड़ती है, क्योंकि जब हम इस नाटक की समालोचना अपने बहुतेरे सहयोगी और मित्रों को करते देखते हैं, तो अपनी ओर से जहाँ तक खुशामद और चापलूसी का कोई दरजा पाते हैं, शेष छोड़ते नहीं दिखाते।'' (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-323) तो जो आलोचना, खुशामद और चापलूसी के खिलाफ खड़ी हुई थी, वह आज कहाँ आ गई है? अब आप से कुछ छुपा तो है नहीं कि आज आलोचना के बदले सबकुछ हो रहा है। जो आलोचना मूल्य निर्णय और अन्वेषण पर जोर देती थी, आज चापलूसी और खुशामदी पर उतर आई है। ऊपर लिख ही दिया है कि आजकल आलोचक आलोचक कम समीक्षक अधिक हो गए हैं। ऐसी लम्बी-लम्बी समीक्षाएँ जो न पाठक पढ़ते हैं, न आम आदमी; जिसे सिर्फ समीक्षक और रचनाकार ही पढ़ते हैं। आज इक्कीस पृष्ठ लिखने के बदले फेसबुक पर लोग इक्कीस लाइन लिखकर आलोचक, कठोर आलोचक बन गए हैं। साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण पत्रिका ने तो समीक्षा का स्तम्भ ही बदलकर 'समीक्षा-संवाद' कर दिया जिसमें रचनाकार से समीक्षक बात भी करता है। शायद इसी बहाने समीक्षा की हालात कुछ सुधरे। समीक्षा की हालत कुछ सुधरेगी तो शायद आलोचना की हालत भी कुछ सुधरे। मैं तो इसी उम्मीद पर आलोचना-समीक्षा को पढ़ रहा हूँ।

सम्पर्क - 8250412914

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

परिचर्चा

इस सदी में कविता

प्रस्तुति : कुमार मुकुल

(साहित्यिक पत्रकारिता में लंबा अनुभव है। अख़बार और पत्रिकाओं से जुड़े रहे हैं।)

कोरोना के बंदी काल में आभासी जगत (डिजिटल विश्व) का हस्तक्षेप जीवन में बढ़ा है, कविता की दुनिया उसका अपवाद नहीं है। इस संकट ने कविता को फिर से रचनात्मक विधाओं के केंद्र में ला दिया है। सोशल मीडिया आज कविमय हो चुका है। कवियों की एक बाढ़ सी है। हमेशा की तरह इसका मुख्य कारक कविता का फॉर्मेट या रूप है जो आप के मन्तव्यों को अभिव्यक्त करने के लिए सदा अनुकूल होता है। कम शब्दों में अपनी बात कह सकने की सुविधा इसकी लोकप्रियता का मुख्य कारण है। अभिव्यक्ति के माध्यम की इस आसानी ने एक हड़बड़ पैदा कर दी है तमाम लोग कवियों का कवि या सिरमौर होने को बेचैन से हैं। ऐसे में यह देखना जानना जरूरी है कि इस काव्यमय भीड़ का भविष्य क्या है, क्या इसे पुराने अकादमिक तरीकों से देखा समझा जा सकता है या इसके लिए नए औजारों की जरूरत पड़ेगी। इसी संदर्भ में हिंदी के अग्रज-अनुज कवियों से निम्न सवालों पर आधारित परिचर्चा प्रस्तुत है -

1. दुनिया बीती सदी की नवीं दहाई से राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और लोकतांत्रिक रूप से लगभग बदल चुकी है। आपको अनपेक्षित बदलावों के बीच एक कवि के एजेंडे में कौन से विषय और उन पर काम अपरिहार्य लगते हैं?

2. सूचना और प्रौद्योगिकी के संश्लिष्ट जगत को जहाँ समझना मुश्किल होता जा रहा है, वहीं धर्म मिथक, इतिहास को विरूपित कर अंधविश्वास को बढ़ाने, वैमनस्य फैलाने और झूठ को सच की तरह परोसने में उसका सुनियोजित इस्तेमाल हो रहा है। इस संदर्भ में आप एक बुद्धिजीवी और रचनाकार की तरह समाज को बचाने और लोकतंत्र को सहेजने में अपनी किस तरह की भूमिका देखते हैं?

3. आज सोशल मीडिया पर कवियों और कविताओं का पकड़ से बाहर होता हुआ संसार है। एक मोटे अनुमान के अनुसार 400 से अधिक ऐसे कवि हैं जो विभिन्न प्लेटफार्म्स पर सक्रिय हैं। इनके बारे में विचार करना छूटा हुआ है। हमें लगता है इस संसार को इग्नोर करने की जगह इन पर बात होनी चाहिए। इस काव्य उपस्थिति के बारे में आपका आलोचनात्मक विवेक क्या सोचता है?

राजेश जोशी

समकालीन कविता के वरिष्ठ कवि एवं आलोचक

1. हाब्सबाम की धारणा के अनुसार 1990 के बाद याने सोवियत संघ के विघटन और नई प्रौद्यागिकी के आने के साथ ही नई सदी की शुरूआत हो गई। बिलगेट्स के विण्डो ने कम्प्यूटर के चूहे को सामान्य आदमी की हथेली की पहुँच में ला दिया। मोबाइल और बाद में आए स्मार्ट फोन ने जानकारियों को हमारी हथेली पर ला कर रख दिया। दिमाग के मेमोरी बाक्स के उस हिस्से में जिसमें बहुत सारी सूचनाओं को रखे रहना पड़ता था, अब उसका बोझ लगभग खत्म हो गया।

प्रौद्योगिकी में आए इन सारे परिवर्तनों ने मानवीय सम्बन्धों में अनेक बदलाव किए हैं, वर्तमान राजनीति, स्वास्थ्य सेवाओं और व्यवसाय की बची-खुची नैतिकताएँ भी लगभग ख़त्म हो चुकी हैं और भाषा उद्दण्डता और अहंकार से भर गई है। नई आक्रामकताओं ने जन्म लिया है। समाज में धार्मिक और जातिवादी , वर्णवादी अन्तर्विरोध ज़्यादा असहिष्णु और हिंसक हुए हैं। जिनकी ठीक-ठीक जाँच पड़ताल होना बाकी है। गूगल और स्मार्ट फोन ने जानकारियों और सृजनात्मकता के बीच ही नहीं, स्मृति और सृजनात्मकता के बीच बने सम्बन्ध को भी कुछ

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हद तक बदला है। भाषा में हजारों नए शब्द और नई अवधारणाओं से जुड़े पद शामिल हो गए हैं। एक कवि के सामने इस समय विषयों का आधिक्य ही अधिक है।

2. भूण्डलीकरण और मुक्त बाज़ार वाली आर्थिक नीति विफ़ल हो चुकी है। वित्तपूँजी का प्रपंच छिपने और अपने को छिपाने के लिए, राजनीतिक स्तर पर दक्षिणपंथी ताकतों को सत्ता पर काबिज़ करवा कर, धार्मिक और गैर ज़रूरी मुद्दों को सामने लाकर, जनता का ध्यान ज़रूरी मुद्दों से हटाने के लिए, तरह-तरह के स्वांग रच रहा है। वह कभी मिथक को इतिहास में अवमूल्यित करने लगता है और कभी उसे आस्था का सवाल बना देता है। इतिहास से साथ खिलवाड़ और रूढ़िवादी सोच से वैज्ञानिक सोच को प्रतिस्थपित करने की कोशिश की जा रही है। बिना एक बड़े राजनीतिक विकल्प के इस स्थिति को नहीं बदला जा सकता। रचनाकार की भूमिका प्रतिरोध की चेतना को ताकत देने की होती है। रचनाकारों ने इस भूमिका को अपने स्तर पर लगातार निभाया है। और निभा रहे हैं। लेकिन राजनीतिक विकल्प को बनाने का काम तो लोकतान्त्रिक, धर्मनिरपेक्ष राजनीतिक शक्तियों को ही करना होगा।

3. 400 या 500 कवियों का होना कोई बहुत अनोखी बात नहीं है। हिन्दी बहुत बड़े जन समुदाय की भाषा है। सोशल मीडिया के कारण हमें यह संख्या बड़ी लग रही है। लेकिन भक्तिकाल, रीतिकाल, छायावाद, नई कविता या बाद के आंदोलनों में क्या कवियों की संख्या इससे कम रही है? पहले लिखने वाले हर कवि के पास कोई माध्यम नहीं था, अपने को प्रस्तुत करने का, वह एक छोटे से समुदाय तक सीमित रह जाता था। स्थानीय अखबारों या साप्ताहिक पर्चों में छप कर रह जाता था। अब सोशल मीडिया के कारण उसे एक स्वतन्त्र स्पेस मिल गई है। जहाँ वह अपने को प्रस्तुत कर सकता है। सवाल इन पर बात करने का है तो मैं कहना चाहता हूँ कि साहित्य में इस तरह बात नहीं होती। पहले एक रचनाकार को अपने को अपनी रचना द्वारा प्रमाणित करना होता है। कुछ रचनाकार जल्दी और कुछ रचनाकार कुछ देर में अपने को प्रमाणित कर पाते हैं। अपने को न्यूनतम रूप से प्रमाणित कर चुके रचनाकारों के आधार पर ही किसी विधा में आए नए रचनाकारों पर बात हो सकती है।

सोशल मीडिया एक अराजक स्पेस है। वहाँ न कोई संपादक है, न कोई प्रकाशक है, न कोई आलोचक है। ऐसी अराजक स्पेस साहित्य के लिए कोई बहुत उपयोगी स्पेस नहीं हो सकती। उसके आधार पर साहित्यिक मूल्यांकन और विमर्ष संभव नहीं है।

सम्पर्क – +91 755 277 0046

लाल्टू

समकालीन कविता के उल्लेखनीय कवि

1. अगर सत्ता में भागीदारी के हिसाब से देखा जाए तो पिछले तीन दशकों में दुनिया में कुछ भी बदला हुआ नज़र नहीं आएगा। पूँजीवाद ने नई-छूट-वाद (नव-उदार शब्द सही नहीं है, क्योंकि हिन्दी में 'उदार' से पहला एहसास यह होता है कि किसी का कुछ भला हुआ है) की तिकड़म से दुनिया के माली निज़ाम पर पंजे गहरे गाड़ लिए हैं। पर हर मुल्क में जैसा लोकतंत्र है, जनता की भागीदारी वहाँ तक़रीबन वैसी ही है, जैसी तीन-चार दशक पहले थी। यह ज़रूर हुआ है कि भारत जैसे कुछ मुल्कों के शासक वर्गों में विचारधारा की लड़ाई में फासीवाद के पक्षधर हावी होते दिख रहे हैं।

भारत में फासीवाद और बड़े पूँजीपतियों के गठजोड़ का उभार दशकों पहले से जाहिर था, पर संपन्न जाति-वर्गों से ताल्लुक रखने की वजह से रचनाकारों ने इस पर इतना गौर किया नहीं जितना कि किया जाना चाहिए था। कवियों समेत सचेत रचनाकार सांप्रदायिकता और हर तरह की नफ़रत के खिलाफ नागरिक आंदोलन खड़ा करने की कोशिश करते रहे हैं, इसी को आगे बढ़ाते रहना होगा। अहम मुद्दा बराबरी का है, इसी को सामने रखकर विविधता और बहुलता के पक्ष में खड़े होना आज एक कवि के एजेंडे में सबसे ज़रूरी बात है। इसके लिए समझौते करने पड़ सकते हैं, पर समझौतापरस्ती से बचना होगा। मसलन संगीत की दुनिया में कई भारतीय ज़बानों में लोक-भाषाओं से बोल (गायन और संगीत दोनों) लिए जा रहे हैं और अक्सर यह कॉरपोरेट सरपरस्ती में हो रहा है (जैसे कोक-स्टूडियो)। क्या ऐसा ही साहित्य के क्षेत्र में हो रहा है -आज रचनाकार को किस तरह के समझौतों से वाबस्ता होना पड़ रहा है - ये सोचने की बातें हैं। क्या समझौतापरस्ती यहाँ तक आ चुकी है कि कवि फासीवादियों के साथ एक मंच पर खड़ा है या उसका विवेक उसे लगातार सही-ग़लत की परख करवा रहा है! वक्त की जटिलताओं को देखते हुए जो जहाँ है, उसे फासीवाद के खिलाफ अपनी लड़ाई लड़नी है या और

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संघर्षों के साथ जुड़ना है। हालात की मायूसी की सही छवि सामने रखना भी एक लड़ाई है। इसलिए कोई मुहावरा तय करना या अभिव्यक्ति की दिशा पर फतवा जारी करने का कोई मतलब नहीं है। बराबरी और इंसाफ - यही चिरंतन मुद्दे हैं और रहेंगे। अभिव्यक्ति में विविधता रहेगी और नए प्रयोग होते रहेंगे।

2. जब भी कोई नई टेक्नोलॉजी आती है, उसे समझने और उसके साथ राब्ता जोड़ने में वक्त लगता है। कंप्यूटर और सूचना-प्रौद्योगिकी में बड़ी तेजी से बदलाव आए हैं। साथ ही कई और नई टेक्नोलॉजी तेजी से बढ़ी हैं - जैसे नैनो और बायो-टेक्नोलॉजी। आम लोगों पर इनका भारी असर पड़ा है, पर इससे कहीं ज्यादा सोचने लायक तरक्की बुनियादी विज्ञान के कई खित्तों में हुई है, जैसे चेतना और मानसिक स्वास्थ्य के विज्ञान में समझ तेजी से बढ़ी है। बुनियादी स्तर पर आर्टीफिशियल इंटेलिजेंस (जिसका कंप्यूटर टेक्नोलॉजी से गहरा रिश्ता है) और चेतना (ज़हनी एहसास) के विज्ञान में शोध के सवाल एक जैसे हैं। जहाँ तक विज्ञान और टेक्नोलॉजी के ग़लत इस्तेमाल की बात है, यह हमेशा ही होता रहा है। पिछले 6-7 दशकों में दुनिया की कई यूनीवर्सिटीज़ में 'साइंस एंड टेक्नोलॉजी स्टडीज़ (एस टी एस)' नामक विषय के विभाग खुले हैं, जहाँ इस मुद्दे पर गंभीर शोध हो रहा है। हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली में ज़बरन बनावटी तत्सम शब्द भर दिए जाने से ऊँचे स्तर पर विज्ञान-कर्म में लगे लोगों ने हिन्दी में नहीं के बराबर पढ़ा-लिखा है। मैंने 1989 में ज्ञानरंजन को लिखा था कि हिन्दी में विज्ञान की शब्दावली हिन्दीभाषियों के खिलाफ षड़यंत्र है। इस पर लेखक संगठनों को जो कुछ करना चाहिए था, वह नहीं हुआ है। भाषा से जुड़े कई गंभीर मुद्दे हैं, मसलन पिछले चार दशकों में उत्तर भारत में फासीवाद और नफ़रत की राजनीति का जैसा तेज़ी से उभार हुआ है, इसमें सत्ता की भाषाओं (अंग्रेज़ी और बनावटी तत्सम-निष्ठ हिन्दी) की क्या भूमिका रही है, यह सोचने की बात है। टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल भली-बुरी हर तरह की मंशा के लिए हो सकता है। इंसानियत के खिलाफ सूचना और प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल समाज में मौजूद बुनियादी द्वंद्वों का महज एक पहलू है। इसलिए रचनाकारों को तो अपना काम करते रहना है, मसलन गैरबराबरी, नाइंसाफी के खिलाफ आवाज़ बुलंद करना है। ऐसा सचेत लेखन भारतीय भाषाओं में हो रहा है और होता रहेगा। चूँकि नफ़रत की सियासत इंसान को इंसान से अलग करती है, और इस तरह बराबरी और इंसाफ जैसे बुनियादी मुद्दों से हमें परे करती है, इसलिए हर स्तर पर नफ़रत की सियासत से लोहा लेना किसी भी सचेत रचनाकार के लिए सबसे अहम लड़ाई है। यह अलग बात है कि इसके लिए कैसे मुहावरे हों और इस प्रतिरोध का सौंदर्य-शास्त्र कैसा हो। जाहिर है कि वक्त के साथ नए फॉर्म गढ़ते हुए ही हमें प्रतिरोध का साहित्य सृजन करना है। यह काम मुश्किल है और वक्त ही बतलाएगा कि हम इसमें कितना कामयाब हो पाए हैं।

3. आज सोशल मीडिया पर कवियों और कविताओं का पकड़ से बाहर होता हुआ संसार है। एक मोटे अनुमान के अनुसार 400 से अधिक ऐसे कवि हैं जो विभिन्न प्लेटफार्म्स पर सक्रिय हैं। इनके बारे में विचार करना छूटा हुआ है। हमें लगता है इस संसार को इग्नोर करने की जगह इन पर बात होनी चाहिए। इस काव्य उपस्थिति के बारे में आपका आलोचनात्मक विवेक क्या सोचता है?

- आधी सदी पहले जब सोशल मीडिया नामक कोई चीज़ नहीं थी, क्या तब 400 से कम कवि थे? हर वक्त हर तरह के लेखन पर बात होनी चाहिए। साहित्य की दुनिया में कुछेक अपवादों को छोड़कर दलक (सुंदर शब्द 'सवर्ण' से जाने जाने वाले) जातियों के उच्छृंखल पुरुषों का आधिपत्य रहा है। उन्हीं की संगत में नए रचनाकारों को चुना जाता रहा है और साहित्य का भविष्य बनता रहा है। सोशल मीडिया में इससे इतर कुछ और हो रहा हो, यह ज़रूरी नहीं है। इसलिए सतही तौर पर दिख रही समस्याओं से आगे बुनियादी समस्याओं पर बात करनी होगी। जाति, क्षेत्र, लिंग आदि के पूर्वाग्रहों से बचकर खुले दिमाग से नए लोगों को सामने आने देना होगा। अभिव्यक्ति में विविधता को जगह देनी होगी। सवाल सोशल मीडिया या प्रिंट मीडिया का नहीं, बल्कि खुलेपन के साथ नए स्वरों की पहचान का है। सामंती मानसिकता के साथ सिर्फ जान-पहचान के आधार पर पुराने ढर्रे की कविता को जगह देने की वजह से कई उम्दा रचनाएँ दरकिनार हो रही हैं। हिन्दी में आज तक एक ओर रेटोरिक तो दूसरी ओर सतही सौंदर्य-परक कविताओं का बोलबाला है। अक्सर कवि अपनी रचना में शामिल नहीं है - वह दूर खड़े होकर किसी और के लिए रो रहा/रही है। अपने अंतर्द्वंद्वों को सामने लाने वाली कविताओं पर चर्चा नहीं होती है।

सम्पर्क - 9966878063

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रभात प्रवीण

युवा लेखक

1. दरअसल यह प्रश्न मनुष्यगत चेतना से जुड़ा है। मानव सभ्यता अपने क्रमिक विकास के साथ जिस विकृति, आडम्बर, विसंगति और वैयक्तिक ह्रास का सामना करने को अभिशप्त रही है उसने सदैव मानव समूह के भीतर से आत्मावलोकन, चिंतन और प्रतिकार की प्रासंगिकता भी बनाये रखी है। लेकिन स्वाभाविक है यह संवेदनशील समझ सीमित होगी। मेरी समझ से साहित्य के किसी भी व्यक्ति की पहली आर्हता चाहे वह एक कवि हो या एक कथाकार, उसका मानवीय क्षय, विचलन, पीड़ा के प्रति संवेदनशील होना होता है। और यदि यह है तो एक कवि सबसे पहले पूरी मानव जाति को प्रभावित करने वाले राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और लोकतांत्रिक बदलाव, अवमूल्यन के प्रति बगैर किसी किंतु, परंतु के सजग और मुखर होगा। फ्रांसीसी दार्शनिक लुईस गेब्रियल एम्ब्रोइस का मानना था कि साहित्य समाज की अभिव्यक्ति है जैसे शब्द मनुष्य की अभिव्यक्ति है। उनके इस कथन से ही एक साहित्यिक व्यक्ति की वास्तविक प्रासंगिकता, उत्तरदायित्व और सीमा तय हो जाती है। बीती सदी से जो बदलाव हम महसूस कर रहे हैं वह तीव्र है और साहित्य जगत से स्वाभाविक त्वरित प्रतिक्रिया अपेक्षित है। ये सारे बदलाव जो मानव जाति को प्रभावित कर रहे हैं उसके मूल में विकास उपक्रमों की प्राथमिकताओं से स्वयं मनुष्य का उपेक्षित होते जाना है। स्पष्टत: वैयक्तिक और संस्थागत दोनों स्तर पर एक निज व्यक्ति गौण होते जा रहा है। राजनीति, अर्थ, समाज और लोकतंत्र दुर्भाग्यवश उन अवयवों द्वारा प्रभावित होने लगे हैं जहाँ व्यक्ति या तो महत्त्वपूर्ण है ही नहीं और यदि है भी तो वह एक खास रूप से चिह्नित है। फासिज्म, निरंकुश पूँजीवाद, बहुसंख्यकवाद, शोषणकारी तन्त्र और ऑटोक्रेसी इस स्तर पर जरूर एक दूसरे से जुड़े हैं। एक कवि के एजेंडे में ये सारी बातें अलग-अलग तो रहेंगी ही लेकिन उसका ध्येय वही निरीह व्यक्ति होना चाहिए जिसे गौण करने की तमाम साजिशें हैं और जिन्हें गौण करके ही उपरोक्त सारी विकृतियाँ आज मानव सभ्यता के समक्ष विध्वंसक रूप से आ खड़ी हुई हैं। दमन का कोई भी तन्त्र अंतत: व्यक्ति, उसकी स्वतंत्रता, अस्मिता को ही नष्ट करता है इसलिए बात तो उसकी ही होनी चाहिए और जब उसकी बात होगी तो बात प्रेम, सद्भाव, सहिष्णुता, सामंजस्य की भी होगी ही जहाँ वास्तविक निदान निहित है।

2. मानव जाति का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है कि उसे हमेशा से अपने भीतर उत्पन्न उन प्रवृत्तियों से जूझना पड़ता है जो सत्ता हेतु दमनकारी स्वभाव रखते हैं, चाहे यह राजनीतिक सत्ता हो या फिर सामाजिक सत्ता। यह प्रवृत्ति हर युग में एक बिलकुल नए कलेवर, रंग में प्रकट हो जाती है हालाँकि अपने मूल में वह एकरूपता बनाये रखती है। हर एक आविष्कार, कोई भी वैज्ञानिक उपलब्धि इसी वजह से हमारे समक्ष एक खतरा उत्पन्न करने की क्षमता रखती है। सूचना और प्रौद्योगिकी के उत्कर्ष के साथ भी यह बात लागू होती है, जो कि अब हमारे सामने स्पष्ट रूप से परिलक्षित है। स्वाभाविक रूप से चूँकि यह उत्कर्ष शक्तिशाली और व्यापक है इसलिए इससे उत्पन्न खतरा भी भयावह है। आक्रमण हर स्तर पर और हर जगह से है। जहाँ जिसकी जितनी भी संभावना बन रही हो विध्वंसक तत्त्व उसका वहाँ बखूबी इस्तेमाल कर रहे हैं। और ऐसे हर दौर की तरह इस समय भी हर एक संवेदनशील मन, व्यक्ति, बुद्धिजीवी या रचनाकार का दायित्व बढ़ जाता है। उपरोक्त दमनकारी तत्त्वों की विशेषता होती है कि वे मनुष्य के सबसे मौलिक और महत्त्वपूर्ण स्वभाव 'प्रश्न करने की क्षमता' को कुंठित, नष्ट करने की कोशिश करते हैं क्योंकि उनका सारा तंत्र जो कि झूठ, फरेब और प्रोपगंडा पर टिका होता है उसे मनुष्य के इसी स्वभाव से सबसे ज्यादा खतरा होता है। इतिहास साक्षी है, चूँकि एक ठोस प्रश्न के समक्ष उनका सारा तंत्र, साम्राज्य भरभरा कर ध्वस्त हो जाता है इसलिए सारा प्रयास इसे रोकने का होता है। स्पष्ट है कि हर एक बुद्धिजीवी और रचनाकार की पहली कोशिश होनी चाहिए कि न सिर्फ वह खुद इन ताकतों के समक्ष प्रश्न लेकर खड़ा रहे बल्कि समाज को इसके लिए प्रेरित और जागरूक करे। दौर कितना भी कठिन हो, दमनकारी तंत्र चाहे कितना भी ताकतवर क्यों न हो, कलम के पास इतनी ताकत तो हमेशा रहती है कि उसके प्रश्न उन ताकतों को चिंतित करें और आम जन को जगाये रखें। अंग्रेज दार्शनिक अल्फ्रेड नॉर्थ व्हाइटहेड का ठीक ही मानना था कि मानवता के ठोस दृष्टिकोण को इसकी अभिव्यक्ति साहित्य में ही मिलती है। उनके ये शब्द वास्तव में एक साहित्य के व्यक्ति, कवि या लेखक की ज़िम्मेवारी एवं उसकी महत्ता को इंगित करते हैं। आज यदि सूचना और प्रौद्योगिकी के संसाधन उन दमनकारी ताकतों के लिए सुलभ हैं तो इनका इस्तेमाल यह जागरूक वर्ग, कवि, लेखक भी बखूबी कर सकता है और यह किया भी जा रहा है। वर्तमान समय में इन संसाधनों के बेहतर इस्तेमाल के द्वारा उचित व

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सफल प्रतिकार के तमाम उदाहरण वैश्विक स्तर पर उपलब्ध हैं। यह सहज, सरल कतई नहीं है लेकिन हमारे समक्ष सबसे अच्छा विकल्प भी यही है। आँखे खुली रखनी होंगी, प्रश्न करते रहना होगा, आगे बढ़ते रहना होगा, हर दीवार के समक्ष खड़ा होना होगा।

3. एक जिंदा समाज की सबसे बड़ी पहचान है कि वह अपनी बात कहना, प्रश्न करना कभी नहीं भूलता। यह हमारे लिए अच्छा संकेत है कि अब बहुत सारे लोग लिख रहे हैं, अपनी बात कह रहे हैं। वे चाहे सोशल मीडिया पर हों या न हों, उनका लिखना महत्त्वपूर्ण है। ऐसे तमाम कवियों की बात तो होनी चाहिए। हालाँकि इनके सजग मूल्यांकन की आवश्यकता भी है। यह दौर लिखने, बोलने की माँग तो करता है लेकिन इसके साथ ही यह भी अपेक्षित है कि इन लिखे गये, बोले गये का सन्दर्भ, उद्देश्य भी स्पष्ट हो। हम जिस कठिन दौर से गुजर रहे हैं इस दौर में कवियों, लेखकों जिनकी वास्तविक ज़िम्मेवारी समाज के प्रति है, उनका इस्तेमाल सत्ता के लिए भी हो जाता है या फिर वे स्वयं ही इस हेतु प्रस्तुत होते हैं। मैं यहाँ किसी का नाम लेना उचित नहीं समझता लेकिन ऐसे तमाम कवि, लेखक हैं जो इस दौर में उन्हीं ताकतों के साधन के रूप में इस्तेमाल हो रहे हैं जिनके विरुद्ध दरअसल उन्हें खड़ा होना था। यह दुखद है, और यह कहीं ज्यादा खतरनाक है। सबकी बात होनी चाहिए, उनकी भी जिन्हें अपने वास्तविक उत्तरदायित्व का बोध है और उनकी भी जो अपने अर्जित ज्ञान, पहचान का इस्तेमाल अन्तोगत्वा किसी के साधन के रूप में कर रहे हैं और कूड़ा लिख रहे हैं, जहर बो रहे हैं। यह बात सच है कि साहित्यिक विमर्श की सारी जगह कुछ नामों तक सीमित हो गई है, सारे प्रमुख मंच इन्हीं एलिट बन चुके वर्ग हेतु आरक्षित दीखते हैं जबकि अच्छा, प्रासंगिक, वाजिब लिखने वालों का एक बहुत बड़ा वर्ग उपेक्षित रह जाता है। इसका नुकसान स्पष्ट है। इस उपेक्षित वर्ग को भी मुख्यधारा में जगह मिलनी चाहिए ताकि समाज तक वह सबकुछ पहुँचे जिसकी अत्यंत आवश्यकता है, खासकर इस नाजुक दौर में।

सम्पर्क - prabhatpraneet@gmail.com

शिवम तोमर

युवा लेखक

1. आज का कवि निस्संदेह उदास है। अपने निजी पलों में भी वह सामाजिक चेतना से ओतप्रोत रहता है। जिस तरह की सामाजिक और सांस्कृतिक वास्तविकता हमारे इर्द-गिर्द विकसित हो रही है, उसमें आमतौर पर कोई भी संवेदनशील व्यक्ति पीड़ित हो सकता है।

काव्य चेतना जटिल से जटिलतम होती जा रही है। सामाजिक एवं व्यक्ति चेतना के बीच एक निरंतर युद्ध ज़ारी है और हमारा अंतस मात्र एक युद्धक्षेत्र की भूमिका निभा रहा है। प्रचलित काव्य अभिव्यक्ति को संवलित कर देखा जाए तो जान पड़ता है कि अनुभूतियाँ अब व्यक्ति सापेक्ष अधिक हैं, समष्टिगत कम।

इक्कीसवीं सदी का आदमी अंदर से परेशान है और अंदर ही अंदर ठीक हो जाना चाहता है। यही आदमी जब कविता के धरातल पर उतरता है तो उसे विषयवस्तुओं का अंबार दिखाई पड़ता है। जिस रफ़्तार से आज दुनिया चल रही है, यह कह पाना कि हमें दुनिया की ख़बर है, निरर्थक है। इसी रफ़्तार ने एक नए कॉन्सेप्ट को जन्म दिया है जिसे 'फोमो' (Fear of missing out) कहा जाता है। इसका भावार्थ हुआ किसी चीज से वंचित रहने पर अफ़सोस होना।

आज के दौर की कविता में फोमो प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों रूप से मौजूद है। इस दौर का या आने वाली पीढ़ी का कवि, जिसे काव्य-साहित्य की दुनिया आशा के साथ देख रही है, दुर्भाग्यवश उस जानकारी के अंबार को संसाधित करने में असमर्थ है, जो जाने-अनजाने में भारी मात्रा में उसके चेतन और अचेतन मन को उपलब्ध है।

आज का कवि चिंतित है। एक क्षण को जीते हुए वह इस दुनिया में होने वाली कई घटित हो रही अन्य चीजों से वंचित रह जाने की कुंठा में बेहतर तरीके से मौजूद है। नतीजतन, आज का कवि अपने वर्तमान क्षण में पूरी तरह से मौजूद नहीं है।

एक अनुभव को पूरी तरह से जीने की असमर्थता एक ऐसे युग में स्वाभाविक है जब मनुष्य का अस्तित्त्व कई भागों में विभाजित हो चुका है। एक ओर उनका वास्तविक सामाजिक अस्तित्त्व है, तो दूसरी ओर वर्चुअल या सोशल मीडिया अस्तित्त्व है।

'मैं चाहता था कि जब हम जीवन पर बात करें तो कविता को भूल जाएँ'

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

असद ज़ैदी की एक कविता का यह हिस्सा अगर सन्दर्भरहित उठा कर देखा जाए तो इस कविता में जीवन के क्षणों में पूर्णत: मौजूद न होने की टीस दृष्टिगोचर होती है।

जिस समय कविता घटित हो रही है उसी समय कविता लिखी जा रही है और यह आधुनिक प्रतिक्रियावादी समय के मानदंडों के परिणामस्वरूप एक आवश्यकता बन पड़ा है। एक ओर समकालीन कविता वस्तुस्थिति से मुख़ातिब होती दिखाई पड़ती है, वहीं दूसरी ओर कृत्रिम भाव और शब्दों की खरपतवार कविता में भाव की सघनता को निष्क्रिय करती जान पड़ती है।

हर सेकंड दुनिया में अनेक कोनों में हो रही तमाम घटनाएँ अभिव्यक्ति के हज़ारों माध्यम से हम तक पहुँच रही हैं। एक वृहत्त खोखलेपन से लड़ते हुए जो कि आधुनिक जीवनशैली की देन हैं, मानव-मन इस जानकारी पर अपनी प्रतिक्रिया देकर अपने भावनात्मक अस्तित्त्व को व्यक्त करने एवं आत्म-औचित्य को स्थापित करने के लिए बाध्य है।

मैं समझता हूँ कि रचनाधर्म की मौलिक अन्त:प्रेरणा अभिभूति और उससे जन्मे भावनात्मक सैलाब को ईमानदारी से बरत कर उसकी छवि को शब्दों के माध्यम से दुनिया के सामने रख लोगों को अनुभूति के समान धरातल पर लाने की कोशिश करना है।

इस नए वक़्त में अनेक ऐसे एजेंडा हैं जो समकालीन कविता पर सरसरी नज़र डालने पर दृष्टिगोचर होते हैं। इनमें से कुछ भारत की सामाजिक-राजनैतिक परिस्थितियों से जन्मे हैं और इस तरह से कवि की व्यक्तिवादी एवं यथार्थवादी चेतना से गुँथे-बिंधे हैं कि किसी एक को परिचर्चा का विषय बनाया जाए तो दूसरा गौण तरीके से अपने आप की उपस्थिति दर्ज कराता है।

यथार्थवाद एक ऐसा दृष्टिकोण है जो आदर्शवाद के बिना जीवन और समाज का वर्णन करता है। कवि आदर्शवाद के बिना जब सामाजिक जीवन का सीधा ब्यौरा पाठक को देता है तब पाठक के मन में बेहतर तरीके से अपनी बात पहुँचा पाता है क्योंकि यथार्थ एक ऐसा तत्त्व है जो उद्धरण के तौर पर सबके लिए बराबर मात्रा में मौजूद है। मिथक और इतिहास का आधुनिक बर्ताव आज की कविता का महत्त्वपूर्ण पहलू है। आज के दौर में जब हर चीज़ को बाज़ार के मुताबिक ढाला जा रहा है, कविता भी इससे बची नहीं है। बाजारवाद से कविता को बचाए रखने को भी कई कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रमुखता से उठाया है।

स्व-अस्तित्त्व को इस समाज और दुनिया में स्थापित करने के बाद ही एक कवि समाज से सही मायने में सरोकार स्थापित कर सकता है इसलिए ऐसे विषय जिनके मूल में एक व्यक्तिवादी चेतना है, इस दौर के अपरिहार्य विषय बन कर सामने आए हैं।

वीमेन-डिजायर, समलैंगिक विमर्श और विषाक्त-मर्दानगी जैसे मुद्दे जो पिछले दशकों में सुगबुगाते रहे, आज साहित्य संसार के महत्त्वपूर्ण विषय-वस्तु हैं।

2. आज भारतीय लोकतंत्र बहुसंख्यकवाद का पर्याय बन गया है और यहाँ तक कि सत्ता के जघन्य कृत्यों का हल्के से हल्का विरोध भी राष्ट्रद्रोह कह दिया जाता है।

सत्ता अपने प्रोपोगेंडा को पुष्ट करने के लिए इतिहास का मनमाना इस्तेमाल कर रही है जिसमें यह कोशिश अंतर्निहित है कि अतीत को नियंत्रित कर वर्तमान पर अपना अधिकार जमाया जाए और अपनी प्रभुता और दावों को न्यायसंगत ठहराया जा सके। अतीत पर नियंत्रण की यह चाहत राज्यों, राजनीतिक दलों एवं धार्मिक प्रतिष्ठानों में भी समान रूप से पाई जाती है। ये सभी अतीत को अपने मनमुताबिक व्याख्या के साँचे में ढालना चाहते हैं। हिंदू परंपरा को कभी-कभी भारतीय परंपरा के समकक्ष के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। भारतीय इतिहास में अक्सर हिन्दू आस्था या विश्वास से जुड़ी बातों का कुछ इस तरह समावेश हो जाता है कि ऐतिहासिक तथ्य और मिथकों का घालमेल हो जाता है। तयशुदा आख्यान में फिट न बैठने वाली और असहज बनाने वाली ऐतिहासिक घटनाओं या तथ्यों को उपेक्षित कर दिया जाता है। इसी तरह गंभीर विसंगतियों और संघर्षों से बचने के लिए केवल इतिहास के कुछ कालखण्डों पर सरसरी या सतही चर्चा ही की जाती है।

जहाँ तक मिथकों की बात है तो एक बात ग़ौरतलब है कि मिथक एक मौखिक परंपरा का हिस्सा रहे हैं जिसका अर्थ है कि वे कई वर्षों से चले आ रहे हैं और परिवर्तनशील हैं क्योंकि वे एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति की यात्रा करते हैं और अपनी इस प्रकृति की वज़ह से वे व्यक्ति एवं दलों के निजी वैचारिक झुकाव और प्रयोजनों के शिकार बनते हैं। पुराणों का उपयोग कुछ विद्वानों ने भी अपनी सुविधा और अज्ञानता के अनुसार अपने धर्म को पुनः स्थापित करने या इसके इतिहास की पुनर्व्याख्या के लिए किया है। (भारत की वर्तमान धर्म-राजनीति इसका ताज़ा उदाहरण है।)

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हमारे समाज में अधिकांश लोग जिनमें शिक्षित और अशिक्षित दोनों वर्ग शामिल हैं, रूढ़िवादी विश्वासों के प्रबल अनुयायी हैं। हर शिक्षित व्यक्ति आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी के नए उपकरणों के प्रति कौतूहल रखता है और उन्हें समझना चाहता है। वह टीवी, अखबारों और सोशल मीडिया के माध्यम से प्रत्येक दिन ताज़ा समाचारों के बारे में जानने का प्रयास करता है और इसके बावजूद ये शिक्षित लोग मिथकों, पूर्वाग्रहों, अंधविश्वासों और पाखंड का शिकार बन जाते हैं।

आधुनिक युग में कोई भी अंधविश्वासी, जातिवादी, महिला विरोधी एवं अवैज्ञानिक कहलाना नहीं चाहता। अप्रामाणिक एवं मिथकों से गुँथी अपनी बात को वैज्ञानिक आधार देने के लिए कई लोग आजकल pseudo-science (मिथ्या-विज्ञान) का सहारा लेते हैं और इस वज़ह से वर्तमान स्थिति अत्यंत चिंताजनक हो गई है। वाद-प्रतिवादों तक में ऐसे तर्क देखने को मिलते हैं जो पौराणिक मिथकों को एक प्रामाणिक संदर्भ की तरह उपयोग में लाते हैं।

हमारे देश में अन्य देशों की तुलना में उच्च स्तर का अंधविश्वास है, जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण की कमी को दर्शाता है। नतीजतन, भारत को एक व्यापक वैज्ञानिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

वैज्ञानिक दृष्टि की अनुपस्थिति ही एक वज़ह है कि आए दिन नए-नए मिथक गढ़े जाते हैं जो कि सत्ता-प्रायोजित होते हैं और इनके द्वारा किसी धर्म-विशेष की पौराणिक घटना के प्रतीकात्मक अर्थ को एक ऐसा आयाम देने की कोशिश की जाती है जो तत्कालीन सरकार को सकारात्मक रूप से बहुसंख्यक सत्ता के सामने पेश करता हो। मिथकों का दुरुपयोग तो सिर्फ़ 'टिप ऑफ दी आइसबर्ग' (पानी में डूबे विशाल हिम-पर्वत का छोटा सा सिरा) मात्र है असली मुसीबत इस दुरुपयोग के व्यापक मार्केटिंग की है।

'विकास', 'प्रगति', 'सुशासन', 'सेकुलरिज़्म' आज के दौर के नए मिथक हैं और इनकी सफल मार्केटिंग के लिए इन्हें परंपरागत मिथकों के साथ जोड़ा जाता रहा है।

यदि हम दैनिक जीवन में एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण बनाए रखते हैं तो हम व्यक्तिगत और सामाजिक घटनाओं के पीछे तर्कसंगत उन कारणों को समझने में सक्षम होंगे जिनकी अज्ञानता की वजह से लोग बेचैनी और अनुचित भय की भावनाओं को प्राप्त होते हैं।

3. सोशल-मीडिया साहित्य को लम्बे समय तक उपेक्षा की नज़रों से देखा जाता रहा है। लेकिन ग़ौरतलब है कि आज की तारीख़ में कई प्रचलित युवा कवियों में बड़ी संख्या ऐसी है जिन्होंने अपनी लेखन यात्रा, पहले-पहले अपनी रचनाएँ फेसबुक जैसे प्रमुख सोशल-मीडिया पटल पर साझा कर शुरू की। ऐसा इसलिए भी है कि सोशल-मीडिया अभिव्यक्ति का एक लोकतांत्रिक मंच है और अपने तमाम अवगुणों के रहते हुए भी यह प्रतिभाशाली युवा कवियों को स्पॉटलाइट में लाने में सक्षम रहा है। बजाय सोशल-मीडिया साहित्य को अनुचित साहित्य कहने के इस बात पर चर्चा करना सार्थक होगा कि सोशल-मीडिया और साहित्य ने एक दूसरे को किस तरह प्रभावित किया है।

सोशल-मीडिया अभिव्यक्ति, रचनात्मकता और भागीदारी (collaboration) के मामले में लोगों के लिए नवीन और आकर्षक संभावनाएँ प्रदान कर रहा है।

शायद यह आज की कविता को अतीत के उदासीन और भावुक सिद्धांतों पर परखने की बजाय, भाषा और अभिव्यक्ति के नवीन उपयोगों और 'उचित साहित्य' की हमारी परिभाषा पर पुनर्विचार करने का सही मौका है।

सोशल मीडिया मौलिक रूप में बहिर्मुखी है जबकि साहित्य अंतर्मुखी। इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि सोशल मीडिया एक प्रतिक्रियावादी पटल है; यहाँ अप्रासंगिक ख़बरों और अनावश्यक टिप्पणियों का एक अंतहीन चक्र है और यह निश्चित रूप से ध्यानपूर्ण अवलोकन के लिए एक आदर्श स्थान नहीं है। विशेष रूप से रचनात्मक लेखक के लिए, जिसे गहरी कल्पना के लिए शांत वातावरण की आवश्यकता होती है।

परंपरागत एवं औपचारिक प्रक्रियाओं से गुजरे बिना अपनी रचनाओं को ऑनलाइन प्रकाशित करना, वर्तमान लेखकों के लिए एक आसान तरीका है। सोशल-मीडिया ने न सिर्फ रचनाओं को साझा करने का, बल्कि रचनाओं के सुंदर प्रस्तुतीकरण का द्वार भी खोला है जिसकी वजह से हिंदी-कविता बेहतर प्रभाव के साथ उन साधारण पाठकों तक पहुँची है जो कविता को विचारों की एक गंभीर और नीरस अभिव्यक्ति समझते हैं। साहित्य में रूचि रखने वाले किन्तु ग़ैर-लेखक व्यक्तियों को भी सोशल-मीडिया ने एक ज़रिया दिया है जिस से वे इस साहित्य-संसार का परोक्ष रूप से हिस्सा बन सकें। उदाहरण के तौर पर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तमाम लोग कविताओं का रोचक पाठ कर या फिर उनके सुन्दर पोस्टर बनाकर एक साधारण तबके के लिए कविता को उपभोज्य बना रहे हैं।

सोशल मीडिया के तमाम वैशिष्ट्य बुद्धिजीवी लोगों द्वारा अन्याय से लड़ने, बेहतर समुदायों का निर्माण करने, महत्त्वपूर्ण जानकारी देने और समाज और राजनीति से जुड़े समकालीन मुद्दों पर चर्चा करने के लिए उपयोग में लाये गए हैं। परंपरागत पत्र-पत्रिकाएँ भी अब विक्रय और वितरण के लिए सोशल-मीडिया पर निर्भर हैं।

सोशल मीडिया जो मूल रूप में प्रौद्योगिकी जगत की विशेष देन है, उसमें समय के साथ ऐसे बदलाव आ रहे हैं जो रचना प्रक्रिया को संभवत एक नयी दिशा दे रहे हैं। आसानी से ऑडियो / वीडियो बनाने के साधनों ने आम और पेशेवर, दोनों तरह के लोगों को अपनी प्रिय कविता के साथ रचनात्मक प्रयोग करने के लिए प्रेरित किया है। कविता अभिव्यक्ति का एक सतत विकसित रूप है। कविता के साथ तमाम प्रयोगों को देखकर यह कहना जायज़ होगा कि कविता को सोशल मीडिया जैसी परिवर्तनशील चीज़ के लिए आसानी से अनुकूलित कर व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचाया जा सकता है। इस तरह सोशल-मीडिया आसान लोकप्रियता प्राप्त करने का एक सरल साधन है हालाँकि परंपरावादियों ने अक्सर इस आसान लोकप्रियता को साहित्यिक शिल्प के लिए अपमान बताया है।

भारतीय सामाजिक ढाँचे के हाशिये पर स्थित लोगों द्वारा सोशल-मीडिया को अभिव्यक्ति के माध्यम के तौर पर जिस तरह हाथों-हाथ लिया गया उस से एक बात और साफ़ होती है कि कई जाति, लिंग और पारिस्थितिकी जैसे विषयों के साथ पारंपरिक साहित्यिक व्यवस्था ने न्याय नहीं किया। आदिवासी विमर्श के कवि हों या दलित विमर्श, समलैंगिकता को एक मजबूत आवाज़ देने वाले लेखक हों या पितृसत्ता को ललकारता स्त्री-लेखन, सोशल-मीडिया इन सभी विमर्शों के लिए एक बेहतर मंच साबित हुआ।

यह साहित्यिक संसार की खूबसूरती ही है कि जब हताशा से भरा हुआ आदमी साहित्य के घटना-क्षितिज के नज़दीक से गुजरता है तो इस वैविध्य से भरे संसार की ओर आकर्षित होता है। तमाम रचनाकारों के कृतित्त्व का घनत्व जब वह आत्मसात करता है तब उसे इस हक़ीक़त को देखने का वृहत्तर दृष्टिकोण मिलता है।

इस समय जब क्रूरता के पंजों में फँसा यथार्थ अपने सर्वभूत नेत्रों से आदमी पर लगातार नज़रें गड़ाए हुए है, साहित्यिक संसार इस हक़ीक़त से छिपाव या पलायन का एक ज़रिया बन गया है।

यह बात लाज़िम है कि सोशल-मीडिया ने प्रतिक्रियावाद को बढ़ावा दिया है। प्रतिक्रिया सार्थक हो सकती है लेकिन जिस कदर साम्प्रदायिक एवं राजनैतिक स्तर पर लोगों का ध्रुवीकरण बीते कुछ सालों में हुआ है वहाँ सार्थक प्रतिक्रिया या संवाद की संभावना भी जाती रही है। पाठक रचना को अक्सर तरह-तरह का चश्मा लगाकर पढ़ता है- राजनैतिक, साम्प्रदायिक, सामाजिक आदि। इस तरह के चश्मे रचना को सदैव ही ऐसे अर्थ दे देते हैं जो रचना के मर्म से असंबद्ध होते हैं।

लेखक भी इस प्रतिक्रियावादी प्रवृत्ति से अछूते नहीं हैं। इस गतिशील दुनिया पर अपनी पकड़ बनाने हेतु सोशल-मीडिया पर विचरता बौद्धिक वर्ग लेखकों को दुनिया में हो रही तमाम घटनाओं पर त्वरित प्रतिक्रिया देने के लिए प्रेरित करता है। और इस गति के खेल में बहुधा लेखक एक सतही विचार के अलावा कुछ भी नहीं रख पाता।

जो पाठक सामाजिक स्तर पर निष्क्रिय हैं या गंभीर वैचारिकता नहीं रखते वे सामाजिक सरोकारों का हिस्सा बनने के लिए इन्हीं लेखकों पर निर्भर हैं। परिणामवश, सोशल-मीडिया पर इस तरह सक्रिय रहते हुए कवियों और लेखकों को एक स्थायी पाठकवर्ग मिल जाता है जिसे वे निरंतर बढ़ाने की ओर प्रयासरत रहते हैं।

जो पाठक सामाजिक स्तर पर निष्क्रिय हैं या गंभीर वैचारिकता नहीं रखते वे सामाजिक सरोकारों का हिस्सा बनने के लिए इन्ही लेखकों पर निर्भर हैं। परिणामवश, सोशल-मीडिया पर इस तरह सक्रिय रहते हुए कवियों और लेखकों को एक स्थायी पाठकवर्ग मिल जाता है जिसे वे निरंतर बढ़ाने की ओर प्रयासरत रहते हैं।

दूसरी ओर साहित्यिक चोरियाँ किसी से छुपी नहीं हैं। इन चोरियों पर कभी विस्तार से चर्चा नहीं की गई। यह कहना उपयुक्त होगा कि चोरी-नकल इस फलते-फूलते सोशल-मीडिया साहित्यिक जगत में एक 'एलीफेंट इन दि रूम' की तरह मौजूद है यानी कि एक ऐसा बड़ा मुद्दा जिससे हर कोई वाक़िफ़ है, लेकिन उसे नज़रंदाज़ किया जा रहा है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

इसके बारे में चर्चा करने पर स्वयं को असहज पाता है। इस चोरी-चपाटी के आधार पर भी कभी-कभी सोशल-मीडिया साहित्य को अनुचित साहित्य ठहराया जाता है क्योंकि गत समय में अनेक ऐसे उदाहरण सामने आये हैं जब कविताओं पर किसी और की कविता की नक़ल होने का आरोप लगा है। एक नई तरह की नक़ल हाल ही में सामने आयी है जिसमें नकलचियों ने तमाम पॉपुलर कविताओं के ढाँचों में अपने शब्दों को फिट कर के, अपनी 'रचनाओं' को आधारभूत ठहराव उपलब्ध कराया है। सोशल मीडिया जैसे पटल पर जहाँ करोड़ों लोग सक्रिय हैं वहाँ दूसरे के काम की नकल करना और उसे कहीं अपने काम के रूप में प्रस्तुत करना बहुत आसान है। यह मामला गंभीर लेखकों को गंभीर रूप से हतोत्साहित करता है और कई लोगों को यह सोचने पर मजबूर करता है कि सोशल मीडिया कभी भी किसी के पेटेंट किये गये रचनात्मक काम को दिखाने के लिए सुरक्षित जगह नहीं है।

प्रत्येक लेखक को अपने कार्यों को पढ़ने और प्रमाणित करने के लिए दर्शकों की आवश्यकता होती है, लेकिन कला के वास्तविक सार से ऊपर जनता के ध्यान को प्राथमिकता देना साहित्य और स्वयं के लिए एक बड़ा नुकसान है। भारतीय प्रकाशन परिदृश्य में फेसबुक या ट्विटर पर फॉलोवर्स की संख्या को अब एक मानक के रूप में देखा जाने लगा है। हाल ही में एक नामी अंग्रेज़ी प्रकाशक द्वारा एक सोशल-मीडिया सेलिब्रिटी की किताब को 'हिंगलिश' (हिंदी शब्दों का अंग्रेज़ी में लिप्यंतरण) में छापा जाना और उसे बाज़ार में एक मानक के रूप में स्थापित किया जाना इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। इस बात को उल्लेखित करते हुए मेरी कोशिश इस तरह की प्रयोगधर्मिता को कठघरे में खड़ा करने की नहीं अपितु यह बात आप सबके सामने रखने की कोशिश है कि किस तरह इस तरह के प्रयोग नवलेखकों को साहित्य-साधक बनने की जग़ह नाम-साधक बनने की ओर प्रेरित करेंगे। समान उदाहरण हिन्दी साहित्य प्रकाशन परिदृश्य में भी अब बड़ी मात्रा में मौजूद हैं।

फिलवक्त सोशल-मीडिया का ध्यान उस तरह की रचना-सामग्री की तरफ मुड़ रहा है जिसका आसानी से उपभोग किया जा सके जैसे कि छोटे-छोटे वीडियो, चित्र, या एनीमेशन। नतीजतन कवि के ऊपर अब कविता की सुंदर एवं उपभोज्य प्रस्तुति देने का अतिरिक्त दबाब है।

वैद्यता के परिप्रेक्ष्य से देखा जाए तो सोशल मीडिया रचनाकारों को एक बड़े स्तर पर भ्रमित भी करता है। सोशल मीडिया पटलों पर साझा की गयी रचना पर महज़ औपचारिकता के रूप में दबाया गया 'लाइक' बटन या व्यवहारिकता के चलते लिखी गयी टिप्पणी को अक्सर रचनाकार (और एक पाठक भी) रचना की सार्थकता का मापदंड समझने की भूल कर बैठता है। इसके चलते एक सुधी और गंभीर पाठक वर्ग की टिप्पणियों पर भी पूर्ववर्ती टिप्पणियों का प्रभाव पड़ता है जिसकी वजह से निरपेक्ष आलोचना की संभावना नहीं बन पाती।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि सोशल मीडिया एक ओर जहाँ साहित्य जगत को नवीन और आकर्षक संभावनाएँ प्रदान कर रहा है तो वहीं दूसरी ओर लेखकों को नाम-साधक भी बना रहा है।

सम्पर्क -7447825929

चंद्रबिंद

युवा लेखक

1. यह सच है कि दुनिया लगातार बदलती रही है। क्रमशः साहित्य भी बदलता रहा है। साहित्य समाज से अलग नहीं है। उसी का प्रतिफल है। प्रेमचंद ने कहा था कि ''साहित्य समाज का दर्पण है।'' परंतु यह दर्पण समतल दर्पण होने के बजाय उत्तल या अवतल दर्पण है। साहित्य में सामाजिक यथार्थ हू-ब-हू उसी रूप में चित्रित नहीं हो पाता जिस रूप में वह होता है। कई बार रचनाकार से कुछ छूट जाता है या फिर रचनाकार उसमें कुछ जोड़ देता है। एक कवि के लिए है यह जानना बहुत आवश्यक है कि कविता और नारे में फर्क होता है। नारा कविता नहीं है। कविता में विचार आएगा। लोकतांत्रिक मूल्यों की पक्षधरता आवश्यक है। साहित्य और कविता में प्रतिरोध होगा। ये तमाम बातें आएँगी। आना जरूरी है अन्यथा कविता अपने समकालीन युगबोध से वंचित रह जाएगी। हिंदी के जितने भी बड़े कवि हो हुए हैं, हम उनकी कविताओं के माध्यम से उस युग को देख सकते हैं। तुलसी, कबीर, निराला और नागार्जुन सब में यह बात देखी जा सकती है। मध्य-काल की सामाजार्थिक परिस्थितियाँ एवं धार्मिक संवेदना को समझने के लिए हमें हर हाल में कबीर और तुलसी के पास जाना होगा। इसीलिए वे बड़े कवि हैं। उनके साहित्य में समकालीन समाज को देखा जा सकता है। ऐसे में कवि का यह दायित्व बनता है कि वह कविता को आलेख बनने से बचाते हुए इन तत्त्वों का समावेश करें।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्योंकि इसके अपने खतरे भी होते हैं। समकालीनता-बोध के अतिशय दबाव के कारण कई बार कविता बनने के बजाए बिगड़ जाती है। वह नारे का स्वरूप ग्रहण कर लेती है या फिर आलेख बन कर रह जाती है। कविता अंततः हृदय का धर्म है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में कहें तो कवि को संवेदनशील स्थलों की पहचान होनी चाहिए। यदि ऐसा नहीं है तो कविता के बजाय लेख लिखना ज्यादा सार्थक और उपयोगी होगा।

2. अंधविश्वास कैसे जन्म लेता है? जब हमारे सवालों का जवाब विज्ञान नहीं दे पाता है। जब हम आम आदमी की जिज्ञासा को अपने तर्कों से शांत नहीं कर पाते हैं। ऐसे में एक आदमी और फ़िर पूरा समाज किसी वैज्ञानिक घटना को ईश्वर का आशीर्वाद या फ़िर शैतान का प्रकोप मानने लगता है। कोरोना के समय क्या हुआ? चिकित्सा विज्ञान ने अपने हाथ खड़े कर लिए। यह बताया गया कि इसका कोई इलाज नहीं है। इसकी कोई दवा नहीं है। कारण कुछ भी रहा हो। ऐसे में एक साधारण सा ग्रामीण व्यक्ति कहाँ जाता। उसे लगने लगा कि कोई है जो विज्ञान से भी ऊपर है। तर्कों से परे है। और इसका परिणाम क्या होता है? आम लोगों के बीच कोरोना देवी की अवधारणा पनपती है। मौत से डरा हुआ आदमी कहाँ जाएगा? ज़्यादातर बुद्धिजीवी एक बारगी ही धर्म की सत्ता को खारिज कर देते हैं। ऐसा कर वे उन पोंगापंथियों का सहयोग करते हैं। इससे उनका काम आसान हो जाता है। इसे औजार बना कट्टर पंथी बहुत ही आसानी से धार्मिक चेतना-युक्त बड़ी आबादी को बुद्धिजीवियों के विरुद्ध खड़ा कर देते हैं। ऐसे में एक बुद्धिजीवी आम आदमी के लिए खलनायक बन जाता है। विगत कुछ वर्षों से यही हो रहा है। इस तथ्य को समझना जरूरी है। इस फेनोमेना को समझना पड़ेगा। आज ज्यादा लेखक लिखते वक्त यह भूल जाते हैं कि वे किसके लिए लिख रहे हैं। उन्हें यह समझना पड़ेगा। आज के लेखक लोगों को समझाने और उनमें प्रगतिशील एवं वैज्ञानिक चेतना विकसित करने के बजाए उन्हें भड़काने में लगे हैं। हमें सोचना पड़ेगा। क्या प्रेमचंद यही कर रहे थे? क्या निराला यही कर रहे थे? क्या रेणु यही कर रहे थे? क्या नागार्जुन यही कर रहे थे? यदि नहीं तो फ़िर हम किसके लिए लिख रहे हैं? हमें अपने आप को आम लोगों से जोड़ना होगा। उनका विश्वास पात्र बनना होगा। तब वे हमारी बात सुनेंगे। हमारी बात मानेंगे अन्यथा हमारा लेखन कोरा प्रलाप बन कर रह जाएगा जो कि आज है। इस मामले में हम गांधी जी से बहुत कुछ सीख सकते हैं। यदि गांधी जी धार्मिक प्रतीकों को खारिज कर, उसे भला-बुरा कहते तो संभवतः उन्हें कोई नहीं सुनता। प्रेमचंद ने गोदान में बहुत बड़े अंधविश्वास एवं कर्मकांड को खारिज किया है। उनका तरीका अद्भुत है। आज हमें यह देखना पड़ेगा कि कहीं हम सत्ता की आलोचना करने के क्रम में आम लोगों की आलोचना तो नहीं कर रहे हैं, जिसे हमें अपना पाठक वर्ग बनाना है। आज सोशल मीडिया सबसे सशक्त माध्यम है। हमें हर हाल में इसे अपनाना पड़ेगा। इससे लड़ कर हम नहीं जीत सकते, पर इससे दोस्ती कर इसे अपना बना सकते हैं।

3. आज सोशल मीडिया ने हमारे जीवन को पूरी तरह से बदल दिया है। वह भी दस से पन्द्रह सालों के भीतर। अब हमारे पास समय बहुत कम है। हम इंतजार करने के लिए तैयार नहीं है। आज की लिखी गई कविता के लिए तुरंत हमें पाठक चाहिए। पहले हमें महीनों इंतजार करना पड़ता था पत्रिकाओं में छपने के लिए। यह जरूरी भी नहीं कि आप छप ही जाएँगे। पत्रिकाओं का भी अपना एक तंत्र था। हर पार्टी का जैसे अपना एक लोकतंत्र होता है वैसे इन पत्रिकाओं का भी एक अपना लोकतंत्र था। फेसबुक जैसे प्लेटफॉर्म ने सभी विचारधारा के कवियों के लिए एक लोकतांत्रिक मंच दिया। यहाँ बाघ और बकरी दोनों एक ही घाट पर खड़े हैं। फेसबुक के आने के साथ ही वे सभी रचनाकार सक्रिय हो गए जिन्हें अब तक सुना नहीं जा रहा था। सोशल मीडिया ने उन्हें एक अवसर प्रदान किया। परिणामस्वरूप सैकड़ों कवि हमारे सामने हैं। साहित्य का उद्देश्य लोगों की सोच में बदलाव के साथ साथ उनमें संवेदनशील चेतना विकसित करना भी है। फेसबुक पर सक्रिय ऐसे तमाम कवि किसी न किसी रूप में बाकी लोगों से ज्यादा संवेदनशील और जागरूक हैं। इस नाते इन्हें प्रशिक्षित किया जाना सबसे आसान कार्य है। यह कार्य बड़े आलोचकों और कवियों द्वारा ही संभव हो सकता है। अतः इन्हें नजरंदाज करने के बजाए स्वीकार किया जाना ज्यादा सार्थक और समीचीन जान पड़ता है। ऐसा कर हम साहित्य में लोकतंत्र की परंपरा को मजबूत कर सकते हैं। गीत एवं संगीत के क्षेत्र में ऐसे अनेक प्रयोग वर्षों से चल रहे हैं और उसके परिणाम भी हमारे सामने हैं।

सम्पर्क – 9631074501

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

हिन्दी कविता समय - 5

कुंदन सिद्धार्थ

(युवा प्रगतिशील चेतना के कवि जो हाशिए के जीवन को केंद्र में लाने का प्रयास कर रहे हैं।)

एक दिन देखना

हिंदू घर में पैदा होकर
चोटी नहीं रखता

ब्राह्मण घर में पैदा होकर
जनेऊ नहीं पहनता

एक दिन देखना
दंगे में मुसलमानों के हाथों नहीं
तो हिंदुओं के हाथों मारा जाऊँगा

क्योंकि जब तक
मैं पैंट की चेन खोलूँगा
चाकू मेरी अँतड़ियों को चाक कर चुका होगा।

विडंबना

सच की हिफाज़त का काम
झूठे लोगों को सौंपा गया

ईमानदारी की शिक्षा देने के लिए
बेईमान भर्ती हुए

अहिंसा का प्रचार-प्रसार करना था
हिंसकों की टोली लगाई गई

राहत-सामग्रियाँ बाँटने के समय
दलाल जोशोखरोश से काम पर भिड़े थे

प्रेम से भरे लोगों की आँखें नम थीं
करुणावान रो रहे थे
ईमानदार अज्ञातवास में चले गए
भाईचारे को जीने वाले आत्महत्या के बारे में सोच रहे थे
ताज्जुब की बात यह है
कि यह सब कुछ
किसी राजा-रानी या परीलोक की दंतकथाओं में नहीं
ठीक उसी दुनिया में घट रहा था
जो मेरे देखते-देखते
बड़ी तेजी से बदलती जा रही थी
और मैं मुँह बाये
भौंचक खड़ा था
निःशब्द!

प्रजातंत्र

वे कुछ शब्द रचते हैं
और हवा में उछाल देते हैं

वे कुछ मुद्राएँ गढ़ते हैं
और जमीन पर उतार देते हैं

वे शब्द और मुद्राओं की
युगलबंदी में दक्ष हैं

वे अच्छी तरह जानते हैं
कब और कहाँ किस शब्द को
हवा में उछालना है

वे अच्छी तरह जानते हैं
कब और कहाँ किस मुद्रा को

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जमीन पर उतारना है
वे हवा के रुख
और जमीन के मिज़ाज को
तुरत पहचान लेते हैं
हम उनके शब्द पकड़ते हैं
और चारों खाने चित्त हो जाते हैं
हम उनकी मुद्राएँ निहारते हैं
और तुरत धराशायी हो जाते हैं

हम बेवकूफ़ मछलियाँ हैं
वे हैं शातिर मछुआरे
हम उनके शब्द और मुद्राओं के आटा लगे
झूठ और धूर्तता के काँटे को निगलने की कोशिश में
हमेशा मारे जाते हैं।

यह कैसा निर्दय काल है

कुछ दिनों से विद्यालयों में
शांति और अहिंसा के विशेष पाठ पढ़ाए जा रहे हैं

कुछ दिनों से कार्यालयों में
आतंकवाद और विभाजनकारी शक्तियों के खिलाफ़
खड़े रहने की शपथें दिलाई जा रही हैं

कुछ दिनों से मेरे प्यारे देश का
धार्मिक तापमान चरम पर है

कुछ दिनों से कस्बों से लेकर शहरों तक
शांति और सौहार्द्र बनाए रखने के लिए
बैठकें शुरू हो गई हैं

कुछ दिनों से
कबीर के पद ''मोकों कहाँ ढूँढ़े रे बंदे, मैं तो तेरे पास हूँ
ना मैं देवल, ना मैं मस्जिद, ना काबाकैलास हूँ'' पढ़कर
कुहुक-कुहुक कर रो रहा हूँ

कुछ दिनों से मन उदास है
डर ने घेर लिया है

यह कैसा निर्दय काल है
बुद्ध हों या गांधी, जीसस हों या कबीर
सभी कटघरे में खड़े हैं

और मैं उनकी रिहाई से ना-उम्मीद
बियावान में सिर धुन रहा हूँ।

सम्पर्क - 7024218568

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

प्रदीप सैनी

(अपने समय की बिसरती जा रही ज़रूरी आवाजों और सरोकारों को परिदृश्य में लाते कवि।)

हमें आवाज़ पर भरोसा नहीं खोना चाहिए

[1]
जो दुनिया के होने की आवाज़ें हैं
हम तक नहीं पहुँचती
जैसे सूर्य का चक्कर लगाती या
अपनी ही धुरी पर घूमती हुई पृथ्वी की आवाज़
समंदर के जल का भाप होकर बादल बनने की
या हिमनदों के पिघलने की आवाज़
किसी अंकुर के फूट पड़ने की
हमारी अपनी ही नब्ज़ की या
लहू के पसीना बन कर बहने की आवाज़।

[2]
सबसे जोर से सुनाई देती आवाज़ें
अकसर होती हैं सबसे अश्लील और बेहूदा
जिनके होने से हम नहीं जान पाते
कि सबसे जरूरी आवाज़ें उनके नीचे दब कर
बेआवाज़ मर जाती हैं।

[3]
जब किसी एक को मरना हो
आततायी गला दबाता है
जब उसे मारना हो पूरे का पूरा समाज
तो वह आवाज़ दबाता है

किसी भी चिकित्सीय जाँच में पता नहीं चलता
मौत का कारण
आवाज़ दबाकर मारना
मारने का सबसे कारगर और अचूक तरीका है।

[4]
तानाशाह के डर से डरते-डरते
चंगे-भले लोग भी मिमियाने लगते हैं
उनके हलक से निकलती नहीं आवाज़ साफ़
जिस पर कान रखती हैं उसकी ख़ुफ़िया एजेंसियाँ
जबकि दबी और कुचली हुई जनता की कमज़ोर
और डरी हुई आवाज़ से भी डरता है
तानाशाह

हमें आवाज़ पर भरोसा नहीं खोना चाहिए।

[5]
आवाज़ का अपना चेहरा होता है
जो ज़्यादा सच्चा और भरोसे के काबिल होता है
अकसर वह बोलने वाले के चेहरे से
मेल नहीं खाता।

[6]
उस कवि को संदेह से देखना चाहिए
जिससे बहुत आवाज़ आती हो
और उन कविताओं को भी
जिनसे कोई आवाज़ न आती हो।

[7]
सब कुछ लेकर चले जाने वाला भी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दूर निकल जाने से पहले रुकता है कुछ देर
वह चाहता है कि तुम दो उसे वह एक आवाज़
जो तुम्हारे कंठ में काँप रही है

सभी दृश्य अंततः एक आवाज़ में बदल जाते हैं।

आज़ाद औरतें

एक प्रेमी एक आज़ाद औरत की आज़ादी पर
इस-क़दर फ़िदा है
कि उसे प्रेम से गुलाम बनाने का सपना देखता है

एक आज़ाद औरत को एक बैरागी
विस्मय से देखता है
और अपने जीवन भर के बैराग पर शर्मिंदा होता है

एक व्यभिचारी एक आज़ाद औरत को
एक संख्या की तरह देखता है
और अपनी स्कोरशीट को याद करता है

एक कला मर्मज्ञ परखता है एक आज़ाद औरत को
कला के नमूने की तरह
देखता है उसके जीवन में रंग संयोजन और बताता है
कि एक पीली उदासी झरती है लगातार उसके भीतर
जिसे वह कभी नहीं बुहारती
एक गहरा लाल जंगली फूल है उसका दिल
जिस तक पहुँचने की लीक
पीली उदासी से ढक गई है
नीला उसने पीठ पर नहीं कंठ में धारण किया है
एक गुलाबी यदा-कदा चमकता है सिर्फ़ स्मृतियों में
जबकि उसकी आत्मा पर पड़ा घाव हमेशा हरा है

समाज सुनता है कला मर्मज्ञ की बात
और उसकी बात में बात मिलाता हुआ कहता है
देखा! बड़ी रंगीन होती है आज़ाद औरतें

यह सब देखता-सुनता
एक कवि उन्हें कविता में पुकारना चाहता है
लेकिन ऐसी भाषा की तलाश में गूँगा हो जाता है
जिसमें औरत को वो आज़ाद कहकर पुकारे
तो वो गाली न लगे।

इलाज

मेरा फ़ोन मेरी तरह रह-रहकर अटकता था
उसके पास ज़रूरत से ज्यादा स्मृतियाँ हैं
ऐसा बताया एक फ़ोन मरम्मत करने वाले ने
इतनी कि वे उसका दिमाग ठस कर देती थीं

मैंने फ़ोन को सही करने का जतन डरते हुए पूछा था
उसने कहा कि इसे दुरुस्त किया जा सकता है
बशर्ते हम मिटा दें इसकी फिज़ूल स्मृतियाँ

उपयोग में लाए जा सकने वाले
लगभग स्मृतिहीन फ़ोन के साथ
वापस घर लौटकर मैं एक कॉल करता हूँ
और मनोचिकित्सक से ली हुई
अपनी अपॉइंटमेंट रद्द कर देता हूँ।

सम्पर्क - 7018503601,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

देवेश पथ सारिया

(विदेशी भूमि (ताईवान) से कविता में नए वस्तु जगत को मूर्त करते विश्वसनीय कवि।)

ताइवान में प्लमब्लॉसम

(1)
बच्ची पिछले साल ऊँची थी
सबसे छोटे पौधे के बराबर
साल भर बाद लेकर आए हैं
उसके माँ-बाप
यूनिवर्सिटी के प्लमगार्डन में

पौधा साल भर
अनुमान लगाता हुआ बढ़ा है
बच्ची की बढ़ती लंबाई का

लेकिन बच्ची पौधे के अनुमान से
इंच भर ज़्यादा बढ़ गई है
वह पौधे से साल भर का
बकाया लाड़ कर रही है
फूलों से झुककर बतिया रही है।

(2)
लूयू की उस कविता में
सफ़ेद हॉल देख
कवि को याद आया था
सिंगापुर स्थित घर

सफ़ेद प्लमब्लॉसम देख
मुझे सुध हो आई
एक वस्तु और एक व्यक्ति की
(दोनों ही सफ़ेद नहीं)
धौळी की जीजी के फ़ीके बेर
और सिंगापुर चला गया एक दोस्त।

(3)
ओह, कितनी देर कर दी मैंने
इस साल कितना अकेला था मैं

एक ही कोने को देख-देख
ग़लत अनुमान लगाता रहा मौसम का

मुझे समय रहते चेतना चाहिए था—
प्लमब्लॉसम
अधिक दुर्लभ दृश्य है
चेरी ब्लॉसम से

जहाँ जमघट है इन पेड़ों का
वहाँ झड़ गए हैं अधिकांश फूल
उन पेड़ों में आ गए हैं पात

मैं पेड़ों के लिए होता हूँ ख़ुश
और अपने लिए उदास।

(4)
जिन पेड़ों में बच गए हैं फूल
मुरझा-से गए हैं
थोड़ा मुरझा गया हूँ मैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

(5)
कोई सर्वेफॉर्म था
जिसमें प्रश्न था
''आप और क्या चाहेंगे शिनचू शहर में?''

और मैंने बस एक ही बात सोची—
इस शहर में बहुत सारे और लगाए जाएँ
प्लमब्लॉसम के गाछ।

चेरी ब्लॉसम (सकुरा) : 2022

(1)
यह इस पेड़ का पहला फूल है
हवा के झोंकों में से कोई भी गिरा देगा इसे

कितनी ही कलियाँ हैं
खिल उठने को तैयार
वसंती यौवन पर होगा जब वृक्ष
पहला फूल नीचे से उसे देख मुस्कुराएगा।

(2)
यह जो मधुमक्खी है
प्रेयसी है
चूम रही है इसी पेड़ का हर फूल
इस जैसे किसी दूसरे पर जाती ही नहीं।

(3)
आम धारणा के विपरीत
उस लड़की को पसंद नहीं था गुलाबी रंग
मेरे गुलाबी छाते का मज़ाक बनाती थी

वसंत में एक दिन उसने कहा—
''गुलाबी होकर भी कितने सुन्दर हैं ये फूल
मुझे जापान जाना है ज़रूर
सकुरा देखने
मुझे इन्हें इतना देखना है
जितने से ज़्यादा इन्हें देखना संभव न हो।''

(4)
मैं इन दिनों जिस लड़की के इकतरफ़ा इश्क़ में हूँ
बालों में फूल लगाना बहुत पसंद है उसे
और पसंद है बालों में फूल लगाने वाला
उसका एक हमउम्र लड़का

मुझे प्रिय है फूल का टहनी पर ही बने रहना
और सकुरा तोड़ना तो दिल तोड़ देगा मेरा

मैं घास में से उठाता हूँ झड़ा हुआ एक
पेशानी पर रखता हूँ
और तस्वीर भेजता हूँ उसे।

(5)
तमिल मूल की मलेशियन लड़की को
पिछले वर्ष अप्रैल में देखा था
एक सांस्कृतिक आयोजन में
विस्मय में मुँह खोले थी जाने किस बात पर
मैंने उसके आश्चर्य को क़ैद करने का प्रयास किया था

तस्वीर देखकर वह फिर आश्चर्य में पड़ी थी—
''क्या मैं ऐसी भी दिख सकती हूँ?''

लगभग दस महीने बाद
वह सकुरा के झुंड में खड़ी मिली है मुझे
और मैंने उसे याद दिलाया है पिछला वाक़या

हुआ मालूम
वह ताइचुंग शहर में रहती है
और शिनचू शहर आई है, तब के बाद अब
इस बार मुझे हैरत होती है
दोबारा टकराने के संयोग पर

मैं सकुरा के फूलों के साथ
उसकी कई भंगिमाएँ कैमरे में उतारता हूँ
हालाँकि अनुभव से, मैं जानता हूँ —

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

न उसकी गति, न उसकी भंगिमाएँ
क़ैद होने वाली हैं
उड़ती फिरेंगी।

तुम कोई क़ंदील हो

तुम कोई क़ंदील हो
नयी नकोर
रोशन दूर किसी अहाते में

मैं हूँ वहीं
जहाँ मैं था फ़रवरी में
एक आसक्ति से दूसरी आसक्ति
एक विफलता से दूसरी विफलता

मलाल इस बात का नहीं
कि इतिहास ख़ुद को दोहरा रहा है
तक़लीफ़ है इस बात की
कि नियति के प्रत्युत्तर में
ख़ुद को दोहराता रहा हूँ मैं भी

मैं देखता रहा हूँ
दुबारा वही ताबीर
दूसरे दोराहे पर

पिछली बार था बेरी का स्वाद
कुछ अलग आज़माने को
अहातों की आबादी से बहुत दूर
मैं आया हूँ समुद्र किनारे, इस बार
और है, होठों पर किरकिराता नमक

चट्टानों पर चिपके सीपियों के खोल
जलधि-क्षितिज में पैठता सूरज
तुम्हारी लौ में समाता उजाला।

तुम रहना छतनार तले

तुम्हारे विरह का दुख लेकर
कहाँ-कहाँ नहीं भटका मैं

मैं जब प्रार्थना में तपकर सोया
सपने में दिखे मुझे
क्षीर सागर में लेटे विष्णु
लक्ष्मी के विरह में उदास

नींद की गोली लेकर जबरन सोया
तो हनुमान के सीने में विरहाकुल राम मिले

तुम्हारी वापसी की संभावना जानने को
मैंने जिस टैरो कार्ड रीडर से बातें की
हमारी कहानी सुनकर
उसे ही मुझसे 'लगभग' प्रेम हो गया

वियोग में तुम्हारे
मैं दहका
सब संगतकार बने

तुम रहना छतनार तले।

सम्पर्क - +886978064930

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

स्मिता सिन्हा

(अपने परिवेश को नयी नज़र से आकार देती कवि।)

ऊब

दरअसल हम एक ऊब के साथ
रहने को अभिशप्त हैं
कुछ कहने
और चुप रह जाने के बीच की ऊब
कुछ करने
या यूँ ही निर्लिप्त बने रह जाने
के बीच की ऊब

हम दृश्यों में होकर
अपने आसपास के
किरदारों से ऊब सकते हैं
नींद में होकर
अपने सपनों से भी ऊब सकते हैं
आस्था में बने रहकर
अपने ईश्वर तक से भी ऊब सकते हैं

दीमक बने चाटते
एक दिन हम
किताबों के अंबार से ऊब सकते हैं
ऊब सकते हैं
मौसमों, खुशबुओं, स्मृतियों से भी
यहाँ तक कि
हम अपने प्रेम तक से भी
ऊब सकते हैं

तो क्या ऐसे ही
ऊबती होगी मिसिसीपी जैसी नदियाँ भी
पानी के बढ़ते भार से
ऊबते होंगे एमाजोनिका जैसे पेड़ भी
अपनी विशाल पत्तियों की छाँव से
तो क्या ऐसे ही ऊबते रहेंगे हम
चरमराती लोकतांत्रिक व्यवस्था से
या कि भ्रष्ट होती सत्ता की निर्लज्ज हँसी से

इस ऊब के साथ
हम धर्म और शास्त्रों की व्याख्या तो कर सकते हैं
लड़ सकते हैं विचारधाराओं की लम्बी लड़ाई
भाषा और व्याकरण की बहस में भी पड़ सकते हैं
पर नहीं बन सकते एक औसत इंसान
जो रोक सके जंगल की बढ़ती उस आग को
जिसमें झुलस रहा है
एक कस्बा, एक गाँव, एक शहर और एक पूरा देश।

अधूरी कविता की स्त्री

कहते हैं कोस दस कोस पर बदलती है भाषा
बदलता है मिट्टी पानी भी अपना रंग
मैंने तो देखी
ऐसी औरतें भी
जो महीने दस दिन पर
बदलती है अपनी तरावटें
बदलती हैं उनकी खिलखिलाहटें अपना रूप भी

उम्मीद लगाना भी कठिन है इन दिनों
कि उस धुँआते आकाश में क्या दिखता इन्हें

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्या सुनतीं ये
बाँस के जंगल की सरसराहटों में
कि परिंदों की आँखों का डर उतर आता है इनकी आँखों में
और बदहवास सी भागती है एक गिलहरी निकल कर इधर-
उधर जिसे पकड़ने में मशगूल
वे उलट देती हैं पूरा घर
बिस्तर उलटा, कपड़े उलटे, पर्दे उलटे, बर्तन उलटे....
उलट-पुलट कर गिरते जाते मसालों के डब्बे
एक एक कर इन पर

इस उलट बाँसी में वे कभी भींचती अपनी मुट्ठियाँ
तो कभी खोलती उनको
कसते जाते बाल
बढ़ती जाती चुप्पी
चुपचाप सुनती जातीं
दरवाजे खिड़कियों की खुसरफुसर
कि यह ख़ब्ती फिर चढ़ाएँगी हमारी छिटकनियों को
फिर पाटेंगी हमारी दरारों को
बनी रहेंगी घर की चौखटों पर
अपने होने नहीं होने के बीच
देर तक करती रहेंगी बहस
अपने ही पक्ष और प्रतिपक्ष में
ओस के फ़ाहे देते रहेंगे थपकी इनकी थकी आँखों को
और लगती रहेगी गर्म पानी की सेंक
इनकी पीठों पर आज फिर देर तक
आज ये फिर से छोड़ देंगी अपनी किसी कविता को अधूरी
हमेशा के लिए...

मिज़ाज

एक शहर है
या कि
शहर में डूबी पूरी एक रात
और बस टुकड़ा भर आसमान
मानो धकिया कर जगाया गया हो
आज फिर सूरज को
कि देर तलक सोना चाहती थी रात

एक घर है
या कि
दरकती सी दीवार
अभी जबकि अपनी सातवीं मंज़िल से
मैंने फिर फेंक दिया कबूतर के घोंसले को
कबूतर के पंखों पर खरोंच मारी थी उस भीड़ ने
जो रोज हाँक दी जाती है
स्कूल बसों में
या कि मेट्रो में
या कि सड़कों पर
सड़क संकरे होकर दहलीज़ हुए अब
डर और दहलीज़ के बीच
फ़ासले भी जरा कम हुए हैं
उस डर में एक कोलाहल है
या कि दरदरी सी पीड़ा
या कि घुटती हुई आवाज़ों में
सिर्फ़ कुछ शब्द कम हुए हैं

एक सपाट सा मैदान है
या कि
उसमें गिरते पड़ते लुढ़कते से
नदी नाले या कि पहाड़
या कि उस मैदान की मिट्टी आज फिर काली हुई है
कई इलाकों में आज फिर बिन मौसम बारिश हुई है
साइबेरियाई सारसों ने हवाओं के साथ बदली हैं दिशाएँ
या कि आजकल मेरा ही मिजाज़ बदला हुआ है
कि हँसती जा रही हूँ
बस हँसती जा रही हूँ
और स्वतः ही स्थगित होते जा रहे सारे सपने...

सम्पर्क - 9310652053

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

गोलेन्द्र पटेल

(लोक जीवन की छवियों और चिंताओं से वाबस्ता कवि।)

रोपनहारिन माँ

1)
जब आकाश से गिरते हैं
पूर्वजों के संचित आँसू
तब खेतिहर करते हैं मजबूत
अपनी मेंड़

मेंड़ तो मजबूत नहीं हुई
पर फरसी-फरसा लाठी-लाठा झोटी-झोटा मारी-मारा उठा-पटक....
अंत में थाने!

2)
रोपनी के समय
रोटी के लिए
संडा जब कबारते हैं मजदूर
तब रक्त चूसती हैं - जोंक

दोहरे दोहित दलित दुबली पतली देह थककर
विश्राम जब करती है बिस्तरे पर
तब शेष शोणित - खटमल

3)
मेंड़ पर सोए शिशु को च्यूँटे काट रहे हैं
चीख सुन रहे हैं मालिक मौन
उन्हें क्या फर्क पड़ता है कि वह कौन है?
मजदूरनी माँ कहती है शांत रह लल्ला
अभी एक पैड़ा और बचा है
रोप लेने दे

बच्चे के पास पहुँचा तो देखा
एक दोडहा, दो तीन बिच्छुएँ और एक केकड़ा थोड़ी दूरी पर हैं
पैर में काट लिया है बर्र
मैं शिशु को घिन्नाते-घिन्नाते उठाया
क्योंकि वह अपने मल-मूत्र से तरबतर था

तुरंत बर्रों के मंत्रों का पाठ किया
फिर अपनी चाची को बुलाया -
बिच्छू झाड़ी-फूँकी
चमरौटी से बुलाया बुढ़उ दादा को
जो दोडहा झाड़े-फूँकें
वे हर तरह के कीरा झारते हैं
जैसे - साँप, करइत, गूँगी व दोडहा इत्यादि

बिच्छू-दोडहा तो तसल्ली के लिए झाड़ा गया
गाँव में सभी को पता है कि मैं कुछ मंत्र जानता हूँ
जैसे - बर्र, भभतुआ, थनइल, नज़र व रेघनी इत्यादि
सीखा तो बिच्छू-साँप का भी था
पर उसे तभी भूल गया जब विज्ञान का विद्यार्थी था
जो स्मृतियों में जीवित हैं उन्हें भी भूल गया हूँ
ऐसा कहता हूँ सभी से

मंत्रों से आँखें कचकचाई हैं
होठों की हँसी हृदय में हर्ष से हहराई है
फूँकने पर केश लहराए हैं
कर्षित कली की मेंड़ पर

आज मुझे लग रहा है मंत्र सीखना सार्थक रहा
हे समय!
इस महामारी में मंत्र से मेडिकल तक की यात्रा जारी है
पर यह यात्रा कब रुकेगी?

सम्पर्क - 8429249326

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शेर सिंह मेरूपा

(पहाड़ के जीवन को नयी आवाज़ और भाषा में शब्दांकित करते कवि।)

ठाठरी

आ रहा है थनवानी झूले में
घास के पुले में
चढ़ते चढ़ते चढ़ाई में
बच्चे आगे बढ़े पढ़ते पढ़ते पढ़ाई में
स्कूलों में नए किताबों की छपाई हो
छोरतेन की लिपाई हो
थनवानी में धूप गरम है
आते जाते लोगों को चाय पूछना धर्म है
थनवानी कितना सुनसान कोना है
अगली दफ़ा मेहमान और सामान गाड़ी से ढोना है
थोड़ा आगे पेड़ों के बीच में दो तीन घर है
जंगल में जंगली जानवरों का भी डर है
डर में भी पसीना पड़ता है
गला सबका सूखता है
गले में मोती रहे न रहे
मोती नाले का चश्मा हमेशा बने रहना चाहिए
अब निकासी पहुँच गया अब बोझ नीचे रखते हैं
पास के घरों में थोड़ा शहद चखते हैं
जो रिश्ता नाता है
आखिर में वही काम आता है
थोड़ा सा आगे अखरोट के बड़े पेड़ के पास
मेरा पैर फिसलने वाला है
हड्डी टूट गया तो मानचंद के पास जाऊँगा
लेकिन खून निकल गया तो पट्टी कराने कहाँ जाऊँ
हेल्थ सेंटर में तो ताला लगा है
उदयपुर के लिए गाड़ी करना था
लेकिन यहाँ भी समस्या है
जेसीबी से बर्फ हटाया नहीं है॥

श्मशान घाट

एक अच्छा श्मशान श्मशान
जैसा ही होना चाहिए

कुछ हरियाली वाले फूल
और थोड़ी सी शांति होनी चाहिए

सोने का शंख बजाने से क्या होगा?
क्या मुर्दा फिर से जिंदा होगा?

लकड़ी काटने के लिए कुल्हाड़ी तेज होनी चाहिए
और जंगलात के डिपो से लकड़ी आसानी से मिलनी चाहिए
बारिश और बरफ से बचने को एक छत होनी चाहिए।

श्मशान को मेकअप बॉक्स देने से क्या?
उस का थोड़ी करना है ब्याह?

सम्पर्क – +91 94597 81845

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विश्व कविता संवाद

कवि को जीने दो

(पोलिश कवि एडम ज़गायेवस्की के साथ अर्लिन्डो की बातचीत)

अनुवाद : आशुतोष दुबे

(हमारे समय के महत्त्वपूर्ण अनुवादक।)

ज़गायेवस्की की मृत्यु 21 मार्च, 2021 को पोलैंड के क्रॉकोव में हुई थी। वह 75 वर्ष के थे। इसके पूर्व 9 जनवरी 2021 को यह साक्षात्कार रिकॉर्ड किया गया था। प्रस्तुत है ज़गायेवस्की से **अर्लिन्डो** से हुई बातचीत –

अर्लिन्डो : कविता ''पोएट्स आर सॉक्रेटिस'' में आप कहते हैं कि कवि कुछ नहीं समझते : बहुत समय तक वे मौन रहते हैं और फिर वे गाने लगते हैं, गले के फट जाने तक।

''जो कवि है,
क्या कर सकता है
तुम पूछते हो खुद से
किसी सेना में अस्पताल में या दुनिया में''

मेरा पहला सवाल यह है : एडम ज़गायेवस्की दुनिया में क्या कर रहे हैं ? आप इक्कीसवीं सदी में भी क्यों लिख रहे हैं?

एडम : पहले मैं आपकी टिप्पणी पर टिप्पणी करूँगा। सुकरात पूर्व के दार्शनिकों ने मुझे हमेशा उलझन में डाला है उनके लेखन की अपूर्णता द्वारा। वे बिलकुल ठीक-ठीक (इस शब्द की आधुनिक समझ के मुताबिक़) कुछ नहीं कहते, वे किसी भी 'विज्ञान' से खुद को दूर रखते हैं। वे पहेलियों, बिम्बों, टुकड़ों के ज़रिए बोलते हैं। वे कवियों से बहुत अलग नहीं हैं।

आप पूछते हैं : मैं क्यों लिख रहा हूँ। तो, महज़ इसलिए कि मैं ज़िंदा हूँ। शताब्दी का आँकड़ा बीस साल पहले बदल गया लेकिन जो सवाल हम पर हमलावर हैं वे वैसे के वैसे हैं। पॉजिटिव साइंसेज़ तरक्की कर रहे हैं, कविता और दर्शन उसी भौंचक्की दशा में हैं।

एक हक्काबक्कापन, जो कभी आपको यातना भी देता है और कभी खुशी भी।

लेकिन यहाँ, अपनी बातचीत की शुरुआत में, मुझे कहना होगा कि मेरे लेखन के ख़ास टूल्स में से एक ज़्यादा तात्विक झुकाव और नैतिक और राजनीतिक प्रश्नों, समाज के जीवन, मेरा अपना जीवन और भूमण्डल के जीवन में एक साफ दिलचस्पी के बीच का तनाव है।

स्वेतलाना गुटकिना से अपनी बातचीत में आपने कहा है कि कविता का वास्ता बहुत कुछ प्रार्थना से है और कविता लिखने का आवेग भी प्रार्थना करने के आवेग जैसा ही है। बहरहाल, आप ईश्वर के साथ अपने किसी भी रिश्ते से इंकार करते हैं। क्या हम, जैसा 'बोनफाय' ने किया, कविता को 'धरती के धर्मशास्त्र' की तरह परिभाषित कर सकते हैं? इसका क्या अर्थ है?

एडम : 'धरती का धर्मशास्त्र', ये तो नीत्शे जैसी अवधारणा लगती है, पारम्परिक धर्मशास्त्र के विरुद्ध विरोधियों की अभिव्यक्ति बनाम एक अधिक पारम्परिक धर्मशास्त्र के। नीत्शे मेरा ईश्वर नहीं है। जवानी में मैं उसके लेखन से आकर्षित था।

मैं नहीं कह सकता कि मैं ''ईश्वर के साथ किसी भी सम्बन्ध से इंकार'' करता हूँ। कविता का भाग्य और कविता की समस्या यह है कि कवियों को सैद्धान्तिक वक्तव्य प्रस्तावित करने के लिए अमूर्त सिद्धांतों को विकसित करने की अनुमति नहीं है। ऐसा करके वे उस मासूमियत को नष्ट कर देते हैं जिसे उन्हें सहेजना चाहिए। हालाँकि यह नियम वे हमेशा तोड़ते ही रहते हैं। लेकिन उनका तत्व ठोस है, हमेशा मूर्त। न सिर्फ़ उन्हें इसकी इजाज़त नहीं है बल्कि ज़्यादातर वे इसे अच्छे ढंग से कर भी नहीं पाते। मेरे लिए कविता अँधेरे में जाने की तरह है। विख्यात शराबी चीनी कवि 'ली पो' (Li Po) ने कहा है कि वह नदी में डूब गया क्योंकि उसने चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब को असली चाँद या लाइफ़बेल्ट समझ लिया। अन्धेरा त्रासद भी हो सकता है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लेकिन हास्यास्पद भी। यह चीज़ों के उदास पहलू की तरफ ज़्यादा होता है क्योंकि हमारी किस्मत बहुत मज़ेदार नहीं है। और यह खोजें, मैं कहूँगा, धार्मिक खोजों के समानांतर भी हैं, और उससे बिलकुल अलग भी। कविता, दर्शन, धर्म— ये सभी शोधकर्ताओं की तरह उसी प्रयोगशाला में लेकिन इमारत की अलग-अलग मंज़िलों पर काम करते हैं। और हाँ, वे सारा वक़्त झगड़ते रहते हैं: सबसे ऊँचे तल्ले पर मैं हूँ, देखो मेरी तरफ।

इस अवसर पर मैं आपसे 'आपके' प्रिय लेखकों के बारे में जानना चाहूँगा। जब मैं 'ए फ़्लेम' कविता पढ़ता हूँ तो मुझे बोनफाय की कविता ला ल्यूमीयर, शांजी का स्वर याद आता है। 'मेरे प्रिय कवि' में आप कहते हैं कि आपके प्रिय कवि बादलों को प्यार करते हैं, शायद आप उन बादलों के बारे में सोच रहे हों जो ऊपर आते हैं और दूर चले जाते हैं। ठीकठाक — ऊपर और सुदूर — मीवोश और शिम्बोर्स्का के अलावा कौन से कवियों/दार्शनिकों ने आपको सबसे ज़्यादा प्रभावित किया ? क्या आप समकालीन लेखकों को पढ़ते हैं?

यह आसान सवाल नहीं है - बहुत से कवि हैं जो मेरे मास्टर्स हैं। कभी-कभी मुझे कोई ऐसा कवि मिलता है, मसलन योर्मोस सेफेरिस जो अपनी कविता 'द किंग ऑफ़ एसिने' के साथ मुझसे बहुत ताकत से बात करता है, एक ऐसी कविता जो समकालीन ग्रीक (शायद सिर्फ़ ग्रीक ही नहीं) कविता की आध्यात्मिक स्थिति पर प्रकाश डालती है। येट्स ,अपनी अनेक कविताओं में, जिनमें अविश्वसनीय 'सेलिंग टू बाइज़ेन्टियम' भी है, इस माने में एक अजीब कविता कि यह यकीन करना मुश्किल है कि असली बाइज़ेन्टियम में बुद्धि के वे चमत्कार मिलेंगे जिनकी उन्हें कामना है। अपनी अनेक कविताओं के साथ मोंताले -इलहाम के एक पल की लगातार तलाश में, तमाम अड़चनों का मज़ा लेते हुए, रास्ते की तमाम बाधाओं का। मेंदलेस्ताम- जो विनोद के एक सशक्त बोध के साथ और शानदार ठोस बिम्बों के साथ जीवन की त्रासद दृष्टि का मेल कर सकते थे। गॉटफ्रीड बेन -जिनकी कविता में एक अप्रकट आकर्षण है - उनकी कविता 'शॉपेन' उदाहरण के तौर पर, एक हमला सा है औचक, और इसके आमंत्रण को विश्लेषित करना कितना मुश्किल है। व्लादिमीर होलन और 'पोलिश स्कूल ऑफ़ पोएट्री', जैसा मीवोश इसे कहते हैं (हर्बर्ट , शिम्बोर्स्का , वाट, रुज़ाविच और खुद को) इतिहास के नाटक पर अपने कटु चिंतन के साथ- एकाकी नियति और वृहत्तर संदर्भ, दोनों के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है। मैं सिर्फ़ आधुनिक कवियों का ज़िक्र करा रहा हूँ, वैसे मैं पुराने दिग्गजों को भी पढ़ता ही हूँ।

आप, तमाम ज़िंदगी संगीत के ज़बरदस्त श्रोता रहे हैं और अब भी हैं, और संगीत, कविता की ही तरह, आपकी कविताओं में सूत्र की तरह है, आपने इसे एक पुल, या एक जेटी की तरह परिभाषित किया है जो आपको व्यावहारिक सरोकारों के सामान्य जगत से निकाल कर अव्यवहारिक यथार्थ की शांति और नाट्य में ले जाती है। थोड़ी अतिशयोक्ति में आप कहते हैं कि - भीतर और बाहर के शाश्वत बेमेल में, आत्मा का दुनिया के साथ रोमांस, यह अविराम, उर्वर बेमेल गठजोड़ संगीत और कविता में जाँचा जाता है; संगीत और कविता उन अनुपातों का अध्ययन करते हैं जिनमें आंतरिक और बाहरी मिलते हैं- ये भीतर और बाहर में जो शाश्वत अनमेल है ,उसे जाँचने में कैसे अलग होते हैं? संगीत और कविता में क्या सहकार है?

मुझे नहीं मालूम कि मैं इस सवाल का जवाब दे सकता हूँ या नहीं, मैं सिर्फ़ अभ्यासी हूँ। संगीत मुझे उसकी ऊर्जा से बाँधता है। इसकी वह ऊर्जा जो यहाँ, सोनाटा में, क्वार्ट्रेट और सिमफनीज में इतनी निर्वसन, इतनी सर्वश्रेष्ठ, इतनी ताक़तवर है। कविता विचार और भाव में बीच डोलती है, संगीत दोनों के बीच संतुलन बनाए रखने में कवि का मददगार होता है।

आपकी एक प्रसिद्ध कविता— ट्राय टू प्रेज़ द म्यूटिलेटेड वर्ल्ड-स्मृति का एक सशक्त सन्दर्भ है: दरअसल, क्षतविक्षत दुनिया की तारीफ़ करने की कोशिश की चेतावनी के बावजूद - यह कहना कि 'टू प्रेज़ द म्युटिलेटेड वर्ल्ड' ऐसा है जिस पर काम किया जाना चाहिए- सारी क्रियाएँ भूतकाल में हैं। यह संतुलन समूची कविता में बदलता रहता है, और इस अनिवार्य आदेश के साथ समाप्त होते हुए कि 'प्रेज़ द म्युटिलेटेड वर्ल्ड'। (इस विकृत दुनिया की प्रशंसा की जानी चाहिए) क्या यह प्रशंसा केवल इस बात का पता लगाना है कि क्या हुआ करता था जो अब नहीं हो सकता है। या कुछ करने का आग्रह है (शायद सामाजिक/राजनीतिक द्वंद्व में), इस प्रशंसा (प्रेज़) का मतलब क्या है? दुनिया' की आपकी परिभाषा क्या है?

यह कविता- मुझे इसकी शुरुआत के साथ जुड़ा भाव अभी भी याद है, दरअसल यह पंक्ति ''ट्राय टू प्रेज़ द म्युटिलेटेड वर्ल्ड'; मुझे याद आता है कि मैंने जर्मनी में एक ट्रेन में यह कविता

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

लिखी थी। (कभी-कभी प्रेरणा के लिए ट्रेन्स अच्छी होती हैं।) मेरे लिए यह महज दो विरोधी, गहराई से महसूस किए गए विश्वासों की सन्निधि थी। पहली थी निश्चितता, जिस तक मैं अपने अंदरूनी दृष्टिकोण को समझने की खोज में बरसों की तलाश के बाद पहुँचा कि मैं उन लागों में से हूँ जो विरोध की जगह प्रशंसा करते हैं। (भले ही अपने शुरुआत में मैं विद्रोही की तरफ था)। दूसरा वह प्रेक्षण था जो किसी मूर्तिभंजक के लिए माकूल था: कि यह दुनिया जिसकी मैं तारीफ़ कर रहा हूँ बहुत गहराई से भ्रष्ट है, क्षतविक्षत है, निराशा और क्षति से भरी है। इसने मेरी कल्पना को उकसा दिया। अंतर्विरोध सुन्दर होते हैं। मैं इस कविता को लेखन का कोई आयोजनधर्मी अंश, कोई घोषणापत्र नहीं बनाना चाहता था।

और 'दुनिया' दार्शनिक भी नहीं जानते इसे कैसे परिभाषित करें- मुझसे इसकी अपेक्षा न करें।

नेक्सस इन्स्टीट्यूट में जब कविता की भूमिका और शक्ति के बारे में पूछे जाने पर आपने बताया था कि कविता की कोई ताकत नहीं है और कवि गैरज़रूरी मनुष्य हैं, क्योंकि वे कुछ भी पैदा नहीं करते फिर भी कविता कुछ रोशनी देती है। यह हमें सुबोधता के कुछ क्षण देती है: एक अच्छी कविता रोशनी के पल का अभिलेख है। क्या मैं आपसे 'सुबोधता' की अवधारणा को 'दुनिया' की आपकी परिभाषा के संबंध में परिभाषित करने के लिए कह सकता हूँ? किसी कविता द्वारा आपको सबसे अधिक रोशनी मिली?

ऐसे सवाल— जैसे कुछ समय पहले नेक्सस इंस्टीट्यूट में पूछे गए उस सवाल की तरह— बहुत अलग-अलग जवाब उकसाते रहते हैं। कभी-कभी मैं गीत की ताकत के बारे में यक़ीन करता हूँ। (वैसे, अमरीकन आलोचक रॉबर्ट वॉन हॉलबर्ग की एक अच्छी किताब है- लिरिक पॉवर्स)। आखिर कविता ने 80 में पोलैंड में जनतांत्रिक क्रान्ति में योगदान दिया था।

एक भिन्न तरीके से कहें तो : कभी-कभी एक ताकतवर कविता किसी की जान बचा सकती है, किसी को मुतमइन कर सकती है, किसी पुरुष या स्त्री को जो किसी गहरे अस्तित्व के संकट से गुजर रहा हो महसूस करवा सकती है कि यह जीवन जीने लायक है।

जहाँ तक प्रकाश या रोशनी का सवाल है- यहाँ आप फिर मुझे विश्लेषणात्मक विचार की तरफ धकेल रहे हैं।

शोपनहाउअर ने उपयोगितावादी ढंग की तर्कणा के पार जाने वाली मानसिक स्थिति के लिए 'उच्चतर चेतना' की अवधारणा का उपयोग किया है। मैं अनिवार्यत: शॉपनहाउअरेनियन नहीं हूँ मगर मैं 'उच्चतर चेतना' के पलों के होने में यक़ीन करता हूँ। वे दुर्लभ और मूल्यवान हैं, वे सुबोधता के पल हैं।

आजकल कविता और कला के ख़ास दुश्मनों में से एक राजनीति के प्रति आकर्षण है, जिसे शोपनहाउअर के विरोधी हेगेल ने भी देखा था। संकट के दौर के अलावा- जैसे संकट में हम पोलैंड में रहते हैं- नव फासीवादी विचार और कार्यों का पुनर्जन्म, सरकार तक के स्तर पर भी— कविता को अक्सर महत्त्वहीन या पलायनवादी के रूप में खारिज कर दिया जाता है। राजनीतिक टिप्पणीकार हीरो हैं ! राजनेता नहीं।

एक आख़िरी सवाल : ''अपनी स्मृतियों को टटोलो/ उनके लिए कपड़े का कम्बल बुनो/ परदे खींच दो और हवा बदल दो/ उनके लिए मिलनसार रहो, और हल्के /ये स्मृतियाँ तुम्हारी हैं,/तुम अंत तक उनको भूलोगे नहीं'' आपकी कौन सी स्मृतियाँ हैं जो 'आपकी' हैं?

आह, मेरी स्मृतियाँ ! मेरी उम्र में ! हर तरह की स्मृतियों का एक महासागर है ! हालाँकि हर उम्र में आप अपनी नज़रें भविष्य की जीत और हार की दिशा में मोड़ सकते हैं। (उनके बीच का अनुपात हालाँकि बदल सकता है)।

आपके समय के लिए बहुत शुक्रिया ! आपसे बात करना अपनी ही इज़्ज़त अफ़ज़ाई है।

मेरे काम में आपकी दिलचस्पी के लिए धन्यवाद।

***

एडम ज़गायेवस्की : लुवाव, पोलैंड में 1945 में जन्मे पोलिश कवि, उपन्यासकार, अनुवादक, निबन्धकार पोलैंड में 68 की पीढ़ी या 'न्यू वेव' राइटर्स में से एक हैं। उनका शुरुआती काम विरोध की कविता था। ज़गायेवस्की ने पोलिश में लिखा लेकिन उनकी अनेक कविता पुस्तकें और निबंध अंगेजी में अनूदित हुए। उनके गद्य संग्रहों में 'टू सिटीज़: ऑन इग्ज़ाइल, हिस्ट्री एंड द इमेजिनेशन, (1995) और 2000 का संस्मरण 'अनदर ब्यूटी' शामिल है।

ज़गायेवस्की को अनेक सम्मान मिले जिनमें 2004 का नॉय्स्टैट इंटरनेशनल प्राइज़ फॉर लिटरेचर, 2010 का यूरोपियन पोएट्री प्राइज़ और 2013 का जोंगकन इंटरनेशनल पोएट्री प्राइज़ शामिल है।

आशुतोष दुबे - सम्पर्क - 09826370577

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

निकानोरपार्रा से पैट्रिसिओलेर्जुंडी की बातचीत

"मानव जीवन का पूरा रहस्य कविता में प्रकट होना चाहिए"

अनुवाद : अशोक कुमार

निकानोरपार्रा ने मुझसे कहा कि "अकविता पेशे से संबंधित एक पहेली है।" पहेली को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने आगे कहा, "अकविता शब्दों में व्यक्त जीवन है; इसका तौर-तरीका चेतनाशून्य संकलनवाद का है।" इसके बाद उन्होंने अपना एक 'शिल्प' प्रस्तुत किया : "अकविता दम घोंट देने वाली गैसों के लिए मास्क जैसा है।" अंत में, बच निकलने के लिए या घेरेबंदी से निकलने के लिए उन्होंने सीधा प्रहार जैसा किया, "अगर आप मुझे धकेल कर दीवार से लगा देते हैं और कहते हैं कि ठीक है, हमें अंतिम रूप से बता दो कि अकविता क्या है, तो मैं यही कहूँगा कि इसके बारे में मुझे कुछ भी नहीं मालूम... इसलिए मुझे गिरफ्तार कर लो।" यहाँ उनके साथ घंटों हुई बातचीत के अंश प्रस्तुत हैं—

पैट्रिसिओलेर्जुंडी : 'अकविता' शब्द का प्रयोग आप अनुभव-मुक्त कविता के रूप में करते हैं या अनुभव-जनित कविता के रूप में?

निकानोरपर्रा : कविता हो या अकविता, इसे अनुभवजनित ज्ञान के रूप में शामिल किया गया है। मैंने 1938 में पुस्तक लिखना शुरू किया, लेकिन इस शीर्षक से मेरा सामना 1949 या 1950 में इंग्लैंड में हुआ। मैं पुस्तकों की एक दुकान में था जब मुझे फ्रेंच कवि हेनरी डूशे की किताब 'अपोएम्ज़' दिखी। यानी 'अकविता' शब्द का प्रयोग 19वीं सदी में ही हो रहा था, हालाँकि यूनानियों ने भी शायद इसका प्रयोग किया था। जो भी हो, यह शब्द अनुभवजनित ज्ञान के रूप में ही मेरे पास आया। यानी मैंने यह पुस्तक शुरू से ही किसी संपूर्ण रूप से स्पष्ट सिद्धांत को दिमाग में रखकर नहीं लिखी। अभी तो मैं उन विषयवस्तुओं का अध्ययन कर रहा हूँ जिनका संबंध अकविता के दर्शन से है। हालाँकि उनमें से कुछ का मैंने गहन अनुभव जरूर किया है। 1935 में, कुछ सवाल दिमाग में उभरते रहे, बल्कि मैं कई उलझनों का शिकार हो गया था। मुझे ऐसा लगा था कि कविता को हम जैसा समझते हैं वैसी वह शत-प्रतिशत होती नहीं; बहुप्रशंसित कविताओं ने भी मुझे पूरी तरह अभिभूत नहीं किया; कविता और जीवन में अव्याख्येय दूरी दिखी। उस काल की कविता साहित्यिक 'स्पेस' में सक्रिय दिखी, जबकि जीवन की समस्याएँ जिन्हें हम वास्तव में भुगत रहे थे, वे कहीं नज़र नहीं आ रही थीं। कवि बात नहीं कर रहे थे बल्कि गा या गुनगुना रहे थे, और यह मुझे बहुत ही बड़ी विसंगति लग रही थी। मैं हमेशा सोचता रहा हूँ कि वह (पुरानी भाषा में लौटना) साहित्यिक कृतियों की भाषा से ज्यादा लोगों की बातचीत की भाषा के करीब है। उस समय मुझे एहसास हुआ कि मैं एक संकट की घड़ी से गुजर रहा हूँ। मुझे इस संकट से उबरना है, लेकिन कैसे? ऐतिहासिक, आलोचनात्मक, कोई दूसरा तरीका मेरे ध्यान में नहीं आया; मुझे नहीं समझ में आ रहा था कि इस समस्या का क्या समाधान प्रस्तुत करूँ। मैंने खुद को विज्ञापन बोर्डों की श्रृंखला, नारों के रूप में देखा, ऐसे व्यक्ति के रूप में जो विश्वविद्यालय से निकला हो। लेकिन एक मुकम्मल मनुष्य के रूप में, संयुक्त मनुष्य के रूप में नहीं बल्कि साधारण-से...

एक मशीन के रूप में?

नहीं, मशीन के रूप में भी नहीं, क्योंकि वास्तव में मैं जो कुछ कह या सोच रहा था, वह सब मैं पहले सुन चुका था और कुछ बातों को मैं कुल मिलाकर यांत्रिक रूप से दोहरा रहा था। और, जो मैं कह रहा था वह अगर अच्छी तरह व्यक्त हो रहा था तो मुझे वह ठीक लग रहा था। इस मुकाम पर अंतरात्मा की परीक्षा अनिवार्य लगी, और मैं यह देखने लगा कि इस संकट का स्रोत

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

क्या है, और क्या कविता हमेशा से इसी तरह लिखी जा रही है? मैंने सोचा, चलो पीछे मुड़कर देखते हैं। मैंने सोचा, और मुझे ऐसा लगा कि सभी आंदोलनों की, सभी यूरोपीय 'वादों' की इसी तरह आलोचना की जा सकती है; और अचानक जबरदस्त कविताएँ मेरे सामने आने लगीं, बावजूद इसके कि उनका साहित्यिक चरित्र उस आंदोलन के अनुरूप था जिससे वे जुड़ी थीं, क्योंकि वे उस आंदोलन की सीमाओं को लाँघ रही थीं। पीछे की ओर लौटते हुए अंततः मैं पुनर्जागरण पर पहुँचा, और मुझे बोध हुआ कि यही इस सुरुचिपूर्ण कविता, उस समय चिली में लिखी जा रही बोझिल 'शार्ट' (लघु) कविता के सभी दोषों का स्रोत है। ऐसा कहते हुए मेरे दिमाग में महान कवियों के सिवा और कोई नहीं है—नेरुदा हमेशा संवाद करने के लिए शब्दों को जोड़ा करते थे, लेकिन उस पर भी आपत्तियाँ की गईं, खासकर औपचारिकता के आधार पर। मैंने देखा कि पुनर्जागरण काल में गलत शुरुआत हो गई थी, जब कविता बैठकखानों के लिए लिखी जाने लगी, समाज के उच्च वर्गों के लिए अभिजात कविता लिखी जाने लगी, वह कविता जो मुखर रूप से पारंपरिक थी; लेकिन किस्मत से मैं और पीछे लौटा और मध्ययुग में पहुँच गया। पुराने रोमांस को, जो पूरी तरह गैर-आपत्तिजनक कविताएँ हैं, पढ़ते हुए मुझे लगा कि मैं 'टेरा फर्मा', सूखी हुई जमीन पर चहलकदमी कर रहा हूँ। उन्हें पढ़ते हुए लोक कवियों का ख्याल आता है— 12वीं सदी के गोलियार्डो का, कार्मीनाबुराना का, कोलोन के 'आर्कपोएट' का; जाहिर है, उस युग में बस अपने सिर को झुकाना होता था और ज़िंदगी वहाँ मौजूद दिखती थी, कविता में। इसके अलावा, मुझे एहसास हुआ कि जो कवि सशक्त कविता कर रहे थे वे सशक्त व्यक्ति भी थे, दरबारी नहीं थे। और पीछे जाकर (आखिर, पुनर्जागरण केवल यूनानी भावना, स्पीरिट का उभार नहीं था), मैंने पाया कि मुझे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मैं जिस चीज को नापसंद करता था वह यूनानी 'स्पीरिट' ही थी। यूनानी कविता और कला आमतौर पर सौंदर्य का राग थी, न कि जीवन का राग। सौभाग्य से (यह मैंने अनुभव से पाया),अरस्तू की 'स्पीरिट', जो कि विशिष्ट किस्म की 'क्लासिकल स्पीरिट' है; अरस्तू विरोधी, अरिस्टोफ़ेन्स की 'स्पीरिट' है। उस समय मैं अरिस्टोफ़ेन्स के काफी करीब महसूस कर रहा था। बाद में मैंने देखा कि अरिस्टोफ़ेन्स से पहले भी काफी कुछ किया जा रहा था। मैं यूनानी कवियों के एक संकलन का पुनर्पाठ कर रहा था और मैंने खुद को आर्किलोकोस के बिलकुल साथ चलते हुए पाया। आर्किलोकोस ने 8वीं सदी ई. पूर्व में ही वह सब कह डाला था जो आज मैं बड़ी मुश्किल से कहने की हिम्मत कर पा रहा हूँ। जिसे हम समय का लयात्मक मानदंड कहेंगे, उसका पूरा उल्लंघन किया; वे प्रतिमान की दृष्टि से एक अकवि हैं। इसके अलावा कल्लिमचोस या निकार्चोस थे, और इस बिंदु पर हम जोड़ों को पाने लगते हैं, उन हिस्सों को जो पूरे इतिहास में दबे रहे; इन सभी तत्वों पर दोबारा नज़र डालते हुए और उन सबको एकबारगी जोड़ने से कुल मिलाकर एक स्पष्ट छवि बनाने में सफलता मिलती है, और यह छवि आज की अकविता की, आधुनिक अकवि की है। उस खोई जा चुकी एकता की जाँच की प्रक्रिया में सार-संग्रह वृत्ति का केंद्रीय विचार निहित है। अकवि हर चीज की दोहरी जाँच करता है और उसे चुनता है जो उसका अपना हिस्सा लगता है।

एकेडमिक के उपयोग को खारिज किए बिना?

अकविता के दस्तावेज़ में पुस्तकों ने भी जगह बना ली है ताकि अकविता की कोई पंक्ति अचानक अगर बुरी तरह एकेडमिक लगती है तो किसी को सदमे में नहीं पड़ना चाहिए; लिखित भाषा एक महत्त्वपूर्ण अनुभव होता है लेकिन मैं कुछ और भी जोड़ना चाहता हूँ। सांस्कृतिक प्रक्रिया के इस पुनरावलोकन में मैंने जो पहली अभिपुष्टियाँ करने की हिम्मत की, उनमें एक यह थी कि चिली की 19वीं सदी की कविता मुझसे कुछ नहीं कहती; 20वीं सदी की कविता कुछ कहती है; लेकिन दूसरी ओर, 19वीं सदी की लोक कविता शानदार है। इस विशेष थीम के बारे में मैं वह मुहावरा दोहराना चाहूँगा जो अब अकविता के इस सिद्धांत की सामग्री से बना मुहावरा है, कि जीवन स्थानीय भाषा में ही है। अकवि को जिस चीज की तलाश है वह, मूलतः सुंदरता नहीं बल्कि जीवन है—हाड़-माँस से बना जीवन; वह इससे कम पर नहीं मानेगा। अकविता की एक प्रारंभिक परिभाषा यही थी : कविता शब्दों में दर्ज जीवन है। इसलिए, अकविता में लोकभाषा के लिए बड़ी जगह है; आपको लोकभाषा की जमीन को इस हद तक अपना बनाना पड़ता है कि मनुष्य एक प्रेत, बाड़ में बँधा एक पशु बन जाए—पशु के रूप में मनुष्य अपनी प्रारंभिक असभ्यता हासिल कर ले, अपनी खोयी हुई घुमंतू वृत्ति हासिल कर ले। मैं उस प्रारंभिक असभ्यता के पार चला गया और मनुष्य की काया के ही विघटन के करीब पहुँच गया था; मैं कोशिका पर, प्रोटोप्लाज़्म पर आकर ठहर गया। मैं अमीबा से शुरू हुआ था और यह फॉर्मूला बनाया—मैं एक अमीबा हूँ जो अपने रास्ते में आई हर चीज को खाकर जिंदा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

रहता है। वह अकविता का 'अगु' (यह ऐसा शब्द है जिसका अंग्रेजी में कोई समानार्थी नहीं मिलता। सबसे करीब शब्द है 'गू-गू'। यह बोलने के सबसे प्रारंभिक आवेग को प्रतिध्वनित करता है। चिली में लोग यह बोल कर शिशुओं को बोलने के लिए उकसाते हैं) होगा।

वैसे, स्पेनी-अमेरिकी कविता संगीतात्मकता को अहमियत देने पर ज़ोर देती है।

मैं जिन कलाकृतियों—ताजा पाठों से काम कर रहा हूँ वे स्वर के कृत्रिम समर्थन को खत्म करने की कोशिश का नतीजा हैं। इसके अनुरूप मैंने एक रचना लिखी जो स्पेनी-अमेरिकी कविता और खुद मेरी कविता में आज पैदा हुए संकट के बड़े हिस्से से संबंध रखती है। इस संकट का संबंध 'विधा' से है और वह रचना बचपन के एक 'टंग ट्विस्टर' (जबानतोड़ जुमले) से शुरू होती है—

चीलीयन पोएट्री एंडी केसिलेबलेटेड,
चीलीयन पोएट्री इज़ एंडीकेसिलेबलेटेड,
हू विल दिस एंडी केसिलेबलेटइट?
द ग्रेट दिस एंडी केसिलेबलेटरविल।

इस तरह, मैं इस जाल से बच निकलने की जो कोशिश कर रहा हूँ वह रचना के रूप में है, बहुत छोटे पाठों के रूप में, जो पूरी तरह अ-संगीतमय है। और मैं यह क्यों करना चाहता हूँ? इसलिए कि मुझे लगता है कि संगीत कवि के अपना अंतिम मकसद हासिल करने में बाधा बनता है। वह मकसद, जिसका ध्वनि के संसार से कोई मतलब नहीं है,और थोड़ा आध्यात्मिक बनते हुए मैं कहूँ तो अपनी हस्ती से कोई संबंध नहीं है। मुझे हाइडेगर की वह परिभाषा याद आ रही है, जो कहती है कि कविता उस हस्ती का आधार है जो शब्द से निर्मित होती है। प्रवृत्ति जैसी कोई चीज जन्म लेती है, स्वचालिकरण, यंत्रीकरण जैसी चीज और एंडीकेसिलेबल के दस साल बाद एकमात्र जो चीज बची रह जाती है वह है 'सिंग-साँग' (गीत गायन)। इस संघर्ष के अनुरूप एक लघु पाठ है मेरे पास-- 'सिंग-साँग' कविता की सबसे बड़ी दुश्मन है। और यहाँ 'सिंग-साँग' का वास्तविक अर्थ है कोई भी पारंपरिक छंद। कुछ कवियों ने पारंपरिक छंद से विद्रोह कर दिया, बावजूद इसके कि बाद में वे इसकी ओर लौटे। मेरा विचार है कि शिल्प के प्रयोग से 'सिंग-साँग' से बचा जा सकता है। बेशक यह सवाल उठ सकता है कि अगर पारंपरिक छंद को हटा दिया गया तब क्या बचा रहेगा? क्या अलग तरह के छंद का आविष्कार करना पड़ेगा? नहीं, मुझे लगता है कि हमें अपने लोगों के स्वर लय को पकड़ना पड़ेगा।

लेकिन शब्दों में भी संगीतमयता और एक तान होती है, जिसे नकारा नहीं जा सकता।

शब्दों में ध्वनि होती है लेकिन उसके आगे कवि कुछ शब्दों में विशेष ध्वनि जोड़ते हैं। उदाहरण के लिए, वे कोशिश करते हैं कि हरेक पंक्ति में उच्चारण के अंशों की एक निश्चित संख्या हो। यह ध्वनि से संबंधित अनुभवजनित माँग है, जिसका शब्दों की अपनी ध्वन्यात्मकता से कोई लेना-देना नहीं है। मैं मानकीकरण के खिलाफ हूँ, जिसका अर्थ है लय तथा पंक्तियों की लंबाई का मानकीकरण, या शायद मैं द्वितीय अथवा तृतीय पद के संगीत के खिलाफ हूँ। लेकिन यह स्पष्ट है कि किसी भी शब्द में प्रथम पद का संगीत अपरिहार्य है।

जैसा कि विरोधाभास की समस्या के साथ होता है...

अकविता में विरोधाभास तो होगा ही अन्यथा वह बस एक फॉर्मूले पर चलेगी।

लेकिन कुछ तत्व तो जरूर रहने चाहिए।

जीवन!

हो सकता है कि विरोधाभास को संशयवाद माना जाए।

संशयवाद का तत्व उस विकट तथा खतरनाक स्थिति की देन हो सकती है जिसमें हम खुद को पाते हैं।

क्या यही तत्व है जो एक अकवि को हर चीज से बावस्ता होने की छूट देता है?

अकवि हर चीज से बावस्ता हो जाता है, उन चीजों से भी जिनका उससे कोई मतलब नहीं होता। उदाहरण के लिए, बच्चे जब फुटबॉल खेल को देखते हैं तब क्या करते हैं? बेशक वे उससे जुड़ जाते हैं। वे उस खेल का हिस्सा बनना चाहते हैं। अगर मैं दार्शनिक कविताएँ लिखूँगा तो कोई मुझ पर ध्यान नहीं देगा। कोई क्रांतिकारी या कोई पूँजीवादी मुझसे यही कहेगा कि 'ठीक है, हम तुम्हें लिखने का, सम्मेलन करने का और अपनी किताब प्रकाशित करने का मौका देते हैं'। लेकिन मैं इस पूरे कारोबार के हाशिये पर हूँ। परंतु मैं तो उसमें गहराई से शरीक होना चाहता हूँ। मैं तो सुहागरात मना रहे जोड़े की सेज़ पर उन दोनों के बीच होकर देखना चाहता हूँ कि जब वे अपने विवाह को मुकम्मल कर रहे हैं तब क्या होता है। मैं इससे कम पर संतुष्ट नहीं हूँगा। और इसे कैसे हासिल किया जा सकता है? सिर झटककर कोई भी बकवास करके, मसलन—'कब अ सी, यांकुईतांबीएन'। शिल्प कई स्तरों पर काम करता है। उसमें शोर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मचाती जनता की शक्ति निहित हो सकती है, केवल रचनाकार की ताकत नहीं। अतिसूक्ष्मवाद को उसकी अति तक पहुँचा दिया गया है। यह न्यूनतम प्रयास करके अधिकतम हासिल करने का मामला है। दूसरी ओर, यह याद रखना चाहिए कि आज के कवि साहित्यिक 'स्पेस' में काम नहीं करते बल्कि दैनंदिन जीवन की समस्याओं के अध्ययन-विश्लेषण में मसरूफ़ रहते हैं। इसलिए इस तथ्य से सामना स्वाभाविक है कि अकविता जब प्रकटत: राजनीतिक नहीं होती तब मुख्य रूप से राजनीतिक या सामाजिक चरित्र वाली होती है। उदाहरण के लिए, इसमें और अतियथार्थवादी कविता में यह अंतर होता है कि वे सामाजिक यथार्थ के नजरिए से समीक्षा से बचने की कोशिश करती थीं। अकविता प्रतिबद्धता की कविता है।

अकविता की भाषा आम बोलचाल वाली भाषा होती है और वह समाज के प्रति प्रतिबद्ध होती है। इसके बावजूद वह गूढ़ होती है और क्या वह ज्यादा से ज्यादा पाठकों की तलाश में होती है?

जब मार्सेलडुचंप ने साइकिल के पहिये के साथ खिड़की के टूटे हुए शीशे को प्रदर्शित किया था तब वास्तव में वे कला पर हँस रहे थे और सभी छद्म को हमेशा के लिए समाप्त कर देना चाहते थे लेकिन हुआ यह कि पेट्टी बुर्जुआ जितना उन्हें दिखता था उससे कहीं ज्यादा लचीला था। सो, मुक्केबाज के अभ्यास के लिए बने बैग की तरह वार सहते हुए उन्होंने यही निष्कर्ष निकाला कि ये तो कला की शानदार कृतियाँ हैं। लंबे समय से यह पूर्वाग्रह बना हुआ है कि कविता तो काल्पनिक दुनिया को प्रस्तुत करती है। अकवियों ने दैनंदिन दुनिया की बातें शुरू कर दी हैं, लेकिन ऐसा लगता है कि सामान्य आदमी पलायनवाद की कविता को ही पसंद करेगा।

इसकी वजह शायद यह है कि अस्पष्टता के लिए अकविता की आलोचना की जाती है।

अर्थों के स्तर उपमाओं और प्रतीकों की जगह ले लेते हैं... कुछ ऐसे मुहावरे हैं जो इस तथ्य के बावजूद हमें प्रभावित करते हैं कि वे प्रतीकात्मक नहीं हैं, और हम नहीं समझ पाते कि वे हमें इतने गहरे क्यों प्रभावित करते हैं। यह वैसा ही है जैसे किसी झील पर पत्थर गिरता है तो पानी में एक के ऊपर एक वृत्त बनने लगते हैं, एक-दूसरे से बड़े आकार में।

फिर से हम बहुलता और विरोधाभासों के सिद्धांत पर पहुँच जाते हैं।

अकविता सुंदरता को नष्ट करना चाहती है लेकिन अचानक रचनाकार कहता है— नहीं, सुंदरता ही एकमात्र चीज है जो मुझमें दिलचस्पी पैदा करती है। पाठक पूछता है—'क्या हो रहा है यहाँ?'... 'यह आदमी क्या चाहता है?'... पाठक की यह प्रतिक्रिया महत्त्व रखती है। दिलचस्प बात है पाठक में उत्तेजना पैदा करना, उसे किसी भी साधन या तरीके से उसकी नींद से जगाना, क्योंकि यह किसी तार्किक सिद्धांत को पीछे छोड़ देने का मामला नहीं है; जो कवि किसी तार्किक सिद्धांत के जूते में पैर फँसा देता है और उससे पैर बाहर नहीं निकालता, वह रास्ता खो देता है। अकविता की मजबूती की एक व्याख्या शायद यह है कि रचनाकार खुद को माँग के मुताबिक ढाल लेता है, वह किसी भी क्षण अपने तौर-तरीके बदलने और दूसरी दिशा की ओर बढ़ने के लिए तैयार रहता है। किसी क्षण वह कह सकता है कि केवल सौंदर्य ही उसे संतुष्ट करता है, कि बदसूरती उसके लिए उन स्थितियों में दर्दनाक होती है जिन स्थितियों ने अकविता को एक तरह से बदसूरती के पहले पंथ के रूप में चित्रित किया था। यह नहीं भूलना चाहिए कि ये राजनीतिक या सौंदर्यात्मक घोषणाएँ नहीं हैं लेकिन नाटकीय प्रस्तुतियाँ हैं जिनमें मुखौटे का प्रयोग किया जाता है। जरूरी नहीं कि रचनाकार ही कहे कि ''मैं केवल सौंदर्य से संतुष्ट होता हूँ।'' यह एक आवाज़ है, किसी की, कविता के पीछे रेडियो एनाउंसर की, जो पाठ को पढ़ रहा है और दैनिक समाचार की सामग्री के लिए जिम्मेदार नहीं है। समकालीन कवि प्रथम पुरुष के रूप में बोलने से इनकार करता है, और अगर वह बोलता भी है तो उसके ''मैं'' कहने का अर्थ यह नहीं है कि वह ''मैं'' रचनाकार है। अकविता की रचना मनोवैज्ञानिक संरचना के रूप में की जाती है; उक्तियों को सैद्धांतिक या भावनात्मक आधार नहीं बल्कि मनोवैज्ञानिक आधार दिया जाता है। उक्तियाँ हाड़-माँस के मनुष्यों की अभिव्यक्तियाँ होती हैं जो जरूरी नहीं कि रचनाकार की अभिव्यक्तियाँ हों ताकि विरोधाभास भी स्पष्ट हों। हाँ, अकविता बहुलता के सिद्धांत पर आधारित होती है; मनुष्य विविधतापूर्ण और बहुरूपी है।

मुखौटा एक सहारा है...

बेशक यह एक सहारा हो सकता है क्योंकि कवि जो कुछ कहता है उस सबका उसे कारण बताना पड़ता है, उसने खुद को जिस स्थिति में डाल दिया है उस पर नज़र डालनी पड़ती है। इसका मतलब यह हुआ कि उसे अपने ऊपर काफी संयम रखना पड़ेगा, अपनी अच्छी छवि पेश करने के लिए उसे टाई सीधी करके, बाल सँवार कर चाक-चौबंद बनना पड़ेगा। लेकिन इसका क्या

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मतलब है? यह कि वह अपने साज़ को काबू में रखे, सात तारों वाले साज़ की जगह एक तार वाला साज़ ही बजाए। इसके बाद अकवि मुखौटों के खेल का सहारा लेता है, पुलिस का सामना करने का जोखिम लेने से बचते हुए हर बात कह देना चाहता है। अति-यथार्थवादी ने कहना चाहा था कि ''फ्रांसीसी सेना मुर्दाबाद, जर्मन सेना जिंदाबाद!'' अब कोई सवाल उठा सकता है कि ''यह छूट क्यों?'' देशभक्तों, जनरलों, और सैनिकों के लिए यह समस्या हो सकती है, कवि के लिए नहीं क्योंकि उसके लिए इतना काफी है कि वह एक ऐसी भाषायी संरचना खड़ी कर दे जो संतुलित हो और राजनीतिक, सौंदर्यात्मक, कवित्वमय प्रदर्शनों से मुक्त, अपने आप में संपूर्ण हो।

लेकिन इन सभी मुखौटों के पीछे रचनाकार का वह ''मैं'' हमेशा उपस्थित रहता है जिसे बदला नहीं जा सकता।

हाँ, वही है जिसे ही अंततः चुनाव करना होता है, लेकिन मेरे ख्याल से सेंचो की अश्लीलताओं के लिए सर्वांते को हमेशा दोष नहीं दिया जा सकता।

एक वाक्य में कहना हो तो अकविता का लक्ष्य क्या है?

'व्हाइट पेज' से मुक्त होना।

अकविता से पहले कविता थी। अकविता के बाद क्या? दूसरे शब्दों में, अगर कविता के अपने बड़बोले मूर्ख थे, तो क्या अकविता के भी बड़बोले मूर्ख होंगे?

कोई भी दौर हो वह हमेशा अपने आप से थक जाता है, बेदम हो जाता है और उसे आगे बढ़ाने वाले 'अंडरटेकर' की जरूरत होती है। सांस्कृतिक विधाएँ जीवित विधाएँ होती हैं जो उस कारण, रोग, बुढ़ापा, मृत्यु के बीच अभिव्यक्त होती हैं। कवि या अकवि 'अंडरटेकर' होता है, वह वह शख्स होता है जो पुरानी कविता को दफन करके प्रायः नई कविता की जमीन प्रस्तावित करता है, एक नई सांस्कृतिक विधा को प्रस्तावित करता है जिसे उसी नियति से गुजरना पड़ता है ताकि अकवि भी एक बड़बोला मूर्ख बन जाए। अपने एक आखिरी सार्वजनिक आयोजन में लेखक विक्टर ह्यूगो का, जिन्हें किसी अमूल्य फूल की तरह शीशे के अंदर रखा जा रहा था, युवाओं ने तब मज़ाक उड़ाया था जब वे किसी दूसरे जमाने की अपनी अकविता का पाठ करने लगे थे। इसलिए, मेरा जवाब यह होगा कि बचने का कोई रास्ता नहीं है; हरेक युवक को बूढ़ा होना पड़ता है, बस। अकवि को अपना जीवनचक्र पूरा करना पड़ता है और मंच से नीचे उतरना पड़ता है; इस पर न उसका कोई बस चलता है और न उसके आलोचकों का। एक अकवि सिर्फ़ यही कर सकता है कि वह अपनी युवावस्था का जितना संभव हो उतना विस्तार कर ले, जिसमें अपना चेहरा आकर्षक बनाने के लिए केश रँगने का अधिकार भी शामिल है।

मृत्यु... क्या वह अकविता की ब्रह्मांड-दृष्टि का एक हिस्सा है?

मैंने इस पर कोई विचार नहीं प्रतिपादित किया है। लेकिन मृत्यु कविता की सभी विधाओं में एक केंद्रीय विचार रहा है। जहाँ तक मेरी बात है, मैं तो एक कब्रिस्तान में जन्मा और पला और इस कारण मृत्यु मेरी कविता की हर पंक्ति के मोड़ पर खड़ी दिखती है। ताबूतों के कारोबार को अक्सर मैंने अंतिम संस्कार की सूचना में भी शामिल किया गया देखा है-- ताबूत...और कलश आदि... इसके अलावा, यह ध्वनि के लिहाज से एक सुंदर मुहावरा है। दूसरी ओर, यह याद रखा जाना चाहिए कि अकवि वह 'अंडरटेकर' है जो पिछली कविता को दफन कर देता है।

कुछ लोगों को अकविता में संशयवादी प्रवृत्ति नज़र आती है।

संशय काफी तार्किक शब्द है। मेरा ख्याल है कि जब आप किसी कवि को संशयवादी या शून्यतावादी या आशावादी या उग्रवादी कहते हैं तो इसका अर्थ यह होता है कि आप कवि को बहुत महत्त्व नहीं दे रहे हैं। आप कवि को सब कुछ कह सकते हैं, कि वह संशयवादी है या आशावादी, उदास, खुश है क्योंकि वह एक मनुष्य है जो अपने साज के सभी तारों को झंकृत कर सकता है। इस विचार के साथ मैं अपने मूल शब्द, एकीकरण पर आऊँगा। कवि को मानव जाति का एकीकरण करना है, उसे केवल अपने नाम से नहीं बल्कि अपनी प्रजाति की ओर से बोलना है। इसी तरह, कवि के अंदर प्रजाति के हर पहलू के लिए जगह होनी चाहिए। क्या सर्वांते का वर्णन एक शब्द में किया जा सकता है?... कोई भी उसे हर चीज के रूप में कल्पना कर सकता है। मुझे लगता है कि अगर कवि को इनमें से किसी एक शब्द में समाहित किया जा सकता है तो वह बहुत अधूरा कवि है। मानव जीवन का पूरा रहस्य कविता में प्रकट होना चाहिए— कच्चे रूप में, न कि व्याख्या रूप में।

निकानोरपर्रालातीन अमेरिकी कविता के सबसे विवादास्पद और प्रभावशाली रचनाकार हैं, ऐसा क्यों है?

महत्त्वाकांक्षा की वजह से नहीं, बल्कि अपने बचाव में कहूँ, तो मजे के लिए।

(अशोक कुमार, विश्व साहित्य के अनुभवी अनुवादक।)

सम्पर्क - akalpam@yahoo.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फ़ारसी कविता

अनुवाद : नासिरा शर्मा

(दक्षिण एशियाई साहित्य से हिंदी पाठकों को परिचित कराने वाली शिखर अनुवादक।)

फ़ारसी भाषा-साहित्य की यह कविताएँ अपने-अपने टाइम फ्रेम में लिखी गई हैं। जिसको जानने से कविता का मर्म समझने में आसानी होगी। अहमद शामलू फ़ारसी की नई कविता के अहम नाम हैं। नई कविता के 'बाबा-ए-शेर' कहलाने वाले नीमा योशीज ने फ़ारसी कविता को रदीफ काफिए की बन्दिश से तोड़कर उसमें लय को महत्त्व दिया। अहमद शामलू ने कहा कि कविता में विचार महत्त्वपूर्ण है लय भी नहीं। अहमद शामलू ने अपनी बेहतरीन कविताएँ अंकुश के दौर में लिखीं जब सेन्सरबोर्ड की सख़्त नजर और सावक पुलिस का खौफ व्याप्त था। इस दौर के कवियों ने इश्क़ की ज़बान कुछ अलग तरह से पेश की जिसमें इंकलाबी विचार और विरोधी तेवर दर पर्दा मौजूद हों उनकी कविताओं को पढ़ कर इस बात का अन्दाजा किया जा सकता है।

पहलवी साम्राज्य का 1979 में समाप्त होना और इमाम खुमैनी के आने का शोर और साम्यवादियों की सत्ता में आने की कोशिश, यह वह दौर था जब जेल में बन्द सियासी कैदियों को छोड़ा गया जिस में सईद सोल्तानपोर जैसे इंकलाबी थे जिन्हें दोबारा जेल में डाला गया क्योंकि उन्होंने नई व्यवस्था की आलोचना बाकी बुद्धिजीवियों की तरह की और शादी की रात उन्हें विदेशी मुद्रा की तस्करी के इल्जाम में पकड़ा गया और चन्द माह बाद शूट कर दिया गया। उसी दौर में बहुत बड़ी संख्या में विदेशों में जिलावतनी झेलते या शाही साम्राज्य से रुष्ट होकर वहाँ बसे लोग नई उम्मीदों के साथ अपने वतन लौटे मगर जो हाल था उस हालात को झेल न पाने के कारण वह लौट गए। इनमें ज़्यादातर गैरसियासी लोग थे। सियासी विचार के लिए डटे रहे यह सोचकर कि मुल्क में एक नई सुबह फूटी है और अब बोलना, लिखना, छपना पाबन्दी मुक्त होगा। उनका भ्रम जल्द ही टूट गया और वे अपने विचारों व आलोचनाओं के कारण पकड़े गए जिसमें ढेरों लोगों के साथ रेजा बेहरानी भी थे। उनकी कविता 'रोना' से आप अन्दाजा लगा सकते हैं कि उस समय की कैसी दर्दनाक स्थिति थी। उस समय जब रेजा बेहरानी जेल में थे उनका कोई समाचार नहीं मिल रहा था कि वह किस शहर की किस जेल में हैं। उन्हीं दिनों जीफ जस्टिस मोसावी तब्रीजी के साथ एक प्रेस कांफ्रेंस हुई जिसमें वहाँ मैं मौजूद थी। एक ईरानी पत्रकार ने पूछा कि अंग्रेजी अध्यापक, कवि, आलोचक जिनका अपहरण तेहरान विश्वविद्यालय के सामने हुआ था वह आखिर कहाँ है कैद में या फिर उनको मौत की सजा दे दी गई। मोसावी तब्रीजी ने साफ इंकार कर किया कि वह इस बाबत नहीं जानते हैं। जब अन्य पत्रकारों ने भी रेजा बेराहनी के बारे में जानने का आग्रह किया तो वह बोले "मैं यहाँ बहस करने नहीं आया हूँ। सिर्फ प्रश्नों के उत्तर देने आया हूँ।" इसके बाद एलान हुआ, "सारे पत्रकार हाल खाली करें। भारतवर्ष में शिक्षा का स्तर ठीक और सस्ता होने के कारण बड़ी संख्या में ईरानी भारतवर्ष 1980 के बाद आना शुरू हो गए थे। पहले भी उनकी संख्या कम न थी। उसी में से पी.एच.डी. करने वाले विद्यार्थी फरीदून फरियाद थे जिनका ज़ोर था कि कविता अपने सरोकारों में विस्तार लाए जिसका बयान उन्होंने अपनी 'कविता' नामक लम्बी नज़्म में किया है।

ऐसा नहीं है कि फ़ारसी शायरी ने दूसरे विषयों पर लिखकर विश्व स्तर पर झंडे न गाड़े हों। मिसाल के तौर पर फिरदौसी ईरानी इतिहास, हाफिज 'इश्क़', मौलाना 'दर्शन' और सादी हिकायतों के लिए आज भी पढ़े व पसन्द किये जाते हैं। इन्हीं नामों के साथ अनेक जगमगाते नाम हैं इसके बाद का समय बीसवीं सदी का लें तो उसमें भी हमें कवियों की आकाशगंगा नज़र आएगी। उसमें एक नाम लेना चाहूँगा वह हैं नादिर नादिरपोर जो रोमान्टिक शायरी में एक महत्त्वपूर्ण नाम है। उनसे

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पेरिस में इन्टरव्यू करने का मौका मिला था। उनकी कविताएँ ग़ज़लें पसन्द आने के बाद भी उनकी किसी रचना का अनुवाद नहीं कर पाई हूँ। वह दरबारी शायर कहलाते थे। इस्लामिक क्रान्ति के बाद वह क्रान्ति के दुश्मन हो गए और उन्हें ईरान छोड़ना पड़ा।

यह सारा टाइम फ्रेम अजीब उलझाव का था। सियासत कौन कर रहा था। वतन परस्त और इंकलाबी कौन था, दगाबाज और गद्दार कौन था। अंकुश के बाद के दौर में मोहसिन मौहन दोस्त की हाइको याद की जा सकती है।

भोर तुम कहाँ हो?
रात की एकाकी को तोड़ा
मगर फिर पर्वत पर बैठा
कु कू कर रहा हूँ कि 'भोर तुम कहाँ हो'

आज उस दौर को गुजरे बहुत समय हो गया है। इस बीच केवल हालात ने ही नहीं, भाषा ने भी अपने को बदला है। फ़ारसी में फिर से अरबी भाषा दाखिल काफी मात्रा में हो चुकी हूँ। सियासी तल्ख अनुभवों से ईरानियों का व्यवहार बदला और उन पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी पड़ा।

मानसिक संताप आर्थिक, संकट, युद्ध और वैचारिक मतभेद और अमेरिका से न समाप्त होने वाला संघर्ष लगातार पैंतरे बदल रहा है मगर इसका मतलब यह नहीं है कि ईरान में शायरी सूख गई है। एक बड़ी संख्या में साहित्य की दुनिया में महिलाओं का आगमन हुआ है। उसमें से मैंने 'शिवा तोराब नया' की कुछ कविताएँ चुनी है जो ईरान की उभरने वाली कवयित्रियों में से हैं। इनका नाम भगवान शिव पर इनके पिता ने रखा है। उस समय वह हिन्दुस्तान में हिन्दू भगवानों पर रिसर्च कर रहे थे। अब वह इस दुनिया में नहीं है। शिवा से फोन पर बात करने पर जब उनकी कविताओं पर बात हुई तो उन्होंने कहा कि मैं कविता में दृश्य उभारने की कोशिश करती हूँ। मेरी कविता में इश्क़ है, मगर कोई उसमें सियासी संकेत ढूँढ़ना चाहता है तो वह उसका नज़रिया है। मोहम्मद रेज़ा नज़ीरी अफ़गान कवि हैं और फ़ारसी दरी में लिखते हैं। उनकी कविता 'फ्रेम' यूँ तो सादा सी नज़्म लग सकती है मगर जब इसको अफ़ग़ानिस्तान के मौजूदा व पिछले 40 वर्ष के फ्रेम में रखकर देखें तो यह कविता हालात से थके इन्सान की तर्जुमानी करती है और यही आज का टाइम फ्रेम है।

अहमद शामलू

घुटन

नया चाँद देखने, मैं
अक़ीक़, सब्जी व आईने के साथ
छत पर गया।

एक ठंडी हँसिया
आसमान पर उभरी
''कबूतरों की उड़ान मना है''

सनोबर को दरख़्तों ने
गुनगुना कर कुछ कहा,
और
इस शोर को सुन, पहरेदारों ने तलवार
परिन्दों की गर्दन पर रखी
और
चाँद नहीं उगा।

इस बन्द गली में

तुम्हारे मुँह को सूँघते हैं
कभी कह न दिया हो
''मैं तुम्हें पसंद करती हूँ''
दिल को सूँघते हैं
बहुत अजीब है यह दिन नाज़नीन।

और इश्क़ पर
बन्द गली में
खुलेआम कोड़े बरसाते हैं
इश्क़ को कहीं गहरे छुपा रखो।

इस गली के पेंच व ख़म में,
शेरों और गीतों के अलाव को ताप रहे हैं।
ऐसे में सोचने का जोखिम मत लेना
बहुत अजीब हैं यह दिन नाज़नीन।

वह जो रातों को
बन्द दरवाज़े खटखटाते हैं,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चिराग़ों के क़त्ल को आए हैं।
रौशनी को तहख़ाने में छुपा रखो।

वह क़स्साब हैं,
चौराहे पर खड़े हैं,
कुंदे और ख़ूनी चाकू लिए,
बहुत अजीब हैं यह दिन नाज़नीन।

ख़ामोश खड़ा है
और घोड़े की गर्दन के लम्बे बाल
हवा में उड़ रहे हैं

ख़ुदाया, ख़ुदाया।
सवार हरग़िज़ न ठहरे
जबकि
घटना काटने वाली हो

धान के जले खेत के किनारे
दोशीज़ा
ख़ामोश खड़ी है
और उसका नाजुक दामन
हवा में हिल रहा है

ख़ुदाया, ख़ुदाया।
दोशिजाएँ हरगिज़ ख़ामोश न हो
उस समय
जब उनके मर्द, थकन व नाउम्मीदी से
बूढ़े हो रहे हों।

मौत से

हरग़िज़, मैं मौत से ख़ौफज़दा नहीं हूँ
चाहे उसके बढ़ते हाथ
सख़्त से सख़्ततर हो जाएँ
जहाँ कब्र खोदने वाले की मज़दूरी
आदमी की आज़ादी से कहीं ज़्यादा है।

ढूँढ़ना
पाना
पसंद का अधिकार
और फिर
ख़ुद को पाने के बाद
सरहदों की तलाश

अगर
मौत इन सब से अज़ीम है
तो मैं
हरग़िज़, मौत से डरा नहीं हूँ।

आशिक़

वह जो कहते हैं कि तुम्हें प्यार करता हूँ
वह वास्तव में उदास गवैय्ये हैं
जिनकी आवाज़ ख़ामोश हो गई है
काश! इश्क़ की भी
कोई शाब्दिक भाषा होती

हज़ारों हँसती ज़ुल्फें
तुम्हारी आँखों में हैं
हज़ारों ख़ामोश कनारी मेरे गले में
काश! इश्क़ की भी
कोई शाब्दिक भाषा होती

वह जो कहते हैं कि तुम्हें प्यार करता हूँ
वह उदास रात का दिल है
जो चाँद को खींच रहा है
काश! इश्क़ की भी
कोई शाब्दिक भाषा होती

हज़ारों चमकते सूरज तुम्हारी चाल में हैं
हज़ारों रोते सितारे
मेरी तमन्नाओं में
काश! इश्क़ की भी
कोई शाब्दिक भाषा होती

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सईद सोल्तानपोर

संग्राम

वह जेल
देखता हूँ जैसे
ख़ामोश छत्तों के ढेर हों।
जिसकी हर कोठरी में क्रोधित
मधुमक्खियों का वास हो

फिर उस दिन का सपना देखता हूँ
जब
शहरों और देहातों पर
मधुमक्खियों के लाल बादल घूमेंगे
वह लाल बादल
सिपाही, बन्दूक और कास्केट पर नाचेंगे

भीड़ पर हज़ारों विषैले डंक से
दुश्मनों की आँखों को फोड़ते उमड़ेंगे
पीली वर्दी पर नफरत और क्रोध के
ख़ूनी बीज बोते,
हर गाँव, हर बस्ती पर
'फौजी चौकी, घर और महल पर बरसेंगे

एक बवंडर सा उठने लगा है
मेरे घुटे, मुर्दा दिल में
कि
मैं इस जेल की जंज़ीरों को तोड़
रात की सीमा के पार
भोर की ओर दौड़ूँ
सैलाब, तूफ़ान, बिजली की तरह
गरजूँ, तड़पूँ, बरसूँ, उमड़ूँ।

जेल की धरती

मेरे दोस्त!
मेरे क़ैदी भाई!
यहाँ
रचना और उसके सपनों की क़ब्रगाह में
ख़ून, फौलाद और मेहनत से भरी धरती पर
मछली और मोतियों से लबालब समन्दर के किनारे
तेल और जंगी जहाज़ों से घिरे बन्दरगाह पर
चाय और पशुओं के बाड़ों के आस-पास
हम
जेल की कोठरियों में
उमड़ते घुमड़ते बादल
एकाएक आने वाले तूफ़ान की
पूर्व सूचना है

हम
सीले ठंडे किले ओविन, हिसार जेल के
थके क़ैदी नहीं, बल्कि
इस धरती के क़ैदी हैं
कारखाने में तड़पते पिसते मज़दूर!
देश के थके क़ैदी हैं
यह दुखी लाल ढेर!
इस काल के हाकिम हैं
हथियार, सिक्के और जासूस
धरती पर क्षितिज तक
जेल की तंग कोठरियों की तारह
ये घर बिखरे हुए हैं!

इस विरोध और तनाव का अर्थ है
ईरान क़ैद से स्वतंत्रता की ओर
और फिर
सदा की भाँति
इस जेल की कोठरियों के
उमड़ते, घुमड़ते बादल!
पूर्व सूचना हैं, एकाएक आने वाले तूफ़ान के

शरीर पर जले दाग़ों के
रिसते घाव लिए
झुलसे हुए सीनों की जलन को दबाए
जेल की घुटती अँधेरी कोठरियों से
गा रहे हैं हम, आज़ादी का गान!
अरे ओ ख़ूनी परिवर्तन
अरे ओ हर पल समीप आने वाले इंकेलाब!

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चार अक्षर : मानव

बातें करते हैं हम, उसके बारे में
और
लिखते हैं बेशुमार उसके बारे में
ख़ून से नहीं बल्कि गालों पर मलनेवाली लाली से
कहानियाँ, कविताएँ और वृत्तान्त
दुखी हो उसके भविष्य
उसकी नाकाम इच्छाओं
उसके असीम धैर्य
उसकी तंग झोपड़ी पर
ख़ून के आँसू बहाते हैं हम

बातें रात की थकन और लगन की
भोर से जुते कोल्हू के बैल की
दिन के गुजरते सुस्त घंटों की
काली चिकट आस्तीनों की
शिथिल पेशियों से टपकते पसीने की
पसीना जो धरती पर, वस्तुओं पर टपकता है
भाव, गोली, क़ैदी, हड़ताल पर
रात, शबनामें[1], बिजली, प्याज़ पर
धुँआधार तक़रीरें करते हैं हम
परन्तु नहीं चाहते हैं विश्वास करना
उसकी फीकी मुस्कान की
जो यदाकदा कम रंग छाया के समान
चख़मख़ जैसे होठों पर उमरती है

उसमें छुपी आग
नहीं समझ पाते हैं हम
उस थके सुन्दर मानव के बारे में
बातें करते हैं हम
उसकी आँखों की ज्वाला से अनजान
जानते हैं केवल चार अक्षर!

कूलर के किनारे सोफे पर बैठे
ईंट के भट्टों वाली घटना को
याद कर उबल रहें हैं हम
अलग अलग बिना संस्था के
चीख़ रहे हैं शोर मचा रहे हैं
कड़वे अनुभवों की कड़वाहट को उगलते
सूखे गले को दूध से तर कर रहे हैं
स्वयं रोगी हो अपना उपचार कर रहे हैं
कारवान सराए के बहे ख़ून पर
शराब पीते हुए कबाब खा रहे हैं हम

बातें कर रहे हैं हम सिर्फ बातें
मानव को बातें!
और वह थका सुन्दर मनुष्य
समय की आग पर आता है, जाता है
जाता है, आता है
उस तूफ़ान के संग, जो उसने
मुट्ठी में है बाँध रखा।

धैर्य

धैर्य!
धैर्य! मेरी माँ धैर्य!
कि भोर का उजाला फैल जाए
मेरी पीठ को उस भोर से
गोली द्वारा बाँध न दें

धैर्य! तब तक
जब तक, 'फायर' शब्द न गूँजे
और गोली का सितारा ना चमके
दिवानावार ख़ून के आबशार को
उबलने दो!
उनके शोले लपकेंगे
ख़ून के तालाब को
उस घायल पर बिखरने दो

धैर्य! धैर्य मेरी माँ!
इस गोली के बीज
सघन वन बन
ख़ून के हर टपके सूर्य से चीत्कार बन उगेंगे
यह बीज धरती के सीने में
घुटेंगे नहीं बल्कि ज्वालामुखी से फटते

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

धरती का सीना चीरते
बिजली की तरह भूमंडल पर तड़पेंगे
उनका ख़ून अमर है।

मुस्कान को होठों पर चिपकाते हैं
और ज़बर्दस्ती
तरानों को दिल पर
शौक़ को घर में दबा रखो

कन्नारी[1] के कबाब
लाल:[2] और यास के शोलों पर
कितने अजीब हैं यह दिन नाज़नीन!

इबलीस[3] विजयी और मस्त
हमारे मृत्यु भोज पर आया
व्यंजनों से सजी थाली के सामने बैठा है

ख़ुदा को घर में छुपा दो
बड़े अजीब हैं यह दिन नाज़नीन!

1 शहादत का फूल 2 गाने वाला पंछी 3 शैतान

अँधेरे का तराना

धरती पर घटाओं भरी भोर
सवार!
कारखानों में जा
आस-पास के काम से थके लोगों के बीच
संघर्ष और अडिगता के सायरनों को
अपने कंठ में भर लो

ओ कविता!
ओ बँधे डैने वाले परिन्दे
थके और काहिल
मेरे सुस्त दिमाग़ की क़ैद से बाहर आ
और पर उड़ान भर
उस अनदेखे आकाश और क्षितिज तक

फिर, कच्चे घरों की मुँडेरों पर आकर बैठ
वह सब उन्हें सुना, जो उन्हें नहीं पता है
औरतों को, मर्दों को, बच्चों को, जवानों को
और बूढ़ों को
उन सबको जो दर्दमन्द दिल रखते हों
और थकी पीठें
दिनरात 'आह' खींचते हैं और बेहद उदास रहते हैं
छुपी सच्चाई को
खोल दो उनके सामने

ओ अकेली कविता!
न डर
घोंघे की तरह पेचीदा घुमावदार इस समाज की राह से
बाहर निकल आ
सीधे-सादे शब्दो में
बेहद सादे
सीधे लोगों से
बातें करो
मुँह पर हाथ रखकर हँसने वाले जोकरों
और बेकार के लोगों की
परवाह किये बिना
भले ही उन्हें प्रेम प्रर्दशन करने दो
[अलंकृत बोझिल शब्दों की कविताओं से)

ओ कविता!
ओ मेरी सुन्दर बहन मज़बूत दिलवाली
जो कि हर कर्त्तव्य को पूरा करने के बाद
तुम! नये सौन्दर्य और नयेपन से
दो-चार होगी
कि एक नए संसार की रचना के अतिरिक्त
दूसरा कोई पैमाना नहीं होगा
तुम्हारे पास तब

हाँ,
अब कविता को ज़रूर
हल की तरह
बैलों से लेकर कंधे पर रखकर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बाँधो
ताकि खेत में
किसान के साथ
काली मिट्टी को
खुरों से खोद उसे जोत डालें
अवश्य कविता को
पुरानी आशा के समान
फटे चिथड़े की जगह
थके लोहार के हथौड़े पर बाँधो
ताकि काले फौलाद को, नर्म कर दे

कविता अवश्य
पानी की ध्वनि के संगीत की तरह
थके लोगों के कानों में
सादगी, सहजता से अपने को
गुनगुनाएँ
ताकि वह चश्मे के किनारे सुस्ता लें

अवश्य ही कविता
जंगली जानवर को
पालतू बना सके
और नीच लोगों को सबक दे सके
जो वह भूल चुके हैं
मानवता को विस्तार देना

कविता अवश्य
मोरपंखी की तरह
बच्चों की रटने वाली पुस्तकों के बीच रहे
ताकि उनकी तन्हाई समाप्त हो जाए
और मर्दों, औरतों और जवानो के कान में
गुंजित हो
ताकि प्रतिदिन की थकन को वह
भूल जाएँ
कविता अवश्य ही
इस राह से गुजरे तो
पा लेगी दोबारा अपने
अस्तित्व को

और सारे संसार में
चीज़ों के बीच, पेड़ों और
आदमियों के
जैसे प्रकाश दिन में
और कालिमा रात को
पानी सरिता में
हवा मैदानों पर
फैलती है
अपनी प्रकृति को पा लेगी।

कविता अवश्य हलचल
पैदा करे।

मोहम्मद रज़ा नज़ीरी

फ्रेम

मेरा दिल जंगल
मेरा दिल बारिश
मेरा दिल चाँद
चाहता है
दिल नदी किनारे
एक झोपड़ी की माँग करता है

इस दुनिया से मैं इतना दुखी हूँ कि
दिल मेरा एक ख़याली हसीन तस्वीर
नशे से भरपूर चाहता है

मेरे हाथ का ब्रश तुम्हारे दामन पर
मुर्ग़ाबियों की तस्वीर बनाना चाहता है
कि दिल सिर्फ तालाब किनारे की सजावट चाहता है

खींचो, एक मासूम बच्चे की तस्वीर जो
अपने खिलौनों में
न तलवार, न बम, न जंग, बल्कि
एक फुटबाल चाहता है।

अपने सारे एहसास को ग़ज़ल के शेरों में बाँधूँगा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बस, इस ख़याली तस्वीर के लिए
दिल एक फ्रेम चाहता है।

शिवा तोराब नया

एहसास

गली से गुज़रते हुए देखा
पेड़ से गिरता पानी
खाली अलगनी को भिगो रहा था

कपड़े अपने को फैलाना भूल गए थे
और
अलगनी उनकी जुदाई में मानो
आँसू टपका रही थी।

तन्हाई

दुनिया के हर ख़ामोश कोनों से
इन्सानों की तन्हाई को
एक बोरे में जमा कर रही हूँ
उफ! किस क़दर तन्हाई!

बोरा भर चुका है
हज़ारों-हजार तन्हाई से
जो साथ रहने की तमन्ना रखते हैं

तन्हाई के इस बोरे में
अन्धेरे को काटती रौशनी दाख़िल होती है
यह बेचैन रौशन लकीरें एक दूसरे से
गुँथी हुई हैं ताकि अन्धेरे को दूर कर सकें

रेज़ा बेराहनी

रोना

मुझे अच्छी तरह याद है
हाँ ऽऽ! अच्छी तरह
जब मैं बैठा था वहाँ - तन्हा
टायलेट में
तब बसंत की वर्षा समान रोया था
और वह
शरद ऋतु का सातवाँ महीना
'आज़र'* था
भीड़ में ... सबके सामने
मेरा रोना मुश्किल था
कहा था मैंने -
''हवलदार साहब! यहाँ टायलेट में आइये
यहाँ से मुझे ले चलिए
और वह शरद ऋतु का सातवाँ महीना
'आज़र' था

इस बार हवलदार
जरा शीघ्रता से आया
जैसे वह
अन्दर ही अन्दर समझ गया हो
मेरे आँसुओं की बाढ़ और
हिचकियों के आक्रमण को जो
कर देगा मुझे सरेआम बदनाम
दौड़ो-दौड़ो !
निकल न जाए
तुझे यूँ रुसवा न करे

** आधा नवम्बर व दिसम्बर - नवाँ महीना हिजरी कैलेंडर*

मैंने कहा, ''लाहौल।
लाहौल-विला-कुव्वत-इल्लाबिल्ला''

कल मेरे दोस्त को ले गए थे
उसे मार डाला !
सबके सामने रोना, मेरे लिए मुश्किल है
तब मैं बैठा हुआ था-तन्हा टायलेट में
बसंत ऋतु की वर्षा की तरह
फूट फूट कर रोया था
वो सातवाँ मास था 'आज़र' शरद ऋतु का

मुझे अच्छी तरह याद है।
हाँ ऽऽ! अच्छी तरह।

सम्पर्क - naserasharma22@gmail.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

युद्ध के विरुद्ध कविताएँ

अमीनेह अबू केरिच

सीरिया के लिए विलाप

1.

सीरिया के कबूतर
मेरे सिर पर मँडराते हैं
उनकी गुहार मेरी आँखों से टपकती है,
मैं एक देश की रूपरेखा बनाने की कोशिश कर रही हूँ
जो मेरी कविता का हमसफ़र होगा
जो मेरी सोच में बाधक नहीं बनेगा
एक ऐसा देश
जहाँ सैनिक मेरे चेहरे को रौंदकर न गुज़रते हों,

मैं एक देश की
रूपरेखा बनाने की कोशिश कर रही हूँ
जो मेरे योग्य हो-कवियों के योग्य
मैं कवयित्री हूँ
और जहाँ अगर मेरे आँसू टपकें
तो उन पर अंकुश न हो,
मैं प्रेम, शांति, सहमति और सदाचार से संपन्न नगर की
रूपरेखा बनाने की कोशिश कर रही हूँ
जो गंदगी, युद्ध, मलबे और दुखों से मुक्त हो।

2.

ओह, सीरिया, मेरे प्यार!
मैं सुनती हूँ तुम्हारी कराह
कबूतरों के विलाप में।
मैं तुम्हारी चीख-पुकार सुनती हूँ
मैंने तुम्हारी धरती और दयाई मिट्टी खो दी
साथ ही मैंने खो दी चमेली की तुम्हारी खुशबू
मेरे पंख काट दिए गए हैं
तुम्हारे पंखों की तरह।

3.

मैं सीरिया की हूँ
एक ऐसी भूमि की हूँ
जहाँ लोग रोटी का टुकड़ा चुन लेते हैं
ताकि उसे कोई रौंद न दे,
एक ऐसी जगह की हूँ
जहाँ एक माँ सिखाती है अपने बेटे को
कि दिन ढलने पर उसके पाँव तले
कोई चींटी न दब जाए।

एक ऐसी जगह की हूँ
जहाँ एक किशोर अपने
बड़े भाई के सम्मान में
छिपा लेता है अपनी सिगरेट।

एक ऐसी जगह की हूँ
जहाँ बूढ़ी औरतें
अलस्सुबह
सींचती हैं चमेली के गाछ।

मैं एक ऐसी जगह की हूँ
जहाँ सुबह लोग पड़ोसी के घर कॉफी लेते
खुद से पहले कहते
पहले चाची आप,
खुशी-खुशी कहते पहले चाचा आप,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पहले बहन आप,
एक ऐसी जगह की हूँ
जो रखती थी धैर्य
करती थी इंतज़ार
जो अभी भी कर रही है इंतज़ार
मुक्ति की।

4.
सीरिया!
मैं नहीं लिखूँगी कविता
किसी और के लिए।
5.
क्या कोई मुझे सिखा सकता है
कि कैसे बनता है स्वदेश?
तहेदिल से शुक्रिया अगर आप सिखा सकें,
हृदय से धन्यवाद गौरैया का सीरिया के सेब के पेड़ों का
और बेहद ईमानदारी से आप का।

अमीर हल हुसैन

अलेप्पो डायरी

1.
लिखना एक यंत्रणा है
और
स्क्रीन में टपकता लहू
परिवेश को प्रदूषित करता है
इसने सोफे पर ऐसे धब्बे छोड़ दिए हैं
जो दिखते हैं कॉफी के दाग़ जैसे
जिन्हें हम काँपती अँगुलियों से छूते हैं
ताकि हम संक्रमित न हों।
हम सोफे के टूटे हुए पृष्ठ-अवलंब को
सँभालते हैं ऐसे
जैसे हम गाढ़े लाल लहू को देखने
जा रहे हों नरक
नहीं...नहीं...
जनाब, भूरे रंग के लहू को भी देखने...
वो लहू अवशिष्ट को संचित करता है ऐसे
जैसे वह आत्मा पर लगा जंग हो।
हम उनके कमज़ोर माथे पर प्रहार करते हैं
फिर आँसुओं को पीते रहने के लिए मुँह मोड़ लेते हैं
जो गली से रेंगकर आते हैं स्क्रीन तक
छोड़ जाते हैं वे हरे निशान
तुलसी की झाड़ियों में बनने वाली पगडंडियों पर
वे हमारी लाज बचाने के लिए
हम पर पुष्प वर्षा करके
आनन-फानन में मर जाते हैं।

अब आपने पवित्र घाटी में कदम रख दिया है
अब अपने जूते उतारकर
नंगे पाँव टूटे हुए काँच पर चलें।

2.
कामरेड पढ़ते हुए सो गए
और आप पुस्तकों के अंबार में
अकेले भटक रहे हैं
जहाँ से बाहर निकलने का ज़रा भी कोई संकेत नहीं।
दाईं ओर तीसरी ताक से
उठती है एक कराह
किसी उपन्यास से बेदखल हो जाता है
एक पूरा अध्याय।
हँसी —
दर्शनशास्त्र की एक किताब क्या
त्रासद शीर्षक
जैसे बलगम फैलता है
उसी तरह राजनीति फैली है
एक ताक से दूसरे तक,
समय के लिए नहीं, न ही महाकाव्य के लिए
न आनंद और अनुराग के ग्रंथों के लिए।
माचादो ने किताबों के आवरण को पलटा
इस नफासत से कि उसकी सज्जा न बिगड़े।
हम किताबों के प्रूफ हैं अनुच्छेदों से भरे
जिन्हें संशोधन की ज़रूरत है।

3.
मैं बालकनी में बैठा हूँ।
मेरे सामने फैला हुआ
अलेप्पो काला और वीरान है।

 CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

अँधेरे में चीनी मिट्टी के बर्तन के खनखनाने का मतलब है
जीवन जारी है।
सभी आवाजों पर भारी है
छिटपुट गोलाबारी की आवाज़।
फिर सीटी के बजते ही
गिरता है एक गोला...धड़ाम।
कोई खुश्क गला लिए
जा रहा इस धरती को छोड़कर।
मेरे सामने स्याह अलेप्पो है
— और है।
ये लंबी परछाइयाँ पेड़ हों
या बचपन के किस्से के बेताल
या उन औरतों की साँसों से निकली काली भाप
जो इंतज़ार कर रही है
अपने बच्चों के लौटने का
जिनकी मौत पहले ही ख़बर बन चुकी है।

अलेप्पो।

किसी कली को नहीं तोड़ा गया।
कोई डोलता हुआ पार्श्व छायाचित्र नहीं।
'द नाइटिंगल' में कोई मद्य नहीं
न कोई रिंद कोई गीत नहीं।

जाग गए हैं
एक-एक कर
अँधेरे के जानवर।

4.

मरीना शिवारो
मैं मरीना कॉन्स्टेंटाइन हूँ
पादरी जार्ज शिवारों की विधवा
जैसे मार्शल के साथ चलते हैं, हम चले
देर रात अपने घर की ओर;
वह मैं ही हूँ जिसके अंदर दबे हैं
पवित्र गिरिजाघर के रहस्य
जैसे मदिरा से भरे गिलास के नीचे दबी चेरी
हँसी मज़ाक में मशगूल पचास साल की औरत
भूल गई अपनी चोटी का फ़ीता
दराजों की पुरानी तिजोरी में
....

मैं मरीना हूँ
मैं लौट रही हूँ कार्लटन-स्वतंत्र किसानों की बस्ती से
जहाँ जीवन की डोर बँधी है संगीत की खूँटी से
और गाढ़ी है यह लोबान की तरी
उन्मुक्त
मैं उस पर छींट रही हूँ नमक
यह जानते हुए कि माँस नहीं होगा बासी
मैं अपने दिल के सुकून के लिए
मदिरा में अपनी एक अँगुली डुबो रही हूँ
....

....
मैं मरीना हूँ
जिसने जादूगर की टोपी में किले के गुम हो जाने से पहले
उस ग़लत मोड़ पर सूँघ ली
हवा को शीशे की तरह चीरने वाली
पसीने से लथपथ मुट्ठी से
निकलते डर की बदबू।
....

....
मैं मरीना हूँ
जिसे मरकर भी नहीं मालूम थी
अपने मरने की बात
जब तक वह
श्वेत वस्त्र में हज़ारों गुलाबों से सुसज्जित होकर
लोगों के बीच न आ गई,
उसने पैगंबर इलियास के चर्च में सुने
पादरी के उपदेश :
ओ परमेश्वर की छत्रछाया में रहने वाले नरम दिल प्रियजनों!
हम प्रार्थना करें
स्वर्गाधिपति अपने प्रभु के सामीप्य में
स्वर्गारोहण करती अपनी मुकुटधारिणी पुत्री के लिए
कि उसकी आत्मा को शांति मिले!
अल-फातिहा

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आईजैक रोजेनबर्ग

बंकरों में दिन का विराम

अँधेरा छँट जाता है
यह वैसा ही अड़ियल समय है
जैसा रहा है।
केवल एक जीवित चीज़
मेरे हाथ पर फुदकती है,
एक विचित्र तुच्छ चूहा
मैं रेलिंग से पोस्ता नोंचता हूँ
अपने कान के पीछे से उसे हटाने के लिए।

मसखरे चूहे वे तुम्हें दाग देंगे
यदि उन्हें पता लगा
तुम्हारी महानगरीय हमदर्दी के बारे में।
अभी तुमने इस अंग्रेज के हाथ को छुआ
तुम ऐसा ही करोगे
एक जर्मन के साथ
इसमें शक नहीं कि अगर
तुम्हें मज़ा आ गया इसमें
तो तुम पार कर जाओगे बीच के उनींदे हरे मैदान को।
तुम्हारी तेज आँखों
सुंदर टाँगों
और धावक वाले अंदाज़ से
लगता है कि तुम मन ही मन
मुस्कुरा रहे हो
तुमसे कम मौका है तुम्हारे जीवन के पास
कत्ल की सनक रोकने के लिए
धरती की अंतड़ियों में दफ़्न होने के लिए
फ्रांस के दरके-फटे हुए खेतों में।
इन सुस्त जन्नतों के होकर
चिल्लाते हुए लोहे और अंगारों को देखकर
क्या पाते हो अपनी आँखों में?
कैसी कँपकँपी है क्यों दिल चकित है?
पोस्ता, जिनकी जड़ें
आदमी की नसों में
उतर रही हैं, लगातार।
लेकिन मेरा कान सुरक्षित है -
बस धूल-धूसरित इस नन्हे
'सफेद' से।

जूलियाना स्पार

2 दिसंबर, 2002

प्रियजनो,
ऐसा होता है हर रात।
जब रात में हम सोए थे
करवटें बदलते बेचैनी से
ख़त्म हो गई दुनिया
हमारे बगैर।
हम अपने टाइमज़ोन में रहते हैं
और हममें से थोड़े से लोग
तकरीबन दस लाख
रहते हैं इस टाइम ज़ोन में
और परिणामतः
दुनिया की ऐसी प्रवृत्ति होती है
कि वो हमारे बग़ैर शुरू और ख़त्म हो जाती है।
जब हम सो रहे थे बेचैनी में
बंबई में बम विस्फोट में
ज़ख्मी हो गए कम से कम दस
और चार मारे गए फिलिस्तीन में।

जब हम सो रहे थे बेचैनी में
एक सहायता खाद्य-सामग्री गोदाम नष्ट कर दिया गया
मगर उत्साही सेल्स भंडार बढ़ गया
आस्ट्रेलिया ने पहले स्ट्राइक की धमकी दी
'सिटि ऑफ मैन' पर होने लगी भारी गोलाबारी
जापान में बेलारूस का राजदूत
गायब हो गया
एक क्रूज शिप में आग लग गई
एक अन्य क्रूज पर बहुत-से लोग फँसे रहे गए
और पोप ने जेनोफोबिया-विदेशियों के प्रति घृणा भाव के
विरुद्ध
बयान जारी किया।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

जब हम सो रहे थे बेचैनी से
कदाचित्
जे लो ने बेन के सामने
प्रस्ताव रखा विवाह पूर्व सेक्स का
सप्ताह में चार बार।
जब हम सो रहे थे बेचैनी में
तब लियाम गल्लाघर ने उठापटक थी
प्रशंसकों ने शिकायत की :
''पॉपस्टार्सः दि राइवल्स'' बिका हुआ था
पहले से।

जब हम सो रहे थे बेचैनी में
सर्वोच्च न्यायालय सुनवाई के लिए राजी हो गया
कि क्या विश्वविद्यालय में नामांकन में
अल्पसंख्यकों को तवज्जो दी सकती है।

जब हम सो रहे थे बेचैनी में
तब शिकारियों ने सरकंडों से भरे कस्पियन में
स्टुर्जन को पकड़ा
जो सूअर और भेड़ियों को शरण देता है
और अंतरिक्ष शटल के कुछ निवासियों ने
अमेरिका लौटने वाली फ्लाईट की योजना बनाई।

प्रियजनो, हमारी दुनिया छोटी है
और यह अलग-थलग है।
हमारा रिहाइश छः सौ फुट के दायरे में है
जो कि समुद्र तट से एक चौथाई मील की दूरी पर
उस इलाके में है जो सात वर्ग मील के रकबे में फैला हुआ है
और यह पृथ्वी के निकटतम भू-भाग से
पाँच हजार मील की दूरी पर है।

आज का समाचार सर्वेक्षण
इस बात को लेकर है कि
क्या हमें इराक पर अभी आक्रमण कर देना चाहिए
अथवा तफ्तीश पूरा होने तक हमें इंतजार करना चाहिए
हमने एक साथ
कोशिश की इस प्रश्न पर हँसने की

लेकिन हमारी हँसी असहज थी
हमने टेलिविज़न को बंद कर दिया
क्योंकि जो खबरें हम तब पहुँच रही थी
वो दूसरे टाइम ज़ोन से थी।

प्रियजनो, हम नहीं जानते
किसी ऐसी एजेंसी के साथ अपनी जिंदगी को हमबिस्तर बनाना
जो हमारे बिस्तर से बाहर की दुनिया से हैं।

हमें गुस्सा आता है
कि हम अपने बिस्तर में कैसे रहें —
एक साथ प्रेममग्न किंतु अपनी-अपनी नींद में
अलग-अलग
अपने-अपने
स्वप्न संसार में
अलग-अलग
यह बात बाकी दुनिया के लिए कोई मायने नहीं रखती।

हमारी अंतरंगता और अस्तित्व की स्वतंत्रता की संयुक्त शक्ति
कैसी पड़ सकती है फीकी इस कदर
हमारे बिस्तर से बाहर की दुनिया के आगे?

प्रियजनो,
शटल वापस धरती पर उतरने वाली है
और शटल की खिड़की से
कोई धरती को देख सकता है।

एक अंतरिक्ष यात्री ने ग़ौर किया :
कितनी विशाल है धरती
और वायुमंडल है कितना बारीक।

प्रियजनो, हम क्या कर रहे हैं
कुछ नहीं
सिवा इस बारीक वायुमंडल को
अपने श्वास में जितना भर सकें
उतना भरने के?

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

नाथन अल्टरमैन

इस बारे में

उसने
शहर के पार
जीप में सवार हो, रफ़्तार दी —
तेजतर्रार और सशस्त्र
जवान शेर सा!
और एक बूढ़ा आदमी और औरत
एक दीवार से जा टकराए उसके ख़ौफ़ से।
लड़का बोला मुस्कुराते हुए
अपने दूध के दाँत चमकाते हुए :
मैं चलाऊँगा मशीनगन,
और इसे खेल में शामिल कर लिया।
अपने चेहरे को अपनी हथेलियों में
छिपाने के वास्ते मुश्किल से वक़्त था
जब दीवार पर उनका खून बिखर गया था।
हम गाएँगे, इसलिए, केवल
नाजुक वारदातों के बारे में, जिनके बारे में
आप नहीं जानते
कि वह क़त्ल है।
संवा के गीत गाएँगे
सहानुभूति से लथपथ श्रोताओं के साथ।

परतव नादेरी

एक खूनी समाधि-लेख

इस ताड़ के पेड़ को वसंत से कोई उम्मीद नहीं
इसमें फल निकलते हैं
सैकड़ों ज़ख्मों को साथ लिए
-हज़ार हादसों के रोज़ाना ज़ख़्म
-हज़ार आपदाओं की रातों के ज़ख़्म

यह ताड़ का पेड़ खूनी समाधि लेख है
सदी के चौराहे पर।

...

यहाँ नदी
-खून और आँसुओं की नदी -
ताड़ के पेड़ की जड़ों को आपदा ने जकड़ रखा है
और समय के विवेकशून्य फंदे ने लगा दी है इस पर
अपनी गाँठ।

...

यहाँ ताबूत के टूटे ढक्कन
-बारिश का टूटा आईना-
को ढँकने के लिए
नामुराद लाल बादलों के ऊपर से
आसमान खींच लेता है अपना रक्त-रंजित वस्त्र
इस ताड़ के पेड़ को वसंत से कोई उम्मीद नहीं है।

...

इस ताड़ के पेड़ को वसंत से कोई उम्मीद नहीं है
यह ताड़ का पेड़ तारांकित है
सैकड़ों ज़ख्मों से
उत्तरी हवा के थपेड़ों से
मेरे ताड़!
मेरे इकलौते पेड़!
मेरे वसंत!
बहुत साल गुज़र गए
जब बौर का पक्षी
उड़ गया
तुम्हारी सूखी डालियों को छोड़कर,
तितलियाँ भी नहीं देखतीं
तुम्हारी ओर,
टूट गया है मेरा दिल।

काबुल, नवंबर 1989

फलेहा हसन

सैनिक

डेन्यूब नदी पर नृत्य न करो
यह मक्खियों से भरी हुई है,
फूलों पर व्यंग्य न करो
खुले में पड़ी लावारिश लाशों से
उड़कर आई मक्खियाँ भिनभिना रही हैं फूलों पर,
आसमान की ओर मत देखो
धुएँ में इसका दम घुट रहा है,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बस मन के सपने को मार दो
और अपनी आँखें मूँदकर
निकल पड़ो सड़क पर,
युद्ध ने
तुम्हारा नाम
मौत की सूची में दर्ज कर लिया है।

दो कबूतर

मेरे पिता को हर बार हो जाती है देर
फ्रंट लाइन से लौटने में
मेरी माँ पड़ जाती है बीमार
और मैं भागती हूँ उसके संग
नज़फ के अस्पताल तक।
मैं उन्हें ख़त लिखती हूँ
अब
'लौट आइए हमारे पास'
आपके सार्जेंट पढ़ते हैं हमारे ख़त
''मैं मरने वाली हूँ।''
वह हँसते हुए हमारे ख़त लौटा देते हैं :
''हम इस अंधे का मनोरंजन हैं।''
ऐ दरिया-ए-जसिम, तूने तार-तार कर दिया
मेरे इतने बरस मेरे पिता की अनुमानित जीतों
और आपातकालीन कक्ष में पड़ी
मेरी माँ की ख्वाहिशों के बीच।
वे मेरी माँ के अंदर उम्मीद जगाते थे
काँच के दरवाज़े पर चिपकाकर
पुष्टि करने वाली दी गई सूचनाओं से :
(मृत्यु प्रमाण-पत्र की प्रतीक्षा करते हुए)
माँ का दिल बढ़ रहा है अंत की ओर बहुत तेज़ी से
और आलाप को सुनकर मुझे उल्टी आती है
हर बार समाचार प्रस्तोता कहता है
'विजय दिख रही है क्षितिज पर।'
मेरी दादी की आँखें छत को निहारती हैं
वह अपनी व्यंग्यात्मक हँसी को छिपा लेती हैं।
टी.वी. के पर्दे को देखकर
मैं गुस्से के मारे चीखती हूँ
'कोई जीत-वीत नहीं मिलने वाली है।'
वह फुसफुसाती हैं :
'' 'अल्लाह करम!'
'जब मैं नए खिलौने माँगती थी
तो मेरे अब्बू ऐसे ही चीखते थे।''
वह चुप कराती हैं और हम करते हैं विरोध
और हम सब करने लगते हैं इंतज़ार
अगली लड़ाई से पहले उनके लौटने का
डर है कि किसी अंतिम युद्ध में
ख़त्म हो सकती है
एक कबूतर की ज़िंदगी।

यान्निस रित्सोस

बैरक में

चाँदनी बैरक में दाख़िल होती है।
वह झिंझोड़ देती है
सैनिकों के कंबलों को।
वह एक खुले हुए हाथ को पकड़ लेती है।
सो जाती है।
कोई एक अपनी नींद में बात कर रहा है।
कोई एक खर्राटे भर रहा है।
लंबी दीवार पर एक छाया की भंगिमाएँ दिखती हैं।
अंतिम ट्रॉलीकार जा चुकी है। सब शांत है।
क्या यह मुमकिन है कि ये कल मर सकते हैं?
एक पैदल सैनिक जागता है।
वह काँच की-सी आँखों से देखता है उनके चारों ओर।
लहू की एक लड़ी झूलती है होठों से
चाँद के।

(अनुवाद : कुमार अनुपम, साहित्य और कलाओं में सक्रिय, आधुनिक प्रगतिशील चेतना के महत्त्वपूर्ण अनुवादक।)

सम्पर्क – 098733 72181

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

तुर्की कविताएँ

मुईसेर येनिया

मैं एक अजनबी हूँ ख़ासकर खुद के लिए

खुद की कीमत पर, मैं एक अजनबी के साथ रहती हूँ
और यदि मैं उछल पड़ूँ, तो वो गिर पड़ेगा मेरे भीतर से बाहर

मैं अपनी गर्दन के नीचे देखती हूँ
मेरे बालों की तरह हैं उसके बाल
उसके हाथ मेरे हाथों की तरह

मेरे हाथों की जड़ें, धरती के भीतर हैं
दर्द से कराहती धरती हूँ मैं, खुद में

जाने कितनी बार
अपना चकनाचूर ज़ेहन
मैंने छोड़ा है पत्थर के नीचे

मैं सोती हूँ ताकि वो आराम कर सके
मैं जागती हूँ ताकि वो जा सके
नींद से, क्या सीखना चाहिए मुझे?

खुद की कीमत पर, मैं एक अजनबी के साथ रहती हूँ
और यदि मैं उछल पड़ूँ, तो वो गिर पड़ेगा मेरे भीतर से बाहर।

कभी-कभी मनुष्य मरते-मरते भी थक जाता है

कभी-कभी मनुष्य मरते-मरते भी थक जाता है
कभी-कभी वह उस मुल्क की तरह हो जाता है
जिसे सबने छोड़ दिया हो

उस मुल्क की तरह
जिसे छोड़ दिया हो सबने
एक स्त्री भी छूट जाती है

दुःख के समुद्र के भीतर एक मछली
जैसे ही टकराती है किनारे से
समुद्र उछलने लगता है

ताकि कोई देख न सके मेरे ज़ख्म
मैं उन पर जमा लेती हूँ पपड़ी

यदि मैं नहीं होती, दुःख भी नहीं होते।

विलाप

एक स्त्री होने का अर्थ
रौंदा जाना है, ओ माँ!

उन्होंने सब कुछ छीन लिया मुझसे

एक स्त्री ने मेरा बचपन लिया
एक पुरुष ने मेरा स्त्रीत्व ....

ईश्वर को स्त्री की रचना नहीं करनी चाहिए
ईश्वर को जन्म देना नहीं आता

यहाँ, सभी पुरुषों की पसलियाँ
टूटी हुई हैं

हमारी ग्रीवायें बाल से भी ज्यादा पतली हैं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पुरुष उठाए हुए हैं हमें
अपने कन्धों पर ताबूत की तरह

हम उनके पैरों के नीचे रहे
किसी पंख की तरह
हम उड़े एक दुनिया से
एक आदम की तरफ

और मेरे शब्द, ओ माँ !
उनके पदचिह्न हैं .....

मुझसे पुरुषों की बात मत करो

मेरी आत्मा इतनी दुखती है
कि मैं धरती के भीतर सोये पत्थरों को जगा देती हूँ

मेरा स्त्रीत्व
एक गुल्लक है जिसमें भरे हैं पत्थर
एक घर कीड़े-मकोड़ों का, कठफोड़वों का
एक गुफा चढ़ते-उतरते भेड़ियों के लिए
मेरी देह पर, मेरी बाँहों पर
नए बीज बिखेरे जाते हैं
तुम्हारे जीवन के लिए पुरुष तलाशा जाता है
यह बेहद गम्भीर मसला है

मेरा स्त्रीत्व, मेरा ठण्डा नाश्ता
और मेरा वस्ति प्रदेश, खालीपन से भरा एक घर
इसी पर टिकी है यह दुनिया
और तुम! उस गन्दगी के साथ जी रही हो
जो फेंक दी गई है तुम्हारे अंदर

जब वह जा चुके, उससे कहना
कि नाख़ून छूट जाते हैं मांस में
कि तुम जीती हो इस टूटन की विज्ञान के साथ
उस गम्भीर बीमारी के बारे में उसे बताना

किसी भेड़ के चमड़े की तरह,
मैं ठण्डी हूँ तुम्हारी घूरती निगाह में

मैं तुम्हारी माँ की कोख की कर्जदार नहीं हूँ, श्रीमान!
मेरा स्त्रीत्व, मेरा अधीनित महाद्वीप

और न मैं खेती वाली जमीन हूँ ...
खरोंच कर मिटा दो उस अंग को जो मेरा नहीं
साँप की केंचुल की तरह, काश मैं उससे मुक्त हो सकती
हत्या के लिए माँ बने रहना तार्किक नहीं

यह टुकड़ों में विभाजित सरज़मीन नहीं
एक स्त्री की देह है
अब मुझसे पुरुषों की बात मत करो!

अंधकार का भूगोल

अपनी आँखे मत बन्द करो, रात हो चुकी है
तुम खो सकते हो ख़ुद को
इस कालिमा में
जो बिखरी हुई है अंधकार के ऊपर

यहाँ
हर उस जगह जहाँ तुम हो

रोशनी की टक्कर से गिरे हुए हमारे चेहरे
करीब आ रहे हैं
जुड़ रहे हैं किसी गुलदान के टुकड़ों की तरह

कोई धब्बा नहीं है रोशनी में ....

एक प्रेमी की तरह खड़ा हुआ है अँधेरा
तुम्हें आग़ोश में लेता है
और शामिल कर लेता है ख़ुद में

यहाँ
हर उस जगह जहाँ तुम हो

यहाँ सब एक जैसे कपड़े पहने हुए हैं
जिसे रात कहते हैं।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मेटिन जेन्गिज़

मेरा बेटा

मेरा बेटा
मुझसे बहुत कुछ मिलता-जुलता है
और उसकी माँ धरती से
मैं कहीं दूर, बन्द हूँ कैदखाने में
उसकी माँ ने उसे चलना सिखाया।

कभी-कभी

कभी-कभी कोई आता है
रहने लगता है दिल में
मेरी पूरी देह को घेरकर
मुझे सुरक्षित रखने वाला लोहा पिघलने लगता है

ऐसे शब्द बोलता है जिन्हें मैंने कभी नहीं सुने
मुझे अपने ही बारे में बताता है
दूर ले जाता है मुझे बुहारकर
उलट-पुलट कर देता है मेरी दुनिया

सिर्फ़ इतना भर नहीं समझना चाहता
यह कोई और है या शायद तुम
पर अंत में मुझे समझ में आ जाता है
मैं ख़ुद ही मुसाफ़िर हूँ अपना।

प्रेम का वर्णन

जाने कितनी जहाजों को मैंने इस जगह डूबते देखा है
मुसाफ़िर भूल गए अपने समंदर
और मछलियों से होड़ करते मछुआरे
कितनी यंत्रणाएँ, कितने दुखों के साथ
बदकिस्मत लोग यहाँ जीते हैं
रक्तपिपासु भूख और प्यास के बीच
थकन से चूर पर किसी बच्चे की तरह खुश।

मैंने ऐसे दौर देखे हैं
जो रोक देते हैं इच्छाएँ
दौर जो बदल देते हैं ज़िन्दगी बिना ब्रेक वाली गाड़ी में
मैंने कहानियाँ सुनी हैं जिनकी हवाएँ घण्टियों के ख़िलाफ़ झुकी रहीं
मैं कभी नहीं भूल सकता जैसे कोई संक्रामक बीमारी
और कष्टप्रद जैसे आसानी से सुना दिया जाने वाला युद्ध।

परन्तु मैंने नहीं देखा इन जमीनों पर
प्रेम जैसा कुछ
सड़कों पर फेंक दिए गए हैं लोग
नंगे पाँव
रेंगते, लँगड़ाते।

युद्ध में

सबसे पहले युद्ध ने अपने शब्दों के साथ प्रवेश किया हमारे जीवन में
ऐसे जैसे वह हमारे देहात के इलाके से आया हो
यहाँ तक कि परिन्दे भी ला रहे थे भरी हुई बंदूकें सैनिकों के लिए
हमें नहीं पता था कि वह अपने दैवीय पैरों पर
एक शहर से दूसरे में कूद रहा है
घुस रहा है उन खेलों में जिन्हें गरीब बच्चे खेलते हैं
उग्र लोग खा रहे हैं उसे अपनी रोटी के साथ
सरकार फैला रही है उसे
हमारी रोटी पर शहद की तरह

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

सैनिकों ने गर्जना की और बिजलियाँ गिराईं सड़कों पर
प्रेमियों ने अधूरा छोड़ दिया प्रेम करना
पर मैंने दिन-ब-दिन प्रेम में ही शरण ली
फिर उसने अपने आतंक के साथ गीतों में प्रवेश किया
हमारा गला घोंटते हुए जब हम साँस ले रहे थे
यह घरों से बहुत दूर पर हमारे भीतर घट रहा था
कई दिनों तक हमने इसके अर्क से एक सहायक व्यंजन बनाया
यह बिना पानी मिलाए राकि* पीने जैसा था
और हममें से कुछ लोग इसे ज्यादा पीने की वज़ह से हीरो बन गए
और कुछ पलों के लिए लड़ाई के मोर्चे पर युद्ध विराम घोषित हुआ
ब्रेड की कीमत बीस गुना ज्यादा बढ़ चुकी थी
हमारे प्रेमियों ने साथी बदल लिए थे

अमन के इंतज़ार में हमारे माँ बाप गुज़र चुके थे
और अमन का इंतज़ार करते हुए हम माँ-बाप बन गए थे
हम समझ नहीं सके कि युद्ध ख़त्म क्यों नहीं हुआ था
फिर हमें पता लगा कि हमारा छोटा सा युद्ध ख़त्म नहीं हुआ था
फिर अपने छोटे से ज़ेहन से समझ में आया
कि ट्यूमर हमारे भीतर बढ़ता है
और मेरे प्रिय पाठकों
यह ट्यूमर तुम्हारे लिए है।

(* तुर्की का एक मादक पेय)

गाज़ा

कल मैंने मृत्यु को देखा, वह पंखहीन थी
वह हवा में थी, बरस रही थी

जी, आप गाज़ा में हैं जहाँ मृत्यु ने अपना डेरा डाल रखा है
हवा, जैसे चीरकर रख दी है किसी चाकू ने
यहाँ सूरज एक अंधी चीख है
उसके दर्पण ख़ामोश हैं
दरख़्त जैसे लाश हैं
मीनारें हवा में नहीं बल्कि शून्य में टिकी हैं
ये बच्चे, बच्चे, बच्चे, गाज़ा के बच्चे
सड़कें, बाजार, घर भरे हुए हैं बच्चों से
बच्चों की छवि वाला गाज़ा एक महाकाय प्राणी है
जो अपने दुश्मनों से लड़ता है
मृत्यु की गोद में गाते हुए बच्चे
दरवेशों की तरह खामोश हैं बच्चे, मुसलमानों की तरह धार्मिक
वे इंतज़ार कर रहे हैं युद्ध विराम का
वे रणभूमि का कोना-कोना भरने जा रहे हैं
अपनी मृत्यु का आलिंगन भी
भूख के बारे में सोचे बिना

अपने चोंगों में ढँकी हुई बूढ़ी स्त्रियाँ
घरों, सड़कों पर कंधे से कंधा मिलाकर जीवन की चौकीदारी कर रही हैं
असहाय, क्रोधित, उदास, प्रतिशोधी
आकाश की तरफ जाती किसी चीख की तरह

वादों की तरह
वे खड़ी हुई हैं आसमान के एक टुकड़े की तरह

जी, आप गाज़ा में हैं
मृत्यु यहाँ बच्चों का खेल है
जैसे नाश्ते में जैतून और रोटी
जैसे प्रेमरत युवा
गाज़ा में मृत्यु जैसे काँसे की बनी कोई मूर्ति

मृत्यु काम कर रही है जैसे गाज़ा का ज़ेहन

जी, आप गाज़ा में हैं
आग में हैं
जहाँ मृत्यु ने उसकी जुबान निगल ली है
गाज़ा जैसे कोई उड़ा हुआ गुब्बारा है

अरब के शायर क्या कर सकते हैं
गीतों से जलने की बू आ रही है ग़ालील में
गाज़ा एक पीला नीबू है रेगिस्तान के बीच
एक तरफ उसे हिलाया जा रहा है अदृश्य हाथों से
लोहे के बीच दबाकर
तो दूसरी तरफ दुश्मन खड़े हुए हैं
मृत्यु के बादल बनकर
गाज़ा की आँखें सूख चुकी हैं रोते-रोते
तो अब गाज़ा से ख़ुदा की लाश बाहर निकलती है।

(अनुवाद : मणिमोहन : समकालीन वैश्विक कविता के गंभीर और अनुभवी अनुवादक।)

सम्पर्क - +91-9425150346

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बर्मी कविताएँ

म्या थेइन, यंगून

स्वतंत्रता के जनक

जनरल औं सां एक हीरो थे
और स्वतंत्रता के पिता
हमारे देश म्यांमार की।

औं सां ने अंग्रेजों से लड़ाई लड़ी
और लंदन चले गए
स्वतंत्रता का दावा करने के लिए।

एक बार उनकी हत्या की गई थी,
अब बार-बार की जा रही है।

मोहम्मद यामिन, यंगून

आसमान खून से लाल हो रहा है
सभ्य दुनिया की अंतरात्मा सो गई
जहाँ दुनिया में मानवता का नेतृत्व किया जा रहा है
यहाँ एक लाश है
एक गला कटा हुआ है

गिद्ध दावत कर रहे हैं, कुत्ते खा रहे हैं
राक्षस-दावत, नाचते हुए राक्षस
बंदूकें, हथियार चलाने वाले

क्या बर्मी खून पतला है?

उसे पश्चाताप के बिना बहाया जाना आसान है
फिलिस्तीन, अफगानिस्तान, पाकिस्तान और अब म्यांमार
और मौजूदा अल-कायदा, लश्कर-ए-झांगवी और तालिबान
का अभिशाप

अत्यधिक जोखिम और भेद्यता,
कट्टर अधिनायकवाद की क्रूरता
दोधारी तलवार
बर्बरता और बर्बरता

लांसेल ताउदेविन, यंगून

शरणार्थियो !
शरणार्थियो !!

मैं रोहिंग्या पढ़ता हूँ
म्यांमार से बाहर फेंक दिया गया।
कॉक्स बाजार के पास एक शहर में
मुझे वह जगह याद है।
यह सौ मील का समुद्र तट है।
इसके झरने, जंगल।
इसकी सुंदरता और शांति।

एक ऐसा स्थान जहाँ कछुए रहते हैं
अपने घोंसले के लिए घर आओ
जहाँ झरने
उच्च पर्वत पर से छप-छप करते गिरते हैं।
जहाँ जंगल जलते हैं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

खेल में, पर्यटकों पर,
सबसे लंबे, रेत वाले समुद्र तट पर
हमारी दुनिया पर।

माए वेय, यंगून

प्रेम

मैं उन पर भरोसा कर रहा हूँ
मैं यहाँ उनके खाते में हूँ ... वे पंक्तियाँ!
इसके बाद, मैं लहरों पर मंडराऊँगा।
हम रेत में तिरछी रेखाओं के बीच बैठ गए।
स्वतंत्रता की अपनी सीमाएँ हैं।
केवल लापरवाह लहरें, बिना किसी अवरोध के,
कभी-कभी आपके पास आ जाती हैं।

जब आप खुद को थॉइड के माध्यम से बाहर निकालते हैं
आप दूसरी तरफ से अधिक सम्मान पाएँगे।
मैंने जितने भी फैसले लिए हैं, मैं उनके बारे में सोचता हूँ।
मैं इसे पच्चीस साल पुराना साइड इफेक्ट कहता हूँ।

वह टहलेगी, मछलियों को खिलाएगी, कॉफी-सिगरेट पियेगी।
वह अपनी प्रेमिका को बुलाएगा।
उसे उससे प्यार हो गया है।

वह असफल सपनों का नागरिक है।
क्या मेरी मृत्यु के बाद भी वह विकासशील रहेगा?

क्या उनकी मीलों लंबी बम्पर-से-बम्पर कतार
अब भी मेरे दैनिक जीवन को खाएगी?

क्या वह अपनी पाठ्यपुस्तकें खोल सकेगी?
विकल्प जो हमने बनाए हैं, क्या वे खुद के लिए हैं?

वह बात नहीं करना चाहती थी
वह कभी भी बात नहीं करना चाहती थी।
अगर संभव हो, तो
हम लहरों को देखते हुए समुद्र तट पर बैठते हैं।
अगर मैं तीन दिल वाला ऑक्टोपस होता,
तो मैं और कितने बार पीड़ित होता?

हो सकता है कि जब मैं निराश हो जाऊँ,
तो मैं अपने स्वयं के अंग खाऊँगा
जब जो जा रहा है, वही असली कठिन हो जाता है,
शायद मैं खुद को मार डालूँगा।

शायद मैं जीत नहीं सकता,
जब मैं ऐसा कर सकता हूँ,
तो मुझे हवा के लिए आना चाहिए

मैं बस इस पंक्ति पर हस्ताक्षर कर सकता हूँ।

(अनुवाद : राजेन्द्र चंद्रकांत राय : समकालीन विश्व साहित्य के अध्येता और अनुवादक।)

सम्पर्क - 73898 80862

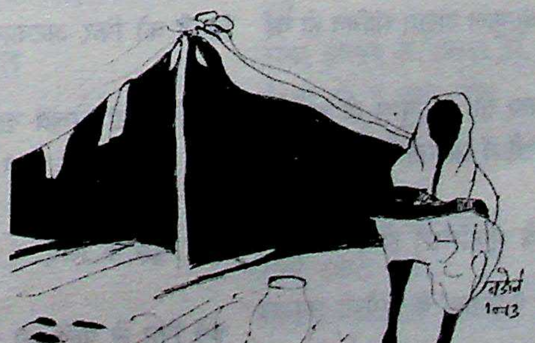

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विस्लावा शिम्बोर्स्का

मृतकों की चिट्ठियाँ

असहाय देवताओं की तरह हम मृतकों की चिट्ठियाँ पढ़ते हैं
मगर देवताओं की ही तरह, क्योंकि इसके बाद की तारीखें हमें पता हैं
हमें पता है कौन से कर्ज़ कभी चुकाए नहीं जाएँगे
शव के गर्म रहते-रहते कौन विधवा कर लेगी फिर से ब्याह।
बेचारे मृतक, मृतक जिनकी आँखों पर पट्टी बँधी है
भोलेभाले, चूक करने वाले, तरस पैदा करने वाले सयाने
हम देखते हैं उनकी पीठ पीछे लोग मुँह बनाते हैं
हमें सुनाई देती है वसीयतों को फाड़ने की आवाज़
मृतक हमारे सामने हास्यास्पद ढंग से बैठे होते हैं जैसे मक्खन लगी ब्रेड पर
या अपने सिरों से उड़ गए टोपों के पीछे भाग रहे हों बेतहाशा
उनकी ख़राब पसन्दगियाँ, नेपोलियन, भाप, बिजली,
साध्य रोगों की उनकी घातक दवाइयाँ,
सेंट जॉन के मुताबिक उनकी बेवकूफ़ाना प्रलय
ज्यां जाक के मुताबिक धरती पर उनका नकली स्वर्ग
हम ख़ामोशी से उनकी शतरंजों पर मोहरे देखते हैं
भले ही हम उन्हें तीन खानों के बाद देखें।
मृतकों की तमाम भविष्यवाणियाँ बिल्कुल अलग साबित हो गई हैं।
या थोड़ी सी अलग-यानी कहा जाए तो, बिल्कुल ही अलग।
उनमें से सबसे जोशीली हमारी आँखों में झाँकती है खुद यक़ीनी से:
उनका गणित बताता है कि वहाँ वे मुकम्मिल होंगी

(स्टेनिसला 'बरानचक और क्लेयर कैवनाग' के अंग्रेजी अनुवाद पर आधारित)

अन्त और आरम्भ

हर युद्ध के बाद
किसी को करनी होती है सफ़ाई
आख़िर चीज़ें अपने आप
खुद को दुरुस्त नहीं करेंगी

किसी को मलबा खिसकाना पड़ता है
रास्ते के बाजू में
ताकि गुज़र सकें लाशों से भरी गाड़ियाँ

किसी को धँसना पड़ता है
गन्दगी और राख में
सोफ़े की स्प्रिंग
बिखरे हुए काँच
और ख़ून में डूबे चीथड़ों में

किसी को घसीटनी होती है शहतीर
भीत को टेक लगाने के लिए
किसी को खिड़की पर चमकीला वार्निश करना होता है
किसी को फिर अटकाना पड़ता है दरवाज़ा

इसकी फ़ोटो अच्छी नहीं आती
और ये बरसों ले लेता है
सारे कैमरे जा चुके हैं
दूसरे युद्ध के लिए

हमें फिर से पुलों की ज़रूरत होगी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

और नए रेलवे स्टेशनों की
घिस जाएँगी आस्तीनें
उन्हें ऊपर मोड़ते-मोड़ते

कोई झाड़ू हाथ में लिए
अभी भी याद करता है कि यह कैसा था
कोई और सुनता है
और सहमति में हिलाता है अपना अनकटा सिर
लेकिन वे आसपास के लोग हैं
जो पहले ही इधर-उधर आना-जाना शुरु कर देंगे
जो ऊब जाएँगे इससे

झाड़ियों में से
कोई कभी-कभी अभी भी खोद लाता है
जंग लगी बहसें
और उन्हें कूड़े के ढेर तक ले जाता है

जो जानते हैं
कि यहाँ क्या हो रहा है
उन्हें उनके लिए छोड़नी है जगह
जो कम जानते हैं
और कम से भी कम
और आख़िरकार इतना कम कि नहीं के बराबर

कारण और परिणाम पर उगी बेढंगी घास में
कोई पसर कर लेट जाएगा
उसके मुँह में घास का तिनका
देखते हुए बादलों की तरफ़

(युआन्ना त्रिश्येक के अंग्रेजी अनुवाद पर आधारित)

आँकड़ों के बारे में एक बात

प्रत्येक सौ लोगों में से

जिनको हमेशा ज़्यादा पता होता है:
बावन।

हर बात में डगमग :
तकरीबन शेष सभी

मदद को तैयार,
अगर ज़्यादा वक़्त न देना पड़े
उनचास।

हमेशा नेक,
क्योंकि वे और कुछ हो नहीं सकते
चार - चलो, हो सकता है पाँच।

जलन के बिना तारीफ़ कर सकने वाले :
अठारह।

जवानी की वजह से (जो बीत जाती है)
ग़लती कर बैठने वाले
साठ, कमोबेश।

जिनसे पंगा नहीं ले सकते :
चवालीस।

किसी चीज़ या शख़्स के
हमेशा खौफ़ में रहने वाले
सतहत्तर।

ख़ुश हो सकने वाले:
ज़्यादा से ज़्यादा कोई बीस एक।

अकेले में गऊ,
और भीड़ में वहशी
यक़ीनन, आधे से ज़्यादा।

क्रूर
अगर हालात से मजबूर हों,
बेहतर हो, न जाना जाए
अंदाज़न भी नहीं।

मुड़कर देखने पर सयाने
उनसे ज़्यादा नहीं
जो पहले ही जान लेते हैं

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चीज़ों के अलावा ज़िन्दगी से कुछ और न लेने वाले
तीस
(हालाँकि मैं ग़लत होना चाहूँगी)

दर्द में दोहरे हो चुके
और अँधेरे में बगैर टॉर्च के:
तिरासी, जल्दी या बाद में।

जो न्यायसंगत हैं
कुछेक ही, पैंतीस पर।

लेकिन अगर समझने की कोशिश भी लगे:
तीन।

हमदर्दी के क़ाबिल
निन्यानवे।

नश्वर :
सौ में से सौ
एक आँकड़ा जिसमें कोई फ़र्क अभी तक नहीं आया

सान्त्वना

डार्विन।
कहते हैं वे सुस्ताने के लिए उपन्यास पढ़ते थे
लेकिन कुछ खास क़िस्म के ही
वे कतई नहीं जो दुखांत थे
अगर वैसा कुछ मिल जाता
तो ग़ुस्से से फेंक देते थे उस किताब को आग में

यह सच हो या न हो
मैं बिल्कुल तैयार हूँ इस पर यकीन करने के लिए

बारीकी से देखते हुए अपने दिमाग में इतनी जगहों और वक़्तों को
वे भर पाए मरती हुई प्रजातियों से
ताकतवर की कमज़ोरों पर जीत से
बचे रहने की ये लगातार जद्दोजहद

जिनका अभी या बाद में ख़त्म होना तय है
उन्होंने हासिल किया था सुखान्त का अधिकार
कम अज़ कम अफ़साने में
इसकी ग़नीमतों के साथ

इसलिए लाजिम है
उम्मीद की किरण
प्रेमियों का पुनर्मिलन, खानदानों का मेल-मिलाप
शक का खात्मा, वफ़ादारी को ईनाम
फिर से दौलतमंद हो जाना, ख़ज़ानों का उजागर होना
ऐंठी गर्दन वाले पड़ोसियों का रास्ते पर आ जाना
इज़्ज़त की बहाली, लालच पर काबू
बूढ़ी कुँवारियों के ब्याह क़ाबिल पादरियों से हो जाना
फ़ितरतियों को दूसरे गोलार्द्ध में देशनिकाला
सीढ़ियों से फेंकना नीचे दस्तावेजों के जालसाज़ को
लम्पटों का लपकना इबादतगाह की तरफ़
अनाथों को आसरा, बेवाओं को दिलासा
नीचा सर ग़ुरूर का, ज़ख्मों का भरना
आवारा बेटों का लौट आना घरों में
समंदर में फेंक देना ग़म के प्यालों को
सुलह के आंसुओं से भीगते रुमाल
हर तरफ़ जश्ने बहारा
और डॉगी फिडो का
जो भटक गया था पहले चैप्टर में
लौट आना ख़ुशी से भौंकते हुए
आख़िरी में

(अनुवाद : आशुतोष दुबे, विश्व साहित्य के गंभीर अनुवादक।)
सम्पर्क - 09826370577

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ल्योनीद गुबानोव

अपने ही अमन-चैन के पायदान पर एक आशु कविता

ईश्वर ने हुक्म दिया - हाज़िर हुआ वेर्लेन।
बीमार पड़ गया ईश्वर - हाज़िर हुआ बॉदलेर।
बाख़ को मिली भारी अघोष ध्वनि
अलावों के बीच मैं जैसे रेम्बो।
रात-दिन मैं तुम्हारे साथ,
तुम्हारे साथ रात-दिन
जैसे घाव का नीला निशान।
सँवारने की कोशिश में हासिल हुई एक छाया।

दूर हो जाओ, दूर हो जाओ !
थक गये हो लेकिन उत्साह बनाये रखो !
होंठों पर लिपस्टिक,
झुर्रियों से भरे चेहरे पर पाउडर पोते बॉदलेर।
घुटनों के बल उठता है वेर्लेन।
ऊँची लहरों की तरफ चक्कर खाता
अपने को अपमानित महसूस करता चला जायेगा रेम्बो।
पीता रहा, फूलता रहा और इस बीच
शक्कर की तरह गायब हो गया इओगन्न का अंग
शायद उसे सब क्षमा कर देंगे।
सेबस्त्यान तुम दीवार के सहारे चलते रहो !
न वेर्लेन है न बॉदलेर न रेम्बो है
यहाँ तक कि बाख भी नहीं
यदि है तो सिर्फ ईश्वर
ईश्वर
ईश्वर
और मेरी यह सफेद कमीज़ !

होंठ

होंठ - नग्न !
और शब्द का इंतजार
जैसे हृदय के स्नायपर का इंतजार।
काला पड़ रहा है पतझड़,
कच्चे काले मसौदे में
डर रहा है उजाले में लाये जाने से।

इन कच्चे मसौदों में पाले में घिरी विलो है
तुकबंदियों की बर्फ पर फिसलती
उसके भीतर राहनुमा की तरह तुम्हारा नाम है
बता रहा है मुझे आगे का रास्ता।

मैं हटा रहा हूँ ध्वनियों को
जैसे हटा रहा हूँ, दहलीज़ से बर्फ,
हर वक्त दिखाई देते हैं तुम्हारे संगमरमर के हाथ
हर वक्त सुनाई देते हैं तुम्हारे ठहाके अनंत।

फिर से हृदय में

फिर से हृदय में बोलबाला है अफवाहों का
जहाँ बेरियों की तरह पक गये हैं शब्द,

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

पूरी की पूरी स्पष्टता बदल रही है हिम नद में
जो पलभर में भकोस जायेगा यहाँ की बहारें।
प्रेरणा श्वास हैं और निश्वास होती हैं अशुचिता
उन मृत शब्दों की जिन्हें तुम्हारे ठहाके सुना चुके हैं। डराता है
हिमनद, झकझोरता है पीछे से
और ढक जाता है पाले और बर्फ से।

आज पूरे का पूरा चाँदी है वह
देर नहीं करेगा जेब खाली करने में,
देर नहीं करेगा अनास्था के देश को
भयावह शीत से घेरने में
जहाँ ''वन'' शब्द विवाह रचायेगा ''नदी'' शब्द से
अटूट बना रहेगा यह विवाह
जब तक आँखें जाँचेंगी नहीं उसे।

ओ स्पष्टता, ओ बेमेल हृदय लिए मेरे हिमनद,
क्यों जरूरत पड़ती है तुम्हें हाँ में हाँ मिलाने की?
भूरे रंग के ये अक्षर मूल निवासियों की तरह
दौड़ रहे हैं शीत में दबे।

ओ हिमनद, आओ अब चल दें आगे
पोंछते हुए वो सब कुछ जीवन के लवण के रूप में जानते हैं जिसे
निराशाओं के चूल्हे में भस्म होती सुबह और शामों का
कोई साक्षी होगा तो ये हाथ।
और इतिहास-रहस्य के चैरी उद्यान में
मेहरबानी करके हमें न दो कोई हिमनद,
कला की देवी चाहे तो बेच डाले मुझे
''अस्तोरिया'' के हाथ मुट्ठीभर अंगूरों के बदले।

भले ही उलझे बाल लिये अपमानित महसूस करे वह, थोड़ी-सी ज्यादा पिये हुए कुछ ज्यादा नर्म दिल लिये ओवरकोट के बटन कुछ ढीला करते हुए
भले ही जवाब दे जायें कला की देवी की नसें।

निःशब्द ! अचानक उसके पाँव चूम डाले मैंने,
वह मेजपोश के नीचे छिपी थी।
अमर रहे तुम्हारा जीवंत और उदास चेहरा
स्मृति की दहलीज़ पर अमर रहे तुम्हारा जीवंत और उदास चेहरा !

खाली हो गया जंगल
(सवरासोव के लिए)

खाली हो गया जंगल, खाली हो गया इतनी आसानी से
उतार दिया उसने अपना कीमती चोगा।
इतनी ताज़गी से महकने लगा जंगल
गोया यह जंगल नहीं, बचपन हो, माँ का एप्रेन हो। ओछापन
और दुष्टता - ये थे विषय चित्रकार के
जैसे यह कैनवस नहीं, बिस्तर की चादर हो।
सिर के ऊपर से हंस उड़ रहे थे।
बेरोक टोक फड़फड़ा रहे थे अपने पंख।

छाया था गहरा अवसाद।
निराशाओं से भरा अवसाद !
रोगन की पतली तह की तरह
नदियों की आँखों के नीचे पसरा पड़ा था मास्को।
यह मयखाने में चल रहा खामोश वार्तालाप था
एक घुमक्कड़ के पतले झोले से शुरू हुआ था जो।
चित्रकार ने सबकुछ लूट लिया था
पीछे छोड़ दिया था देवदूतों और गुरुओं को।

पीने लगा वह, मिटाने लगा शराब में अपने गम
लड़कियों से मार-पीट करने लगा, पैसे उधार लेने लगा।
आकाश जकड़ा पड़ा था पहले की ही तरह
और अभी उड़ान भरी नहीं थी कव्वों ने।

रही बात पतझड़ की
वो तो लिये हुए थी मृतक के लिए फूलों का हार, जटिल किस्म का आदमी था यह कलाकार
कूची के बाद दो जाम ले
चला जाता था हुड़दंग करने

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

भद्दे ढंग से अपने मन पर रंग का अस्तर चढ़ाने।

उसके बाद सूर्यास्त बांग देते -
प्यारी कूचियो, तुम कहाँ जा रही हो?
तुम्हारा बाप अपने चौपाये पर झूलता
कैनवस से झाड़ रहा है बर्फ।
तहखाने में जमा हो गये कव्वे
काँय, काँय करते रहे वहाँ रखे सामान पर, -
तुम खाली हो गये, इतनी आसानी से खाली हो गये,
ओ टेढ़े आदमी !

मत उठाओ, जस्त का यह सफेद रोगन,
इन सिलाखों पर गेरुआ रंग लगाओ।
पुराना परकार लिये घूम रही है मौत
कहीं चुरा कर न ले जाये वह मुझे।

मैं युवा हूँ, भला इन्सान हूँ
और यह मौत - बूढ़ी और डरावनी।
हम कलाकार हैं, छोटे छोटे महापुरुष हैं
कुल्हाड़ी के हाथ हम बंधक हैं !

वह बैठी है, खुश हो रही है
खून पी रही है, मिट्टी खा रही है,
लेकिन वह झुकता नहीं
पीये होता है
लेकिन ढोता है कला का सलीब।

मूल रूसी से अनुवाद : वरयाम सिंह

(रूसी साहित्य को मूल भाषा से अनूदित करने वाले वरिष्ठ और शिखर अनुवादक।)

सम्पर्क - 09810647981

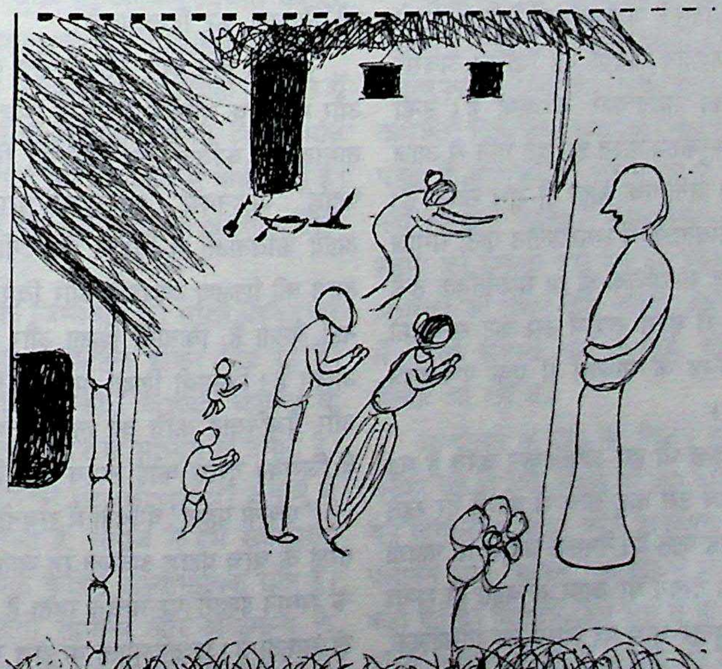

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आज के नेपाली युवा कवि

डा. शोभा यल्मो लिम्बु

(नेपाली साहित्य की अध्येता और लेखक।)

कविता का लक्ष्य ही है सौन्दर्य भाव को जानना और पहचानना। कवि हमारे साधारण से साधारण सी बात को अपनी कविता के माध्यम से जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार कराता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। जिस प्रकार यह जगत अनेक रूपात्मक है उसी प्रकार हमारा हृदय भी अनेक भावात्मक है।

नेपाली साहित्य जगत की बात करें तो प्राचीन, मध्य और आधुनिक युग में आते-आते कविता विधा में कवियों का साहित्य जगत में योगदान अप्रतिम है जहाँ कवियों ने सिर्फ अपने भावनाओं को ही नहीं समकालीन गतियों को विभिन्न अवसर पर उन मार्मिक स्वरूपों का साक्षात्कार करवाया है। उन्हीं धाराओं में उनके पथों का अनुकरण करते हुए द्रुत गति से आज के युवा कवियों का पदार्पण होना एक बहुत ही शुभ संकेत है। आज के युवा कवियों की कविताओं में समकालीन यानी समाज की नाना गतियों का चाहे वह सामाजिक हो या राजनीतिक उन्हें अनुभव कर बहुत ही सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में उस कटु सत्य को अपनी ही शैली में शब्द चित्र के माध्यम से एक पूर्ण चित्र खींचने की कोशिश की है।

कई बार बाहर से जो कुछ भी हम अवलोकन करते हैं वह यथार्थ चित्र नहीं होता है, हम उस कटु सत्य से कोसों दूर रहते हैं, अनभिज्ञ और अनदेखा रह जाते हैं। नेपाली समाज या पहाड़ी क्षेत्र का भौगोलिक मानचित्र देखने पर बाहर से बहुत ही सुन्दर और आकर्षक है पर उसी सुन्दर भूमि पर लोगों का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक चित्र बहुत ही दर्दनाक और दुःखदायी है। यहाँ के लोग सीधे-सादे परिश्रम करने वाले हैं खेती-पाती करते हैं, चायबगान में मजदूरी कर गुजर बसर करते हैं जिसकी मासूमियत का फायदा यहाँ के राजनैतिक दल के नेता, मंत्री लोग उठाते हैं। मासूम लोग राजनीति के नाम पर छाती पर गोली खाकर जान देते हैं पर यहाँ उसके जीवन का कोई मोल नहीं है, सरकार कपटी होकर चुपचाप बैठी रहती है, कवि अनुष्कर पुष्कर की कविता 'कपटी सरकार' में जहाँ गाँव में पाँच वर्ष में 'अम्लिसो' (घास) फूलने लगता है तो दूसरी तरफ सरकार 'चक्र' (अँगूठा छाप) इकट्ठा करने के लिए कमर तोड़ कर खुशियाँ मनाते हैं। गाँव की छोटी-छोटी घटनाओं के माध्यम से सरकार के असली चेहरे को अर्थात उस नकली ओढ़े हुए नकाब को निकाल कर दिखाया है।

समतल क्षेत्र और पहाड़ी क्षेत्र का सामाजिक, राजनीतिक और मानसिक परिवेश बिल्कुल भिन्न और अलग है। कवि रेगन तामाङ की कविता 'जिन्दगी को हिसाब नै मिलेन', 'एक्लो पहाड़', 'आइनक्स', 'भन कसरी पुराउछौ आमा', 'फैजी जीवन' आदि कविताओं में विशेष 'जिन्दगी को हिसाब नै मिलेन' में आज की शिक्षण व्यवस्था और विपन्नता दोनों का हिसाब ठीक नहीं बैठता है, किताबी शिक्षा और यथार्थ की शिक्षा बिल्कुल अलग है। किताबी शिक्षा आर्थिक विपन्नता के कारण निरर्थक और बेबुनियाद कवि को लगने लगता है, बेबस और मजबूर है जिसका दूसरा कोई उपाय नहीं है..।

'एक्लो पहाड़' कविता में राजनीतिक खेल में यानी समतल, तराई के बीच पहाड़ अकेला रह जाता है। उस खेल में बस बंदर के समान इशारों पर नाचते रहता है, कोई भी ठोस निर्णय नहीं ले सकता है। पदलोलुपता के वश में दल बदल करते रहता है जो कटु सत्य है।

'आइनक्स' में परिवर्तित समाज का बहुत ही सुन्दर चित्र चित्रित है। यहाँ चायबगानों में काम करनेवाले मजदूर यानी

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

किसी की माँ मजदूरी करके जमाने के साथ ताल से ताल मिलाकर परिवार का भरण पोषण करती है। खुद रंग उड़े हुए कपड़े पहनकर अपने बच्चों को हरेक महीने नये कपड़े खरीद देती है, महीने का राशन का उधार और पति का उधार में पिया हुआ शराब का पैसा भी चुकाती है माँ, 'भन कसरी पुराउँछौ आमा' कविता में उस विपन्नता का सुन्दर शब्द चित्र है।

पहाड़ी क्षेत्रों में युवकों का कोई भविष्य नहीं है, न यहाँ कोई उद्योग है और न कल-कारखाने और न ही इंजिनियरिंग, मेडिकल कॉलेज...। आर्थिक विपन्नता से ग्रस्त युवक बस किसी तरह स्कूली पढ़ाई पूरी कर इधर-उधर घूमते रहते हैं और अंत में अपने परिवार के उज्वल भविष्य के लिए एक मात्र उपाय 'फौज' में जाना रहता है और दूसरा अपना खेती-बारी बेच विदेश काम करने जाते हैं। 'फौजी' कविता में फौजी जीवन की मार्मिक दिनचर्या और युद्ध के दुष्परिणाम का भी चित्रण कर एक सन्देश देने का प्रयास है कि युद्ध देश में शांति नहीं वरन् देश को नरक और प्रदूषित कर रहा है।

आज का युवा सचेत है और अनुभव कर रहा कि लड़ाई-झगड़ा और विस्फोट में उन्हें जीना नही है वरन् शांति भरे परिवेश में रहना है। कवि आरती ठकुरी की कविता 'युद्ध' में स्पष्ट कहते हैं कि समय भी डर से हार चुका है, अनमेल विचारों का द्वंद गुहार माँग रहा है पर देवी-देवता चुपचाप हैं। समय के अनुसार वे विवश हैं मुक्ति की आस में 'कोठा' घर कविता में कोठे में रहनेवाली की विवशता की चीख, मूल्यहीन जीवन, जिस समाज ने उसे पहचान दिया वही समाज उसे पहचानने से कतरा रहा है। 'रात की रानी' फूल की तरह दिन को फूल नहीं सकता क्योंकि मौसम उसे फूलने नहीं देता...

आज देश, समाज में अपने जिम्मेवारी को समझ मेहनत कर निभानेवाले भूख, रोग, शोक से कहिल होकर देख रहे हैं। वर्तमान में जूझ रही इस सच्चाई को 'निःशब्द' कविता के कैनवास पर कवि ने अपने शब्द चित्र के माध्यम से उभारा है।

इक्कीसवीं सदी में ट्रान्सजेन्डर (transgender) समाज में एक नयी दुनिया का जन्म हुआ है, समाज में इसे स्वीकारना आसान नहीं है क्योंकि यह एक कृत्रिम अस्वाभाविक सृष्टि है। 'ट्रान्सजेन्डर' वालों की जिन्दगी सामान्य और असामान्य के बीच की जिन्दगी है। उनके मन की कई इच्छाएँ और सपने होते हैं पर वह न तो जीवन से हार सकता है और न जीत। दूधिया पेड़ जैसी आरामदायक नहीं है उसकी कोख, उनके मन के साथ आनन्दित नहीं होती हैं तितलियाँ, इस तरह अपूर्ण जिन्दगी जीने का दुःख 'उन्यू' कविता में दर्शाया है।

आज जंगलों के जो मूलनिवासी हैं उनका उन जंगलों पर कोई हक या अधिकार नहीं होता है पर जंगल माफियाओं का आधिपत्य उन जंगलों पर दिन-प्रतिदिन बढ़ते ही जा रहा है जो कवि अनुष्कर की कविता 'ब्रान्डेड' में बड़े साहस के साथ चित्रण हुआ है। उनके 'दैलो' और 'नारी' कविता में आधुनिक युग में नारी की स्थिति जो नाजुक है डरावनी है। उस स्थिति से अपने आप को बचाने के लिए उस कुरूप मानसिकता को जड़ से नष्ट कर देने की बात कही गई है और नारी को उस दमन और शोषण से मुक्ति के लिए अपने आप को तैयार करनी है और आत्मनिर्भर बन आगे की ओर बढ़नी है।

कवि अमरकृति राई की कविताएँ : 'मरूभूमि का नीलकण्ठहरूलाई', 'आकाश गंगा', 'तत', 'एक अंगुली टिस्टा को रंग', 'छटपटाहट' आदि कविताएँ एक अलग ही भिन्न समस्याओं को लेकर कवि चिन्तित और दुःखी है। पहाड़ों में नदियों की स्थिति एकदम भयावह है, पर्यावरण दूषित हो रहा है, पेड़ों की कटाई, नदियों को रोककर जल-विद्युत परियोजना बनाई जा रही है जिससे नदियाँ सूख रही हैं जिससे भू-स्खलन, नदी-नाला धीरे-धीरे सूखी मरुभूमि में परिणत हो रहे हैं।

कवि नितेश राई की कविता 'बाजे', 'तिम्रो याद-2', 'आगो', 'भ्रमित', 'ओई काली' आज के सन्दर्भ में बहुत ही महत्त्वपूर्ण कविताएँ हैं। उनके 'बाजे' कविता में वृद्धावस्था की कमजोरी जिसे हम नकार नहीं सकते है सभी को स्वीकारना ही पड़ता है और सबकी बारी आती है इसलिए इस उम्र को तुच्छ नहीं समझना चाहिए। 'तिम्रो याद-2' कविता में एक फौजी शहीद की विधवी स्त्री मन की व्यथा को और जीवन के उस अधूरेपन को लेकर कैसे अपना जीवन जी रही है पति की याद में...। यह समस्या यहाँ के प्रायः गाँव घर में फौजी महिलाएँ झेलती आ रही है।

आन्दोलन के नाम पर कितने घर बर्बाद हो गए, पुर्खौली धरोहर नष्ट हो गये, शिक्षा पर बुरा असर पड़ा। विशेषकर युवक वर्ग दिगभ्रमित होकर कोई जेलखाना तो कोई विदेश की ओर पलायन हुए। 'भ्रमित' कविता में जिन्दगी की रहस्य की बात कही गई है। जिन्दगी सदा भ्रम में ही जीता है। इसी तरह 'ओई काली' कविता में काली लड़की की व्यथा को दिखाया गया है। आज वह सुरक्षित नहीं है और समाज की उस विषाक्त मानसिकता की बात कही है। कवि इस कविता के माध्यम से यह सन्देश देना चाहते हैं कि लड़कियों को स्वयं आत्मविश्वास

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

के साथ आगे बढ़ना है और सभ्यता को आगे की ओर ले जाना है।

कवि विशाल नाल्बो की 'लकडाउनमा मजदूर', 'पोलिटिकल पर्व', 'आमालाई सम्झेर', कविताओं में आज के ज्वलंत मुद्दों को उठाया गया है। 'लकडाउन मजदूर' कविता में कोरोना के इस भयंकर प्रकोप में मजदूरों की आर्थिक विवशता को दिखाया गया है। उन्हें कोरोना से ज्यादा डर भूख से है, लकडाउन से विच्छिन्न है दुनिया। उनके 'लिम्बुनी-सोल्टिनी र याद', 'अक्सर लुङामा को प्रेममा' कविता में प्रेम के माध्यम से हमारी सभ्यता, संस्कृति और अपने नदी-नाले का चित्रण बहुत ही सुन्दर रूप से वर्णित है।

इन उभरते हुए युवा कवियों में जहाँ जोश है वहाँ युग चेतना के साथ-साथ अपनी भाषा, सभ्यता, संस्कृति के प्रति भी एक अटूट मोह दिखाई पड़ता है। कवि श्रवण कुमार प्रधान की कविता 'समय र म', 'माइली बोजू', 'उस्तै जिन्दगी', 'प्रेम' आदि इन सब की झलक दिखती है।

आज के उभरते हुए युवा कवियों में श्रवणकुमार प्रधान की कविताएँ 'समय र म', 'माइली बोजू', 'उस्तै जिन्दगी', 'प्रेम', 'बाङुली' एक सशक्त और हमारे समाज के अंधविश्वास से घिरा हुआ वह विश्वास जो किसी की जिन्दगी को नरक से भी बदतर बना देता है। कवि प्रधान की 'माइली बोजू' कविता में समाज में व्याप्त डाइन प्रथा का बड़ा ही जीता जागता मार्मिक चित्रण किया गया है। 'उस्तै जिन्दगी' और 'समय र म' कविता में जिन्दगी के सत्य के साथ-साथ समय के औचित्य को भी परिभाषित किया है। दूसरी ओर कवि निर्दोषिका तामाङकी 'म आगोमा उभिएको छू', 'झरेको कोपिला', 'याद', 'हरियो सुन', 'संकल्प' कविता में नारियों की व्यथाओं को दिखाते हुए यह सिद्ध किया है कि आज की नारी कमजोर नहीं है और उसे आग में जलाना अब सम्भव नहीं है। 'झरेको कोपिला' में नाबालिगों का बलात्कार कर समय से पहले ही उसे रंगहीन बना देते हैं समाज के हिंसक जानवर प्रवृति के लोग। इस तरह आज की ज्वलंत समस्याओं को दिखाते हुए वह समाज को चेतनशील और जागरूक होने का आह्वान करते है।

निष्कर्ष रूप में आज के इन युवा कवियों की कविताओं से यह बात तो बिल्कुल स्पष्ट है कि वे भावनाओं में बहने वाले नहीं वरन् अपने समाज के गाँव घर की एक-एक घट रही घटनाओं, धने के पिता के भोगे हुए दर्द, अपनी माँ कैसे कर के घर चला रही है, ब्रान्डेड जंगल में हो रहे खेल, काली केटी की व्यथा, उन्यू, पर्यावरण का दोहन, कपटी सरकार किस प्रकार गाँव-घर में घुसकर सीधेपन का फायदा उठा रहे हैं... आदि समस्याओं, घटनाओं को खुली आँखो से निरीक्षण कर उन क्रूर व्यवस्थाओं के प्रति आक्रोश लिए एक सजग, सचेत, प्रगतिशील युवा चेता कवि हैं।

सम्पर्क – +919064538122 / +919153784469

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

विशेष आलेख

समकालीन उर्दू शाइरी : बदलता मंज़रनामा

जानकीप्रसाद शर्मा

(हिंदी-उर्दू के विद्वान लेखक, अनुवादक। उर्दू साहित्य के कालजयी लेखकों और साहित्य को हिंदी में आलोकित करने वाले लेखक।)

समकालीन उर्दू शाइरी संवेदना की नई ज़मीनों और अभिव्यक्ति के नये तज्रिबों से संपन्न है। समकालीनता की धारणा व्यापक है। हिंदी की तरह उर्दू में क़रीब चार पीढ़ियों के रचनाकार सृजनरत हैं। संवेदना की सतह पर वे समकालीन हैं। फ़क़त समय के अनुमान के लिए हम कह सकते हैं कि नवें दशक के साथ शुरूआत करने वाली युवा और युवतर पीढ़ी की सर्जना में कुछ तब्दीलियाँ नुमायाँ तौर पर नज़र आती हैं। इन तब्दीलियों का प्रमुख कारण यह लगता है कि जदीदियत की तहरीक यानी आधुनिकतावादी आंदोलन से इन रचनाकारों का कोई ज़ेहनी रिश्ता नहीं बनता। शाइरी को ताज़ा विषयों और अभिव्यक्ति के नये तौर-तरीक़ों से संपन्न करने के काम को जदीदियत अब तक अंजाम दे चुकी थी। आठवें दशक के जाते-जाते वह सोपान गुज़र चुका था। जदीदियत की तहरीक को हम हिंदी परंपरा में नई कविता आंदोलन के सदृश कह सकते हैं। दोनों के समय और वैचारिक आधारभूमि एक रहे हैं। हालाँकि कोई भी साहित्यांदोलन एकायामी नहीं रहा होता है, लेकिन आम धारणा यह है कि तरक़्क़ीपसंद तहरीक ने बाद में एक प्रतिष्ठान (establishment) का रूप ले लिया था। इसमें संकीर्णतावाद की प्रवृत्ति बहुत प्रभावी हो गयी थी। चुनाँचे इसके प्रतिवादस्वरूप जदीदियत की तहरीक का उभार हुआ। इसमें मोहभंग और नई उम्मीदों के स्वर एक साथ विद्यमान रहे। अभिप्राय यह है कि समकालीन नये रचनाकारों को पृष्ठभूमि के रूप में यह साहित्यिक परिदृश्य मिला। और यहाँ से आगे उन्होंने अलग राह निकाली। तरक़्क़ीपसंद तहरीक की वर्ग-दृष्टि और जदीदियत की व्यक्ति-चेतना के मिले-जुले प्रभाव उनके मानस पर रहे, लेकिन अपने आसपास के सच और आसन्न सवालों को उन्होंने तरजीह दी। इसी बिना पर वे अपनी शाइरी की एक नई काइनात बना सके।

अस्सी के बाद बदलते उर्दू शाइरी के परिदृश्य को विसंरचनावादी दृष्टिकोण से जाँचने-परखने के प्रयास भी होने लगे हैं। उर्दू आलोचना में इस दृष्टिकोण का प्रवर्तक प्रो. गोपीचंद नारंग को माना जाता है। इस रिवायत को आगे बढ़ाने वाले आलोचकों में वहाब अशरफ़ी, क़ाज़ी अफ़ज़ाल हुसैन, निज़ाम सिद्दीक़ी, शाफ़े क़िदवाई और कवि-आलोचक शीन काफ़ निज़ाम के नाम सरे-फ़ेहरिस्त हैं। यह उर्दू आलोचना में उत्तर आधुनिकतावाद की दस्तक है।

यह भी जान लें कि उत्तर आधुनिक ग़ज़ल और नज़्म की शुरूआत कब से मानी जाती है। यहाँ हम 'बीसवीं सदी में उर्दू अदब' (संपादक : गोपीचंद नारंग) किताब से दो लेखों का उल्लेख करना चाहेंगे। 'बीसवीं सदी में उर्दू ग़ज़ल' लेख में अनीस अशफ़ाक़ कहते हैं : ''जदीदियत के बाद तब्दील होते हुए मंज़रनामे को माबाद जदीदियत (उत्तर आधुनिकता) से ताबीर करना ग़लत न होगा'' (पृष्ठ 85-86) उन्होंने उत्तर आधुनिक ग़ज़ल या जदीदतर ग़ज़ल टर्म भी दी है। जदीदतर ग़ज़ल टर्म हमें भ्रामक लगती है। जदीदतर कहने से इसका रिश्ता सिर्फ़ जदीदियत से जुड़ता है जबकि ग़ज़ल की चार सौ सालों की परंपरा का यह स्वाभाविक विकास है। जहाँ तक नज़्म की बात है 'बीसवीं सदी में उर्दू नज़्म' लेख में शीन काफ़ निज़ाम कहते हैं : ''अगर यह नतीजा निकाला जाए कि उत्तर आधुनिक नज़्म का आग़ाज़ 'मैयार'-3 से होता है तो शायद ग़लत न होगा। हालाँकि उस वक़्त इस शाइरी का नाम जदीदतर शाइरी/नज़्म दिया गया था।'' (पृष्ठ 123) जानकारी के लिए बता दें कि 'मैयार' (संपादक शाहिद माहुली) का तीसरा अंक 1980 में प्रकाशित हुआ था।

हम ऐसा मानते हैं कि नई रचनाशीलता के भिन्न प्रस्थान का कारण सिर्फ़ नवीन अभिव्यक्ति नहीं है, सरोकार भी हैं। और सरोकारों से ही अभिव्यक्ति तय होती है। अतएव हमें उत्तर आधुनिक ग़ज़ल या नज़्म जैसे पारिभाषिक शब्दों को दरकिनार

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कर सरोकारों पर केन्द्रित करना चाहिए।

नई नस्ल के रचनाकारों की शुरूआत के समय साम्राज्यवादी भूमंडलीकरण (आलमगीरियत) की अलामतें प्रकट हुईं। खुले बाज़ार की विश्व व्यवस्था ने आवारा वित्तीय पूँजी का प्रवाह बढ़ाया और देखते ही देखते तीसरी दुनिया के देशों को अपने शिकंजे में कसना शुरू कर दिया।

एक युवा शाइर के बक़ौल :

इक जिंसज़दा नस्ल है तहज़ीब के पीछे
बाज़ार है इक कूचओ-बाज़ार से आगे

- ख़ालिद कर्रार ('वुरूद' संग्रह)

भूमंडलीकरण ने घर-घर में बाज़ार की आक्रामक पहुँच का रास्ता साफ़ किया। पारंपरिक मानवीय श्रम से निर्मित चीज़ों को विस्थापित करते हुए नये उत्पादों से पटे बाज़ारों ने उपभोक्तावादी अपसंस्कृति को परवान चढ़ाया। विज्ञापनों की अहमियत इतनी बढ़ गई कि मध्यवर्गीय संस्कृति का एक ज़रूरी घटक बन गये। यहाँ तक कि साहित्य और कलाएँ भी विज्ञापनधर्मिता की ज़द में आने लगे। एक फ़्लैट वर्ल्ड की परिकल्पना ने तीसरी दुनिया की स्थानिकताओं के आगे संकट खड़ा कर दिया।

भूमंडलीकरण की अलामतों की तरफ़ यहाँ महज़ चंद इशारे किए गए हैं। ये अलामतें एक नये यथार्थ की सृष्टि कर रही थीं जो कि जदीदियत के दौर का यथार्थ नहीं था। इस नये यथार्थ को आत्मसात् करने की प्रक्रिया में शाइरी के मिज़ाज और लबो-लहजे में तब्दीलियाँ आना स्वाभाविक था।

नई पीढ़ी अली सरदार जाफ़री की इस चिंता से आगाह है कि "दर बदर ठोकरें खाते हुए फिरते हैं सवाल / और मुजरिम की तरह उनसे गुरेज़ाँ हैं जवाब।" उन्हें इस बात का एहसास है कि अपने समय के सवालों से दो-चार होने की प्रतिश्रुति शाइरी की प्रासंगिकता का निकष है। इस सिलसिले में सबसे पहले हमारा ध्यान प्रकृति और पर्यावरण (माहौलियात) के सवाल की ओर जाता है जो इससे पहले की शाइरी में हाशिए पर था और नई पीढ़ी के शाइरों के यहाँ केंद्रीय मुद्दआ बन जाता है। यह मनुष्य को लेकर उनकी चिंताओं का विस्तार है - यानी प्रकृति की सापेक्षता में मनुष्यता की अवधारणा।

प्रसंगवश यहाँ सार्त्र (1905-1980) से फ़ैज़ की 1977 के आसपास पेरिस में हुई एक मुलाक़ात याद आती है। ज़ेरे-बहस यह बात थी कि बड़े अदब (उत्कृष्ट साहित्य) के लिए बड़े विषय की दरकार है या नहीं? बहुत-सी बातों के बीच सार्त्र ने कहा कि यूरोप के विकसित देशों में भूख, ग़रीबी, गुलामी और सामाजिक भेदभाव जैसे विषय अब पीछे छूट गए हैं। वर्गीय कशमकश का तनाव विकास कार्यों ने ढीला कर दिया है। समाजवादी देशों में अलबत्ता एक चीज़ देखने में आ रही है कि इंसान, इंसान से नहीं बल्कि प्रकृति के ख़िलाफ़ जंग छेड़े हुए है। प्रकृति को अधीन करने की कोशिशों से बड़ा विषय और क्या होगा?" (मुतालआ-ए-फ़ैज़ : योरुप में : सं. अशफ़ाक़ हुसैन, पृष्ठ 42)

सार्त्र का कथन तत्कालीन यूरोप के विशेष संदर्भ में था। हम आज दुनिया के बड़े हिस्से के संदर्भ में इस कथन का महत्त्व समझ सकते हैं। प्रकृति के प्रति क्रूरता और शत्रु-भाव ने हमारे व्यवहार में एक बड़ी जगह बना ली है। हमारा अंतर्विरोध यह है कि खुली आबो-हवा भी चाहिए और आबो-हवा के स्रोतों के प्रति हम बेरहम भी हैं।

पूछ रहे हैं मुझसे पेड़ों के सौदागर
आबो-हवा कैसे ज़हरीली हो जाती है

- आलम ख़ुर्शीद

हम भौतिक विकास के तर्क की ओट में नदी, तालाब, जंगल, पहाड़, ग़रज़ की समूची प्रकृति का निर्ममतापूर्वक दोहन करते जा रहे हैं। सूखती हुई नदियों, कट कर गिरते हुए वृक्षों और डायनामाइट से उड़ते हुए पहाड़ों का आर्तनाद हमें सुनाई नहीं देता। प्रकृति में हमारे अवांछित हस्तक्षेप की वजह से टूटते-पिघलते ग्लेशियरों का मंज़र हमें संवेदित नहीं करता। रेगिस्तान में तब्दील होते जंगलों और इसके परिणामस्वरूप पशु-पक्षियों की विलुप्त होती प्रजातियों का मानवीय अस्तित्व से गहरा रिश्ता बनता है। वनाश्रित परिवारों के पलायन का मुद्दआ भी इसी से जुड़ा हुआ है। ये हमारे यथार्थ के बहुत प्रत्यक्ष रूप हैं। इस यथार्थ के चित्रण के लिहाज़ से आज की उर्दू शाइरी बहुत आश्वस्त करती है।

सुपरिचित शाइर नौमान शौक़ माहौलियात के तवाज़ुन (पर्यावरण संतुलन) के सवाल को एक व्यापक सतह पर उठाते हैं। जो कुछ इस नाम पर हो रहा है, इसे वे मज़ाक़ ठहराते हैं। यानी वनस्पति और जीवधारियों के विनाश को पर्यावरण संतुलन का नाम दिया जा रहा है। इस रूपक को वे समाज पर चरितार्थ करते हैं और तीखा व्यंग्य कर जाते हैं :

माहौलियात का ये तवाज़ुन है कुल मज़ाक़
इंसाँ कहीं कहीं हैं, दरिंदे सभी जगह

- 'आख़िरी इश्क़ सबसे पहले किया' पृष्ठ, 130

वैश्विक जलसंकट एक सामने की सच्चाई है। पानी की कमयाबी एक ऐतिहासिक हक़ीक़त रही है। कोई आश्चर्य नहीं कि आगे कभी पानी पर युद्ध लड़ा जाए। विदित है कि पेरिस के लूव्र

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

संग्रहालय में अतीत के मेसोपोटेमिया और आज के ईराक़ से 4500 साल पुराना एक पत्थर नुमाइश के लिए रखा हुआ है जिस पर लगास और उम्मा के बादशाहों के बीच आंशिक रूप से पानी पर लड़ी गई जंग के दृश्य उत्कीर्ण हैं। यह पत्थर भविष्य के अंदेशों की तरफ़ इशारा करता है। पानी के पारंपरिक स्रोतों की शनैः-शनैः विलुप्ति और पानी को बाज़ार के रूप में देखने की व्यावसायिक मनोवृत्ति से उत्पन्न संकट का सामना आज तमाम दुनिया कर रही है। नौमान शौक़ का एक शे'र है :

जिनका दावा है पानियों पे हनूज़[1]
हर तरफ़ कर्बला बना डाला

उर्दू शाइरी में कर्बला न्याय-युद्ध के प्रतीक के रूप में व्यवहृत होता रहा है। यह शे'र पानी पर इजारे का एक्सपोज़र है। यहाँ यह संकेत भी निहित है कि अत्याचारी शासक यज़ीद ने हसन-हुसैन और उनके परिवारजनों पर जो नृशंसताएँ की थीं, पानी के इजारेदार वही रक्तरंजित दृश्य दोहराने पर आमादा हैं। पानी पर दो शे'र और देखिए :

एक लम्हा सदी का हिस्सा है
मेरा दुख भी किसी का हिस्सा है

ये जो है मेरे ओक में पानी
इसमें प्यासी नदी का हिस्सा है

– अहमद निसार (इंतिसाब, जुलाई-सितंबर 2019)

समकालीन ग़ज़ल से कुछ और अशआर मुलाहिज़ा कीजिए जिनमें प्रकृति व पर्यावरण की चिंताओं का इज़हार किया गया है :

शजर तो कब का कट के गिर चुका है
परिंदा शाख़ से लिपटा हुआ है

ज़मी पे फल तो आ टपका है लेकिन
घनी शाख़ों में पत्थर रह गया है

– सलीम अंसारी

अजीब सानिहा[2] है उस बुज़ुर्ग दश्त की मौत
लगे हुए हैं कई शहर नौहाख़्वानी[3] में

– अभिषेक शुक्ल

अजीब दश्त है जिसमें न ख़ार हैं न फूल
कहाँ पे आ गया मैं तितलियाँ पकड़ते हुए

– अमीर इमाम

यथार्थ के इस पहलू को लेकर कहकशाँ तबस्सुम की नज़्म 'कहीं ऐसा न हो' पर अलग से बात करने की ज़रूरत है। व्यंग्य की स्पिरिट से संपन्न यह एक पहलूदार रचना है। एक पहलू प्रकृति-पर्यावरण की चिंताओं से वाबस्ता है। शुरूआती सतरों से आभास हो जाता है कि यह नज़्म प्रभुत्वशाली वर्गों के लिए संबोधित है, "अनाने-वक़्त को थामे रहो / जब तक तुम्हारे हाथ में है।" यानी अनाने-वक़्त (समय की लगाम) तुम्हारे हाथ में हमेशा रहने वाली नहीं, जब तक हाथ में लगाम है तब तक अपनी आने वाली सात नस्लों के लिए बाग़े-इरम (स्वर्गिक उपवन) तामीर कर लो। अब नज़्म की समापन पंक्तियाँ देखिए :

दरख़्तों की जड़ें ही काट डालो
अगर धरती हुई बेसायबाँ, क्या है
दहाने नद्दियों के खोल दो
अगर सैलाब बस्ती में क़यामत ढाए तो क्या है
अनाने-वक़्त को थामे रहो ... लेकिन
ज़रा जल्दी करो
कहीं ऐसा न हो कि ख़ुद तुम्हारी मुट्ठियों के ज़ोर
में आकर
ये रस्सी छूट जाने के बजाय टूट जाए...!

– 'कारवाने-अदब', अक्टूबर 2019

'अगर धरती हुई बेसायबाँ, क्या है' पंक्ति पर ग़ौर कीजिए। 'क्या है' में बड़ी वेदना है, व्यंग्य भी। धरती अगर वृक्षहीन होती है तो हो जाये! यही बात नदियों के दहाने खोलने को लेकर भी है। पर्यावरण-विनाश कितना भी हो जाए लेकिन तुम्हारा (यानी प्रभुत्वशाली वर्गों का) विकास ज़रूर होना चाहिए। और ऐसा हो भी रहा है। इस सूरते-हाल पर एक युवा शाइर की प्रतिक्रिया देखिए :

मंज़र कितना बदला लिख
गुलशन को अब सहरा लिख

– शाहिद पठान ('जू-ए-शीर' संग्रह, पृष्ठ 143)

उर्दू शे'रो-अदब में स्थानिकता की बहस तरक़्क़ीपसंद तहरीक के ज़माने से उठती रही है। 'जोश' और सरदार जाफ़री के यहाँ अवध की मौजूदगी की मिसालें हमारे सामने हैं। यह भी सच है कि स्थानीय लोकगीतों ने तहरीक को अवाम के बीच पहुँचाने में बहुत मदद की। लेकिन एक समस्या बराबर बनी रही। वह है मानक साहित्य-भाषा की जनपदीय बोलियों से

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दूरी। लोक अदब बोलियों और स्थानिकताओं को संरक्षित करता है। उर्दू में लोक अदब की एक परंपरा रही है, लेकिन उर्दू आलोचना में इसे तरजीह नहीं दी गई। इस दृष्टि से प्रो. क़मर रईस द्वारा संपादित किताब 'उर्दू में लोक अदब' पढ़ी जानी चाहिए। दूसरी बात यह है कि उर्दू की प्रकृति स्थानीय भाषा एवं संस्कृति से रस ग्रहण करने की रही है, इसे पहचानने और प्रोत्साहित करने की ज़रूरत है। वरिष्ठ शाइर मुहम्मद अल्वी और जयंत परमार के यहाँ गुजराती, शीन काफ़ निज़ाम के यहाँ राजस्थानी और अमीक़ हनफ़ी के यहाँ मालवी स्थानिकताओं के जैसे रंग झलकते हैं, उस रिवायत को आगे बढ़ना चाहिए। ग़ौर से देखने पर इस रिवायत की मिसालें मिल जाती हैं। स्थानीय संस्कृति, भाषा और प्राकृतिक परिवेश की छवियाँ समकालीन शाइरी में गाहे बगाहे विद्यमान हैं। नये लिखने वालों में नसरीन नक़्क़ाश अपनी रचनाओं में स्थानीय फ़िज़ा को सजीव कर देती हैं। आप पढ़ते हुए हठात् कह देंगे कि इन उदास मंज़रों का संबंध कश्मीर से है। एक ग़ज़ल के चंद शे'रों से इसका अंदाज़ा हो जाएगा :

लिख कि अब पहाड़ों पर बर्फ़ आग उगलती है
जल गई हैं फूलों की रेशमीं क़बाएँ[4] लिख

लिख कि सब्ज़ वादी में तितलियाँ नहीं उड़तीं
गुम हुईं परिंदों की झील पर क़तारें लिख

लिख चिनार के साए तुझको याद करते हैं
तेरे ग़म से बोझल हैं झील की हवाएँ लिख

– 'दश्ते-तनहाई' संग्रह, पृष्ठ 111

इसी तरह युवा शाइरों में ब्रजेश अंबर अपनी रचनाओं में किसी भाव या विचार को केंद्रीयता दें, वहाँ मारवाड़ के संदर्भ आ ही जाते हैं। उनकी एक मुख़्तसर नज़्म है 'किसी की याद में कब कौन अपनी उम्र खोता है' :

यहाँ कोई नहीं है
बयाबानों में भी आबादियाँ गश्त करती हैं
समंदर-सी थपेड़े मारती मौजों के फेरे हैं
ज़मीं को हर तरफ़ से जलती रेत घेरे है
नमी अब नाम को मिलती कहाँ है इन फ़िज़ाओं में
हवा के होंट सूखे हैं
अकेला ऊँट अपनी दाढ़ की खुजली मिटाता है
किसी की याद में कब कौन अपनी उम्र खोता है

– 'नया ज्ञानोदय', नवंबर 2017

यह नज़्म निर्जन परिवेश में अकेलेपन के एहसास को उभारती है। तदनुरूप स्थानिकता को मूर्त करने हेतु बिंब-सृष्टि की गई है। स्थानिकता के सिलसिले में वरिष्ठ शाइर चंद्रभान ख़याल की एक नज़्म का यह बंद याद आता है :

दूसरे साहिल[5] पे बैठा कोह[6] विंध्याचल ख़मोश
इक नई तहज़ीब के इमकाँ[7] की सुनता है सदा
मुश्किलों से जूझते इनसाँ की सुनता है सदा
देखता है नर्मदा की शोख़ लहरों का ख़रोश

– 'ताज़ा हवा की ताबिशें', पृष्ठ 138

समकालीन शाइरी में एक साथ कई रुज्हान नज़र आते हैं। इनमें सबसे प्रभावी रुज्हान पर ग़ौर करें तो कहा जा सकता है कि यह इतमीनान और सुकून की शाइरी नहीं, बेचैनी की शाइरी है। इस बेचैनी का हमारे समय से गहरा रिश्ता है। भय और हिंसा के अभूतपूर्व दौर से हम गुज़र रहे हैं। प्रेम और करुणा जैसे मूल्य सांप्रदायिक उन्माद के विषाक्त वातावरण की ज़द में आ गए हैं। घृणा के अँधेरे गहरे होते जा रहे हैं। नौमान शौक़ के दो शे'र देखें जिनमें इस यथार्थ के अक्स बज़ाहिर मौजूद हैं :

साफ़ बच जाते मेरे हाथ क़लम होने से
काश मैंने भी लिखा होता क़सीदा उसका

हँस रहा होगा किसी शाख़ के पीछे सूरज
पेड़ से छीन रहा है कोई साया उसका

– 'अनभै साँचा', जनवरी-मार्च 2010

पहला शे'र प्रतिरोध के स्वर पर प्रतिबंध की ओर इशारा करता है। दूसरे शे'र में शाख़ के पीछे सूरज के हँसने का बिंब बहुत व्यंजक है। पेड़ से साये के छिन जाने की स्थिति मानवीय अस्तित्व से जुड़े सवालों की ओर ध्यान आकर्षित करती है।

युवतर पीढ़ी के शाइर अमीर इमाम एक नए लहजे में अपने समय की अक्कासी करते हैं। पारंपरिक प्रतीकों को नये अर्थों से संपन्न करते हुए ग़ज़ल को सामयिक यथार्थ का तर्जुमान बनाते हैं :

हर एक शाम का मंज़र धुआँ उगलने लगा
वो देखो दूर कहीं आसमाँ पिघलने लगा

तो क्या हुआ जो मयस्सर कोई लिबास नहीं
पहन के धूप मैं अपने बदन पे चलने लगा

पहले शे'र में आसमाँ का पिघलना वेदना की पराकाष्ठा को प्रतीकित करता है। दूसरे शे'र में धूप पहन कर अपने बदन पर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चलने के ख़याल में नवीनता है। लिबास का मयस्सर न होना एक व्यक्ति नहीं, एक वर्ग की सच्चाई है। यह सच्चाई इस मिसरे के ख़याल को और विस्तार देती है। यह कला के आवरण में यथार्थ की अभिव्यक्ति की बानगी है।

यथार्थ के दबावों ने युवा पीढ़ी के सोच को विस्तार दिया है। महामारी के बाद की दुनिया को लेकर संदेहों ने उन्हें शदीद बेचैनी से भर दिया है। युवतर पीढ़ी की शाइरा आतिका माहीन की नज़्म 'एहतिसाब' इंसानियत पर वबाओं (महामारियों) के निरंतर संकटों का एक हिसाब प्रस्तुत करते हुए वर्तमान महामारी के तअल्लुक़ से आज के यथार्थ की तर्जुमानी करती है। एक अंश पर नज़र डालें :

वबाएँ जब भी आती हैं
ज़मीं व आसमाँ मातमकुनाँ[8] होते हैं ऐसे ही
हज़ारों घर बिखर जाते हैं लम्हों में
परिन्दे आशियानों में सिमट कर बैठ जाते हैं
सभी इंसानियत अफ़सुर्दगी के दाम[9] से ऐसे लिपटती है
कि जैसे कोई चिड़िया ज़ेरे-पर मिनक़ार[10] रख ले

– 'रहरवाने-अदब', सितंबर 2021

आज के चेतना-संपन्न शाइरों में आलम ख़ुर्शीद एक महत्त्वपूर्ण नाम है। एक पुख़्ताकार शाइर के रूप में उन्होंने ग़ज़ल को नये तज्रिबों से आरास्ता किया है। उनके यहाँ ऐसी ग़ज़लें मिल जाती हैं जिनमें एक ही विषय-वस्तु के विभिन्न आयामों को अलग-अलग शे'रों में अभिव्यक्ति दी गई है। मिसाल के बतौर :

गदा मिस्कीन[11] क्या इस शहर में पहले नहीं थे
मगर आहो-फ़ुग़ाँ[12] शोरो-शग़ब[13] इतना नहीं था

बस इक दरिया पे पहरा था यज़ीदी लश्करों का
हरेक चश्मे पे बातिल का कभी पहरा नहीं था

– 'कारवाने-अदब', नवंबर 2020

पहले शे'र में कल और आज के फ़र्क़ की तरफ़ इशारा किया गया है। दूसरे शे'र में कर्बला की त्रासदी का संदर्भ है। अत्याचारी शासक यज़ीद ने एक दरिया पर अपनी फ़ौज का पहरा बिठा रखा था ताकि तपते रेगिस्तान में हसन-हुसैन के क़ाफ़िले के लोग एक बूँद पानी न पी सकें। शाइर कहता है, आज इससे भी बुरे हालात हैं। आज एक दरिया नहीं, हर जल-स्रोत पर झूठ (बातिल) का क़ब्ज़ा है। ये शे'र ग़ज़ल के फ़ॉर्म में राजनीतिक कविता के बेहतरीन उदाहरण कहे जा सकते हैं।

कहकशाँ तबस्सुम की 'जम्हूरियत' शीर्षक नज़्म में यह राजनीतिक स्वर और मुखर रूप में विद्यमान है। लोकतंत्र ने अब क्या सूरत अख़्तियार कर ली है, नज़्म की प्रारंभिक पंक्तियाँ देखिए :

फ़िज़ाओं में परिंदों की क़तारें
हिज्रतों के गीत
चीख़ की सूरत गूँजते
घर की दहलीज़ पर बिसूरता बच्चा
मज़दूर बाप की बाट जोहता

एक ओर जम्हूरियत (लोकतंत्र) का यह उपहास है। दूसरी ओर हिज्रतों (पलायन/विस्थापन) के गीत चीख़ की तरह गूँज रहे हैं। सत्ता के तमाशे में इस यथार्थ की तरफ़ किसी की नज़र नहीं जाती। नज़्म के समापन पर एक और सच्चाई से हमारा सामना होता है, वह है कुछ बेहतर की उम्मीद। शाइरा ने एक बिंब-सृष्टि के ज़रिए उम्मीदों की इस सच्चाई से साक्षात्कार कराया है :

ख़िज़ाँ रुतों की उजाड़ हवाओं में
दरीदा[14] दरख़्तों पर
नन्हीं कोंपलें नये मौसम में नमू की
हरी आयतें लिख रही हैं

– 'कारवाने-अदब', मार्च 2020

नमू (फलने-फूलने) की हरी आयतें लिखने का मुहावरा काव्यभाषा के नये लहजे की पहचान कराता है। प्रकृति के प्रति सम्मान के कारण इसका महत्त्व और बढ़ गया है।

समकालीन शाइरी भय, हिंसा और सामाजिक अन्याय के विविध रूपों का अहाता करती है, वहीं सकारात्मक परिवर्तन की उम्मीदों से भी लबरेज़ है, जैसा कि अभी कहकशाँ तबस्सुम की नज़्म में हमने देखा। युवा शाइर मुश्ताक़ सदफ़ के एक शे'र में यह आशावाद एक नये अंदाज़ में व्यक्त हुआ है :

दुनिया स्याह रात की अब फ़िक्र तू ही कर
हम तो निचोड़ लेंगे अँधेरों से रौशनी

– 'बदल गई कोई शै' संग्रह, पृष्ठ 43

कविता युद्ध की चीख़ों के बीच अम्न का राग गाने का साहस जगाती है। इस दृष्टि से देखें तो समकालीन शाइरी में आज की विश्व परिस्थिति को लेकर जागरूकता का गहरा एहसास है। निरस्त्रीकरण की घोषणाओं के विपरीत असलहों के खुले बाज़ार ने विश्व मानवता को ऐसे मुक़ाम पर लाकर खड़ा कर

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

दिया है जहाँ से अम्नो-अमान के सारे रास्ते बंद नज़र आते हैं। उर्दू में युद्धविरोधी कविता का ज़िक्र होता है तो हमारा ध्यान अनायास साहिर लुधियानवी की नज़्म 'परछाइयाँ' की तरफ़ चला जाता है। इधर की नज़्मिया शाइरी में भी 'परछाइयाँ' की रिवायत की अनुगूँज सुनाई देती है। इस सिलसिले में सलीम अंसारी की दो नज़्में विशेष रूप से हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। ग़मे-दौराँ की शाइरी की ये बेहतरीन मिसालें हैं। 'नई कर्बला' नज़्म में बर्मा से इराक़ तक पूरे दक्षिण-पश्चिम एशिया के युद्धग्रस्त क्षेत्रों की मार्मिक तस्वीरकशी की गई है। पीड़ित मानवता (मज़्लूम आदमीयत) की दशा देखकर शाइर सवाल करता है : ''ये ज़ुल्म और बरबरियत का खेल जारी रहेगा कब तक?''

कर्बला की त्रासदी और उर्दू शाइरी में इसके प्रतीकात्मक प्रयोग की चर्चा हम पहले कर आए हैं। इस त्रासदी की पृष्ठभूमि में हम नई कर्बलाओं— नए-नए युद्ध क्षेत्रों — के हालात की कल्पना कर सकते हैं। नज़्म की अंतिम पंक्तियों में शाइर विश्व शांति के लिए समस्त मानवता का आह्वान करता है :

कोई तो होगा जो वहशतों के ख़िलाफ़
अम्नो-अमान का परचम बुलंद करके
नई तवारीख़े-आदमीयत[15] रक़म[16] करेगा
कोई तो होगा...

– 'कारवाने-अदब', जनवरी-मार्च 2019

दूसरी नज़्म 'हिज्रत का अज़ाब' जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है, विस्थापन-पलायन का अभिशाप झेल रहे, दरबदर होते हुए लोगों की दास्तान परिंदों के माध्यम से बयान करती है। विस्थापन के दो बड़े कारण हैं, एक युद्ध और दूसरे आजीविका की अनुपलब्धता। आँगन के शजर का बिछड़े हुए परिंदों को सदा देने का भाव बड़ा ही हृदयद्रावक है :

शजर आँगन का
हर दिन शाम ढलते ही
सदा देता है उन बिछड़े परिंदों को
जो उसकी मेहरबाँ शाख़ों के झूलों में
लहू में क़ुव्वते-पर्वाज़[17] आने तक
हुमकते थे, उछलते थे
मगर अब उड़ गये हैं
एक अनजानी दिशा में

– सलीम अंसारी

विस्थापन-पलायन की इसी वेदना को शुएब निज़ाम ने अपने एक शे'र में इस तरह शब्दबद्ध किया है :

अगर सुने तो किसी को यक़ीं नहीं आए
मकाँ बुलाते रहे और मकीं[18] नहीं आए

– 'अक्से-गुमगश्ता', पृष्ठ 43

अंत में एक जिज्ञासा है कि पिछली सदी के नवें दशक में जो दलित और स्त्री-विमर्श चर्चा में आए, समकालीन उर्दू शाइरी में इसके साक्ष्य मिलते हैं या नहीं? हालाँकि प्रगतिशील दृष्टिकोण इन विमर्शों को उतनी तरजीह नहीं देता; क्योंकि ये विमर्श सामाजिक न्याय के संघर्ष को अस्मिताओं में परिमित करते हैं। लेकिन एक तर्क यह है कि समाज की इन सच्चाइयों से इनकार भी नहीं किया जा सकता। हम पहले उर्दू शाइरी में दलित कंटेंट पर नज़र डालें। पूर्ववर्ती शाइरों के यहाँ दलित जीवन के चित्र मिल जाते हैं। मसलन अली सरदार जाफ़री की नज़्म 'समंदर की बेटी' एक मछुआरिन के जीवन पर केंद्रित है। इधर डॉ. हनीफ़ तरीन का 'दलित कविता जाग उठी' (2018) नाम से संग्रह प्रकाशित हुआ है। लेकिन यह निर्विवाद है कि दलित शाइरी की शिनाख़्त जयंत परमार के साथ बनती है। वे कविता और चित्रकला की समन्वित कला-दृष्टि से संपन्न व्यापक मानवीय सरोकारों वाले रचनाकार हैं। सामाजिक यथार्थ के अन्य रूपों के साथ दलित चेतना का एक प्रभावशाली आयाम उनके यहाँ विद्यमान है। उनकी कुछ रचनाएँ तो आत्मकथ्य जैसी लगती हैं। उनके लिए दलित जीवन का दुःख दूर से देखी सच्चाई नहीं है। सिर्फ़ 'सपना देखने वाले हाथ' नज़्म के एक अंश से अंदाज़ा हो जाएगा :

चाय के कप धोते हाथों में
थके हुए घोड़ों की
गिनती करने वाले हाथों में
गू की बालटी सर पे रखते हाथों में
अछूत के काले हाथों में
बाँस के नेज़े चमकेंगे
उन तैंतीस करोड़ देवताओं के लिए

– 'मानिंद' संग्रह, पृष्ठ 80

'इस्तिआरा' (सं. सलाहुद्दीन परवेज़) के प्रवेशांक में एक शाइर असग़र मासूम हिंदी का नाम और मिलता है। इस अंक में जयंत परमार और असग़र की दो-दो रचनाएँ दलित नज़्में

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

शीर्षक के तहत प्रकशित हुईं हैं। लेकिन इस पत्रिका के बाद असग़र मासूम हिंदी नाम कहीं देखने में नहीं आया। इस स्थिति में कहा जा सकता है कि जयंत परमार एक वाहिद नाम है। इधर की शाइरी में दलित कंटेंट की मौजूदगी का कोई उल्लेखनीय उदाहरण नज़र नहीं आता।

जहाँ तक स्त्री-विमर्श की बात है, नई नस्ल की शाइरी में इसका एक परिदृश्य बनता है। सामान्यतया सत्तर और अस्सी के दशक की शाइरात फ़हमीदा रियाज़, परवीन शाकिर, किश्वर नाहीद और सारा शगुफ़्ता ने एक वर्ग-समाज में स्त्री की सामाजिक स्थिति पर चिंता ज़ाहिर करते हुए उसके प्रतिरोध की आवाज़ को नज़्मों, ग़ज़लों में ढाला। उनकी रचनाओं से उर्दू में फ़ेमिनिस्ट शाइरी की एक स्पष्ट पहचान बनती है। कुछ बाद की शाइराओं में शहनाज़ नबी के यहाँ स्त्री-चेतना और ज़्यादा प्रखर रूप में विद्यमान है। नई पीढ़ी की शाइराओं के सरोकार नई सहस्राब्दी की बदलती दुनिया के रिश्तों में तय होते हैं। इनकी आवाज़ में वरिष्ठ शाइराओं के प्रभाव लक्षित होते हैं, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता। इनके यहाँ स्त्री के गरिमापूर्ण अस्तित्व के प्रति इसरार है, कुछ इस अंदाज़ में जैसे कि नुसरत मेहदी के ये अशआर :

अमल का रद्दे-अमल[19] वक़्त का जवाब हूँ मैं
क़ुबूल कीजिए क़ुदरत का इंतिख़ाब हूँ मैं

अना[20] पे आई तो टकरा गई हूँ दरिया से
बिसात वैसे मिरी कुछ नहीं हुबाब[21] हूँ मैं

– 'हिसारे-ज़ात से परे' संग्रह, पृष्ठ 13-14

नई पीढ़ी की एक शाइरा शबनम इशाई के यहाँ इस इसरार में और तल्ख़ी नज़र आती है। उनकी एक शीर्षक विहीन संक्षिप्त नज़्म मुलाहिज़ा कीजिए :

तुम
मुझमें
उग सकते
खिल सकते
लहलहा सकते
जज़्ब हो सकते थे
मैं तख़्लीक़[22] की मिट्टी हूँ
CASINO की टेबल नहीं
कि तुम मुझ पर दाँव लगाओ
जीतो
कि दीवालिया हो जाओ!

– 'कथार्सिस' संग्रह, पृष्ठ 54

पिछली सदी के अंतिम दशक के साथ शुरूआत करने वाले उर्दू कवियों की सर्जना पर नज़र डालें तो हम पायेंगे कि वे अपनी परंपरा के श्रेष्ठतर मूल्यों को आत्मसात् करते हुए उसके रूढ़ क्लीशे से बचाव करते हैं। नई सहस्राब्दी में प्रकाशित कुछ ताज़ा संग्रहों की मिसालें हमारे सामने हैं। शारिक़ कैफ़ी के 'यहाँ तक रौशनी आती कहाँ थी' (2008), अरशद अब्दुल हमीद के 'चिराग़ाँ सरे-ख़्वाब' (2022), आलम ख़ुर्शीद के 'न ये बस्ती हमारी, न वो सेहरा हमारा' (2014), साजिद हमीद के 'बहुत ज़रा-सा' (2019), फ़ारूक़ इंजीनियर के 'कितने सूरज' (2019), आदिल रज़ा मंसूरी के 'सन्नाटे की परछाईं' (2022), ख़ुर्शीद अकबर के 'ईद शहरे-फ़ाक़ा में' (2020), अभिषेक शुक्ल के 'हर्फ़े-आवारा' (2020) और शबनम इशाई के 'मन में जमी बर्फ़' (2013) संग्रह नये ज़ेहन की सर्जनात्मकता के प्रति आश्वस्त करते हैं। यह एक अपूर्ण सूची है, कुछ और नामों का यहाँ इज़ाफ़ा किया जा सकता है।

एक संक्षिप्त आलेख में 1980 के बाद की शाइरी के विविधतापूर्ण मंज़रनामे को समग्रता में समेट पाना नामुमकिन लगता है। बदलती हुई उत्प्रेरक परिस्थितियों और आसन्न सवालों की सापेक्षता में नई पीढ़ी की शाइरी ने जो मंज़िलें तय की हैं, महज़ उसकी कुछ बानगियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा सकी हैं। रचनाओं के साथ यात्रा करते हुए यह एक पाठकीय प्रतिक्रिया है।

फ़ुटनोट :

1. अब भी, अभी तक, 2. घटना, 3. शोक में रोना, 4. एक क़िस्म का लिबास, 5. किनारा, 6. पर्वत, 7. संभावना, 8. शोकग्रस्त, 9. जाल, 10. चोंच, 11. अभावग्रस्त लोग, 12. आर्तनाद, 13. शोरग़ुल, 14. कटे हुए, 15. मनुष्यता का इतिहास, 16. लिखना, 17. उड़ान की शक्ति, 18. मकान में रहने वाले, 19. प्रतिक्रिया, 20. अहं, 21. बुलबुला, 22. सृजन

सम्पर्क - 98115 17897

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

ग़ज़ल/नज़्म

राजेश रेड्डी

(हिंदी और उर्दू में समादृत ग़ज़ल और नज़्म में आधुनिक संवेदना के शायर।)

(1)

दुनिया को रेशा-रेशा उधेड़ें, रफ़ू करें
आ बैठ थोड़ी देर ज़रा गुफ़्तगू करें

जिसका वजूद ही न हो दोनों जहान में
उस शय की आरज़ू ही नहीं जुस्तजू करें

दुनिया में इक ज़माने से होता रहा है जो
दुनिया ये चाहती है वही हू-ब-हू करें

उनकी ये ज़िद कि एक तकल्लुफ़ बना रहे
अपनी तड़प कि आपको तुम, तुमको तू करें

उनकी नज़र में आएगा किस दिन हमारा ग़म
आख़िर हम अपने अश्कों को कब तक लहू करें

दिल था किसी ने तोड़ दिया खेल-खेल में
इतनी ज़रा-सी बात पे क्या हाव-हू करें

दिल फिर ब-ज़िद है फिर उसी कूचे में जाएँ हम
फिर एक बार वो हमें बे-आबरू करें

(2)

जितना भी वाजिब लगे, उतना अलग रख दीजिए
आप मुझमें से मिरा हिस्सा अलग रख दीजिए

जिस भी गुल को चूमना हो शौक़ से चूमें, मगर
मेरे अरमानों का वो बोसा अलग रख दीजिए

साथ चलती है मिरी रुस्वाई साये की तरह
मुझसे मिलिए और मिरा साया अलग रख दीजिए

औरों के दुख में बहाएँ अश्क के दरिया, मगर
मेरे ग़म के नाम का क़तरा अलग रख दीजिए

अपने ही ख़्वाबों की इक दुनिया बनानी है मुझे
आप जो लाए हैं वो नक़्शा अलग रख दीजिए

(3)

इक ख़्वाब की ताबीर अभी बोल पड़ेगी
लगता था कि तस्वीर अभी बोल पड़ेगी

यूँ देखता रहता हूँ हथेली की लकीरें
जैसे मिरी तक़दीर अभी बोल पड़ेगी

इन आँखों की ख़ामोशी में इतना भी न झाँकें
भीगी हुई तहरीर अभी बोल पड़ेगी

इस डर से गुरेज़ाँ हूँ तसव्वुर से भी घर के
इक हसरत-ए-तामीर अभी बोल पड़ेगी

रहने भी दें आज़ादी के नग़मे न सुनाएँ
वरना मिरी ज़ंजीर अभी बोल पड़ेगी

(2)

याद की लपटों से उठता वो धुआँ खींचता है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

राख हो कर भी मुझे मेरा मकाँ खींचता है

रात आती नहीं और क़ब्र में जा गिरते हैं
नींद खुलती नहीं और कार-ए-जहाँ खींचता है

जब भी सच बोलने का ज़ेह्न में आता है ख़याल
ऐसा लगता है कोई मुँह में जुबाँ खींचता है

ऐसा ज़ालिम है मिरा यार कि बोसे के लिए
ना कहूँ भी तो मिरे होठों से हाँ खींचता है

हम फ़क़त तेरी तरफ़ ख़ुद ही खिंचे आते हैं
खींचने को तो हमें सारा जहाँ खींचता है

कुछ भी अच्छा नहीं लगता है कहीं तेरे बग़ैर
दिल बहारों की रुतों से भी ख़िज़ाँ खींचता है

तीर हो जाते हैं बदनाम हमेशा यूँ ही
सच तो ये है कि कोई और कमाँ खींचता है

(5)

मैं होने में न होने का यक़ीं हूँ
मिरी मौजूदगी है, मैं नहीं हूँ

मिरे बारे में बातें चल रही थीं
मुझे कहना पड़ा मैं भी यहीं हूँ

मैं कमरे में हूँ और कमरा है मुझमें
मकीं मेरा वो मैं उसका मकीं हूँ

कोई है आस्तीं मेरे लिए, और
किसी के वास्ते मैं आस्तीं हूँ

हुनर मेरा चढ़े परवान कैसे
ज़रूरत से ज़्यादा नुक्ताचीं हूँ

लिए जाती थी बेचैनी फ़लक पर
सुकूँ के साथ अब ज़ेर-ए-ज़मीं हूँ

(6)

ज़मीं काफ़ी न थी और आसमाँ कम-कम बहुत ही कम
मिरी वुसअत को थे दोनों जहाँ कम-कम बहुत ही कम

मिरे तो रोज़-ओ-शब होते रहे हैं ख़र्च औरों पर
मिरे काम आए मेरे जिस्म-ओ-जाँ कम-कम बहुत ही कम

ख़ुदा का शुक्र, इक दूरी बनाए रक्खी दुनिया से
करम उसका, हुए हम रायगाँ कम-कम बहुत ही कम

मुहब्बत नाम है जिसका इक ऐसी आग है जिसमें
जलन भरपूर होती है धुआँ कम-कम बहुत ही कम

कहाँ सहरा में नक़्श-ए-पा मिलेंगे हर मुसाफ़िर के
यहाँ रह जाते हैं नाम-ओ-निशाँ कम-कम बहुत ही कम

सम्पर्क - 98215 47423

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बृजेश अंबर

(युवा शायरी में नये लबो-लहजे में उभरती भविष्य की उम्मीद।)

ख़्वाब के ख़्वाब में

दिन की दहलीज़ पर
टनटनाती रहीं
फ़ोन की घंटियाँ
जिनको मैंने
सुना-अनसुना कर दिया

सुरमई शाम को
उजले ख़्वाबों में मलबूस* कोई तो था
जो जगाता रहा
अब उठो भी.......
उठो भी!
जो कहता रहा

मैं उठा हूँ तो
कमरे में कोई नहीं
आज भी मैं तो बस यूँ ही सोता रहा
ख़्वाब के ख़्वाब में

** मलबूस - परिधान*

रोज़ की तरह

नहीं होता
कभी सोचा हुआ पूरा
मगर फिर भी
हमेशा की तरह
इस बार भी ये सोच रक्खा है
जनमदिन पर
तुम्हारे
जश्न कर लेंगे अकेले

जाएँगे होटल में
पिक्चर देख लेंगे
और अगर कुछ वक़्त हाथ आया तो
घर से दूर
सूनी-सी जगह पर
बैठकर
साथ में बीते हुए पल
याद कर लेंगे

जनमदिन पर तुम्हारे
ये सभी कुछ सोच रक्खा
मान रक्खा
तय किया था

शाम दिन और रात के चक्कर में खोई
रात के बर्तन में पूरा दिन हुआ ख़ाली
और हमेशा की तरह सब भूल बैठे
लेटे-लेटे एक हल्की-सी उदासी को अचानक याद आया
आज का दिन तो ....
.........तुम्हारा जनमदिन था

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

चीख़ते हैं सन्नाटे

सन्नाटे
चीख़ बन कर
निकलते हैं ......
गूँजते हैं ....
घर से
पड़ोसी के
मिरी आवाज़
सीने में बिखरती है

फ़ज़ाओं में अजब दहशत भरी है

मुंजमिद यादें

अब किसी कहानी का कुछ नहीं बचा मुझ में
मैंने तो ये समझा था
हो चुकी हैं यख़ यादें
आज क्या हुआ लेकिन
किस उम्मीद उँगली ने
छू लिया जो पिघली है
आँसुओं के पैकर में

मुंजमिद हुई यादें

मुंजमिद - ठंड से जमी हुई, यख़ - बर्फ़, पैकर - आकृति, शक्ल

बावली है उदास रहती है

ले के परियों को जिन हुए रुख़सत
देव पहले ही कर चुके हिज्रत
भूत भी अब यहाँ नहीं रहते
कोई ख़दशा है अब ना अंदेशा
ठहरे पानी में बू की बूदो बाश
पत्थरों से सुनाई देती है
याद की सिसकियाँ हर इक शब को

बावली क्यूँ उदास रहती है

देव - भूत प्रेत, हिज्रत- पलायन, ख़दशा - डर, बूदो बाश - निवास

सम्पर्क - 80940 02919,
+91 80940 02919

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

बार-बार... प्रकट रूप में मृत्यु की बात करने वाली जीवन की उत्तप्त स्मृतियों का आख्यान कहती हुई एक कालातीत कविता...

हवा बहा ले जाएगी हमें
फरोग फरोख्जाद
मेरी पल भर की रात
हवा का वायदा है पत्तियों से मिलने का
मेरी पल भर की रात
लबालब भरी हुई है विनाशकारी संताप से
सुनो, क्या तुम्हें सुनाई दे रहे हैं परछाइयों के थपेड़े?
मैं अजनबी, डूब उतरा रही हूँ इस मायूसी में
मुझे आदत पड़ गई है
अब मायूसी की
सुनो, क्या तुम्हें सुनाई दे रहे हैं परछाइयों के थपेड़े?

रात में कुछ कुछ घट रहा है
रक्तिम और व्याकुल होता जा रहा है चंद्रमा
देखो तो कैसे जाकर चिपक गया है छत से
और वहाँ से छूट कर कभी भी
फर्श पर गिर सकता है बरबस
बादल, जैसे हों स्यापा करती हुई औरतें
बाट जोह रहे हैं अब हो ही जाए बारिश
खिड़की के पीछे कुछ है
जो दिखता है, फिर
छिप जाता है पल भर में
थरथर काँप रही है रात
और ठिठक जाती है धरती
अपनी धुरी पर घूमते-घूमते
इस खिड़की के पीछे
छुपकर कोई अजनबी निहार रहा है
तुम्हें... और मुझे

ओ तुम, सिर से पाँव तक हरे-भरे
बढ़ा कर रख दो अपनी हथेलियाँ
उत्तप्त स्मृतियों की मानिंद
मेरी आसक्त हथेलियों के ऊपर
अपने रस भरे होंठों को
करने दो चुंबन मेरे प्रेमासक्त होंठों का
लगे तो कि हम उत्सव मना रहे हैं
अपने जिंदा होने का

हवा बहा ले जाएगी हमें
अपने संग संग...
हवा बहा ही ले जाएगी हमें
अपने संग संग...

(अहमद करीमी हक्काक के अंग्रेजी अनुवाद पर आधारित)

''हवा बहा ले जाएगी हमें'' यह बताती है कि आज नहीं तो कल हम सबको मरना है। यही है एक बड़ा कारण जिसके चलते हमें आज के जीवन को भरपूर जी लेना चाहिए। एक दिन तो हवा हमें बहा ही ले जाएगी, जैसे पेड़ों से छीन कर ले जाती हैं पत्तियाँ। और हम हैं कि सोचते रहते हैं हमारा वजूद रहेगा इस धरती पर हमेशा-हमेशा के लिए।

यिल्माज़ गुने

तुर्की के सबसे ज्यादा प्रसिद्ध फिल्मकारों में शुमार यिल्माज़ गुने (1937-84) बड़े सफल और लोकप्रिय अभिनेता तो थे ही, लेखक और कवि भी थे। अपने वामपंथी विचारों के लिए उन्होंने कभी समझौते नहीं किये और इसी कारण कई बार उनको जेल जाना पड़ा और अंततः देश छोड़ने पर मज़बूर होना पड़ा। जेल में रहते हुए उन्होंने अनेक फ़िल्मों की परिकल्पना की, उनकी स्क्रिप्ट लिखी और परोक्ष रूप से निर्देशन किया- यहाँ तक कि 1982 के कान फिल्म समारोह में सर्वश्रेष्ठ फ़िल्म का खिताब जीतने वाली फ़िल्म ''योल'' गुने ने जेल में रहते हुए बनायी।

पुल

मेरे प्यार
यह जुमला ''मेरे प्यार'' अधूरा है
पूरा नहीं पड़ता
कि ज़ाहिर कर पाऊँ अपने एहसास
ऊपर से नीचे तक सराबोर हूँ जिनसे
सिर्फ़ तुम हो जिसे पता है

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

मेरा मन कैसा होता है
जब मैं कहता हूँ ''मेरे प्यार''

शाश्वत, सूरज जैसा
मदिरा की एक चुस्की
बसंत की एक टहनी
जिसमें चटका है पहला पहला फूल
मेरे बेटे के गर्मागर्म गाल
माँ की दु:ख भरी आँखें
तम्बाकू की गंध लपेटे पिता के हाथ
मेरे घर में फुदकती चिड़िया
कल के खूबसूरत दिनों की प्रतीक्षा ...
हजारों हज़ार एहसास
जिनके बारे में सब को बताना मुश्किल ....
और तुम ....
तुम हो तो वह पुल है
जो जोड़े रखता है मुझको जीवन से ....
दुनिया का सबसे खूबसूरत पुल तुम हो।
मेरे प्यार ... मेरी खूबसूरती ....
जिन्दा वही है
जिसके अंदर कुलबुलाता हो
जिंदगी का कीड़ा ....
वह मर गया
तो काफ़ूर हो गईं
जीवन की खुशियाँ
इनको मरने मत देना
जिलाये रखना...जीवन।

दोस्त
मुझे मंजूर नहीं कि उन आँखों में देखूँ रुलाई
जिनमें बसी हुई थीं अनंत मुस्कुराहटें
उस दिन भी नहीं, मेरे दोस्त
जब पकडनी पड़े हमें अलग अलग राहें ...

पहले पहल एक चिंगारी उठती है
फैलती है धीरे धीरे
पता भी नहीं चलता कब
बन जाती है ये ज्वालामुखी
और जलाने लगती सबकुछ, मेरे दोस्त...

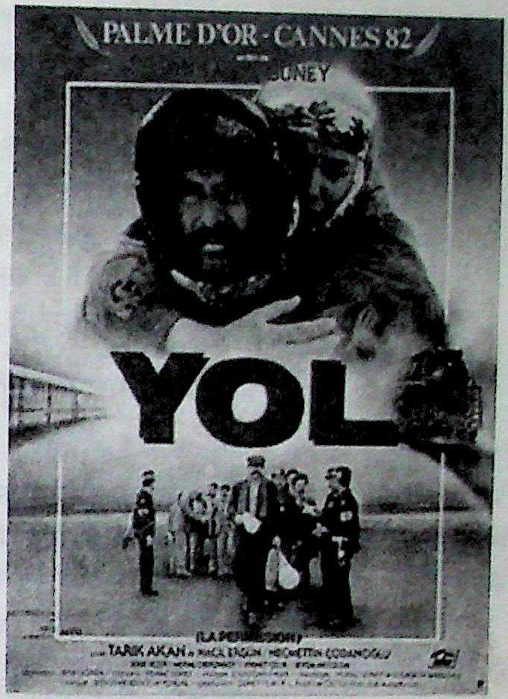

माँ हों या भाई
कोई नहीं भर सकता यह खालीपन
इस एहसास का कोई सानी नहीं
उस से खूबसूरत कुछ नहीं, मेरे दोस्त ...

खुशियाँ बाँटना सारी सारी
सारी मुश्किलें .... व्यथाएँ भी
और चलते रहना जीवन भर
साथ साथ हाथ से हाथ थामे...

रुलाई क्या सिसकियाँ भी नहीं
दिखाई दें जिनमें
जिनमें बसी हुई थीं अनंत मुस्कुराहटें
उस दिन भी नहीं, मेरे दोस्त
जब पकडनी पड़े हमें अलग अलग राहें ...

(www.turkishclass.com से साभार)

सम्पर्क – yapandey@gmail.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

फ़िल्म और कविता - कुछ नोट्स

अचिंत

(नवीन कथ्य के रूबरू, नये अंदाज़ में कलाओं से संबंध बनाने की ओर प्रवृत्त युवा रचनाकार।)

1.

वह एक सराय है। वहाँ लोग मसखरे के चुटकुले पर हँस रहे हैं। यात्री आ गए हैं ठहरने। दृश्य में बरसात है। और बरसात के अनेक अर्थ।

अगले दृश्य में किसी नदी / पोखरे के किनारे कांदो-कीचड़ में लथपथ दो पात्र एक दूसरे से लड़ रहे हैं। अगर दृश्य रोक दें तो यह समझ आता है कि नदी / झील का पानी बढ़ गया है, पेड़ भी डूब रहे हैं और ज़ोर वर्षा हो रही है। पानी पानी से मिल रहा है।

कला से एक कामना अर्थ निर्धारण है।

अगर इन दो दृश्यों की भी फ़िल्म होती, सिर्फ़ यही दो दृश्य और आगे पीछे कुछ नहीं। आख़िरी फ्रेम एक श्वेत-श्याम धुंधला, आउट ऑफ़ फ़ोकस चित्र, दूर लड़ते लोग और कैमरा जहाँ से देख रहा है, सराय की पिछली दीवार का एक कोना, अनाज और लकड़ियाँ ढोने की एक गाड़ी और जल पर गिर रहा जल। गीली मिट्टी-सब दुनिया का।

कला की महानता का निर्धारण कैसे होगा?

अच्छी कविता में तो वही होगा जो सबसे पहले महसूस किया जा सकेगा। उस पर उँगली न रखी जा सके, उसकी नब्ज न पकड़ी जा सके फिर भी आदमी के हृदय में मौजूद सबसे छोटी रक्त-बूँद को भी जो छू सके।

इन दृश्यों में और जो कविताएँ मुझे पसंद हैं, उनमें समानताओं के बारे में सोचता हूँ। यह लगता है कि इनको अनुभव करते हुए एक ''सेन्स ऑफ़ बिलॉगिंग'' महसूस होती है। लेकिन यह भी लगता है कि यह अनुभूति व्यैक्तिक नहीं है, सामूहिक है या सामूहिकता की ओर जाती है जहाँ समय और स्पेस का भेद मिट जाता है।

क्या यही मनुष्यता का उत्स और उत्सव है?

(दृश्यः आंद्रेरूब्लेव, आंद्रेतारकोवस्की)

2.

जिजेक एक किताब में ''टूइवेंट'' की बात करते हैं। यह लोगों का एक लक्ष्य के प्रति निष्ठा के साथ घर से निकल जाना भर नहीं है। लोगों की रोज़मर्रा की स्थिति बदलनी चाहिए। क्या कविता इस ''टू इवेंट'' की ओर बढ़ने में सहायक होगी? क्या अच्छा सिनेमा इस ''टू इवेंट'' का प्रतिबिम्ब है / होना चाहिए?

***

मेरा अर्थ पढ़ो - पिंदार

देखना शब्दों से पहले आता है। यह बर्जर कहते हैं और यह भी कि जो दिखता है और जो हम जानते हैं उसके बीच का सम्बन्ध कभी भी स्थिर नहीं रहता।

फिर अर्थ निर्धारण कैसे करेंगे। असंख्य कविताओं के बारे में सोचते हुए यही लगता है।

बर्जर की किताब पढ़ते हुए बार-बार कीट्स की कविता ''ओड टू ग्रीशयन अर्न'' के बारे में सोचता रहा।

केंद्र में एक ऑब्जेक्ट है- कविता जो व्यक्ति कह रहा है, उससे बाहर। वह देखता है।

सिनेमा भी तो इसी ऑब्जेक्ट के इर्द-गिर्द घूमता है— कैमरे से बँधा हुआ, लेकिन फिर भी उससे भी बाहर।

क्रोच कहते हैं कि भाषा का हर जायज़ इस्तेमाल कविता है - फिर सिनेमा भी कविता है?

***

अच्छे सिनेमा में भी वही तत्व हैं जो अक्सर अच्छी कविता में होते हैं
भावप्रवणता
बीत गए की स्मृति
भविष्य का स्वपन

***

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

कला की ओर देखते हुए हम कला को नहीं, खुद को देखते हैं।

***

वह जलकुंभी, वह चमकदार हिना
और स्त्री की देह की तरह कोमल, क्रूर गुलाब
– मलार्मे

बेर्तोलूचि की फ़िल्म 'द ड्रीमर्ज़' की याद आती है। उसकी नायिका ईसाबेला असंख्य कविताओं की आदर्श नायिका है। फ़िल्म एक surreal स्वप्न की तरह घटती है, बार-बार पात्रों की स्मृति के ज़रिए, निर्देशक की स्मृति की ओर लौटती है। कई दृश्य याद आते हैं लेकिन एक प्रसिद्ध दृश्य चुना जा सकता है। नायिका बाथ टब में बैठी है, टब की एक तरफ़ एक आईना लगा है, वह आईना ठीक करती है। उसका चेहरा आईने में झलकता है। सीधा नहीं, एक कोण से। उन्नीस सौ सत्तर के पेरिस में एक बाथटब में एक नग्न नायिका, आईना टेढ़ा कर खुद को देखती हुई। इस एक फ्रेम को जाने कितने तरीके से पढ़ा जा सकता है।

पुरुष की दृष्टि
अन्य का आकर्षण
सुंदरता की परिभाषा
वर्जित कुछ नहीं
प्रेम के लिए objectification की आवश्यकता
बार्थ का jouissance

क्या यह वह दृश्य है जिसकी भागीदारी किसी ''ट्रू इवेंट'' में है? कला की ओर देखते हुए हम कला को नहीं, खुद को देखते हैं।

(बाद में ईसाबेला के लिए कविताएँ लिखीं और मार्लो के दुखांत नाटक 'एड्वर्ड द्वितीय' की नायिका ईसाबेला की वह अमर पंक्ति याद करता रहा— ''and here Mortimer, begins our tragedy.'')

3.
मैं जो तुम्हारे सपने देखता हूँ, मेरे लिए वही कविता है
* पेसोआ

मैन रे एक फ़ोटोग्राफर थे जिन्होंने सात फ़िल्में बनाईं। ये फ़िल्में टुकड़ों की सीरीज़ की तरह थीं (fragments)। उन्होंने इसे सिने-पोयम कहा। ऐसे ही फ़िल्म पोयम की धारणा भी है। लेकिन जो मैंने लिखा और अपने कैमरे से शूट किया, वह सिनेमा है या नहीं, इस पर बहुत नहीं सोचा।

जिसको मैं मोशन पोयम कह रहा था, वह सिने पोयम से तो अलग था ही। कई सवाल हो सकते हैं।

क्या कैमरे से शूट किया गया हर कथानक जो स्क्रीन पर देखा जा सके, जिसमें ऑडियो-विजुअल का इस्तेमाल हो, वह सिनेमा है?

सिनेमा की परिभाषा क्या होगी?

साहित्यिक पोएटिक्स का दृश्य-पोएटिक्स में अनुवाद कैसे होगा?

दोनों के बारे में तुलनात्मक रूप से सोचते हुए, क्या इस बात का कोई असर पड़ता है कि कविता पुरानी है, वृद्ध है और सिनेमा एक किशोर है, जिसके अनुभव अभी प्रथम अनुभवों के आकर्षण और कमज़ोरियों से बने हुए हैं?

***

किसी भी कला-कृति के लिए ज़रूरी है कि वह एक साथ जानी-पहचानी और अजनबी हो।

***

सर्गी आयज़ेन्स्टायन कहते थे कि 'स्पेस' चित्रकारों के लिए है और 'समय' कवियों के लिए।

***

'मोशन पोयम' का विचार शायद दो वजहों से बना। सिनेमा बनाने के लिए ज़रूरी संसाधनों की कमी और ज़रूरी स्किल सेट की कमी। नाम भी काफ़ी बाद आया। और जैसा ज़ाहिर है ये फ़िल्में कम और कविताएँ ज़्यादा थीं। कविता दो अलग अलग प्लेन पर— एक दृश्य, एक श्रव्य और इन दोनों को जोड़ता था संगीत। एक आधुनिकोत्तर pastiche की तरह।

अंत में शब्द-चित्र के सम्बंध को ही निभाने, समझने की कोशिश थी।

फिर भी कोई बहुत साफ़-साफ़ भेद कर पाना सम्भव नहीं लगता।

(2013 में बनी 'बेतरतीब' यूट्यूब पर देखी जा सकती है)

4.

तीन फ़िल्में: तीन दृश्य

***

एक कक्षा। किशोर लड़के। दुनिया को पहली बार देखते समझते लड़के। सफलता के बोझ से दबे लड़के।

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

एक शिक्षक जो साहित्य की ज़रूरत के बारे में बात कर रहा है। जो कह रहा है कि शब्दों से दुनिया बदल सकती है।

''मनुष्य जाति जुनून से भरी हुई है''

''तुम्हारा गीत क्या होगा?''''

(दृश्यः डेड पोयट्स सॉसायटी, पीटर वेयर)

***

एक पोस्टमैन को एक स्त्री से प्यार हो गया है। वह जिन जगहों पर चिट्ठी पहुँचाने जाता है, उनमें से एक पते पर एक कवि रहता है। कवि अज्ञातवास में है।

लेकिन पोस्टमैन समझ जाता है वह कवि है। दृश्य इसके बाद के हैं।

* पोस्टमैन एक किताब पर कवि का ऑटोग्राफ़ चाहता है। उससे मिलने जाने के पहले आईने के सामने अभ्यास करता है।

* अगले दिन जब वह कवि के पास पहुँचता है तो कवि के हाथ जूठे होते हैं, पोस्टमैन कलम बढ़ाते हुए अपने आस्तीन पर जूठा पोंछ दिए जाने की ताकीद करता है। कवि ऑटोग्राफ़ दे देता है।

* पोस्टमैन पोस्ट ऑफ़िस में अपनी मेज़ पर उदास बैठा है। कवि ने ऑटोग्राफ़ देते हुए पोस्टमैन का नाम नहीं लिखा है। (वह इतने बड़े कवि को जानता है, उसे सिर्फ़ यही उस स्त्री के सामने साबित करना है ताकि वह स्त्री प्रभावित हो) कवि ने सिर्फ़ अपना नाम लिख दिया है और एक शब्द - सिन्सियरली, पाब्लो नेरुदा।

(दृश्यः एल पोस्तिनो, मैसिमो ट्रोईसी)

***

एक फूलों से भरे पेड़ के ऊपर पड़ा हुआ उनींदी आँखों से देखता आसमान, दुनिया और गर्मियाँ, एक कवि।

सीलन से भरे शहरों में जिए किसी कवि की चाहना क्या है? प्रेयसी और मौत एक वाक्य में एक साथ उसे मिलें। आदर्श गर्मियाँ जहाँ तीन दिन ही सही पर पूरे सुकून से तितलियों की तरह गुज़ारे जाएँ।

पार्श्व में बज रही वाइयलिन पर कोई क्लासिकल धुन और एक उदास स्थिर आवाज़ में कोई वह कविता पढ़ता है जो कवि ने उस बरस लिखी है जिस बरस उसने वैसी ही पाँच और कविताएँ लिखीं हैं। कवि, जॉन कीट्स।

(दृश्यः ब्राइट स्टार, जीन कैम्पीयन)

***

सिनेमा और कविता की भाषा अलग-अलग है।

सिनेमा की भाषा का सम्पूर्ण अनुवाद असम्भव है और उसको सिर्फ़ चिन्हों में नहीं कहा जा सकता।

5.

तुम जिसका भी आविष्कार करते हो, वह सत्य होगा।
इसका भरोसा रखो।
कविता, ज्यामितीय की तरह ही सटीक विषय है।

– जूलीयन बॉर्नस

जो सिनेमा के लिए सच है, कविता के लिए भी। एक के पास जाने से दूसरे का आकर्षण बढ़ जाता है।

***

सिनेमा पर ब्रेस्सों (Bresson) को पढ़ना चाहिए। 'नोट्स ऑन द सिनेमैटोग्राफर' से तीन अनुवाद—

* वह सब कुछ जो खामोशी और गतिहीनता से सम्प्रेषित किया जा सकता है, होना चाहिए।

* वह दिखाओ, जो तुम्हारे बिना शायद कभी देखा ही नहीं जा सकता।

* विचारों को छिपा दो, पर इस तरह कि लोग उनको खोज सकें। जो सबसे ज़रूरी होगा वह सबसे गहरे छिपा होगा।

***

बार्थ ने एक लेख लिखा है – 'लीविंग द मूवी थियेटर'।

* ''दूसरे शब्दों में, ज़ाहिर है, वह सम्मोहन से बाहर आ रहा है...और उसके लिए इसका एक ही मतलब है: उसका ठीक हो जाना''

* फ़िल्म इमेज (आवाज़ के साथ) क्या है? एक प्रलोभन।

* जिसका इस्तेमाल मैं खुद को इमेज से दूर करने के लिए करता हूँ, अंत में वही मुझे फिर से उस इमेज की ओर खींचता है। यह सम्मोहन दूरी की वजह से है। यह कोई बौद्धिक दूरी नहीं है बल्कि कामुकता से भरी है।

***

एक आदमी एक ख़ाली थियेटर में आकर बैठता है। वह पर्दे की तरफ़ देख रहा है। रौशनी कम की जाती है। प्रोजेक्टर चलता है। पर्दे पर दृश्य आने शुरू होते हैं। इमेज बार-बार बदलती है। एक पात्र दूसरे को चूम रहा है। ऐसे कई युगल एक के बाद एक। दृश्य बदलता जाता है। तरह-तरह के लोग। तरह तरह के चुम्बन। उल्लास। अवसाद। और वह जो मनुष्यता की जड़ में है।

एक आदमी बैठा है।
वह पर्दे की ओर देख रहा है।

(दृश्यः सिनेमा पैराडिसो, ग्यूसेप टॉरनाटोर)

सम्पर्क – anchitthepoet@gmail.com

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल

की ऐतिहासिक व महत्त्वाकांक्षी परियोजना

कथादेश

भारत के हिन्दी कथाकारों पर केन्द्रित कथाकोश

लगभग सवा सौ साल के परिदृश्य में लिखी गयीं हिन्दी कहानियों में से लगभग 650 प्रतिनिधि कहानियों को जिल्दबन्द करता यह कथाकोश 18 खंडों में विभाजित है। साथ ही हिन्दी कहानी की सम्पूर्ण विकास-यात्रा का सांगोपांग रेखांकन व निरीक्षण करते 75 से अधिक आलोचनात्मक आलेखों तथा संकलित प्रत्येक कहानी पर स्वतन्त्र टिप्पणियों को भी संगृहीत किया गया है। इसकी उपयोगिता कहानी के शोधार्थियों के लिए तो है ही, कथा-रस के सामान्य आस्वादकों के लिए भी है।

प्रधान संपादक : संतोष चौबे

'कथादेश' के सम्पूर्ण सेट का मूल्य 17,500 रु. है, जिस पर निर्धारित छूट देय होगी।

कथादेश के खंड निम्न समूहों के अनुसार भी क्रय किये जा सकते हैं :

धरोहर (धरोहर, प्रेमचंदोत्तर कहानी-1 व 2)
तीनों खंड एक साथ 2970 रु. (छूट के साथ 2200 रु.)

नई व साठोत्तरी कहानी (नई कहानी-1 व 2 तथा साठोत्तरी कहानी-1 व 2)
चारों खंड एक साथ 3960 रु. (छूट के साथ 3000 रु.)

समकालीन कहानी (समकालीन कहानी-1, 2, 3, 4, 5, 6 व 7)
सातों खंड एक साथ 6930 रु. (छूट के साथ 5200 रु.)

युवा कहानी (युवा कहानी-1, 2, 3 व 4) :
चारों खंड एक साथ 3960 रु. (छूट के साथ 3000 रु.)

(डाक से मँगाने पर डाक खर्च अलग से देय होगा)

अमेजन व आईसेक्ट ऑनलाइन पोर्टल पर भी उपलब्ध

'कथादेश' प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें

आईसेक्ट पब्लिकेशन
ई-7/22, एस.बी.आई., अरेरा कॉलोनी, भोपाल (म.प्र.)-462016
फोन : 0755-4851056, 8818883165

आईसेक्ट लिमिटेड
स्कोप कैम्पस, एनएच-12, होशंगाबाद रोड, भोपाल-462047
फोन : 0755-2432801, 2432830

E-mail : aisectpublications@aisect.org, mahip@aisect.org

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आईसेक्ट पब्लिकेशन

का

प्रवासी सृजन संसार

रु. 200

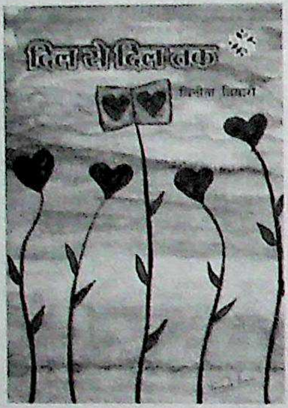

रु. 200

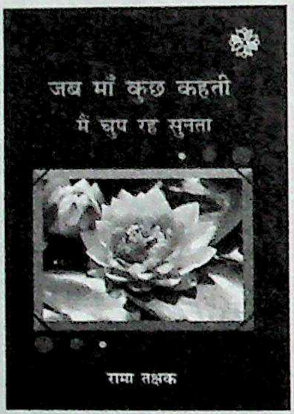

रु. 250

रु. 200

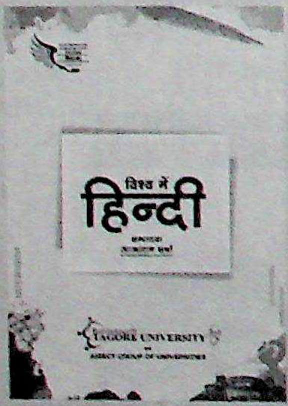

रु. 250

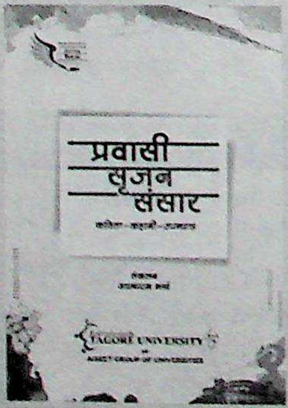

रु. 300

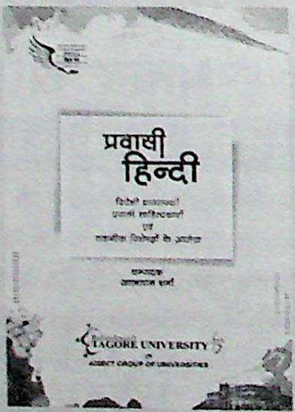

रु. 300

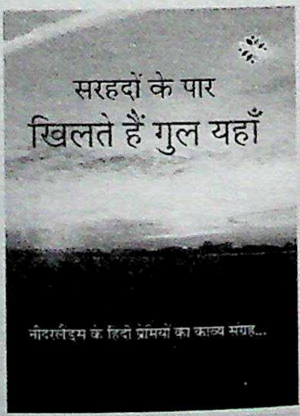

रु. 250

आईसेक्ट पब्लिकेशन

ज्ञान-विज्ञान, कौशल विकास तथा कला-साहित्य पर हिन्दी, अँग्रेजी एवं अन्य भाषाओं में पुस्तकों और पत्रिकाओं का राष्ट्रीय प्रकाशन

ई-7/22, एसबीआई, अरेरा कॉलोनी, भोपाल-462016 (भारत)
फोन- 0755-4851056, +91-8818883165
E-mail : aisectpublications@aisect.org, mahip@aisect.org

स्कोप कैम्पस, एनएच-12, होशंगाबाद रोड, भोपाल-462047
फोन : + 91-755-2432801, 2432830
पुस्तकें अमेजन व आईसेक्ट ऑनलाइन पोर्टल पर भी उपलब्ध

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

आईसेक्ट पब्लिकेशन

ज्ञान-विज्ञान, कौशल विकास तथा
कला-साहित्य पर हिंदी, अंग्रेजी एवं
अन्य भाषाओं में पुस्तकों और पत्रिकाओं का राष्ट्रीय प्रकाशन

स्व-प्रकाशन योजना

हिंदी भाषा, साहित्य एवं विज्ञान की विभिन्न विधाओं में पुस्तकों के प्रकाशन में आने वाली कठिनाइयों को देखते हुए आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल ने लेखकों के लिए स्व-प्रकाशन योजना एक अनूठे उपक्रम के रूप में शुरू की है।

जिन रचनाकारों को अपनी मौलिक, अनूदित, संपादित रचनाओं का पुस्तक रूप में प्रकाशन करवाना है, पांडुलिपि की सॉफ्ट कॉपी के साथ आईसेक्ट पब्लिकेशन, भोपाल से संपर्क करें।

आईसेक्ट पब्लिकेशन से पुस्तक प्रकाशन के लाभ ही लाभ

- प्रकाशित पुस्तक आईसेक्ट पब्लिकेशन की पुस्तक सूची में शामिल की जायेगी।
- पुस्तक, बिक्री के लिये सुप्रसिद्ध स्टॉलों एवं मेलों आदि में उपलब्ध रहेगी।
- प्रकाशित पुस्तक की समीक्षा सुप्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराने का प्रयत्न किया जायेगा।
- प्रकाशित पुस्तक, शहरों व कस्बों में स्थापित वनमाली सृजनपीठ के सृजन केन्द्रों में पठन-पाठन और चर्चा के लिए भिजवाई जायेगी।
- पुस्तक के लोकार्पण और साहित्यिक मंच पर संवाद-चर्चा आदि की व्यवस्था की जा सकेगी।
- पुस्तक चयनित ई-पोर्टल (अमेज़न, आईसेक्ट ऑनलॉइन आदि) पर भी बिक्री के लिये प्रदर्शित की जायेगी।

विशेष : शोध पर आधारित पुस्तकों के प्रकाशन में अग्रणी संस्थान
(विश्वविद्यालयों के फैकल्टी एवं छात्रों के लिये विशेष स्कीम)

सुरुचिपूर्ण फोर कलर प्रिंटिंग ● आकर्षक गेटअप ● नयनाभिराम पेपर बैक में

कुल बिक्री के आधार पर वर्ष में एक बार नियमानुसार रॉयल्टी भी

पांडुलिपि किसी भी विधा में स्वीकार

आप स्वयं पधारें या संपर्क करें

- प्रकाशन अधिकारी, आईसेक्ट पब्लिकेशन : मो.+91-8818883165
- अधयक्ष, वनमाली सृजनपीठ : मो.+91-9425014166
  ई-7/22 अरेरा कॉलोनी, भोपाल-16 फोन- 0755-4851056
- E-mail : mahip@aisect.org, aisectpublications@aisect.org

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

CC-0 Agamnigam Digital Preservation Foundation,Chandigarh.Funding by IKS-MoE-2025-Grant

Gandhi Memorial College Of Education Bantalab Jammu

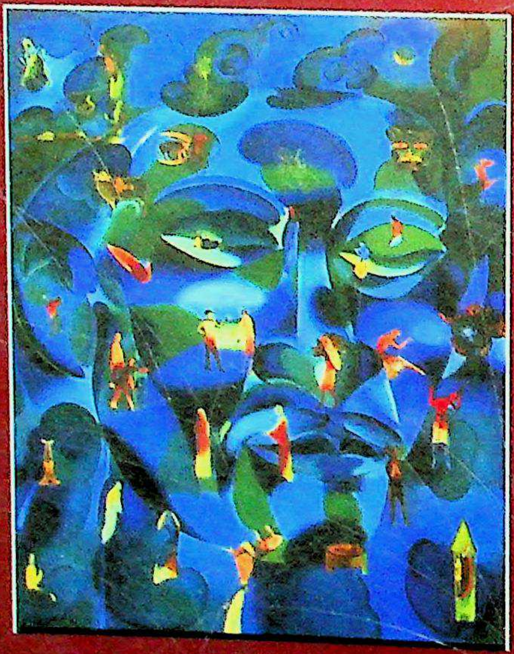

गुलाममोहम्मद शेख़

Vinayagam Digital Preservation Foundation Chandigarh Funding by IKS-MoE-2025-Grant